# भा० दि० जैनसंघ ग्रंथमाला

इस ग्रन्थमालाका उद्देश्य

संस्कृत प्राकृत आदिमें निबद्ध दि० जैनागम, दर्शन,
साहित्य, पुराण आदिका यथासम्भव
हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन



संचालक

**भा० दि० जैन संघ**

ग्रन्थाङ्क १-१२


प्राप्तिस्थान
व्यवस्थापक
भा० दि० जैन संघ
चौरासी, मथुरा

स्थापनाब्द ] प्रति ८०० [ वी० नि० सं० २४६८

Śri Dig. Jain Sangha Granthamala No I-XII

# KASAYA-PAHUDAM
# XII
## UPAYOG ETC.

BY

GUNADHARACHARYA

WITH

Churni Sutra of Yativrashabhacharya

AND

THE JAYADHAVALA COMMENTARY OF VIRASENACHARYA THREE-UPON

*EDITED BY*

Pandit Phoolchandra Siddhantashastry

*EDITOR MAHABANDHA*

*JOINT EDITOR DHAVALA*

Pandit Kailashachandra Siddhantashastri

*Nyayatirtha, Siddhantaratna*

*Pradhanadhyapak, Syadvada Digambara Jain Mahavidyalaya, Varanasi*

*PUBLISHED BY*

THE SECRETARY PUBLICATION DEPARTMENT

THE ALL-INDIA DIGAMBAR JAIN SANGHA

CHAURASI, MATHURA

VIKRAMA S 2027 VIRA-SAMVAT 2497 1971 A. C.

# Śri Dig. Jain Sangha Granthamala

Foundation year ] [ Vira Niravan Samvat 2468


*Aim Of the Series —*

## Publication of Digambara Jain Siddhanta, Darshana, Purana, Sahitya and other works in Prakrit etc., possibly with Hindi Commentary and Translation


*DIRECTOR*

SHRI BHARATAVARSIYA
DIGAMBARA JAIN SANGHA
NO. 1 VOL XII

*To be had from—*

THE MANAGER
**SRI DIG. JAIN SANGHA**
CHAURASI, MATHURA

**800 Copies** **Price Rs Sixteen only**

# प्रकाशकीय

श्री कसायपाहुड सिद्धान्त ग्रन्थका जयधवला टीकाके साथ बारहवाँ भाग स्वाध्याय प्रेमी पाठकोंके हाथोंमें अर्पित करते हुए हमे प्रसन्नता है। अब दो भाग शेष हैं। आशा है कि दोनो भाग जल्द ही प्रकाशित हो जायेंगे और हम इस महान कार्यके उत्तरदायित्वसे मुक्त हो जायेंगे।

इनके प्रकाशनमें एक मुख्य कठिनाई आर्थिक रही है। दिनपर दिन मँहगाई बढती जाती है। फलत कागज, छपाई आदिका भाव भी बढता जाता है और इस तरह व्यय भार भी अधिक होता जाता है। दूसरी ओर ऐसे महान ग्रन्थोकी बिक्री बहुत कम होती हैं। छपते ही कुछ प्रतियाँ बिक जाती हैं फिर धीरे-धीरे बिकती है। इस तरह एक भागमे जितना रुपया लगता है तत्काल उसका चतुर्थांश भी प्राप्त नही होता। जनतामें तो इस प्रकारके ऊँचे साहित्यको खरीदनेकी भावना कम ही है, मन्दिरोमे भी उनका सग्रह करनेकी भावना नही है। ऐसी स्थितिमे बिक्रीकी समस्या बनी रहती है। फिर भी जिनशासनके महान् प्रभावक ग्रन्थोका उद्धार तो जिनमन्दिर निर्माण जैसा ही आवश्यक है क्योकि जिन वाणीसे ही जिन मन्दिरोकी प्रतिष्ठा है अत उनकी ओर भी ध्यान देना आवश्यक है।

गत वर्ष भा० दि० जैन सघका अधिवेशन आचार्य श्री समन्तभद्रजी महाराजकी छत्रछायामे कुम्भोज बाहुबलीमे हुआ था। उस समय महाराजके शुभाशीर्वाद तथा सेठ वालचन्द देवचन्द शाह तथा ब्र० पं० माणिकचन्द्र जी चवरे आदिके सत्प्रयत्नसे इस कार्यके लिये अच्छी सहायता प्राप्त हो गई थी। तथा श्रीचवरे जीने आश्वासन दिया है कि यह कार्य पूरा हो जायगा। इसके लिये हम महाराजश्रीके चरणोमे विनत होनेके साथ श्रीचवरेजीके विशेषरूपसे कृतज्ञ हैं जिन्होने इस कार्यमे परिश्रमपूर्वक हार्दिक सहयोग दिया है। सिद्धान्ताचार्य प० फूलचन्द्रजीके सम्पादकत्वमें यह कार्य शीघ्र पूर्ण होगा ऐसी हम आशा करते हैं।

जयधवला कार्यालय
भदैनी, वाराणसी
वी० नि० स० २४९७

**कैलाशचन्द्र शास्त्री**
मत्री, साहित्य विभाग
भा० दि० जैन सघ

# भा० दि० जैन संघके साहित्य विभागके सदस्यों की नामावली

## संरक्षक सदस्य

१३०००) दानवीर सेठ भागचन्दजी डोंगरगढ
८१२५) दानवीर श्रावक शिरोमणि साहू शान्तिप्रसादजी दिल्ली
५०००) स्व० श्रीमन्त सर सेठ हुकुमचन्दजी इन्दौर
५०००) सेठ छदामीलालजी फिरोजाबाद
३००१) सेठ नानचन्द्रजी हीराचन्दजी गाँधी उस्मानाबाद
२५००) लाला इन्द्रसेनजी जगाधरी
२५००) बाबू जुगमन्दिरदासजी कलकत्ता
२००१) सिंघई श्रीनन्दनलालजी बीना

## सहायक सदस्य

१२५०) सेठ भगवानदासजी मथुरा
१०००) बा० कैलाशचन्दजी एम० डी० ओ० बम्बई
१००१) सकल दि० जैन परवार पञ्चान नागपुर
१००१) सेठ श्यामलालजी फर्रुखाबाद
१००१) सेठ घनश्यामदासजी सरावगी लालगढ़
[ रा० ब० सेठ चुन्नीलालजीके सुपुत्र स्व० निहालचन्दजीकी स्मृति में ]
१०००) स्व० लाला रघुवीरसिंहजी जैना वाछ कम्पनी दिल्ली
१०००) रायसाहब लाला उल्फतरायजी दिल्ली
१०००) स्व० लाला महावीरप्रसादजी ,,
१०००) स्व० लाला रतनलालजी भादीपुरिये ,,
१०००) स्व० लाला घूमीमल धर्मदासजी ,,
१००१) श्रीमती मनोहरी देवी मातेश्वरी लाला बसन्तलाल फिरोजीलालजी दिल्ली
१०००) बाबू प्रकाशचन्दजी खण्डेलवाल ग्लास वर्क्स सासनी ( अलीगढ )
१०००) लाला छीतरमल शकरलालजी मथुरा
१०००) सेठ गणेशीलाल आनन्दीलालजी आगरा
१०००) सकल जैन पञ्चान गया
१०००) सेठ सुखानन्द शकरलालजी मुल्तानवाले दिल्ली
१००१) सेठ मगनलालजी हीरालालजी पाटनी आगरा
१००१) स्व० श्रीमती चन्द्रावतीजी धर्मपत्नी स्व० साहू रामस्वरूपजी नजीबाबाद
१००१) सेठ सुदर्शनलालजी जसवन्तनगर
१०००) प्रोफेसर खुशालचन्द गोरावाला वाराणसी
( स्व० पूज्य पिता शाह फुन्दीलालजी तथा मातेश्वरी केशरबाई गोरावालाकी पुण्य स्मृतिमें )
१००१) सेठ मेघराज खूबचन्दजी पेंडरा रोड
१०००) सेठ ब्रजलाल बारेलाल चिरमिरी
१०००) सेठ वालचन्द देवचन्द शाह घाट कोपर बम्बई
१०००) पद्मश्री ब्र० पं० सुमतिबाई जी शाह शोलापुर

# विषय-परिचय

## ७ उपयोग अर्थाधिकार

जयधवलाका यह वारहवाँ भाग है। इसमे १ उपयोग, २ चतु स्थान, ३ व्यञ्जन और ४ सम्यक्त्व (दर्शन मोहोपशामना) ये चार अर्थाधिकार संगृहीत हैं। इनमे कसायप्राभृतके १५ अर्थाधिकारोमेसे उपयोग यह सातवाँ अर्थाधिकार है। इसमें क्रोधादि कषायोके उपयोगस्वरूपका विस्तारसे विवेचन किया गया है। इस अर्थाधिकारमे कुल ७ सूत्रगाथाएँ आई है। उनमेसे पहली सूत्रगाथा 'केवचिर उवजोगो' इत्यादि है। इसमे तीन अर्थ सगृहीत हैं। यथा—

१ क्रोधादि कषायोमेसे एक-एक कषायमे एक जीवका कितने काल तक उपयोग होता है ?

२. क्रोधादि कषायोमेंसे किस कषायका उपयोग काल किस कषायके उपयोग कालसे अधिक होता है?

३ नरकादि गतियोमेंसे किस गतिका जीव किस कपायमे पुन पुन उपयोगसे उपयुक्त होता है? अर्थात् नारकी जीव अपनी पर्यायमें क्या क्रोधोपयोगसे बहुत वार परिणमता है या मानोपयोग, मायोपयोग या लोभोपयोगसे बहुत वार परिणमता है ? इसी प्रकार शेप तीन गतियोमे भी पृच्छा करनी चाहिए।

इस प्रकार इस प्रथम गाथासूत्रमें उक्त तीन अर्थ पृच्छारूपसे निवद्ध है। उनका निर्णय चूर्णिसूत्रोके अनुसार क्रमसे करते हुए वतलाया है—

१ क्रोधादि चारो कषायोका जघन्य और उत्कृष्ट उपयोगकाल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि कपाय परिवर्तनके विना इससे अधिक काल तक एक कपायका अवस्थान नही पाया जाता।

यद्यपि जीवस्थान आदिमें क्रोधका मरणकी अपेक्षा और मान, माया तथा लोभका मरण और व्याघात इन दोनोकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय वतलाया है, पर कपायप्राभृतके चूर्णिसूत्रोमें इस प्रकार चारो कषायोके जघन्य कालका उल्लेख उपलव्ध नही होता। इतना अवश्य है कि यहाँ गतियोमें निष्क्रमण और प्रवेशकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय अवश्य स्वीकार किया गया है। जैसे कोई नारकी नरकमे मरणके समय क्रोध कषायसे एक समय तक उपयुक्त रहा और मरकर दूसरे समयमे क्रोधकपायके साथ तिर्यञ्च या मनुष्य हो गया। इस प्रकार नरक गतिमें क्रोधकपायका निष्क्रमणकी अपेक्षा एक समय काल उपलव्व हुआ। इसी प्रकार प्रवेशकी अपेक्षा भी क्रोध कषायका एक समय काल घटित कर लेना चाहिए। उदाहरणार्थ कोई तिर्यञ्च या मनुष्य मरणसे अन्तर्मुहूर्त पूर्व क्रोधकपायरूपसे परिणत हुआ और जव क्रोधकपायके कालमें एक समय शेष रहा तव मरकर नारकी हो गया। इस प्रकार प्रवेशकी अपेक्षा भी नरकगतिमें क्रोधकषायका एक समय काल उपलव्ध हो जाता है। इसी प्रकार शेष कषायोका प्रवेश और निष्क्रमणकी अपेक्षा एक-एक समय काल घटित कर लेना चाहिए।

२ दूसरे अर्थका स्पष्टीकरण करते हुए चूर्णिसूत्रोमें क्रोधादि चारो कषायोके जघन्य और उत्कृष्ट कालके अल्पवहुत्वका निर्देश करते हुए वतलाया है कि मानकषायका जघन्य काल सवसे स्तोक है। उससे क्रोध, माया और लोभकषायका जघन्य काल उत्तरोत्तर विशेष अधिक है। पुन लोभकपायके जघन्य कालसे मानकषायका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है। तथा इसके उत्कृष्ट कालसे क्रोध, माया और लोभकपायका उत्कृष्ट काल उत्तरोत्तर विशेष अधिक है। यहाँ प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार विशेषका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है जो कि आवलिके असख्यातवे भागप्रमाण है। आगे चारो गतियो और चौदह जीवसमासोमे इसी अल्पवहुत्वको घटित करके वतलाते हुए जयधवलाकारने चूर्णिसूत्र ( पृ० २३ ) के 'तेसिं चेव उवदेसेण' पदको ध्यानमे रखकर भगवान् आर्यमक्षु और नागहस्ति इन दोनोके एतद्विषयक उपदेशको प्रवाह्यमान वतलाया है।

३. तीसरे अर्थको स्पष्ट करते हुए चूर्णिसूत्रोमे ओघसे और चारो गतियोमे चारो कपायोंके पुन पुन. होनेका क्या क्रम है इसका विस्तारसे खुलासा किया है। पुन. इसके बाद किस गतिमे किस कपायके परिवर्तनवार थोड़े या अधिक किस क्रमसे होते है इसका अल्पबहुत्व प्रकरणद्वारा स्पष्टीकरण किया गया है।

दूसरी सूत्रगाथा 'एक्कम्हि भवग्गहणे' इत्यादि है। इसमें दो अर्थ संगृहीत हैं। यथा—

१. एक भवके आश्रयसे एक कषायमे कितने उपयोग होते हैं ?

२ एक कषायसम्बन्धी एक उपयोगमे कितने भव होते हैं ?

१. इनमेंसे प्रथम अर्थको स्पष्ट करते हुए नरकगतिकी अपेक्षा बतलाया है कि एक नरकभवमे क्रोधादि चारोमेसे प्रत्येक कपायके उपयोग संख्यात होते हैं अथवा असंख्यात होते हैं। इसी प्रकार शेष गतियोमे भी जानना चाहिए।

आगे गाथाके उत्तरार्धमे निबद्ध दूसरे अर्थके अनुसार भवोके अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिये उनके निर्णयका उपाय बतलाते हुए चूर्णिसूत्रमे स्पष्ट किया है कि एक वर्षमें जितने क्रोध कषायके उपयोग काल हो उनसे जघन्य असख्यात कालको भाजित कर जो लब्ध आवे उतने वर्षके एक भवमे असंख्यात क्रोधोपयोगकाल होगे। इसी प्रकार मान, माया और लोभ कषायकी अपेक्षा भी जानना चाहिए। तदनुसार आगे इन कषायो-सम्बन्धी असंख्यात और संख्यात उपयोगवाले भवोके अल्पबहुत्वका प्ररूपण किया गया है।

२. गाथाके उत्तरार्धमें निबद्ध दूसरे अर्थका दूसरे प्रकारसे स्पष्टीकरण इसप्रकार है कि एक कषाय-सम्बन्धी एक उपयोगमें कमसे कम एक और अधिकसे अधिक दो भव होते हैं। जिन जीवोकी एक भवसे निष्क्रमणके साथ कषाय बदल जाती है उनके एक कषायसम्बन्धी एक उपयोगमें एक भव होता है। तथा जिन जीवोकी एक भवसे निष्क्रमणके साथ कषाय नही बदलती है। किन्तु मरणके पूर्व पिछले भवमें जो कषाय थी वही उत्तर भवमें जन्मके समय अविच्छिन्नरूपसे पाई जाती है उनके एक कषायसम्बन्धी एक उपयोगमें दो भव होते हैं।

तीसरी गाथा 'उवजोगवग्गणाओ कम्मि' इत्यादि है। इसमे क्रोधादि कषाय विषयक उपयोगवर्गणाओंके प्रमाणका ओघ और आदेशसे विचार किया गया है।

उपयोगवर्गणाएं दो प्रकारकी है—कालोपयोगवर्गणा और भावोपयोगवर्गणा। प्रकृतमें क्रोधादि कषायोंके साथ जीवके संप्रयोग होनेको उपयोग कहते है तथा उसके भेदोका नाम वर्गणा है। जघन्य उपयोगस्थानसे लेकर उत्कृष्ट उपयोगस्थान तक निरन्तररूपसे अवस्थित उनके भेदोंको उपयोगवर्गणा कहते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। वे उपयोगोके भेद काल और भाव दो प्रकारसे सम्भव है। उनमेंसे जघन्य उपयोगकालसे लेकर उत्कृष्ट उपयोगकाल तक निरन्तर रूपसे अवस्थित उनके कालकी अपेक्षा जितने भेद होते हैं उन्हें कालोपयोग-वर्गणा कहते हैं। तथा तीव्र-मन्दादि भावरूपसे परिणत और जघन्य भेदसे लेकर उत्कृष्ट भेद तक छह वृद्धि क्रमसे वृद्धिगत जितने कषाय-उदयस्थान हैं उन्हें भावोपयोगवर्गणा कहते हैं। कालोपयोगवर्गणाओंमे कषायोंके सब भेदोका कालकी अपेक्षा विचार किया गया है और भावोपयोगवर्गणाओंमे तीव्र-मन्दादि भेदोंसे युक्त कषाय-उदयस्थानोका विचार किया गया है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

यहां कालकी अपेक्षा भेद प्राप्त करनेके लिये प्रत्येक कषायके उत्कृष्ट कालमेसे जघन्य कालके घटानेपर जो शेष रहे उसमे एक मिलाना चाहिए। ऐसा करनेसे कालोपयोगवर्गणाओका सब प्रमाण प्राप्त हो जाता है। तथा भावकी अपेक्षा प्रमाण प्राप्त करनेके लिये प्रत्येक कषायके असंख्यात लोकप्रमाण जो उदयस्थान हैं उन्हें ग्रहण करना चाहिए। इस दृष्टिसे मानकषायमें सबसे स्तोक उदयस्थान हैं। क्रोधकषायमें उनसे विशेष अधिक उदयस्थान हैं। मायाकषायमें उनसे विशेष अधिक उदयस्थान हैं और लोभकषायमें उनसे विशेष अधिक उदय-स्थान हैं। इस प्रकार इस गाथासूत्रमें उक्त दो प्रकारकी वर्गणाओका तथा उनके स्वस्थान और परस्थान सम्बन्धी अल्पबहुत्वका विचार किया गया है।

चौथी गाथा 'एक्कम्हि य अणुभागे' इत्यादि है। चूर्णिसूत्रकारके समक्ष इस गाथाका दो प्रकारका उपदेश उपलब्ध था—प्रवाह्यमान और अप्रवाह्यमान। सर्व आचार्य सम्मत और चिरकालसे अविच्छिन्न परम्परासे आये हुए उपदेशको प्रवाह्यमान उपदेश कहते है तथा जो सर्व आचार्य सम्मत अविच्छिन्न परम्परासे आया हुआ उपदेश नही है उसे अप्रवाह्यमान उपदेश कहते है। यहाँ 'अथवा' कहकर भगवान् नागहस्तिके उपदेशको प्रवाह्यमान उपदेश बतलाया है और भगवान् आर्यमक्षुके उपदेशको अप्रवाह्यमान उपदेश बतलाया है।

उनमेसे अप्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार अनुभाग कारण है और कषायपरिणाम उसका कार्य है ऐसा भेद न कर जो कषाय है वही अनुभाग है इसप्रकार दोनोमें एकत्व स्थापित कर गाथासूत्रका स्पष्टीकरण करते हुए बतलाया है कि नरकादि गतियोमेसे नरकगति और देवगति एक कालमे कदाचित् एक कषाय-उपयुक्त, कदाचित् दो कषायउपयुक्त, कदाचित् तीन-कषाय-उपयुक्त और कदाचित् चार-कषाय-उपयुक्त होती है। कारण कि नरकगतिमें क्रोधकषायका काल सब से अधिक है, इसलिए कदाचित् सब नारकी जीव यदि एक कषायसे परिणत हो तो वे सब क्रोधकषायरूपसे ही परिणत होगे। और यदि दो कषायरूपसे परिणत हो तो क्रोधकषायके साथ अन्यतर कोई कषाय होगी। इसी प्रकार तीन और चार कषायोकी अपेक्षा भी विचार कर लेना चाहिए। तथा देवगतिमे लोभकषायका काल सबसे अधिक है। अत सब देवोमे यदि एक कषाय होगी तो लोभकषाय ही होगी। और दो कषाय होगी तो लोभके साथ अन्यतर कोई कषाय होगी। इसी प्रकार तीन और चार कषायोके विषयमें भी जानना चाहिए। अब रही तिर्यञ्चगति और मनुष्यगति सो इनमे सदा ही चारो कषायोसे परिणत जीव पाये जाते है। प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार कषायपरिणाम ही अनुभाग नही है, किन्तु जो कषाय-उदयस्थान है वही अनुभाग है। इसप्रकार इन दोनोमे कारण और कार्यकी अपेक्षा भेद है। कषाय-उदयस्थानस्वरूप अनुभाग कारण है और कषायपरिणाम कार्य है।

इसप्रकार प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार कषाय और अनुभागमे भेदका निर्देश कर तथा उक्त गाथासूत्रमे आये हुए 'एक्ककालेण' पदका अर्थ कषायोपयोगाद्धास्थान करके बतलाया है कि इस गाथासूत्रमे एक कषाय-उदयस्थानमे तथा एक कषायोपयोगाद्धास्थानमे कौन गति होती है अथवा अनेक कषाय-उदयस्थानोमे और अनेक कषाय-उपयोगाद्धास्थानोमें कौन गति होती है यह पृच्छा की गई है।

आगे इसका समाधान करते हुए बतलाया है कि एक-एक कषाय-उदयस्थानमे अधिकसे अधिक आवलिके असख्यातवे भागप्रमाण त्रस जीव रहते है। इससे ज्ञात होता है कि त्रसजीव नियमसे अनेक कषाय-उदयस्थानोमें रहते है, क्योकि सब त्रसराशि जगप्रतरके असख्यातवे भागप्रमाण है अत उनका एक कालमे अनेक कषाय-उदयस्थानोमे रहना युक्तिसे सिद्ध होता है।

तथा एक-एक कषायोपयोगाद्धास्थानमे अधिक से अधिक असख्यात जगश्रेणिप्रमाण त्रस जीव रहते है, क्योकि सब कषायोपयोगाद्धास्थान अन्तर्मुहूर्तके समयप्रमाण है, और त्रसराशि जगप्रतरके असख्यातवे भागप्रमाण है, इसलिए एक-एक कषाय-उपयोगाद्धास्थानमे असख्यात जगश्रेणिप्रमाण जीवोका रहना बन जाता है।

यद्यपि न तो सब कषाय-उदयस्थानोमें त्रसजीव सदृशरूपसे पाये जाते है और न ही सब कषायोपयोगाद्धास्थानोमें भी त्रसोका समान विभाग होकर पाया जाना सम्भव है तो भी समीकरण विधानके अनुसार दोनो स्थलो पर यह निर्देश किया है।

उक्त दोनो तथ्योसे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि नरकादि प्रत्येक गतिमें भी यह प्ररूपणा अविकलरूपसे घटित हो जाती है। इसका विशेष खुलासा अल्पबहुत्वके निर्देशद्वारा मूलमे किया ही है।

'केवडिया उवजुत्ता' यह पाँचवी सूत्र गाथा है। यह गाथासूत्र कषायोमें उपयुक्त हुए जीवोका आठ अनुयोग द्वारोके आलम्बनसे विवेचन करनेकी सूचना देती है। वे आठ अनुयोगद्वार है—सत्प्ररूपणा, द्रव्य (सख्या) प्रमाण, क्षेत्रप्रमाण, स्पर्शन, काल, अन्तर, भागाभाग और अल्पबहुत्व। गति आदि जो चौदह मार्गणास्थान है उनमेसे कषायके सिवाय तेरह मार्गणास्थानोमे उक्त आठ अनुयोगद्वारोका अवलम्बन लेकर कषायोमें उपयुक्त हुए जीवोका सर्वांगीण विचार करना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है। विशेष स्पष्टीकरण मूलमे किया ही है, इसलिए वहाँसे जान लेना चाहिए।

'जे जे जम्हि कसाए' यह छठवी सूत्रगाथा है। वर्तमान समयमे जो अनन्त जीव क्रोधादि कषायोमे उपयुक्त है, अतीत और अनागतकालमे भी वे सब उतने ही जीव उसी प्रकार क्रोधादि कषायोमे क्या उपयुक्त रहे है या उपयुक्त रहेगे इन सब तथ्योकी सम्भावना और असम्भावनाका विचार करनेके लिए यह सूत्रगाथा निबद्ध हुई है। अर्थात् इस सूत्रगाथा द्वारा इस बातकी सूचना की गई है कि जो वर्तमान समयमें क्रोधादि कषायोमे उपयुक्त जीव है उनका अतीत और अनागत कालमे मानकाल, नोमानकाल और मिश्रकाल आदिके भेदोसे सम्बन्ध रखनेवाला प्रमाण कितना है ? आगे चूर्णिसूत्रोमे इसीका स्पष्टीकरण करते हुए बतलाया है कि जो जीव वर्तमान समयमे मानकषायमे उपयुक्त है उनका अतीत समयमें मानकाल, नोमानकाल और मिश्रकाल इसप्रकार तीन प्रकारका काल पाया जाता है और इसी प्रकार क्रोधकी अपेक्षा भी तीन प्रकारका काल पाया जाता है--क्रोधकाल, नोक्रोधकाल और मिश्रकाल। इतना ही नही, किन्तु माया और लोभकी अपेक्षा भी इसी प्रकार तीन-तीन प्रकारका काल जान लेना चाहिए। यह कुल काल १२ प्रकारका होता है। यह अतीतकी अपेक्षा विचार है तथा इसी प्रकार भविष्यत् कालकी अपेक्षा भी उक्त काल बारह प्रकारका घटित कर लेना चाहिए।

जो वर्तमान समयमे मानकषायमे उपयुक्त है वे यदि अतीत कालमे भी मानमे उपयुक्त रहे है तो वह उनका मानकाल कहलाता है। जो वर्तमान समयमे मानकषायमे उपयुक्त है वे यदि अतीत कालमे मानकषायमे उपयुक्त न होकर अन्य कषायोमे उपयुक्त रहे है तो वह उनका नोमान काल कहा जावेगा और जो जीव वर्तमान समयमे मानकषायमे उपयुक्त रहे हैं, अतीतकालमे उनमेसे कुछ मानकषायमे और कुछ अन्य कषायोमे उपयुक्त रहे है तो वह उनका मिश्रकाल कहा जायगा। यह अतीतकालीन मानकषायकी अपेक्षा विचार है। अतीतकालीन क्रोधादिकषायोकी अपेक्षा भी इसी प्रकार विचार कर लेना चाहिए। वर्तमानमे जो मानकषायमे उपयुक्त है वे यदि अतीतकालमे क्रोधकषायमे उपयुक्त रहे है तो वह उनका क्रोधकाल कहा जायगा। यदि अतीतकालमे मान और क्रोधको छोडकर अन्य दो कषायोमे उपयुक्त रहे है तो वह उनका नोक्रोधकाल कहा जायगा और यदि अतीतकालमे वे मानके सिवाय कुछ क्रोधकषायमे उपयुक्त रहे है और कुछ माया और लोभ कषायमे उपयुक्त रहे है तो वह उनका मिश्रकाल कहा जायगा। इसप्रकार वर्तमानमे मानमे उपयुक्त हुए जीवोका अतीतकालमे क्रोधकषायकी अपेक्षा भी तीन प्रकारका काल होता है। इसी प्रकार वर्तमानमे जो मानकषायमे उपयुक्त है उनका अतीतकालमे माया और लोभकषायकी अपेक्षा भी मायाकाल, नोमायाकाल और मिश्रकाल तथा लोभकाल, नोलोभकाल और मिश्रकालके भेदसे तीन-तीन प्रकारका काल जानना चाहिए। यह वर्तमानमे जो मानकषायमे उपयुक्त है उनका अतीतकालमे चारो कषायोकी अपेक्षा १२ प्रकारका काल है।

इसी प्रकार वर्तमान समयमे क्रोध, माया और लोभकषायमे उपयुक्त हुए जीवोके अतीत कालमे सब कालोका योग क्रमसे ११, १० और ९ प्रकारका होता है। विशेष खुलासा मूलसे जान लेना चाहिए। इसीप्रकार भविष्य कालकी अपेक्षा भी विचार कर लेना चाहिए। इतना सब विचार करनेके बाद इन कालोका अल्पबहुत्व बतलाकर इस गाथाका व्याख्यान समाप्त किया गया है।

सातवी गाथा 'उवजोगवग्गणाहि य' है। इसके पूर्वार्धद्वारा कषायउदयस्थान और कषाय-उपयोगाद्धा-स्थान इनमेसे कितने स्थान जानेके बाद कौन स्थान जीवोसे रहित होते है और किस गतिमे किन जीवोसे कौन स्थान सहित होते है इसका विशेष विचार किया गया है। यहाँ इस बातका विचार त्रसजीवोकी अपेक्षा किया गया है, क्योकि स्थावर जीव अनन्त है, इसलिये स्थावरोके योग्य असख्यात लोकप्रमाण कषाय-उदयस्थानोमे उनका सदा निरन्तररूपसे सद्भाव बन जाता है। त्रसोकी अपेक्षा भी विचार करते हुए इन दोनो प्रकारके स्थानोमे जीवोकी अपेक्षा यवमध्यकी रचना कैसे बनती है इत्यादि विशेष विचार मूलसे जान लेना चाहिए।

उक्त गाथाके उत्तरार्धद्वारा तीन श्रेणियोका निर्देश किया गया है। वे तीन श्रेणियाँ है—द्वितीयादिका, प्रथमादिका और चरमादिका। यहाँ श्रेणिका अर्थ पक्ति अर्थात् अल्पबहुत्वपरिपाटी है। जिस परिपाटीमे मान कषायमे उपयुक्त हुए जीवोसे लेकर अल्पबहुत्वकी परीक्षा की जाती है वह द्वितीयादिका परिपाटी कहलाती है।

वह तिर्यञ्चो और मनुष्योमे होती हैं, क्योकि उनमे मानमें उपयुक्त हुए जीव सबसे कम होते है । जिस अल्पबहुत्व परिपाटीमे क्रोधकपायमे उपयुक्त हुए जीवोसे लेकर अल्पवहुत्वकी परीक्षा की जाती है वह प्रथमादिका परिपाटी कहलाती है । वह देवगतिमे होती है, क्योकि वहाँ क्रोधकपायमे उपयुक्त हुए जीव सबसे थोडे होते है । तथा जिस अल्पवहुत्व परिपाटीमे लोभकपायसञ्ज्ञक अन्तिम कषायमे उपयुक्त हुए जीवोसे लेकर अल्पबहुत्वकी परीक्षा की जाती है वह चरमादिका परिपाटी कहलाती है । वह नारकियोमे होती है, क्योकि वहाँ लोभमे उपयुक्त जीव सबसे थोडे होते हैं ।

इस प्रकार इस गाथा सूत्रकी व्याख्यामे उक्त तीन परिपाटियोका निर्देश करनेके वाद अल्पबहुत्वविधिका निर्देश करते हुए मानकपायमे उपयुक्त हुए जीवोके प्रवेशकालसे क्रोधकपायमे उपयुक्त हुए जीवोका प्रवेशकाल विशेष अधिक है यह वतलाकर प्रवाह्यमान और अप्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार विशेषका प्रमाण कितना है यह निर्देश करके इस विपयका विशेष स्पष्टीकरण जयधवला टीकामे करके इस अर्थाधिकारको समाप्त किया गया है ।

## ८ चतुःस्थान अर्थाधिकार

कपायप्राभृतका आठवाँ अर्थाधिकार चतु स्थान है । इसमे सब गाथासूत्र १६ है । उनमेंसे प्रथम गाथासूत्रमे क्रोधादि चारो कपायोमेंसे प्रत्येकको चार-चार प्रकारका वतलाया गया है । यहाँ प्रत्येक कपायके इन चार भेदोमे अनन्तानुवन्धी, अप्रत्याख्यानावरण आदिरूप भेद विवक्षित नही हैं, क्योकि उनका निर्देश प्रकृतिविभक्ति आदि अर्थाधिकारोमे पहले ही कर आये हैं । क्रोध दो प्रकारका है—सामान्य क्रोध और विशेप क्रोध । अपने सव विशेपोमें व्याप्त होकर रहनेवाला क्रोध सामान्य क्रोध कहलाता है और अनन्तानुवन्धी क्रोध आदिरूपसे विवक्षित क्रोध विशेप क्रोध कहलाता है । इसी प्रकार मान, माया और लोभको भी दो-दो प्रकारका जानना चाहिए । इनमेंसे यहाँ सामान्य क्रोध, सामान्य मान, सामान्य माया और सामान्य लोभकी अपेक्षा प्रत्येकको अन्य प्रकारसे चार-चार प्रकारका कहा है । यहाँ अनन्तानुवन्धी आदि क्रोध, मान, माया और लोभ विवक्षित नही हैं । इसका कारण यह है कि अनन्तानुवन्धी, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया और लोभमे द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतु स्थानीय अनुभागको छोडकर एकस्थानीय अनुभाग नही पाया जाता है, अत जिसमे समस्त विशेप लक्षण सगृहीत है ऐसे क्रोध, मान, माया और लोभ सामान्यका आलम्वन लेकर यहाँ प्रत्येकको चार-चार प्रकारका वतलाया गया है ।

दूसरी सूत्रगाथामें क्रोध और मानकपायके उदाहरणो द्वारा चार-चार भेदोका निर्देश किया गया है । यथा—क्रोध चार प्रकारका है—पत्थरकी रेखाके समान, पृथिवीकी रेखाके समान, वालूकी रेखाके समान और जलकी रेखाके समान । मान भी चार प्रकारका है—शिलाके स्तम्भके समान, हड्डीके समान, लकडीके समान और लताके समान ।

इनका अर्थ स्पष्ट है । विशेप खुलासा मूलमें किया ही है । यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि क्रोधकपायके उक्त चार भेदोके स्वरूपपर प्रकाश डालनेके लिए जो उदाहरण दिये गए है वे सस्काररूपसे उनके अवस्थित रहनेके कालको स्पष्ट करनेके लिये ही दिये गये हैं । तथा मानकपायके उक्त चार भेदोके स्वरूप पर प्रकाश डालनेके लिये जो उदाहरण दिये गये हैं वे मानकपाय सम्वन्धी परिणामोके तारतम्यको दिखलानेके लिये दिये गये हैं । इसीप्रकार आगे माया और लोभ कपायके भेदोंके स्वरूपका वोध करानेके लिये भी जो उदाहरण दिये गये हैं वे भी माया और लोभ कपायके परिणामोके तारतम्यको ध्यानमें रख कर ही दिये गये हैं ।

तीसरी सूत्रगाथामें उदाहरणो द्वारा मायाके चार भेदोका निर्देश किया गया है । यथा—माया चार प्रकारकी है—बाँसकी अत्यन्त टेढी गाठोवाली जडके समान, मेढेके सीगोंके समान, गायके मूत्रके समान और दतौनके समान ।

चौथी सूत्रगाथामें उदाहरणों द्वारा लोभके चार भेदोको स्पष्ट किया गया है। यथा—कृमिरागके रंगके समान, अक्षमल ( ओंगन ) के समान, धूलिके लेपके समान और हलदीसे रगे हुए वस्त्रके समान।

उदाहरणो सहित इन सोलह भेदोका स्पष्टीकरण मूलमें किया ही है, इसलिये वहाँसे जान लेना चाहिए।

पाँचवी सूत्रगाथा द्वारा चारो कषायोके उक्त सोलह स्थानोमे स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंकी अपेक्षा कौन स्थान किस स्थानसे कम होता है और कौन स्थान किस स्थानसे अधिक होता है इसका पृच्छारूपमे निर्देश किया गया है।

जयधवला टीकामे इस सूत्रगाथा की व्याख्या करते हुए स्थितिके विषयमे बतलाया है कि सब स्थितियोमे एकस्थानीय, द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतु स्थानीय सब प्रकारके कर्मपरमाणु पाये जाते है। इसे उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हुए लिखा है कि जैसे किसी जीवने मिथ्यात्वकी सत्तर कोडाकोडी सागरोपम-प्रमाण स्थितिका बन्ध किया तो जैसे उक्त कर्मकी अन्तिम स्थितिमे एक स्थानीय आदि चारो भेदोको लिये हुए देशघाति और सर्वघाति कर्मपरमाणु पाये जाते है उसीप्रकार आबाधासे ऊपर जघन्य स्थितिमे भी वे सब प्रकारके कर्मपरमाणु पाये जाते है।

छठी सूत्रगाथा द्वारा इन स्थानोमे प्रदेशो और अनुभागकी अपेक्षा क्या व्यवस्था है इसे स्पष्ट करनेके लिये लताके समान मानकषायको विवक्षित कर बतलाया है कि अनुभागकी अपेक्षा जो जघन्य वर्गणा है अर्थात् प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणा है उससे अन्तिम ( उत्कृष्ट ) स्पर्धककी जो अन्तिम वर्गणा है वह प्रदेशोकी अपेक्षा अनन्तगुणी हीन होती है और अनुभागकी अपेक्षा अनन्तगुणी अधिक होती है। यह लताके समान मानकषायमे प्रदेशो और अनुभागकी व्यवस्था है। इसी प्रकार मानकषायके शेष तीन प्रकारके अनुभागमे तथा क्रोध, माया और लोभकषायसम्बन्धी प्रत्येकके चार-चार प्रकारके अनुभागमे प्रदेशो और अनुभागकी अपेक्षा उक्त प्रकारसे स्वस्थान अल्पबहुत्व घटित कर लेना चाहिए।

सातवी सूत्रगाथाद्वारा एक स्थानसे दूसरेमे प्रदेशोकी अपेक्षा क्या व्यवस्था है इस बातको स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि लताके समान मानकषायके प्रदेशोसे दारुके समान मानकषायके प्रदेश नियमसे अनन्तगुणे हीन होते है। इसी प्रकार आगे अस्थिके समान और शैलके समान मानकषायमे भी जान लेना चाहिए। अर्थात् दारुके समान मानकषायके प्रदेशोसे अस्थिके समान मानकषायके प्रदेश अनन्तगुणे हीन होते है। तथा अस्थि के समान मानकषायके प्रदेशोसे शैलके समान मानकषायके प्रदेश अनन्तगुणे हीन होते है।

आठवी गाथा द्वारा इन स्थानोमे अनुभागकी व्यवस्था की गई है। वहाँ बतलाया है कि लताके समान मानकषायमे जो अनुभाग है उससे दारु, अस्थि और शैलके समान मानकषायमे अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्त• गुणा होता है विशेष व्याख्यान मूलसे जानना चाहिए। यहाँ अनुभागाग्रसे फलदान शक्तिके अनुभाग प्रतिच्छेद लिये गये है इतना विशेष जानना चाहिए।

नौवी गाथा द्वारा लतासमान आदि भेदोकी अन्तिम वर्गणासे दारुसमान आदि भेदोकी प्रथम वर्गणामे प्रदेशो और अनुभागकी अपेक्षा क्या व्यवस्था है इसका विचार करते हुए बतलाया है कि पिछले भेदकी अतिम वर्गणासे अगले भेदकी प्रथम वर्गणा प्रदेशोकी अपेक्षा हीन और अनुभागकी अपेक्षा अधिक होती है। यहाँ अन्तिम वर्गणा और प्रथम वर्गणाकी 'सन्धि' यह सज्ञा रखकर विचार किया गया है।

दसवी सूत्रगाथा द्वारा यह बतलाया गया है कि लताके समान समस्त मान और दारुके समान मानका प्रारम्भका अनन्तवाँ भाग देशघाति अनुभागरूप है तथा शेष दारुके समान मान और अस्थि तथा शैलरूप मान यह सब सर्वघाति है।

यहाँ छठी गाथासे लेकर दसवी गाथा तक मानकषायके आलम्बनसे जो प्ररूपणा की गई है वह सब प्ररूपणा क्रोधकषाय, मायाकषाय और लोभकषायके आलम्बनसे भी करनी चाहिए, क्योकि मानकषायके

अवान्तर भेदोमे जो विशेषता बतलाई है वह सब क्रोध, माया और लोभकषायके अवान्तर भेदोमे अविकल घटित हो जाती है इस बातका निर्देश ग्यारहवी सूत्रगाथामें किया गया है।

बारहवी सूत्र गाथा द्वारा अनन्तर पूर्व कहे गये सोलह स्थानोमेसे किस मार्गणामे कौन स्थान बध्यमान है कौन स्थान उपशान्त है, कौन स्थान उदयरूप है और कौन स्थान सत्तारूप है इस विषयकी पृच्छा की गई है।

आगे तेरहवी और चौदहवी गाथा द्वारा सञ्ज्ञी मार्गणा, पर्याप्त और अपर्याप्त पदके निर्देश द्वारा काय और योगमार्गणा, सम्यक्त्वमार्गणा, सयममार्गणा, दर्शनमार्गणा, ज्ञानमार्गणा, योगमार्गणा और लेश्यामार्गणाके उल्लेख पूर्वक गाथासूत्रमें आये हुए 'च' शब्द द्वारा शेष सब मार्गणाओको ग्रहण कर उनमे यथासम्भव स्थित जीव उक्त सोलह स्थानोमेसे किस स्थानको वेदन करता हुआ किस स्थानका बन्धक होता है और किस स्थान-का वेदन नही करता हुआ किस स्थानका अबन्धक होता है इस विषयकी पृच्छा पन्द्रहवी गाथा द्वारा की गई है।

सोलहवी गाथा द्वारा सञ्ज्ञी मार्गणाको विवक्षित कर यह बतलाया गया है कि असञ्ज्ञी जीव मानकषाय-के लतासमान और दारुसमान इन दो स्थानोका ही बन्ध करता है। वह शेष दो स्थानोका बन्ध नही करता, क्योंकि उसमे शेष दो स्थानोंको बाँधनेके हेतुरूप सक्लेश परिणाम नही पाये जाते। अर्थात् असंज्ञी जीवोके स्वभावसे ही अस्थिसमान और शैलसमान मानकषायके बन्धके हेतुरूप परिणाम नही होते।

किन्तु सञ्ज्ञी जीव एकस्थानीय अनुभागका भी बन्ध करते है, द्विस्थानीय अनुभागका भी बन्ध करते है, त्रिस्थानीय अनुभागका भी बन्ध करते है और चतु स्थानीय अनुभागका भी बन्ध करते है, क्योकि इनके इन स्थानोके बन्धके योग्य सक्लेश और विशुद्धिका पाया जाना सम्भव है।

यह संज्ञीमार्गणामे बन्धकी अपेक्षा विचार है। इसी प्रकार उदय, उपशम और सत्त्वकी अपेक्षा समझ लेना चाहिए। यथा—असञ्ज्ञी जीवोमे उदय द्विस्थानीय ही होता है, क्योकि इनमें शेष उदयरूप परिणामोका होना अत्यन्त निषिद्ध है। हाँ इनमे उपशम और सत्त्व एकस्थानीय, द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतु स्थानीय चारो प्रकारका होता है। इतनी विशेषता है कि असञ्ज्ञियोमें शुद्ध एकस्थानीय उपशम और सत्त्व सम्भव नही है। हाँ सञ्ज्ञियोमे उदय, उपशम और सत्त्व एकस्थानीय, द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतु स्थानीय चारो प्रकारके पाये जाते है।

अब किस स्थानका वेदन करता हुआ यह जीव किस स्थानका बन्ध करता है इस विषयका स्पष्टीकरण करते हुए बतलाया है कि असञ्ज्ञी जीव द्विस्थानीय अनुभागका वेदन करता हुआ द्विस्थानीय अनुभागका बन्ध करता है। किन्तु सञ्ज्ञी जीव एकस्थानीय अनुभागका वेदन करता हुआ एकस्थानीय अनुभागका ही बन्ध करता है। द्विस्थानीय अनुभागका वेदन करता हुआ द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतु स्थानीय अनुभागका बन्ध करता है। त्रिस्थानीय अनुभागका वेदन करता हुआ त्रिस्थानीय और चतु स्थानीय अनुभागका बन्ध करता है तथा चतु स्थानीय अनुभागका वेदन करता हुआ चतुःस्थानीय अनुभागका ही बन्ध करना है।

इस प्रकार जयधवला टीकामे सञ्ज्ञी मार्गणाकी अपेक्षा उक्त विशेषताओका निरूपण करनेके बाद बतलाया है कि इसीके अनुसार शेष तेरह मार्गणाओमें आगमानुसार उक्त विषयका विशेष विचार कर लेना चाहिए। यहाँ इतना विशेष जान लेना चाहिए कि एकस्थानीय बन्ध और एकस्थानीय उदय मनुष्यगतिमें ही प्राप्त होता है, क्योकि यह एकस्थानीय बन्ध और उदय श्रेणिमे ही पाया जाता है।

इस अर्थाधिकारमे आई हुई सोलह सूत्रगाथाओका यह स्वरूप निर्देश है। आचार्य यतिवृषभने इन सोलह सूत्र गाथाओका अपने चूर्णिसूत्रोमे 'चउट्ठाणे त्ति अणिओगद्दारे पुव्वं गमणिज्ज सुत्त' इस चूर्णिसूत्रद्वारा इनको जाननेका उल्लेखकर इन सूत्रगाथाओके अन्तमे 'एद सुत्त' यह चूर्णिसूत्र रचकर उनकी समाप्ति की सूचना की है। पुन आगे इस विषयका विशेष स्पष्टीकरण करनेके लिए चतु स्थान इस पदका अर्थविषयक निर्णय करनेके अभिप्रायसे निक्षेप योजना करते हुए उसके एकैकनिक्षेप और स्थाननिक्षेप ये दो प्रकार बतलाये है। उनमेसे एकैकनिक्षेप पदसे क्रोधादि प्रत्येक कषायका ग्रहण किया गया है, अत उसे पूर्वनिक्षिप्त

और पूर्वप्ररूपित बतलाकर स्थानपदका कितने अर्थोमें निक्षेप होता है इस विषयका स्पष्टीकरण करते हुए उसका नामस्थान, स्थापनास्थान, द्रव्यस्थान, क्षेत्रस्थान, अद्धास्थान, पलिवीचिस्थान, उच्चस्थान, संयमस्थान प्रयोगस्थान और भावस्थान इन दस प्रकारके स्थानोमे निक्षेप किया है। इन सब स्थानोका स्वरूपनिर्देश मूलसे जान लेना चाहिए।

आगे इन स्थानोमे नययोजना करते हुए बतलाया है कि नैगमनय इन सब स्थानोको स्वीकार करता है। संग्रहनय और व्यवहारनय पलिवीचिस्थान और उच्चस्थानको स्वीकार नही करते। शेप सबको स्वीकार करते हैं। पलिवीचिस्थानके दो अर्थ हैं—स्थितिवन्धवीचारस्थान और सोपानस्थान। सो इनका क्रमसे अद्धास्थान और क्षेत्रस्थानमे अन्तर्भाव हो जानेसे इसे ये दोनो नय पृथक् स्वीकार नही करते। इसी प्रकार उच्चस्थानका भी क्षेत्रस्थानमे अन्तर्भाव हो जाता है। अत. उसे भी ये दोनो नय पृथक् स्वीकार नही करते। ऋजुसूत्र नय उक्त दो, स्थापनास्थान और अद्धास्थानको स्वीकार नही करते। कारण कि इस नयका विषय वर्तमान समयमात्र है, और वर्तमान समयकी विवक्षामे स्थापनास्थान और अद्धास्थान सम्भव नही है, क्योकि समय, आवलि आदि कालभेदके विना उनका निर्देश नही किया जा सकता। पलिवीचिस्थान और उच्चस्थान को भी इसी कारण यह नय स्वीकार नही करता।

शब्दनय नामस्थान, संयमस्थान, क्षेत्रस्थान और भावस्थानको स्वीकार करता है। अन्य बाह्य अर्थकी अपेक्षा किये विना नाम संज्ञामात्र शब्दनयका विषय होनेसे यह नय इसे स्वीकार करता है, संयम-स्थान भावस्वरूप होनेसे इसे भी यह नय स्वीकार करता है। क्षेत्रस्थान वर्तमान अवगाहना स्वरूप है और भावस्थान वर्तमान पर्यायकी संज्ञा है अत यह नय इन्हें भी स्वीकार करता है। शेप स्थानोको यह नय स्वीकार नही करता।

इनमेसे इस अर्थाधिकारमे नोआगम भावनिक्षेपस्वरूप चतु स्थानकी अपेक्षा क्रोधादि कषायोके सोलह उत्तर भेदोको प्ररूपणा की गई है।

इस प्रकार स्थान पदके आलम्बनसे निक्षेप व्यवस्थाका निर्देश करनेके बाद सोलह सूत्रगाथाओके आशयको चूर्णिसूत्रोद्वारा स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि प्रारम्भकी चार सूत्रगाथाएँ उक्त सोलह स्थानोके उदाहरणपूर्वक अर्थसाधनमे आई है। यथा—चारो ही क्रोधसम्बन्धी स्थानोका कालकी मुख्यतासे उदाहरण देकर अर्थसाधन किया गया है, क्योकि कोई क्रोध आशय (संस्कार) रूपसे चिरकाल तक अवस्थित रहता है और कोई क्रोध संस्काररूपमे अचिरकाल तक अवस्थित रहता है। अचिरकाल तक अवस्थित रहनेवाले क्रोधमे भी कोई तारतम्यको लिए हुए कुछ अधिक समय तक अवस्थित रहता है और कोई क्रोध अति स्वल्प समय तक ही अवस्थित रहता है। इस प्रकार कालकी अपेक्षा क्रोधकषायके अवान्तर भेदोको स्पष्ट करनेके लिये यहाँ पत्थरकी रेखाके समान क्रोध आदि चार उदाहरण दिये गये है। शेप मानादि कषायोके जो स्थान लताके समान आदिकी अपेक्षा बारह प्रकारके बतलाये है वे किस मान, माया और लोभकषायका कैसा भाव है इस बातको स्पष्ट करनेके लिये दिये गये है। जैसे मानकषायका भाव स्तब्धतारूप है। अत प्रकर्ष और अप्रकर्षरूपसे इसी भावको स्पष्ट करनेके लिये पत्थरके स्तम्भके समान आदि चार उदाहरण दिये गये है। मायाका भाव वक्रता है। अत. प्रकर्ष और अप्रकर्षरूपसे उसमे तारतम्य दिखलानेके लिये बांसकी गठीली टेढ़ी-मेढ़ी जड़के समान आदि चार उदाहरण देकर मायाके अवान्तर भेदोको स्पष्ट किया गया है। तथा लोभका भाव असन्तोषजनित संक्लेशपना है। अत प्रकर्ष और अप्रकर्षरूपसे उसमे तारतम्य दिखलानेके लिये कृमिरागके रंगके समान आदि चार उदाहरणोद्वारा उसे स्पष्ट किया गया है।

आगे उदाहरणों द्वारा क्रोधकषायके जिन चार भेदोको स्पष्ट किया है उनमेंसे कौन क्रोधभाव [illegible]-रूपसे कितने काल तक रहता है इसे स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि जो क्रोध अन्तर्मुहूर्त काल तक रहता है वह जलरेखाके समान क्रोध है। जो क्रोध [illegible] अनुभवमें आता है [illegible] समान क्रोध है। [illegible] जो क्रोधभाव [illegible] अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल [illegible] है वह [illegible] ध्यान-

मे रखकर ही कहा है। जो क्रोधभाव अर्धमाससे भी अधिक छह माह तक संस्काररूपसे रहता है वह पृथिवीकी रेखाके समान क्रोध है। और जो क्रोध सस्काररूपसे सब भवोके द्वारा भी उपशमको नही प्राप्त होता है। अर्थात् जिस जीवके आलम्बनसे इसप्रकारका क्रोध हुआ है उसे देखकर जो क्रोध सख्यात, असंख्यात और अनन्त भवोके वाद भी प्रगट हो जाता है वह पर्वतकी रेखाके समान क्रोध है। इसप्रकार यह क्रोधकपायकी अपेक्षा विचार है। इसी प्रकार शेष कपायोकी अपेक्षा भी घटित कर लेना चाहिए।

गोम्मटसार जीवकाण्डमे चारो कषायोको कुछ फरकके साथ उक्त सोलह उदाहरणो द्वारा स्पष्ट किया गया है। जिन उदाहरणोको भिन्नरूपसे लिया है उनमे प्रथम उदाहरण मानकषायसम्बन्धी है। कपायप्राभृतमे जिस मानभावको स्पष्ट करनेके लिये 'लताके समान' यह उदाहरण दिया है, गोम्मटसार जीवकाण्डमे उसके स्थानमे 'वेतके समान' यह उदाहरण दिया है। कपायप्राभृतमे जिस मायाभावको स्पष्ट करनेके लिये 'दतौनके समान' उदाहरण दिया है, गोम्मटसार जीवकाण्डमे उसके स्थानमे 'खुरपाके समान' उदाहरण दिया है। तथा कपायप्राभृतमे जिस लोभभावको स्पष्ट करनेके लिये 'धूलिके लेपके समान' उदाहरण दिया है, गोम्मटसार जीवकाण्डमें उसके स्थानमें 'शरीरके मैलके समान' यह उदाहरण दिया है। इस प्रकार कपायप्राभृतसे जीवकाण्डमें कतिपय उदाहरणोमे फरक होते हुए भी आशय भेद नही है। कपायप्राभृतके कथनसे गोम्मटसार जीवकाण्डमे यह विशेषता अवश्य दृष्टिगोचर होती है कि जहाँ कपायप्राभृतमे इन क्रोधादि चारो कपायोमेसे प्रत्येकका कौन अवान्तर भाव किस गतिमे उत्पन्न करनेवाला है इस वातका उल्लेख दृष्टिगोचर नही होता वहाँ गोम्मटसार जीवकाण्डमे यह निर्देश स्पष्टरूपसे दृष्टिगोचर होता है कि शिलाकी रेखाके समान क्रोध नरकगतिमें उत्पन्न करनेवाला है, पृथिवीकी रेखाके समान क्रोध तिर्यञ्चगतिमे उत्पन्न करनेवाला है, धूलिकी रेखाके समान क्रोध मनुष्यगतिमे उत्पन्न करनेवाला है और जलकी रेखाके समान क्रोध देवगतिमे उत्पन्न करनेवाला है। इसप्रकार जहाँ क्रोधकी अपेक्षा उक्त प्रकारका निर्देश किया है इसी प्रकार मान, माया और लोभकी अपेक्षा समझ लेना चाहिए।

इसप्रकार उक्त सब विपयका व्याख्यान करनेके वाद चतु स्थान अर्थाधिकार समाप्त होता है।

## ९ व्यञ्जन अर्थाधिकार

कपाय प्राभृतका नौवाँ व्यञ्जन अर्थाधिकार है। प्रकृतमें व्यञ्जन यह पद 'शब्द' इस अर्थका सूचक है। तदनुसार इस अर्थाधिकारमे क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारो कषायोके शब्दरूपसे पाँच सूत्रगाथाओमें पर्यायवाची नाम दिये है। यथा—क्रोधकपायके दस पर्यायवाची नाम—क्रोध, कोप, रोप, अक्षमा, संज्वलन, कलह, वृद्धि, झझा, द्वेप और विवाद। इन पर्यायनामोके अर्थको स्पष्ट करते हुए अक्षमाका पर्यायवाची नाम अमर्प दिया है तथा विवादके पर्यायवाची नाम स्पर्द्ध और सघर्प दिये है। पाप, अयश, कलह और वैरकी वृद्धिका हेतु होनेसे क्रोधका पर्यायवाची नाम वृद्धि है। तथा स्पर्धा और सघर्पकी मनोवृत्तिसे दूसरोसे उलझना विवादरूप क्रोधकी भूमिका ही बनाता है, इसलिये क्रोधका पर्यायवाची नाम विवाद है। शेष कथन सुप्रतीत ही है।

मानकपायके पर्यायवाची नाम है—मान, मद, दर्प, स्तम्भ, उत्कर्प, प्रकर्प, समुत्कर्ष, आत्मोत्कर्ष, परिभव और उत्सिक्त। परमागममे ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, वल, ऋद्धि, तप और शरीर इन आठके आलम्वनसे यह ससारी जीव स्वयको दूसरोसे अधिक मानता है, इसलिए ऐसे भावको मान कहा है। इनके कारण सराव पिये हुए मनुष्यके समान यह जीव उन्मत्त हो जाता है, इसलिए मद भी मानका पर्यायवाची नाम है। इसी प्रकार शेप पर्यायवाची नामोके विपयमे जान लेना चाहिए। अन्य कोई विशेपता न होनेसे यहाँ उनका पृथक्से स्पष्टीकरण नही किया है।

पहले क्रोधकपायके पर्यायवाची नामोमें 'विवाद' पदका उल्लेख कर आये है। उसका कारण यह है

कि जाति आदिको निमित्तकर स्वयंमें बड़प्पनका परिणाम होना यह मानकषायकी विशेषता है और परके प्रति तिरस्कार या अनादरके भावपूर्वक उनके प्रति संघर्षका भाव होना यह क्रोधकषायकी विशेषता है।

मायाकषायके पर्यायनाम हैं—माया, सातिप्रयोग, निकृति, वञ्चना, अनृजुता, ग्रहण, मनोज्ञमार्गण, कल्क, कुहक, निगूहन और छन्न। मायामें मन, वचन और कायकी प्रवृत्तिमें सरलता नहीं रहती है। अभिप्राय कुछ रखता है, कहता कुछ है और करता कुछ अन्य ही है। इसलिए मायाकषायमें कुटिलताकी मुख्यता है। कुटिल व्यवहार करना, वञ्चना-ठगाईका परिणाम रखना, दूसरेके ठीक अभिप्रायको जानकर उसका अपलाप करना, झूठे मन्त्र-तन्त्र आदि द्वारा अपनी आजीविका करना आदि सब मायाकषायरूप परिणाम हैं। इसी अभिप्रायको ध्यानमें रखकर यहाँ मायाके ये पर्यायवाची नाम दिये गये हैं। उक्त पर्यायवाची नामोंकी टीका करते हुए ऐसे और भी नाम आये हैं जिनका प्रयोग मायाके अर्थमें होता है। जैसे कपट प्रयोग, कूटव्यवहार, विप्रलम्भन, योगवक्रता, निह्नवन, दम्भ, अतिसन्धान, विश्रम्भघात। वैसे लोकमें दम्भ मानकषायका पर्यायवाची माना जाता है, किन्तु यहाँ उसका मायाकषायमें अन्तर्भाव किया है। मानकषायपूर्वक जो ठगनेका परिणाम होता है उसका नाम दम्भ है इस अभिप्रायसे दम्भको मायारूप स्वीकार कर लिया गया है। टीकामें इसे कल्कका पर्यायवाची नाम बतलाया है। मायामें कुटिल व्यवहारकी मुख्यता है। यही कारण है कि मायाको तीन शल्योंमें परिगणित किया गया है।

लोभकषायके पर्यायवाची नाम हैं—काम, राग, निदान, छन्द सुत, प्रेय, दोष, स्नेह, अनुराग, आशा, इच्छा, मूर्च्छा, गृद्धि, साशता या शाश्वत, प्रार्थना, लालसा, अविरति, तृष्णा, विद्या और जिह्वा। काममें इष्ट स्त्री, पुत्र और परिग्रह आदिकी अभिलाषा मुख्य है, इसलिए कामको लोभका पर्यायवाची कहा है। राग माया और लोभ आदिरूप होते हुए भी यहाँ मनोज्ञ विषयमें अतिरागविशेषको ध्यानमें रखकर रागको लोभका पर्यायवाची कहा है। जो मैं पुण्य कृत्य करता हू उसके फलस्वरूप मुझे इष्ट भोगोपभोगकी प्राप्ति हो ऐसे भावका नाम निदान है। इसमें इष्ट विषयकी प्राप्तिकी अभिलाषा बनी रहनेके कारण निदानको लोभका पर्यायवाची बतलाया है। जिसके चित्तमें मिथ्यात्व और मायापरिणामके समान निदानरूप लोभपरिणाम बना रहता है वह व्रती नही हो सकता। इसलिए आगममे निदानको भी एक शल्य कहा है। मूल सूत्रगाथाओंमे लोभके पर्यायवाची नामोंमें एक नाम 'सुद' है। उसका अनुवाद जयधवला टीकामें 'सुत' और 'स्वत किया है। 'सूयतेऽभिषिच्यते' इस व्युत्पत्तिके अनुसार विविध प्रकारकी अभिलाषाओंसे स्वयको परिसिंचित करना अर्थात् पुष्ट करना सुत है इस भावको ध्यानमे रखकर सुतको लोभका पर्यायवाची कहा है तथा मूल सूत्रगाथामें आये हुए 'सुद' पदका 'स्वत' अर्थ करनेपर 'स्वस्य भाव. स्वता ममता' ऐसा करके जो लोभपरिणाम ऐसी ममतारूप हो उसे लोभका पर्यायवाची 'स्वत' कहा है। प्रियका अर्थ प्रेय है। प्रेयरूप जो दोष, उसका नाम प्रेयदोष है। इस प्रकार प्रेयदोषको लोभका पर्यायवाची कहा है। यद्यपि मूल सूत्रगाथामें लोभके पर्यायवाची नाम बीस है ऐसा स्पष्ट कहा है, परन्तु जयधवला टीकामें इन दोनोंको समसितरूपसे प्रेय और दोषको लोभका पर्यायवाची कहा गया है। टीकामें प्रेयको दोषरूप क्यो कहा इस प्रश्नका जो समाधान किया है वह हृदयगम करने लायक है। समाधान करते हुए वहाँ बतलाया है कि यद्यपि परिग्रह आदिकी अभिलाषा आह्लादका हेतु है, परन्तु वह संसारको बढानेवाली है, इसलिये यहाँ प्रेयको दोषरूप कहा है। स्पष्ट है कि राग या अभिलाषा किसी भी प्रकारकी क्यो न हो वह एकमात्र संसारका ही हेतु होता है। आशाके दो अर्थ है—एक तो अविद्यमान अर्थकी इच्छा करना और दूसरे 'आश्यतीति आशा' व्युत्पत्तिके अनुसार स्वयको कृश करना। ये दोनो लोभरूप होनेसे यहाँ आशाको लोभका पर्यायवाची कहा है।

मूल सूत्रगाथामें लोभका पर्यायवाची नाम 'सासद' भी आया है। इसके टीकाकारने दो अर्थ किये है—एक साशता और दूसरा शाश्वत। आशा, स्पृहा और तृष्णा इन तीनो पदोका अर्थ एक है। जो आशा सहित परिणाम है उसका नाम साशता है। यत यह परिणाम लोभकी अवस्थाविशेषरूप है, अत इसे लोभका

पर्यायवाची कहा है । दूसरे परिग्रहके ग्रहण करनेका परिणाम ससारी जीवके आगे-पीछे सदा बना रहता है, इसलिए 'सासद' पदका दूसरा अर्थ शास्वत करके उसे लोभका पर्यायवाची कहा है। बाह्य सयोगके आशिक त्याग या पूर्ण त्यागका परिणाम लोभविशेषके कारण नही होता । जिनकी बुद्धि तत्त्वस्पर्शिनी है, जिनके उपदेश आदिसे जीवादि प्रयोजनभूत पदार्थोके भेदविज्ञानकी झलक मिलती है ऐसे पुरुष भी आन्तरिक इस लोभपरिणामके कारण आशिक या पूर्ण विरति करनेमें असमर्थ रहते हैं, इसलिये यहाँ अविरतिको लोभका पर्यायवाची कहा है। 'विद्' धातुसे 'विद्या' शब्द बना है, प्रकृतमे उसका अर्थ वेदन करना है । लोभका जन्म वेदनके अधीन है, इसलिए विद्याको लोभका पर्यायवाची कहा है । अथवा विद्या जिस प्रकार दुराराध्य होती है इसी प्रकार लोभके पीछे लगनेवाले जीवकी स्थिति होती हैं । इसलिये विद्याको लोभका पर्यायवाची कहा है । इष्ट अन्न-पान आदि जितने भी उपभोगके साधन हैं उनके बार-बार भोगने पर भी जीवनमें असन्तोष बना रहता है और असन्तोष लोभका पर्यायवाची नाम है। यत इसे जिह्वेन्द्रियकी अतृप्ति मानी जाती है । इसीलिए इस साधर्म्यको देखकर जिह्वाको लोभका पर्यायवाची माना गया है । इसीप्रकार लोभके अन्य जितने पर्यायवाची नाम यहाँ दिये हैं उनका स्पष्टीकरण समझ लेना चाहिए । विशेष वक्तव्य न होनेसे यहाँ उनका अलगसे स्पष्टीकरण नही किया है ।

जैसा कि पहले सकेत कर आये है इस अर्थाधिकारमें पाँच सूत्रगाथाये है । सूत्रगाथाओके ठीक अनुरूप पाँच आर्याछन्द जयधवला टीकाकारके सामने रहे हैं जो सूत्रगाथाओके व्याख्याके अन्तमें दिये गये है ।

## १० सम्यक्त्व-अर्थाधिकार

यह सम्यक्त्व नामका महा अर्थाधिकार है । इस महाधिकारमें औपशमिक आदि तीनो प्रकारके सम्यग्दर्शनोमें से प्रथमोपशम और क्षायिक दोनो प्रकारके सम्यग्दर्शनोकी उत्पत्तिका विचार किया गया है, इसलिए यह महाधिकार दर्शनमोहोपशामना और दर्शनमोहक्षपणा इन दो उप-अर्थाधिकारो में विभक्त हो जाता है । उनमेंसे सर्वप्रथम दर्शनमोहोपशामना अर्थाधिकारका निरूपण किया गया है । जो सूत्रगाथाएं मात्र दर्शन-मोहोपशामना नामक अर्थाधिकारसे सम्बन्ध रखती है वे कुल १५ है । उनका विवेचन चूर्णिसूत्रकार यतिवृषभ आचार्यने अध प्रवृत्तकरण आदि तीन करणोका विशद विवेचन करनेके बाद सबके अन्तमे किया है ।

इस अधिकारका प्रारम्भ करते हुए सर्वप्रथम चार प्रकारके अवतारका सक्षेपमें उल्लेख किया है। वे चार अवतार है—उपक्रम, निक्षेप, नय और अनुगम । उपक्रम पाँच प्रकारका है—आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और यत्र-तत्रानुपूर्वी । पूर्वानुपूर्वीकी अपेक्षा यह दसवाँ अर्थाधिकार है । पश्चादानुपूर्वीकी अपेक्षा छटा और यत्र-तत्रानुपूर्वीकी अपेक्षा अनिर्धारित सख्यावाला यह अर्थाधिकार है । कषायप्राभृत यह गौण्य नामपद है । अक्षरोकी अपेक्षा इसका प्रमाण सख्यात और अर्थकी अपेक्षा असख्यात और अनन्त है। वक्तव्यता-स्वसमय और तदुभय वक्तव्यता है, क्योकि सम्यक्त्वकी प्ररूपणाके अविनाभावस्वरूप है । अर्थाधिकार दो प्रकारका है—दर्शनमोह-उपशामना और दर्शनमोह-क्षपणा । सम्यक्त्व पदका नाम, स्थापना आदि जितने अर्थोमे निक्षेप होता है उसे करके और उन निक्षेपोमे कौन निक्षेप किस नयका विषय है यह बतलाकर प्रकृतमें नोआगम भावनिक्षेपसे प्रयोजन है ऐसा समझना चाहिए ।

इसके बाद अनुगमका निर्देश करते हुए अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें प्ररूपण करने योग्य 'दसण-मोह-उवसामगस्स' इत्यादि चार गाथाओका उल्लेख किया है । इन चार गाथाओमें जिस विषयकी पृच्छा की गई है उसका निर्देश करनेके पूर्व 'दर्शनमोह-उपशामना 'अर्थाधिकारमें प्ररूपित अर्थका सर्वप्रथम उल्लेख कर देना प्रयोजनीय है । यथा—यह तो स्पष्ट है कि प्रथमोपशम सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति मति-श्रुत उपयोगद्वारा ज्ञायक-स्वभाव निज आत्मामें उपयुक्त होनेपर ही होती है, अत ऐसे जीवको नियमसे सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त होना चाहिए । यही कारण है कि आगममें एकेन्द्रियसे लेकर असञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय तक सभी जीव इसके ग्रहणके आयोग्य बतलाये गये है । असञ्ज्ञियोमें तीनो प्रकारके सम्यग्दर्शनोमें से किसी भी सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नही

होती यह भी इससे स्पष्ट है। संज्ञियोमे भी यदि वे नारकी और देव है तो पर्याप्त होनेके अन्तर्मुहूर्त बाद ही वे इसे उत्पन्न करनेके लिए योग्य होते है। नारकियोमें तो सातो नरकोके नारकी पर्याप्त होनेपर प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेके योग्य है और देवोमे चाहे वे अभियोग्य देव हो, चाहे अनभियोग्य देव हो, भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिषी और नौवें ग्रैवेयक तकके विमानवासी देव तद्योग्य सामाग्रीके सद्भावमें प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेके लिए अधिकारी है।

मनुष्यो और तिर्यञ्चोमे जो सम्मूर्च्छन जीव है वे तो प्रथमोपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न करनेके पात्र ही नही। गर्भजोमे भी जो मनुष्य और तिर्यञ्च पर्याप्त है वे ही प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेके अधिकारी है। उसमें भी कर्मभूमिज मनुष्य पर्याप्त होनेके प्रथम समयसे लेकर आठ वर्षके होने चाहिए तथा भोगभूमिज मनुष्य उनचास दिनके होने चाहिए, तिर्यञ्चोमे भी वे दिवसपृथक्त्वके होने चाहिए। यहाँ दिवसपृथक्त्व शब्द सात-आठ दिनका वाची न होकर बहुत दिवसपृथक्त्वोका वाची है।

चारो गतियोके जीवोमे प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य कौन जीव है इसका यह सामान्य विचार है। उसमे भी जो अनादि मिथ्यादृष्टि जीव है वे क्षयोपशम आदि चार लब्धियोसे सम्पन्न होने चाहिए। जो सादि मिथ्यादृष्टि जीव है उनका वेदक काल व्यतीत होने पर वे भी चार लब्धियोसे सम्पन्न होने चाहिए। इस प्रकार इतनी योग्यतावाले भव्य जीव ही काललब्धि आनेपर स्वात्मोन्मुख स्वपुरुषार्थद्वारा प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य होते है। वे चार लब्धियाँ है—क्षयोपशम लब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि और प्रायोग्य लब्धि। विशुद्धिके बलसे पूर्वमे, सचित हुए कर्मोके अनुभाग स्पर्धकोका प्रतिसमय अनन्तगुणा हीन होकर उदीरित होना क्षयोपशमलब्धि है। प्रतिसमय अनन्तगुणे हीन होकर उदीरित होनेवाले अनुभागस्पर्धकोके निमित्तसे असाता आदि अशुभ प्रकृतियोके बन्धके विरुद्ध सातादि शुभ प्रकृतियोके बन्धके योग्य जीवोके परिणामोकी प्राप्ति होना विशुद्धिलब्धि है। छह द्रव्य और नौ पदार्थोंके उपदेशका नाम देशना है। उस देशनासे युक्त आचार्य आदिका मिलना तथा उनके द्वारा उपदिष्ट अर्थके ग्रहण करने, धारण करने और विचार करनेकी शक्तिका प्राप्त होना देशनालब्धि है। तथा सब कर्मोकी उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट अनुभागका घात होकर उनका क्रमसे अन्त कोडाकोडी प्रमाण स्थितिमे और द्विस्थानीय अनुभागमे अवस्थान होना प्रायोग्य लब्धि है। यहाँ अनुभागकी अपेक्षा सब कर्मोमें पुण्यकर्म विवक्षित न होकर शेष सब कर्म लिये गये है इतना विशेष जानना चाहिए, क्योकि उक्त विशुद्धिको निमित्तकर पुण्य कर्मोका अनुभाग क्षीण न होकर वृद्धिको प्राप्त होता है।

यहाँ देशना लब्धिके प्रसगसे जो आचार्य आदि पदका ग्रहण किया है सो उससे मोक्षमार्गके अनुरूप उपदेश देते हुए सम्यग्दृष्टियोका ग्रहण किया है ऐसा यहाँ समझना चाहिए, क्योकि जीवस्थानकी नौवी चूलिकामें प्रथमादि तीन नरकोमे ऋषियोका गमन न होनेसे वहाँ प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका बाह्य साधन धर्मश्रवण नही बन सकता? किसी शिष्य द्वारा ऐसी आशका करनेपर आचार्यदेव वीरसेनस्वामी उक्त शकाका समाधान करते हुए लिखते है कि वहाँ पूर्वभवके सम्बन्धी, धर्मके ग्रहण करानेमें लगे हुए तथा सब प्रकारकी बाधाओसे रहित ऐसे सम्यग्दृष्टि देवोका वहाँ गमन देखा जाता है, अत प्रारम्भके तीन नरकोमें धर्मश्रवणरूप बाह्य साधन बन जाता है। उल्लेख इस प्रकार है—

कध तेसिं धम्मसुणणं संभवदि, तत्थ रिसीणं गमणभावा? ण, सम्माइट्ठिदेवाण पुव्वभवसबधीणं धम्मपदुप्पायणे वावदाणं सयलवाधाविरहियाणं तत्थ गमणदसणादो। पु ६, ४२२।

इससे स्पष्ट है कि सम्यग्दृष्टियोके द्वारा मिला हुआ मोक्षमार्गके अनुरूप उपदेश ही अन्य जीवोमें प्रथमोपशम सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिका निमित्त होता है, अन्य मिथ्यादृष्टियोके द्वारा दिया गया उपदेश प्रथमोशम सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिमें बाह्य साधन नही होता।

ये चार लब्धियाँ है। इन चार लब्धियोसे सम्पन्न उक्त योग्यतावाले जीव जब काललब्धिके योगमें स्वपुरुषार्थद्वारा करणलब्धिके सन्मुख होते है तब वे जीव सर्वप्रथम अध प्रवृत्तकरणरूप विशुद्धिको प्राप्त होते

है। ऐसे जीवोके प्रथम समयसे परिणाम कैसे होते है, योग व उपयोग आदि कौन-कौन होते है इत्यादि बातोकी पृच्छा उन चार गाथाओमे की गई है जो सामान्यरूपसे अध प्रवृत्तकरणके प्रथम समयमे प्ररूपणायोग्य है। वे चार है—'दंसणमोह-उवसामगस्स' इत्यादि ९१, ९२, ९३ और ९४ क्रमाकवाली सूत्रगाथाऐं। उनमें प्रथम सूत्रगाथाका विशेष स्पष्टीकरण चूर्णिसूत्रोमे और उनकी जयधवला टीकामें करते हुए बतलाया है कि इन जीवोका परिणाम विशुद्धतर ही होता है, अविशुद्ध नही होता। केवल अध प्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे लेकर ही विशुद्धतर परिणाम नही होता। किन्तु अध प्रवृत्तकरणको प्रारम्भ करनेके अन्तर्मुहूर्त पहलेसे ही ऐसे जीवोका परिणाम आत्मसन्मुख उपयोग होनेसे प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धिको लिये हुए विशुद्धसे विशुद्धतर होता जाता है, क्योकि जो मिथ्यात्वरूपी महागर्तसे निकलकर अलब्धपूर्व सम्यग्दर्शनरूपी रत्नको प्राप्त करनेके सम्मुख है, जिन्होने क्षयोपशम आदि चार लब्धियोकी सम्पन्नताके कारण अपनी सामर्थ्यको बढाया है और जो सवेग और निर्वेदभावसे युक्त है ऐसे जीवोके परिणामोमे प्रति समय सहज ही अनन्तगुणी विशुद्धि होती है इसमें सन्देह नही।

कर्मोके ग्रहणमे निमित्त रूप जीव प्रदेशोकी परिस्पन्दरूप पर्यायको योग कहते है। ये जीव नियमसे पर्याप्त होते है, इसलिए इनके ग्यारह पर्याप्त योगोमेसे आहारक काययोगको छोडकर दस पर्याप्त योगोमेसे कोई एक पर्याप्त योग होता है। यथा—मनोयोगके चार भेदोमेसे कोई एक मनोयोग होता है या वचन योगके चार भेदोमेसे कोई एक वचनयोग होता है या औदारिक काययोग या वैक्रियिक काययोग होता है।

क्रोध, मान, माया और लोभके भेदसे कषाय चार प्रकारकी हैं। उनमेसे कोई एक कषाय परिणाम होता है। इतनी विशेषता है कि एक तो ऐसे जीवोका उपयोग परलक्षी न होकर, नियमसे आत्मलक्षी होता है, इसलिए वह कषाय परिणाम उत्तरोत्तर वर्धमान न होकर हीयमान होता है। दूसरे पूर्व सचित पापकर्मोका अनुभाग द्विस्थानीय तो पहले ही हो गया है। साथही उसमें प्रति समय अनन्तगुणी हानि होती जाती है, इस-लिए भी वहाँ होनेवाला कषाय परिणाम उत्तरोत्तर हीयमान ही होता है।

जीवोका जो अर्थको ग्रहण करने रूप परिणाम होता है उसे उपयोग कहते है। वह दो प्रकारका है—साकार और अनाकार। अनाकार उपयोगका नाम दर्शनोपयोग है और साकार उपयोगका नाम ज्ञानोपयोग है। यत अनाकार उपयोग अविमर्शक होनेसे सामान्यरूपसे पदार्थको ग्रहण करता है, अत ऐसे उपयोगके कालमें विमर्शक स्वरूप जीवादि तत्त्वार्थोकी प्रतिपत्ति नही हो सकती, अत यहाँ साकार उपयोग अर्थात् ज्ञानोपयोग ही स्वीकार किया गया है। उसमें भी मिथ्यात्व गुणस्थानमे तीन कुज्ञान ही सम्भव है, अत उनमे से कोई एक उपयोग यहाँ होता है यह उक्त स्थलपर जयधवला टीकामें स्वीकार किया गया है। इस विषयकी विशेष जानकारीके लिये पृ० २०४ के विशेषार्थ पर दृष्टिपात करना चाहिए।

इन जीवोके उत्तरोत्तर वर्धमान पीत, पद्म और शुक्ल इन तीनो लेश्याओमेसे कोई एक लेश्या होती है। यह कथन तिर्यञ्चो और मनुष्योकी मुख्यतासे किया है, क्योकि देवो और नारकियोमे जहाँ जो लेश्या है वहाँ वह जन्मसे लेकर मरणतक नियमसे बनी रहती है, इसलिए यहाँ नारकियो और देवोके सम्यग्दर्शनके सन्मुख होने पर कौन लेश्या होती है इसका निर्देश न कर जहाँ एक लेश्या अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल तक नही होती ऐसे मनुष्यो और तिर्यञ्चोकी अपेक्षा ही यहाँ ऐसे जीवोके कौन लेश्या होती है इसका निर्देश किया है। ऐसे मनुष्यो और तिर्यञ्चोके अशुभ तीन लेश्याऐं तो होती ही नही। शुभ तीन लेश्याओमे कोई एक लेश्या नियमसे वर्धमान ही होती है। यदि अतिमद विशुद्धिके साथ उक्त जीव सम्यग्दर्शनके सन्मुख हो तो भी उनके जघन्य पीतलेश्यारूप परिणाम देखा जाता है। नारकियोमे कृष्ण, नील और कापोतमेसे जिस नरकमे जो अवस्थित लेश्या हो वह नियमसे हीयमान ही होती है और देवोमे पीत, पद्म और शुक्लमेसे जहाँ जो अवस्थित लेश्या हो वह नियमसे वर्धमान ही होती है इतना यहाँ विशेष जानना चाहिए।

तीनो वेदोमेसे अन्यतम वेद होता है। करणानुयोगमें चौदह मार्गणाओका कथन नोआगम भावपर्यायको ध्यानमें रखकर ही किया गया है। इसलिए वेद कौन होता है ऐसी पृच्छाके होने पर जो यह उत्तर दिया

गया है कि तीनो वेदोमेंसे कोई एक वेद होता है सो इस उत्तर द्वारा भाववेदका ही ग्रहण करना चाहिए। चूँकि प्रारम्भके पाँचवे गुणस्थानतककी प्राप्ति द्रव्यसे पुरुष, स्त्री और नपुसक संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंको भी हो सकती है, अत जयधवलाकारने वेदके द्रव्य और भाव ऐसे भेद करके दोनो प्रकारके तीनो वेदवाले जीव प्रथमोपशम सम्यग्दर्शनको उत्पन्न करते है उसमे कोई विरोध नही है यह निर्देश किया है। परमागम चार अनुयोगोमें विभक्त है। उनमेंसे चरणानुयोगमे बाह्य आचारकी अपेक्षा विचार किया गया है, इसलिए उसमें द्रव्यवेद विवक्षित है और करणानुयोगमे नोआगम भावरूप जीवोकी अर्थ-व्यंजन पर्याये ली गई हैं, इसलिए उसमे भाववेद विवक्षित है इतना यहाँ विशेष समझना चाहिए।

दूसरी सूत्रगाथा 'काणि वा पुव्वबद्धाणि' इत्यादि है। इसमे आठो कर्मोके प्रकृति आदिके भेदसे चारो प्रकारके सत्त्व, बन्ध, उदय और उदीरणा विषयक पृच्छाका चूर्णिसूत्रो और जयधवला टीका द्वारा विचार किया गया है। इनमेसे प्रकृति सत्त्वका विचार करते हुए जो निर्देश किया है उसके अनुसार मोहनीय कर्मकी २६-२७ या २८ प्रकृतियोकी सत्ता होती है। अनादि मिथ्यादृष्टिके २६ प्रकृतियोकी सत्ता होती है, सादि मिथ्यादृष्टिके यथासम्भव २६,२७ या २८ प्रकृतियोकी सत्ता होती है। कारण स्पष्ट है। आयु कर्मकी एक भुज्यमान आयुकी अपेक्षा एककी और यदि परभव सम्बन्धी आयुका बन्ध किया हो तो दोकी सत्ता होती है। नामकर्मकी अपेक्षा आहारकचतुष्क और तीर्थंकर प्रकृतिको छोड़कर ८८ प्रकृतियोकी सत्ता होती है। ज्ञानावरणादि शेष पाँच कर्मोके जितने अवान्तर भेद है उन सबकी सत्ता होती है।

यहाँ यह प्रश्न किया गया है कि सादि मिथ्यादृष्टिके आहारक चतुष्कका सत्त्व सम्भव है, इसलिए अन्य प्रकृतियोके साथ उनकी सत्ता भी कहनी चाहिए। इस प्रश्नका समाधान करते हुए बतलाया है कि वेदक सम्यक्त्वके कालसे आहारक शरीरकी उद्वेलनाका काल अल्प है, इसलिए प्रथमोपशम सम्यक्त्वके सन्मुख हुए सादि मिथ्यादृष्टिके आहारक चतुष्कका सत्त्व नही पाया जाता।

ऐसे जीवोके आयुकर्मका स्थितिसत्त्व तत्प्रायोग्य होता है। तथा शेष कर्मोका स्थितिसत्त्व अन्त-कोडाकोडीके भीतर होता है।

ऐसे जीवोके अप्रशस्त कर्मोका अनुभाग द्विस्थानीय होता है और प्रशस्त कर्मोका चतु स्थानीय होता है। वर्णादिचतुष्क अपने उत्तर भेदोके साथ प्रशस्त भी होते है और अप्रशस्त भी होते हैं। तथा प्रदेशसत्कर्म अजघन्य-अनुत्कृष्ट होता है।

उसी दूसरी गाथाका दूसरा चरण है—'के वा अंसे णिबधदि' तदनुसार उक्त जीव किन प्रकृतियोके बन्धक होते है इसका विचार तीन दण्डकोके द्वारा किया गया है। उन तीनो दण्डकोमें समानरूपसे पाई जानेवाली प्रकृतियाँ इस प्रकार है—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय, जाति, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, वर्णादि चतुष्क, अगुरुलघु आदि चार, प्रशस्त विहायोगति, त्रसादि चतुष्क, स्थिरादि छह, निर्माण और पाँच अन्तराय।

अब यदि अध प्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें स्थित जीव मनुष्य और तिर्यञ्च है तो वे उक्त ६६ प्रकृतियोके साथ देवगति वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आगोपाग, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र इन पाँच प्रकृतियोका भी बन्ध करते है।

यदि देव और छह पृथिवियोके नारकी जीव है तो वे उक्त ६६ प्रकृतियोके साथ मनुष्यगति, औदारिक शरीर, वज्रर्षभनाराच संहनन, औदारिक शरीर आंगोपाग, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र इन छह प्रकृतियोका भी बन्ध करते हैं।

यदि सातवी पृथिवीके नारकी है तो वे उक्त ६६ प्रकृतियोके साथ तिर्यञ्चगति, औदारिकशरीर, औदारिक आगोपाग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, कदाचित् उद्योत और नीचगोत्र इन ७ या ६ प्रकृतियोका भी बन्ध करते है।

स्थितिबन्ध तीनो दण्डकोमें कही गई इन सब प्रकृतियोका अन्त कोडकोडी प्रमाण होता है। जो अप्रशस्त प्रकृतियाँ है उनका द्विस्थानीय और जो प्रशस्त प्रकृतियाँ है उनका चतु स्थानीय अनुभागबन्ध होता है।

पाँच ज्ञानावरण, छह् दर्शनावरण, साता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, औदारिक शरीर आगोपाग, वर्णादि चार, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु आदि चार, उद्योत, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, यश कीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इन ५४ प्रकृतियोका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है तथा निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, देवगति, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्रसथान, वैक्रियिक शरीर आगोपाग, वज्रर्षभनाराच सहनन, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और नीचगोत्र इन १९ प्रकृतियोका उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट प्रदेशबध होता है।

उसी दूसरी गाथाका तीसरा पाद है—'कदि आवलिय पविसति'। तदनुसार उदय-अनुदयरूपसे कितनी प्रकृतियाँ उदयावलिमें प्रवेश करती है इस पृच्छाका समाधान करते हुए बतलाया है कि पहले जितनी प्रकृतियोकी सत्ताका निर्देश कर आये है वे सब उदयावलिमे प्रवेश करती है। इतनी विशेषता है कि जिन जीवोने परभव सम्बन्धी आयुका बन्ध किया है उनकी उस आयुकी आबाधा भुज्यमान आयु-प्रमाण होनेसे वह उदयावलिमे प्रवेश नही करती है। यहाँ इतना और विशेष जान लेना चाहिए कि परभव सम्बन्धी आयुका बन्ध होते समय जितनी भुज्यमान आयु शेष रहती है उसका कदलीघात हुए विना निषेक क्रमसे भोग द्वारा ही उसकी निर्जरा होती है।

उसी गाथाका चौथा चरण है—'कदिण्ह वा पवेसगो।'—तदनुसार अध प्रवृत्तकरणके प्रथम समयमे स्थित जीवोके कितनी प्रकृतियोकी उदीरणा होती है इस पृच्छाका समाधान करते हुए बतलाया है कि पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, मिथ्यात्व, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णादि चार, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, निर्माण और पाँच अन्तराय इन ३५ प्रकृतियोकी तो नियमसे उदीरणा होती है, क्योकि यहाँपर ये ध्रुवोदयस्वरूप प्रकृतियाँ है। इसलिए इनकी समानरूपसे चारो गतियोमे उदय-उदीरणा पाई जाती है। इनके सिवाय साता और असाता इनमेंसे किसी एक प्रकृतिको चारो गतियोमें उदय-उदीरणा पाई जाती है। इसी प्रकार चारित्र मोहनीयकी अपेक्षा ४ क्रोध, ४ मान, ४ माया और ४ लोभमेसे कोई चार, हास्यादि दो युगलोमेंसे कोई एक युगल, भय, जुगुप्सा या दोनो या दोनो नही इस प्रकृतियोकी भी उदय-उदीरणा होती है।

अब यदि नारकी है तो उक्त प्रकृतियोके साथ नपुसकवेद, नरकायु, नरकगति, वैक्रियिक शरीर, हुडसस्थान, वैक्रियिक शरीर आगोपाग, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दु स्वर, अनादेय, अयश कीर्ति और नीचगोत्र इन ग्यारह प्रकृतियोकी भी उदय-उदीरणा पायी जाती है।

यदि तिर्यञ्च है तो ३ वेदोमेंसे कोई एक वेद, तिर्यञ्चायु, तिर्यञ्चगति, औदारिक शरीर, छह सस्थानोमेसे कोई एक सस्थान, औदारिक शरीर आगोपाग, छह सहननोमेसे कोई एक सहनन, कदाचित् उद्योत, दो विहायोगतियोमेंसे कोई एक, सुभग-दुर्भगमेंसे कोई एक, सुस्वर-दु स्वरमेंसे कोई एक, आदेय-अनादेयमेसे कोई एक, यश कीर्ति-अयश कीर्तिमेंसे कोई एक तथा नीचगोत्रकी नियमसे उदय-उदीरणा होती है।

यदि मनुष्य है तो तिर्यञ्चोके समान उदय-उदीरणा जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायु और तिर्यञ्चगतिके स्थानमे मनुष्यायु और मनुष्यगति कहनी चाहिए। तथा मनुष्योमे उद्योतकी उदय-उदीरणा नही होती और गोत्रकी दोनो प्रकृतियोमेंसे किसी एककी उदय-उदीरणा पाई जाती है।

यदि देव है तो उक्त प्रकृतियोके साथ पुरुष या स्त्रीवेद, देवायु, देवगति, वैक्रियिक शरीर, समचतु-

रस्रसंस्थान, वैक्रियिक शरीर आंगोपांग, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश कीर्ति और उच्च-गोत्र इनकी नियमसे उदय-उदीरणा होती है।

यहां जिस गतिमें जितनी प्रकृतियोंकी उदीरणा बतलाई है, आयुको छोड़कर उन प्रकृतियोंकी तत्प्रायोग्य अन्त:कोडाकोडी प्रमाण स्थितियां अपकर्षित कर उदयमें दी जाती हैं और आयुओंमेंसे जिसके उदय प्राप्त जिस आयुकी जो स्थिति हो उसकी उदीरणा होती है। इसी प्रकार जिसके जिन प्रकृतियोंकी उदय-उदीरणा होती है उनमेंसे प्रशस्त प्रकृतियोंकी बन्धस्थानसे अनन्तगुणी हीन चतु:स्थानीय उदीरणा होती है और अप्रशस्त प्रकृतियोंकी सत्त्वस्थानमें अनन्तगुणी हीन द्विस्थानीय उदीरणा होती है। तथा प्रदेशोंकी अपेक्षा अजघन्य-अनुत्कृष्ट उदीरणा होती है। यह उदीरणाका विचार है। इसी प्रकार उदयके सम्बन्धमें भी जानना चाहिए।

'के अंसे झीयदे पुव्वं' यह तीसरी सूत्रगाथा है। इसके पूर्वार्धद्वारा दर्शनमोहकी उपशामना करनेके सन्मुख होनेके पूर्व ही प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशरूपसे किन कर्मोकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है और किन कर्मोकी उदयव्युच्छित्ति हो जाती है इसकी पृच्छा की गई है और उत्तरार्ध द्वारा किस स्थानपर अन्तर करणक्रिया होती है और किस स्थानपर किन कर्मोका यह जीव उपशामक होता है यह पृच्छा की गई है।

आगे इन पृच्छाओंका चूर्णिसूत्र और जयधवला टीकाद्वारा विस्तारसे समाधान करते हुए चौंतीस बन्धापसरणोंका निर्देश करनेके बाद दर्शनमोहनीयके उपशामकके पृथक्-पृथक् गतिके अनुसार किन प्रकृतियों-का उदय होता है और कौन प्रकृतियां उदयसे व्युच्छिन्न रहती है इसका विचार करते हुए बतलाया है कि निद्रादि पांच दर्शनावरण, एकेन्द्रियादि चार जातिनामकर्म, चार आनुपूर्वी, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण नामकर्म ये प्रकृतियां उदयसे व्युच्छिन्न रहती हैं। दर्शनमोहनीयके उपशमका प्रारम्भ करने वाला जीव न तो एकेन्द्रिय होता है, न विकलत्रय और असंज्ञी ही होता है और न ही अपर्याप्तक होता है। साथ ही वह साकार उपयोगवाला और जागृत होता है, अत उसके ये प्रकृतियां उदयसे व्युच्छिन्न रहती हैं। यह ओघ निर्देश है। आदेशसे किस गतिमें किन प्रकृतियोंका किस रूपसे उदय रहता है यह मूलसे जान लेना चाहिए। विशेष वक्तव्य न होनेसे यहां उसका निर्देश नही किया है। अन्तरकरण क्रिया भी अध:-प्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें नही होती और न ही यह जीव वहांपर उपशामक संज्ञाको प्राप्त होता है। आगे जहां अन्तरकरण क्रिया होगी और जहां जाकर यह जीव उपशामक कहलायेगा वहां इनका निर्देश करेंगे।

चौथी सूत्रगाथा है—'किंट्ठिदियाणि कम्माणि' आदि। इस द्वारा दर्शनमोहनीयका उपशामक जीव कितनी स्थितिका और कितने अनुभागका घात कर स्थितिसम्बन्धी और अनुभागसम्बन्धी किस स्थानको प्राप्त होता है यह पृच्छा की गई है। तदनुसार इसका समाधान करते हुए बतलाया है कि अध:प्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें जो स्थितिसत्कर्म अन्त:कोड़ाकोड़ प्रमाण है उसमेंसे अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंके बलसे संख्यात बहुभागप्रमाण स्थितिका घात कर पूर्वकी विवक्षित स्थितिके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिको यह जीव प्राप्त होता है। तथा अप्रशस्त कर्मोका अध:प्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें जो अनुभाग प्राप्त होता है उसके अनन्त बहुभागप्रमाण अनुभागका उक्त दोनो प्रकारके परिणामोंके बलसे घात कर उसके अनन्तवें भागप्रमाण अनुभागको प्राप्त होता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अध:प्रवृत्तकरणमें स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात न होकर वे गुणश्रेणिनिक्षेपके साथ अपूर्वकरणके प्रथम समयसे प्रारम्भ होते हैं।

इस प्रकार अध:प्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें प्ररूपण करने योग्य चार गाथाओंके विषयका निर्देश करनेके बाद जिन तीन प्रकारके करण परिणामोंके द्वारा दर्शनमोहनीयके उपशम होनेका निर्देश किया है उनका यहां विचार करते हैं।

जिन परिणामोंके द्वारा दर्शनमोह और चारित्रमोहका उपशम आदि होता है उन परिणामोंकी करण संज्ञा है। वे परिणाम तीन प्रकारके हैं—अध:प्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। जिसमे विद्यमान

जीवोके परिणाम नीचे प्रवृत्त होते है उसे अध वृत्तकरण कहते हैं। तात्पर्य यह है कि इस करणमें उपरिम ( आगेके ) समयमे स्थित जीवोके परिणाम नीचेके ( पूर्वके ) समयमे स्थित जीवोके भी पाये जाते हैं इसलिए इनकी अध प्रवृत्तकरण सज्ञा है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। जिस करणमे प्रत्येक समयमें अपूर्व-असमान नियमसे अनन्तगुणरूपसे वृद्धिगत करण-परिणाम होते है अर्थात् जिसस करणमे प्रत्येक समयमें असख्यात लोकप्रमाण परिणाम होकर अन्य समयमें स्थित जीवोके परिणामोके सदृश नही होते हैं, उनकी अपूर्वकरण सज्ञा है। जिस करणमे एक समयमे स्थित जीवोके परिणाममे भेद नही है और भिन्न समयमे स्थित जीवोका परिणाम भिन्न ही होता है वह अनिवृत्तिकरण कहलाता है। इस प्रकार ये तीन प्रकारके करण है। इनके सिवायसे चौथी उपशामनाद्धा है। जिस कालविशेषमें दर्शनमोहनीय उपशान्त होकर अवस्थित रहता है उसे उपशामनाद्धा कहते हैं। उपशामनाद्धा कहो या उपशम सम्यग्दृष्टिका काल कहो दोनोका एक ही अर्थ है।

आगे इन तीन करणोका विशेष विचार करते हुए अध प्रवृत्तकरणके विषयमें दो अनुयोगद्वारोका निर्देश किया है। वे दो अनुयोगद्वार हैं—अनुकृष्टिप्ररूपणा और अल्पवहुत्व। उसमे सर्वप्रथम सूत्रनिवद्ध अल्पवहुत्वके साधनरूपसे अनुकृष्टिका निर्देश किया है। अध प्रवृत्तकरणका कुल काल अन्तर्मुहूर्त है और परिणाम असख्यात लोकप्रमाण हैं। उसमे प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समयतक पृथक्-पृथक् एक-एक समयमे स्थितिबन्धापसरण आदिके कारणभूत और उत्तरोत्तर छह वृद्धिक्रमसे अवस्थित असख्यात लोकप्रमाण परिणामस्थान होते है। परिपाटी क्रमसे विरचित इन परिणामोके पुनरुक्त और अपुनरुक्त भावका अनुसन्धान करना अनुकृष्टि कहलाती है। यद्यपि यह अनुकृष्टि ससारके योग्य स्थितिवन्धाध्यवसायस्थानोमें पल्योपमके असख्यातवे भागप्रमाण स्थान ऊपर जाकर व्युच्छिन्न होती हैं, क्योकि जघन्य स्थितिवन्धके योग्य परिणामोकी ऊपर पल्योपमके असंख्यातवे भागप्रमाण स्थितिविशेपोमे अनुवृत्ति देखी जाती है। किन्तु यहाँ ऐसा न होकर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवस्थित स्थान व्यतीत होनेपर अनुकृष्टिका विच्छेद हो जाता है। यह अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवस्थित स्थान अध-प्रवृत्तकरणके कालके संख्यातवे भागप्रमाण है। यथा—अध प्रवृत्तकरणके प्रथम समयमे नाना जीवोकी अपेक्षा असख्यात लोकप्रमाण परिणाम होते हैं। पुन दूसरे समयमे प्रारम्भके कुछ परिणामोको छोडकर वे ही परिणाम अन्य अपूर्व परिणामोके साथ कुछ अधिक होते है। यहाँ अधिकका प्रमाण, असख्यात लोकप्रमाण परिणामस्थानोमे अन्तर्मुहूर्तका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे, उतना है। इसप्रकार अध प्रवृत्तकरणके अन्तिम समयतक प्रत्येक समयके परिणाम पिछले समयके परिणामोसे साधिक होते जाते है। आगे इन परिणामोकी किस प्रकार अनुकृष्टि रचना बनती है आदि सव वातोका विशेष खुलासा मूलमें विस्तारसे किया ही है। इसलिए वहाँसे जान लेना चाहिए। इसीप्रकार इन परिणामोमें विशुद्धिकी अपेक्षा स्वस्थान और परस्थानका अवलम्वन लेकर अल्पवहुत्व भी जान लेना चाहिए। विशुद्धिकी अपेक्षा परस्थान अल्पबहुत्वका सदृष्टिद्वारा पृ० २५१ मे स्पष्ट स्पष्टीकरण किया है, इसलिए इसे उसके आधारसे जान लेना चाहिए। यहाँ इतना संकेत कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि उक्त संदृष्टिमें विवक्षित किस स्थानसे दूसरे किस स्थानकी विशुद्धि अधिक है यह वतलानेके लिए जो वाणके चिह्न दिये है वे भूलसे उलटे लग गये है, अत उन्हें वही अपने अपने स्थानपर उलट देना चाहिए। ताकि परस्थान विशुद्धिके अल्पवहुत्वका ज्ञान करनेमें भ्रम न होने पावे।

दूसरा अपूर्वकरण है। इसका काल अन्तर्मुहूर्त है जो अध प्रवृत्तकरणके कालसे संख्यातवे भागप्रमाण है। इसके प्रत्येक समयमे नानाजीवोकी अपेक्षा असख्यात लोकप्रमाण परिणाम होते हैं जो प्रत्येक समयमें विसदृश ही होते हैं। अर्थात् प्रत्येक समयके परिणाम दूसरे समयके परिणामोसे भिन्न ही होते है। यहाँ प्रथम समयमें जघन्य विशुद्धि सवसे स्तोक होती है। उससे उसी समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी होती है। प्रथम समयकी इस उत्कृष्ट विशुद्धिसे दूसरे समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी होती है। उससे उसी समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी होती है। इसप्रकार विशुद्धिका यह अल्पवहुत्व इस करणके अन्तिम समयतक जानना चाहिए। यहाँ अध प्रवृत्तकरणके समान परिणामोकी अनुकृष्टि रचना न होनेसे निर्वर्गणाकाण्डक भी

नहीं बनता, अतः यहाँ प्रत्येक समयमें निर्वर्गणा होती है। अर्थात् यहाँ एक समयके परिणामोंमें ही नाना जीवोंकी अपेक्षा सदृशता-विसदृशता बनती है। विवक्षित किसी भी समयके परिणामोंकी उससे भिन्न अन्य किसी भी समयके परिणामोंके साथ सदृशता नहीं बनती। दर्शनमोहनीयका उपशम करनेवाले जीवोंके अपूर्व-करणके प्रथम समयसे कतिपय विशेषताएँ प्रारम्भ हो जाती हैं—(१) स्थितिकाण्डकघात। प्रत्येक स्थिति-काण्डकके घातका काल अन्तर्मुहूर्त है। इतने कालके भीतर सत्तामें स्थित आयुकर्मके सिवाय अन्य कर्मोंकी स्थितिमेंसे एक काण्डकप्रमाण स्थितिका फालिक्रमसे घातकर उस अन्तर्मुहूर्तके अन्तमें उन कर्मोंकी स्थितिको उतना कम कर देता है। इसप्रकार अपूर्वकरणके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कालके भीतर संख्यात हजार स्थितिकाण्डक-घात होकर अन्तमें विवक्षित सब कर्मोंकी वह स्थिति अपूर्वकरणके प्रथम समयमें प्राप्त स्थितिके संख्यातवे भागप्रमाण शेष रहती है। यहाँ अपूर्वकरणके प्रथम समयमें एक जघन्य स्थितिकाण्डक पल्योपमके संख्यातवे भागप्रमाण होता है और उत्कृष्ट काण्डक सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण होता है। इस विषयका विशेष स्पष्टीकरण मूलसे समझ लेना चाहिए। स्थितिकाण्डकघात अधःप्रवृत्तकरणमें नहीं होता।

(२) स्थितिबन्ध जो अधःप्रवृत्तकरणमें होता था उससे यहाँ अपूर्व होता है। तात्पर्य यह है कि अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें ही उससे पहले बँधनेवाले स्थितिबन्धसे पल्योपमके संख्यातवे भागकम स्थिति-का यह जीव बन्ध करता है और इतना स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तकालतक करता रहता है। पुनः इस अन्तर्मुहूर्तके समाप्त होनेपर पल्योपमके संख्यातवे भागकम दूसरे स्थितिबन्धका प्रारम्भकर उसका भी अन्तर्मुहूर्तकालतक बन्ध करता रहता है। इसप्रकार अधःप्रवृत्तकरणके कालके संख्यात हजार खण्डप्रमाण स्थितिबन्धापसरण अधः-प्रवृत्तकरणके कालके भीतर होते हैं। तथा अपूर्वकरणके प्रथम समयमें पिछले स्थितिबन्धसे पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण कम स्थितिका बन्ध प्रारम्भ होकर एक अन्तर्मुहूर्तकालतक वह होता रहता है। पुनः अन्य स्थिति-बन्ध प्रारम्भ होता है। इसप्रकार इस करणके कालके भीतर भी संख्यात हजार स्थितिबन्धापसरण जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार इन स्थितिबन्धापसरणोंका कथन अनिवृत्तिकरणमें भी करना चाहिए। एक स्थिति-काण्डकघातका जितना काल होता है उतना ही एक स्थितिबन्धापसरणका काल होता है इतना यहाँ विशेष जानना चाहिए।

(३) यहाँ अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे लेकर ही तीनों करणोंके कालके भीतर जो अप्रशस्त कर्म बँधते हैं उनका प्रत्येक समयमें द्विस्थानीय अनुभागबन्ध होकर भी वह अनन्तगुणा हीन होता रहता है और जो प्रशस्त कर्म बँधते हैं उनका प्रत्येक समयमें चतुःस्थानीय अनुभागबन्ध होकर भी वह अनन्तगुणा अधिक होता रहता है। दर्शनमोहनीयकी उपशमना करनेवाला जीव आयुकर्मका बन्ध नहीं करता, इसलिए उसकी अपेक्षा यह तथा स्थितिकाण्डकघात आदि कोई कथन नहीं जानना चाहिए।

४. अपूर्वकरणके प्रथम समयसे सत्तामें स्थित अप्रशस्त कर्मोंका अनुभाग काण्डकघात होने लगता है। यहाँ एक-एक अनुभागकाण्डकघातका काल अन्तर्मुहूर्त होकर भी वह स्थितिकाण्डकघातके संख्यात हजारवें भागप्रमाण है। अर्थात् एक स्थितिकाण्डकघातके कालके भीतर संख्यात हजार अनुभागकाण्डकघात हो जाते हैं। इसी प्रकार अनिवृत्तिकरणमें भी जानना चाहिए। यह अनुभागकाण्डकघातविधि अधःप्रवृत्तकरणमें नहीं होती।

५. इसी प्रकार अपूर्वकरणके प्रथम समयसे आयुकर्मको छोड़कर शेष सात कर्मोंका गुणश्रेणिनिक्षेप प्रारम्भ हो जाता है। आयुकर्मका गुणश्रेणिनिक्षेप क्यों नहीं होता इस प्रश्नका समाधान करते हुए बतलाया है कि ऐसा स्वभावसे ही नहीं होता। गुणश्रेणिनिक्षेपका प्रमाण अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके कालसे कुछ अधिक है। इन दोनों करणोंके कालसे कुछ अधिकका प्रमाण कितना है इस प्रश्नका समाधान करते हुए बतलाया है कि अनिवृत्तिकरणका जितना काल है उसका संख्यातवाँ भाग कुछ अधिकका प्रमाण है। यहाँ गुणश्रेणिनिक्षेपकी विधि मूल (पृ० २६५) से जान लेनी चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ गलितावशेष गुणश्रेणिनिक्षेप होता है। गुणश्रेणिनिक्षेपके प्रथम समयसे लेकर जैसे-जैसे एक-एक समय व्यतीत होता जाता है वैसे ही वैसे गुणश्रेणिनिक्षेपका आयाम भी उत्तरोत्तर कम होता जाता है। इसीका नाम गलितावशेष गुणश्रेणिनिक्षेप है।

इस प्रकार उक्त विशेषताओके साथ अपूर्वकरणके कालको समाप्त कर यह जीव अनिवृत्तिकरणमे प्रवेश करता है। इसका भी काल अन्तर्मुहूर्त है। परन्तु यह काल अपूर्वकरणके कालके संख्यातवे भाग प्रमाण है। यहाँ प्रत्येक समयमे एक ही परिणाम होता है। अन्य वे सब विशेषताएँ यहाँ भी पाई जाती है जो अपूर्वकरणमें होती है। विशेष स्पष्टीकरण मूलसे जान लेना चाहिए। इस प्रकार अनिवृत्तिकरणके सख्यात बहुभागप्रमाण कालके जाने पर यह जीव अन्तरकरण क्रियाके करनेके लिए उद्यत होता है। यदि अनादि मिथ्यादृष्टि है तो एकमात्र मिथ्यात्वकी अन्तरकरणक्रिया करता है और सादि मिथ्यादृष्टि होकर भी मिथ्यात्वके साथ सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तावाला है तो मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तरकरणक्रिया करता है और यदि मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व इन तीनोकी सत्तावाला है तो तीनोकी अन्तरकरण क्रिया करता है। जिस समय अन्तरकरण क्रियाका प्रारम्भ करता है उस समयसे लेकर अनिवृत्तिकरणके कालके बराबर स्थिति निषेकोको छोडकर उससे ऊपरके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण निषेकोका अभाव करना अन्तरकरण कहलाता है। यहाँ जिन निषेकोका अभाव कर अन्तर किया जाता है उनसे नीचे अर्थात् पूर्वके सब निषेकोकी प्रथम स्थिति संज्ञा है और उनसे ऊपरके सब निषेकोकी द्वितीय स्थिति सज्ञा है। अन्तरके लिए ग्रहण किये गये निषेकोका इन्ही दोनो स्थितियोमें निक्षेप होता है और इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कालमें अन्तरकरण क्रिया सम्पन्न हो जाती है। यह अन्तरकरण क्रियाका काल एक स्थिति काण्डकघातके कालके बराबर है। इस प्रकार जब यह अन्तरकरण क्रिया कर लेता है तब वहाँसे लेकर उपशामक कहा जाने लगता है। यद्यपि यह अध प्रवृत्त-करणके प्रथम समयसे ही उपशामक है तो भी यहाँसे उसकी यह सज्ञा विशेषरूपसे हो जाती है। इसके बाद जब तक मिथ्यात्वकी प्रथम स्थिति आवलि-प्रत्यावलि प्रमाण शेष रहती है तब तक आगाल-प्रत्यागाल होते रहते है। द्वितीय स्थितिके कर्म परमाणुओका अपकर्षण होकर प्रथम स्थितिमें निक्षिप्त होना आगाल कहलाता है और प्रथम स्थितिके कर्मपरमाणुओका उत्कर्षण होकर द्वितीय स्थितिमें निक्षिप्त होना प्रत्यागाल कहलाता है। जब मिथ्यात्वकी प्रथम स्थिति आवलि-प्रत्यावलिप्रमाण शेष रहती है तबसे मिथ्यात्वका गुणश्रेणिनिक्षेप नही होता। ( यहाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता होने पर उनका भी ग्रहण कर लेना चाहिए। ) आयुकर्मके सिवाय शेष कर्मोका गुणश्रेणिनिक्षेप होता रहता है। यद्यपि मिथ्यात्वका गुण-श्रेणिनिक्षेप तो नही होता, परन्तु उसकी प्रत्यावलिमेंसे एक आवलिकाल तक उदीरणा होती रहती है। जब एक आवलिकाल शेष रहता है तब वहाँसे मिथ्यात्वका उदीरणारूपसे घात नही होता। परन्तु जब तक मिथ्यात्वकी प्रथम स्थिति शेष रहती है तब तक उसका स्थिति-अनुभाग काण्डकघात होता रहता है। हाँ प्रथम स्थितिके अन्तिम समयमे मिथ्यात्वके बन्धके साथ उनकी भी परिसमाप्ति हो जाती है। यह अन्तिम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि जीव है। इसके अगले समयमे यह जीव प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि हो जाता है। यहाँ दर्शनमोहनीयका उदयके विना अवस्थित रहना ही उपशम कहलाता है। यहाँ दर्शनमोहनीयका सर्वोपशम सम्भव नही है, क्योकि यहाँ उसका सक्रम और अपकर्षण पाया जाता है। इसलिए स्वरूप सन्मुख हो यह जीव अन्तरमे प्रवेश करनेके प्रथम समयसे लेकर ही प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि हो जाता है। और जिस समय यह जीव प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि होता है तभी मिथ्यात्वके तीन भाग करता है—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व। इनमेसे प्रथम दो भाग सर्वघाति है और अन्तिम भाग देशघाति है। विशेष विचार मूलसे जान लेना चाहिए। यहाँ इतना विशेष और जानना चाहिए कि उक्त सम्यग्दृष्टि जीवके गुणसंक्रमके काल तक मिथ्यात्वके सिवाय शेष कर्मोका स्थितिघात, अनुभागघात और गुणश्रेणिनिक्षेप होता रहता है।

आगे पच्चीस पदवाला अल्पबहुत्व बतलाकर इस अर्थाधिकारसे सम्बन्ध रखनेवाली १५ सूत्रगाथाएँ दी गई है। प्रथम गाथामें बतलाया है कि चारो गतियोका सज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको उत्पन्न कर सकता है। दूसरी गाथामे चारो गतियोके उक्त जीवोका विशेष स्पष्टीकरण किया गया है। तीसरी गाथामें बतलाया है कि दर्शन-मोहका उपशम करनेवाले जीव व्याघातसे रहित होते है। इस क्रियाके चालू रहते हुए उपसर्गादि कितने भी व्याघातके कारण उपस्थित हो, यह जीव इस क्रियाको विना रुकावटके

सम्पन्न करता है। बीचमें यह जीव सासादन गुणस्थानको भी नहीं प्राप्त होता। किन्तु दर्शनमोहनीयके उपशान्त होने पर उपशम सम्यक्त्वके कालमें अधिक से अधिक छह आवलि और कम से कम एक समय शेष रहने पर यह जीव अनन्तानुबन्धीमेंसे किसी एक प्रकृतिके उदयसे सासादन गुणस्थानको भी प्राप्त हो सकता है। किन्तु दर्शनमोहनीयके क्षीण होने पर सासादन गुणस्थानकी प्राप्ति नहीं होती। चौथी गाथामें बतलाया है कि दर्शनमोहनीयके उपशमका प्रस्थापक साकार उपयोगवाला ही होता है। किन्तु निष्ठापक और मध्यम अवस्थावालेके लिए यह नियम नहीं है। इस विषयका विशेष स्पष्टीकरण इस सूत्रगाथाकी टीकाके अन्तमें किया ही है, अतः इसे वहाँसे जान लेना चाहिए। चार मनोयोग, चार वचनयोग, औदारिक काययोग और वैक्रियिककाययोग इन दस योगोंमेंसे किसी भी योगमें तथा मनुष्यों और तिर्यञ्चोंकी अपेक्षा कम से कम तेजो लेश्याको प्राप्त यह जीव दर्शनमोहका उपशामक होता है। पाँचवीं गाथामें बतलाया है कि उक्त मिथ्यादृष्टि जीवके दर्शनमोहका उपशम करते समय नियमसे मिथ्यात्वकर्मका उदय होता है। किन्तु दर्शनमोहकी उपशान्त अवस्थामें मिथ्यात्व कर्मका उदय नहीं होता। तदनन्तर उसका उदय भजनीय है—होता भी है और नहीं भी होता। छटी गाथामें बतलाया है कि उपशम सम्यग्दृष्टिके दर्शनमोहनीयके तीनों कर्म सभी स्थितिविशेषोंकी अपेक्षा उपशान्त अर्थात् उदयके अयोग्य रहते हैं। इस कालमें किसी भी प्रकृतिका उदय नहीं होता तथा वे सब स्थितिविशेष नियमसे एक अनुभागमें अवस्थित रहते हैं। जघन्य स्थितिविशेषमें जो अनुभाग होता है वही सब स्थितिविशेषोंमें पाया जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। सातवीं गाथामें बतलाया है कि जब तक यह जीव दर्शनमोहनीयका उपशम करता है तब तक मिथ्यात्व निमित्तक बन्ध होता है। किन्तु उसकी उपशान्त अवस्थामें मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध नहीं होता। बादमें जब उपशान्त अवस्थाके समाप्त हो जानेके बाद यदि मिथ्यात्व गुणस्थानमें वह जीव आता है तो मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध होता है अन्यथा मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध नहीं भी होता। आठवीं गाथामें दर्शनमोहनीयका अबन्धक कौन जीव है इसका नियम किया गया है। नौवीं गाथामें सर्वोपशमसे उपशान्त अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहकर बादमें दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंमेंसे किसी एक प्रकृतिका उदय होता है यह बतलाया गया है। यहाँ सर्वोपशमका तात्पर्य दर्शनमोहनीयकी तीनों प्रकृतियोंके उदयाभावरूप उपशमसे है। दसवीं गाथामें बतलाया है कि यदि अनादि मिथ्यादृष्टि प्रथमवार सम्यक्त्वको प्राप्त करता है तो वह सर्वोपशमसे ही उसे प्राप्त करता है। यदि एक बार सम्यक्त्वको प्राप्त करनेके बाद बहुत काल व्यतीत हो गया है तो वह भी सर्वोपशमसे ही उसे प्राप्त करता है। और यदि जल्दी ही पुनः पुनः उसे प्राप्त करता है तो वह उसे देशोपशमसे भी प्राप्त करता है और सर्वोपशमसे भी प्राप्त करता है। यदि वेदक कालके भीतर प्राप्त करता है तो देशोपशमसे उसे प्राप्त करता है और वेदक कालके निकल जानेके बाद प्राप्त करता है तो वह उसे सर्वोपशमसे प्राप्त करता है। प्रथमोपशम सम्यक्त्वके प्रसंगसे सर्वोपशमका अर्थ दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंमें से किसी भी प्रकृतिका उदय न होकर अनुदयरूप रहना अर्थ लिया गया है। साथ ही अनन्तानुबन्धीका भी अनुदय होना चाहिये। ग्यारहवीं सूत्र गाथामें बतलाया है कि सम्यक्त्वके प्रथम लाभके अनन्तर पूर्व नियमसे मिथ्यात्व होता है किन्तु द्वितीयादि बार लाभके अनन्तर पूर्व मिथ्यात्व भजनीय है। बारहवीं सूत्र गाथामें बतलाया है कि जिसके दर्शन मोहनीयकी तीन या दो प्रकृतियोंकी सत्ता होती है उसके यथासंभव दर्शनमोहनीयका संक्रम होता भी है और नहीं भी होता। किन्तु जिसके एक ही प्रकृतिकी सत्ता होती है उसके उस प्रकृतिका संक्रम नहीं होता। तेरहवीं सूत्र गाथामें बतलाया है कि सम्यग्दृष्टि जीव उपदिष्ट प्रवचनका नियमसे श्रद्धान करता है और कदाचित् नहीं जानता हुआ गुरुके नियोगसे असद्भावका भी श्रद्धान करता है। चौदहवीं सूत्र गाथामें बतलाया है कि मिथ्यादृष्टि जीव गुरुके द्वारा उपदिष्ट प्रवचनका नियमसे श्रद्धान नहीं करता। किन्तु असद्भावका उपदेश मिले चाहे न भी मिले तो भी श्रद्धान करता है। पन्द्रहवीं सूत्रगाथामें बतलाया है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके साकार और अनाकार दोनों प्रकारका उपयोग पाया जाता है। किन्तु विचार पूर्वक अर्थको ग्रहण करते समय उसके साकार उपयोग ही होता है।

यह दर्शनमोहोपशामनासे सम्बन्ध रखनेवाली १५ सूत्रगाथाओंका संक्षिप्त तात्पर्य है। विशेष स्पष्टी-

करणके लिए मूल पर दृष्टिपात करना चाहिए। यहाँ सूत्रगाथा ९८ और १०९ मे कहाँ किस प्रकार कौन-कौन उपयोग सम्भव है इस विषयका निर्देश किया है सो इसे समझनेके लिए अद्धापरिमाणका निर्देश करने वाली ( १५ से २० तक ) सूत्रगाथाओ पर दृष्टिपात करके प्रकृत विषयको समझ लेना चाहिए। विशेष खुलासा उक्त सूत्रगाथाओके व्याख्यानके समय कर ही आये है।

यहाँ इस अर्थाधिकारकी १५ सूत्र गाथाओमे से कषायप्राभृतकी १०४, १०७, १०८ और १०९ क्रमाकवाली गाथाएँ कर्मप्रकृति ( श्वे ) मे २३, २४, २५ और २६ क्रमाकसे पाई जाती है। उनमेसे १०४ क्रमाकवाली गाथाका पूर्वार्ध ही मिलता-जुलता है। उसमें भी द्वितीय चरणमे अन्तर है। जहाँ कषाय-प्राभृतमें 'वियट्ठेण' पाठ है वहाँ कर्मप्रकृतिमे 'विगिट्ठो य' पाठ है। इससे दोनोके अर्थमें भी अन्तर हो गया है। कषायप्राभृतके उक्त पाठसे जहाँ यह ज्ञात होता है कि सम्यग्दृष्टि जीव यदि मिथ्यात्वमे जाकर पुन प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करता है तो वह बहुत दीर्घ कालके बाद ही प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करनेका अधिकारी होता है। वहाँ कर्मप्रकृतिके उक्त पाठका उसके चूर्णिकार और दूसरे टीकाकारोने जो अर्थ किया है उससे मात्र यह ज्ञात होता है कि यह प्रथमोशम सम्यक्त्व बडे अन्तर्मुहूर्त काल तक रहता है। यहाँ यह अन्तर्मुहूर्त किसकी अपेक्षा बडा लिया गया है इसका खुलासा मलयगिरिने इन शब्दोमे किया है—'प्रथमस्थित्यपेक्षया विप्रकर्षश्च' अर्थात् प्रथम स्थितिकी अपेक्षा प्रथमोपशम सम्यक्त्वका यह काल बडा है। इस प्रकार उक्त गाथाके पूर्वार्धमें पाठ भेद होनेसे उसका उत्तरार्ध भी बदल गया है।

कर्मप्रकृतिकी २४ क्रमाककी 'सम्मद्दिट्ठी नियमा' और २५ क्रमाककी 'मिच्छद्दिट्ठी नियमा' गाथाएँ रचना और अर्थ दोनो दृष्टियोसे कषायप्राभृतकी १०७ और १०८ क्रमाककी गाथाओका पूरा अनुसरण करती है। मात्र कर्मप्रकृतिकी २६ क्रमाककी गाथा कषायप्राभृतकी १०९ क्रमाककी गाथाका लगभग शब्दश अनु-सरण करती हुई भी अर्थकी अपेक्षा कुछ अन्तर है।

जयधवला टीकाकारने इस गाथाके तीसरे चरणमे आये हुए 'वजणोग्गहम्मि' पदका 'विचार-पूर्वकार्थग्रहणावस्थायाम्'—'विचार पूर्वक अर्थ ग्रहणकी अवस्थामें' अर्थ किया है। जब कि कर्मप्रकृतिके चूर्णिकारने इस पदका अर्थ 'व्यञ्जनावग्रह' किया है। चूर्णिका समग्र पाठ इस प्रकार है—

'अह वजणोग्गहम्मि उ' त्ति—जति सागारे होति वजणोग्गहो होइ ण अत्थोग्गहो होइ। जम्हा ससयनाणी अव्वत्तनाणी वुच्चति।

चूर्णिकारके इस कथनसे ऐसा प्रतीत होता है कि वे सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ईहा, अवाय और धारणा ज्ञानकी बात तो छोडिये अर्थावग्रह भी स्वीकार नही करते रहे। यहाँ अव्यक्त स्वरूप संशयज्ञानके अर्थमें व्यजनावग्रह शब्दका प्रयोग हुआ है ऐसा उसके उक्त चूर्णिमें किये गये विशेष व्याख्यानसे प्रतीत होता है। इस बातको मलयगिरिने अपनी टीकामें इन शब्दोंमे स्वीकार किया है—सशयज्ञानिप्रख्यता च व्यञ्जना-वग्रह एवेति।

## कषायप्राभृत दिगम्बर आचार्योंकी ही कृति है

( १ )

श्वेताम्बर मुनि श्रीगुणरत्न विजयजीने कर्म साहित्य तथा अन्य कतिपय विषयोके अनेक ग्रथोकी रचना की है। उनमेंसे एक खवगसेढी ग्रंथ है। इसकी रचनामें अन्य ग्रन्थोके समान कषायप्राभृत और उसकी चूर्णिका भरपूर उपयोग हुआ है। वस्तुत श्वेताम्बर परम्परामें ऐसा कोई एक ग्रन्थ नही है जिसमें क्षपकश्रेणीका सागोपाङ्ग विवेचन उपलब्ध होता हो। श्री मुनि गुणरत्नविजयजीने अपने सम्पादकीयमें इस तथ्यको स्वय इन शब्दोमें स्वीकार किया है—समास थया वाद क्षपकश्रेणीने विषय सस्कृतमा गद्यरूपे लखवो शरू कर्यो. ४थी ५ हजार श्लोक प्रमाण लखाण थयावाद मने विचार आव्यो के जुदा ग्रन्थोमा छूटी छपाई वर्णवायेली क्षपक श्रेणी व्यवस्थित कोई एक ग्रन्थमा जोवामा आवती नथी जैनशासनमा महत्त्वनो गणती 'क्षपक श्रेणी' ना जुदा जुदा ग्रन्थोमा सगृहीत विषयनो प्राकृतभाषामा स्वतन्त्र ग्रन्थ तैयार थाय, तो ते मोक्षाभिलाषी भव्या-त्माओने घणो लाभदायी बने" उनके इस वक्तव्यसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस ग्रथके प्रणयनमें जहाँ उन्हे कषाय

प्राभृत और उसकी चूर्णिका भरपूर सहारा लेना पड़ा वहाँ उनके सहयोगी तथा प्रस्तावना लेखक श्री श्वे मुनि हेमचन्द्र विजयजी कषायप्राभृत और उसकी चूर्णिको अपने मनगढन्त तर्कों द्वारा श्वेताम्बर परम्पराका सिद्ध करनेका संवरण न कर सके। आगे हम उनके उन कल्पित तर्कोंपर संक्षेपमें क्रमसे विचार करेंगे जिनके आधारसे उन्होंने इन दोनोंको श्वेताम्बर परम्पराका सिद्ध करनेका असफल प्रयत्न किया है। उसमें भी सर्वप्रथम हम मूल कषायप्राभृतके ग्रन्थ परिमाणपर विचार करेंगे, क्योंकि श्वे. मुनि हेमचन्द्र विजयजीने अपनी प्रस्तावना ८ पृ. २१ में कषायप्राभृतके पन्द्रह अधिकारोंमें विभक्त १८० गाथाओंके अतिरिक्त शेष ५३ गाथाओंके प्रक्षिप्त होनेकी सम्भावना व्यक्त की है। किन्तु उसके चूर्णि सूत्रोंपर दृष्टिपात करनेसे विदित होता है कि आचार्य श्री यतिवृषभके समक्ष पन्द्रह अर्थाधिकारोंमें विभक्त १८० सूत्र गाथाओंके समान कषायप्राभृतके अंगरूपसे उक्त ५३ सूत्रगाथायें भी रही हैं। इनपर कहीं उन्होंने चूर्णिसूत्रोंकी रचना की है और कहीं उन्हें प्रकरणके अनुसार सूत्ररूपमें स्वीकार किया है। जिनके विषयमें श्वे मुनि हेमचन्द्र विजयजीने प्रक्षिप्त होनेकी सम्भावना व्यक्त की है उनमेंसे 'पुव्वम्मि पंचमम्मि दु' यह प्रथम सूत्र गाथा है जो ग्रंथके नाम निर्देशके साथ उसकी प्रामाणिकता को सूचित करती है। इसपर चूर्णिसूत्र है—'णाणप्पवादस्स पुव्वस्स दसमस्स वत्थुस्स तदियस्स पाहुडस्स' इत्यादि। अब यदि इसे कषायप्राभृतकी मूल गाथा नहीं स्वीकार किया जाता है तो ( १ ) एक तो ग्रंथका नामनिर्देश आदि किये बिना ग्रंथके १५ अर्थाधिकारोंमेंसे कुछका निर्देश करनेवाली नं० १३ की 'पेज्ज-दोस-विहत्ती' इत्यादि सूत्रगाथासे हमें ग्रंथका प्रारम्भ माननेके लिये बाध्य होना पड़ता है जो संङ्गत प्रतीत नहीं होता। ( २ ) दूसरे उक्त प्रथम गाथाके अभावमें नं० १३ की उक्त सूत्रगाथाके पूर्व चूर्णिसूत्रों द्वारा पाँच प्रकारके उपक्रमके साथ 'अत्थाहियारो पण्णारसविहो' इस प्रकारका निर्देश भी संगत प्रतीत नहीं होता, क्योंकि उक्त प्रकारसे चूर्णि सूत्रोंकी रचना तभी संगत प्रतीत होती है जब उनके रचे जानेवाले ग्रंथका मूल या चूर्णिमें नामोल्लेख किया गया हो।

इस प्रकार सूक्ष्मतासे विचार करनेपर यह स्पष्ट हो जाता है कि 'पुव्वम्मि पंचमम्मि दु' इत्यादि गाथा प्रक्षिप्त न होकर अन्य १८० गाथाओंके समान ग्रंथकी मूल गाथा ही है।

दूसरी सूत्रगाथा है—'गाहासदे असीदे' इत्यादि। इसके पूर्व पाँच प्रकारके उपक्रमके भेदोंका निर्देश करते हुए अन्तिम चूर्णिसूत्र है—'अत्थाहियारो पण्णारसविहो।' यह वही गाथा है जिसके आधारसे यह कहा जाता है कि कषायप्राभृतकी कुल १८० सूत्र गाथाऐं हैं। अब यदि इसे प्रक्षिप्त माना जाता है तो ऐसे कई प्रश्न उपस्थित होते हैं जिनका सम्यक् समाधान इसे मूल गाथा माननेपर ही होता है। यथा—

( १ ) प्रथम तो गुणधर आचार्यको कषायप्राभृतके १५ ही अर्थाधिकार इष्ट रहे हैं इसे जाननेका एकमात्र उक्त सूत्रगाथा ही साधन है, अन्य नहीं। क्रमांक १३ और १४ सूत्र गाथाऐं मात्र अर्थाधिकारोंका नामनिर्देश करती हैं। वे १५ ही हैं इसका ज्ञान मात्र इसी सूत्र गाथासे होता है और तभी क्रमांक १३ और १४ सूत्रगाथाओंके बाद 'अत्थाहियारो पण्णारसविहो अण्णेण पयारेण' इस प्रकार चूर्णिसूत्रकी रचना उचित प्रतीत होती है।

( २ ) दूसरे उक्त गाथासे ही हम यह जान पाते हैं कि कषायप्राभृतकी सब गाथाऐं उसके १५ अर्थाधिकारोंके विवेचनमें विभक्त नहीं है। किन्तु उनमेंसे कुल १८० गाथाऐं ही उनके विवेचनमें विभक्त हैं। उक्त गाथा प्रकृतका विधान तो करती है, अन्यका निषेध नहीं करती। यहाँ प्रकृत १५ अर्थाधिकार हैं। उनमें १८० सूत्रगाथाऐं विभक्त हैं इतना मात्र निर्देश करनेके लिए आचार्य गुणधरने इस सूत्रगाथाकी रचना की है। १५ अर्थाधिकारोंसे सम्बद्ध गाथाओंका निषेध करनेके लिए नहीं।

इस प्रकार इस दूसरी सूत्रगाथाके भी ग्रंथका मूल अंग सिद्ध हो जानेपर इससे आगेकी क्रमांक ३ से लेकर १२ तककी १० सूत्रगाथाऐं भी कषायप्राभृतका मूल अंग सिद्ध हो जाती हैं, क्योंकि उनमें १५ अर्थाधिकारों सम्बन्धी १८० गाथाओंमेंसे किस अर्थाधिकारमें कितनी सूत्रगाथाऐं आई हैं एकमात्र इसीका विवेचन किया गया है जो उक्त दूसरी सूत्रगाथाके उत्तरार्धके अनुसार ही है। उसमें उन्हें सूत्रगाथा कहा भी गया है। यथा—'वोच्छामि सुत्तगाहा जयि गाहा जम्मि अत्थम्मि।

इसी प्रकार संक्रम अर्थाधिकारकी जो 'अट्ठावीस' इत्यादि ३५ सूत्रगाथाएँ आई है वे भी मूल कषायप्राभृत ही है और इसीलिए आचार्य यतिवृषभने उनके प्रारम्भमे 'एत्तो पयडिट्ठाणसकमो। तस्स पुव्व गमणिज्जा सुत्तसमुक्कित्तणा' इस चूर्णिसूत्रकी रचनाकर और उनके अन्तमे 'सुत्तसमुक्कित्तणाए समत्ताए' इस चूर्णिसूत्रकी रचनाकर उन्हे सूत्ररूपमे स्वीकार किया है।

इस प्रकार सब मिलाकर उक्त ४७ सूत्रगाथाओके मूल कषायप्राभृत सिद्ध हो जानेपर क्रमाक १५ से लेकर 'आवलिय अणायारे' इत्यादि ६ सूत्रगाथाएँ भी मूल कषायप्राभृत ही सिद्ध होती है, क्योकि यद्यपि आचार्य यतिवृषभने इनके प्रारम्भमे या अन्तमे इनकी स्वीकृति सूचक किसी चूर्णिसूत्रकी रचना नही की है। फिर भी समग्र कषायप्राभृतपर दृष्टि डालनेसे और खासकर उपशमना-क्षपणा प्रकरणपर दृष्टि डालनेसे यही प्रतीत होता है कि समग्र भावसे अल्पबहुत्वकी सूचक इन सूत्रगाथाओकी रचना स्वय गुणधर आचार्यने ही की होगी। इसके लिए प्रथमोपशम सम्यक्त्व अर्थाधिकारकी क्रमाक ९८ गाथापर दृष्टिपात कीजिए।

इतने विवेचनसे स्पष्ट है कि आचार्य यतिवृषभको ये मूल कषायप्राभृत रूपसे ही इष्ट रही है। अत: सूत्रगाथाओके सख्याविषयक उत्तरकालीन मतभेदोको प्रामाणिक मानना और इस विषयपर टीका-टिप्पणी करना उचित प्रतीत नही होता। आचार्य वीरसेनने गाथाओके संख्याविषयक मतभेदको दूर करनेके लिये जो उत्तर दिया है उसे इसी सदर्भमे देखना चाहिए।

इस प्रकार श्वे० मुनि हेमचन्द्र विजयजीने कषायप्राभृतका परिमाण कितना है इस पर खवगसेढि ग्रन्थकी अपनी प्रस्तावनामें जो आशका व्यक्त की है उसका निरसन कर अब आगे हम उनके उन कल्पित तर्कोपर सागोपाग विचार करेगे जिनके आधारसे उन्होने कषायप्राभृतको श्वेताम्बर आम्नायका सिद्ध करनेका असफल प्रयत्न किया है।

( १ ) इस विषयमें उनका प्रथम तर्क है कि दिगम्बर ज्ञान भण्डार मूडविद्रीमे कषायप्राभृत मूल और उसकी चूर्णि उपलब्ध हुई है, इसलिए वह दिगम्बर आचार्यकी कृति है यह निश्चय नही किया जा सकता। ( प्र० पृ० ३० )

किन्तु कषायप्राभृत मूल और उसकी चूर्णि ये दोनो मूडविद्रीसे दिगम्बर ज्ञानभण्डारमे उपलब्ध हुए है, मात्र इसीलिए तो किसीने उन दोनोको दिगम्बर आचार्योकी कृति लिखा नही है और न ऐसा है ही। वे दिगम्बर आचार्योकी कृति है इसके अनेक कारण है। उनमेंसे एक कारण एतद्विषयक ग्रन्थोमे श्वेताम्बर आचार्योकी शब्दयोजना परिपाटीसे भिन्न उसमें निबद्ध शब्दयोजना परिपाटी है। यथा—

( अ ) श्वेताम्बर आचार्यो द्वारा लिखे गये सप्ततिकाचूर्णि कर्मप्रकृति और पचसग्रह आदिमे सर्वत्र जिस अर्थमे 'दलिय' शब्दका प्रयोग हुआ है उसी अर्थमे दिगम्बर आचार्यो द्वारा लिखे गये कषायप्राभृत आदिमें 'पदेसग्ग' शब्दका प्रयोग हुआ है। यथा—

'त वेयतो बितियकिट्टीओ ततियकिट्टीओ य दलिय घेत्तूणं सुहुमसांपराइयकिट्टीओ करेइ।'

सप्ततिका चूर्णि पृ० ६६ अ०। ( देखो उक्त प्रस्तावना पृ० ३२। )

'इच्छियठितिठाणाओ आवलियं लंघऊण तद्दलिय।
सव्वेसु वि निक्खिवइ ठितिठाणेसु उवरिमेसु॥ २॥'

—पंचसंग्रह उद्वर्तनापवर्तनाकरण

'उवसतद्धा अते विहिणा ओकड्डियस्स दलियस्स।
अज्झवसाणणुरूवस्सुदओ तिसु एक्कयरयस्स॥ २२॥'

—कर्मप्रकृति उपशमनाकरण पत्र १७

अब दिगम्बर परम्पराके ग्रथो पर दृष्टि डालिए—

'विदियादी पुण पढमा सखेज्जगुणा भवे पदसग्गे।
विदियादो पुण तदिया कमेण सेसा विसेसाहिया॥ १७०॥' क० प्रा० मूल

'ताघे चेव लोभस्स विदियकिट्टीदो च तदियकिट्टीदो च पदेसग्गमोकड्डियूण सुहुमसांपराइय-किट्टीओ णाम करेदि। —कषाय प्राभृत चूर्णि मूल पृ० ८६२।

लोभस्स जहण्णियाए किट्टीए पदेसग्गं बहुअं दिज्जदि।

षट्खण्डागम धवला पु० ६. पृ० ३७९

( आ ) श्वेताम्बर आचार्यो द्वारा लिखे गये कर्मप्रकृति और पञ्चसंग्रहमें 'अविरत' के लिए 'अजय' या 'अजत' शब्दका प्रयोग हुआ हैं, किन्तु दिगम्बर आचार्यो द्वारा लिखे गये कषायप्राभृत और षट्खण्डागममें यह शब्द इस अर्थमें दृष्टिगोचर नही होता। इसके लिये कर्मप्रकृति ( श्वे० ) पर दृष्टिपात कीजिए—

वेयगसम्मद्दिट्ठी चरित्तमोहुवसमाइ चिट्ठंतो।
अजउ देशजई वा विरतो व विसोहिअद्धाए।—उपश० करण॥ २७॥

इसी प्रकार पञ्चसंग्रहमे भी इस शब्दका इसी अर्थमें प्रयोग हुआ हैं।

इसके अतिरिक्त 'वरिसवर' 'उव्वलण' आदि शब्द हैं जो श्वेताम्बर परम्पराके कार्मिक ग्रन्थोंमें ही दृष्टिगोचर होते हैं, दिम्बर पराम्पराके ग्रथोंमे नही। ये कतिपय उदाहरण हैं। इनसे स्पष्ट ज्ञात होता हैं कि कषायपाभृत और उसकी चूर्णि ये दोनो श्वेताम्बर आचार्योकी कृति न होकर दिगम्बर आचार्योकी ही अमर कृति हैं।

( २ ) कषायप्राभृत और उसकी चूर्णिको श्वेताम्बर आचार्योकी कृति सिद्ध करनेके लिये उनका दूसरा तर्क हैं कि दिगम्बर आचार्यकृत ग्रन्थोपर श्वेताम्बर आचार्योकी टीकाएँ और श्वेताम्बर आचार्यकृत ग्रंथोपर दिगम्बर आचार्योकी टीकाये हैं आदि। उसी प्रकार कषायप्राभृत मूल तथा उसकी चूर्णि पर दि० आचार्योकी टीका होनेमात्रसे उन्हे दिगम्बर आचार्योकी कृतिरूपसे निश्चित नही किया जा सकता। ( प्रस्तावना पृ० ३० )

यह उनका तर्क हैं। किन्तु श्वेताम्बर आचार्यो द्वारा रचित कर्मग्रन्थोंसे कषायप्राभृत और उसकी चूर्णिमे वर्णित पदार्थ भेदको स्पष्ट रूपसे जानते हुए भी वे ऐसा असत् विधान कैसे करते हैं इसका किसीको भी आश्चर्य हुए बिना नही रहेगा। 'मुद्रित कषायप्राभृत चूर्णिनी प्रस्तावनामां रजू थयेली मान्यतानी समीक्षा' इस उपशीर्षकके अन्तर्गत उन्होने पदार्थ भेदके कतिपय उदाहरण स्वयं उपस्थित किये हैं। इन उदाहरणोंको उपस्थित करते हुए उन्होंने कषायप्राभृतके साथ कषायप्राभृत चूर्णि कर्मप्रकृतिचूर्णि इन ग्रन्थोंके उद्धरण दिये हैं। किन्तु श्वेताम्बर पञ्चसंग्रहको दृष्टि पथमे लेने पर विदित होता हैं कि उक्त ग्रन्थ भी कषायप्राभृत चूर्णिका अनुसरण न कर कर्मप्रकृति चूर्णिका ही अनुसरण करता हैं। यथा—

( १ ) मिश्रगुणस्थानमे सम्यक्त्व प्रकृति भजनीय हैं इस मतका प्रतिपादन करनेवाली पञ्चसंग्रहके सत्कर्मस्वामित्वकी गाथा इस प्रकार हैं—

सासयणम्मि नियमा सम्मं भज्जं दससु संतं॥ १३५॥

कर्मप्रकृति चूर्णिसे भी इसी अभिप्रायकी पुष्टि होती हैं। (चूर्णि सत्ताधिकार प० ३५) [प्रदेशसंक्रम प. ९४]

( २ ) सज्वलन क्रोधादिका जघन्य प्रदेशसंक्रम अन्तिम समयप्रबद्धका अन्यत्र संक्रम करते हुए क्षपकके अन्तिम समयमे सर्वसंक्रमसे होता हैं। यह कर्मप्रकृति चूर्णिकारका मत हैं और यही मत श्वेताम्बर पंचसंग्रहका भी हैं। यथा—

पुंसंजलणतिगाणं जहण्णजोगिस्स खवगसेढीए।
सगचरिमसमयबद्धं जं छुभइ सगंतिमे समए॥ ११९॥

( ३ ) प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टिके, सम्यक्त्वकी प्राप्तिके समय मिथ्यात्वके तीन पुंज होनेपर एक आवलि काल तक सम्यग्मिथ्यात्वका सम्यक्त्वमें संक्रम नही होता यह कर्मप्रकृति चूर्णिकारका मत है। पंचसंग्रह प्रकृति संक्रम गाथा ११ की मलयगिरि टीकासे भी इसी मतकी पुष्टि होती है। यथा—

तस्यैव चौपशमिकसम्यग्दृष्टेरष्टाविंशतिसत्कर्मण· आवलिकाया अभ्यन्तरे वर्तमानस्य सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वे न सक्रामति । —प्रकृति स पत्र १०

( ४ ) पुरुपवेदकी पतद्ग्रहता कव नष्ट हो जाती है इस विपयमे कर्मप्रकृति चूर्णिकारका जो मत है उसी मतका निर्देश पंचसग्रहणकी मलयगिरि टीकामे दृष्टिगोचर होता है । यथा—

पुरुपवेदस्य प्रथमस्थितौ द्व्यावलिकाशेषाया प्रागुक्तस्वरूपं आगालो व्यवच्छिद्यते, उदीरणा तु भवति, तस्मादेव समयादरभ्य षण्णा नोकषायाणा सत्क दलिक पुरुषवेदे न सक्रमयति ।

—पच० चा० मो० ड० पत्र १९१

श्वे० पचसंग्रहके ये कतिपय उद्धरण हैं जो मात्र कर्मप्रकृतिचूर्णिका पूरी तरह अनुसरण करते हैं, किन्तु कषायप्राभृत और उसकी चूर्णिका अनुसरण नही करते । इससे स्पष्ट है कि कषायप्राभृत और उसकी चूर्णिको श्वेताम्बर आचार्योंने कभी भी अपनी परम्पराकी रचनारूपमे स्वीकार नही किया । यहाँ हमारे इस बातके निर्देश करनेका एक खास कारण यह भी है कि मलयगिरिके मतानुसार जिन पाँच ग्रन्थोका पचसग्रहमें समावेश किया गया है उनमें एक कपायप्राभृत भी है । यदि चन्द्रर्पिमहत्तरको पञ्चसग्रह श्वेताम्बर आचार्यकी कृतिरूपमें स्वीकार होता तो उन्होने जैसे कर्मप्रकृति और उसकी चूर्णिको अपनी रचनामे प्रमाणरूपसे स्वीकार किया है वैसे ही वे कषायप्राभृत और उसकी चूर्णिको भी प्रमाणरूपमें स्वीकार करते । और ऐसी अवस्थामे जिन-जिन स्थलोपर उन्हे कषायप्राभृत और कर्मप्रकृतिमे पदार्थभेद दृष्टिगोचर होता उसका उल्लेख वे अवश्य करते । किन्तु उन्होने ऐसा न कर मात्र कर्मप्रकृति और उसकी चूर्णिका अनुसरण किया है । इससे स्पष्ट विदित होता है कि चन्द्रर्षि महत्तर कषायप्राभृत और उसकी चूर्णिको श्वेताम्बर परम्पराका नही स्वीकार करते रहे ।

यहाँ हमने मात्र उन्ही पाठोको ध्यानमे रखकर चर्चा की है जिनका निर्देश उक्त प्रस्तावनाकारने किया है । इनके सिवाय और भी ऐसे पाठ है जो कर्मप्रकृति और पचग्रहमें एक ही प्रकारकी प्ररूपणा करते है । परन्तु कषायप्राभृत चूर्णिमें उनसे भिन्न प्रकारकी प्ररूपणा दृष्टिगोचर होती है । इसके लिए हम एक उदाहरण उद्वेलना प्रकृतियोका देना इष्ट मानेगे । यथा—

कषायप्राभृतचूर्णिमे मोहनीयकी मात्र दो प्रकृतियाँ उद्वेलना प्रकृतियाँ स्वीकार की गई है—सम्यक्-प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति । किन्तु पचसग्रह और कर्मप्रकृतिमे मोहनीयकी उद्वेलना प्रकृतियोकी सख्या २७ है । यथा दर्शनमोहनीय की ३, लोभसज्वलनको छोडकर १५ कषाय और ९ नोकपाय । कषायप्राभृत-चूर्णिका पाठ—

५८ सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ? चरिमसमयउव्वेल्लमाणस्स । ( पृ० १०१ )
३६ एव चेव सम्मत्तस्स वि । ( पृ० १९० )

पचसग्रह-प्रदेशसक्रमका पाठ—

एव उव्वलणासंकमेण नासेइ अविरओहार ।
सम्मोऽणमिच्छमीसे सछत्तीसऽनियट्टि जा माया ॥ ७४ ॥

इसके सिवाय पञ्चसग्रहके प्रदेशसक्रमप्रकरणमें एक यह गाथा भी आई है जिससे भी उक्त विपयकी पुष्टि होती है—

सम्म-मीसाइ मिच्छो सुरदुगवेउव्विछक्कमेगिंदी ।
सुहुमतसुच्चमणुदुगं अतमुहुत्तेण अणियट्टी ॥ ७५ ॥

इसमें वतलाया है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी मिथ्यादृष्टि जीव उद्वेलना करता है, पचानवे प्रकृतियोकी सत्तावाला एकेन्द्रिय जीव देवद्विककी उद्वेलना करता है, उसके बाद वही जीव वैक्रियपट्ककी उद्वेलना करता है, सूक्ष्म त्रस अग्निकायिक और वायुकायिक जीव क्रमसे उच्चगोत्र और मनुष्यद्विककी उद्वेलना करता है तथा अनिवृत्तिवादर जीव एक अन्तर्मुहूर्तमे पूर्वोक्त ३६ प्रकृतियोकी उद्वेलना करता है ।

यहाँ पञ्चसंग्रहमें निरूपित पाठका उल्लेख किया है। कर्मप्रकृतिकी प्ररूपणा इससे भिन्न नही है। उदाहरणार्थ जिस प्रकार पञ्चसंग्रहमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी परिगणना उद्वेलना प्रकृतियोमें की गई है उसी प्रकार कर्मप्रकृतिमें भी उन्हें उद्वेलना प्रकृतियाँ स्वीकार किया गया है। कर्मप्रकृति चूर्णिमें प्रदेशसत्कर्मकी सादि-अनादि प्ररूपणा करते हुए लिखा है—

अणताणुबंधीणं खवियकम्मसिगस्स उव्वलतस्स एगठितिसेसजहन्नगं पदेससत एगसमय होति।

यह एक उदाहरण है। अन्य प्रकृतियोके विषयमे मूल और चूर्णिका आशय इसी प्रकार समझ लेना चाहिए। किन्तु जैसा कि पूर्वमें निर्देश कर आये हैं कषायप्राभृत और उसकी चूर्णिमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोको छोडकर मोहनीयकी अन्य किसी प्रकृतिकी उद्वेलना प्रकृतिरूपसे परिगणना नही की गई है।

मतभेदसम्बन्धी दूसरा उदाहरण मिथ्यात्वके तीन भाग कौन जीव करता है इससे सम्बन्ध रखता है। श्वेताम्बर आचार्यो द्वारा लिखे गये कर्मप्रकृति और पचसग्रहमें यह स्पष्ट रूपसे स्वीकार किया है कि दर्शनमोहकी उपशमना करनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व गुणस्थानके अन्तिम समयमें मिथ्यात्व कर्मको तीन भागोमें विभक्त करता है। पचसग्रह उपशमना प्रकरणमें कहा भी है—

उवरिमठिइअणुभागं तं च तिहा कुणइ चरिममिच्छुदए।
देसघाईणं सम्म इयरेण मिच्छ-मीसाइं॥ २३॥

कर्मप्रकृति और उसकी चूर्णिमें लिखा है—

तं कालं बीयठिइं तिहाणुभागेण देसघाइ त्थ।
सम्मत्तं सम्मिस्स मिच्छत्त सव्वघाईओ॥ १९॥

चूर्णि—चरिमसमयमिच्छद्दिट्ठी से काले उवसमसम्मदिट्ठि होहि त्ति ताहे बितीयट्ठितीते तिहा अणुभागं करेति।

अब इन दोनो प्रमाणोके प्रकाशमें कषायप्राभृत चूर्णिपर दृष्टिपात कीजिए। इसमें प्रथम समयवर्ती प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि जीवको मिथ्यात्वको तीन भागोमें विभाजित करनेवाला कहा गया है। यथा—

१०२ चरिमसमयमिच्छाइट्ठी से काले उवसमसम्मत्तमोहणीओ १०३ ताधे चेव तिण्णि कम्मंसा उप्पादिदा। १०४ पढमसमयउवसतदसणमोहणीओ मिच्छत्तादो सम्मामिच्छत्ते बहुग पदेसग्गं देदि (पृ० ६२८)

यहाँ कर्मप्रकृति और उसकी चूर्णिके विषयमें इतना सकेत कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि गाथामें जो 'त काल बीयठिइ' पाठ है उसका चूर्णिकारने जो अनुवाद किया है वह मूलानुगामी नही है। मालूम पडता है कि चूर्णिका प्रारम्भका भाग कषायप्राभृत चूर्णिका अनुकरणमात्र है। इतना अवश्य है कि कषायप्राभृत चूर्णिकी वाक्यरचना पीछेके विषयविवेचनके अनुसन्धानपूर्वक की गई है और कर्मप्रकृति चूर्णिकी उक्त वाक्य रचना इससे पूर्वकी गाथा और उसकी चूर्णिके विषयविवेचनको ध्यानमें न रखकर की गई है। जहाँ तक कर्म प्रकृतिकी उक्त मूल गाथाओपर दृष्टिपात करनेसे विदित होता है कि उन दोनो गाथाओ द्वारा दिगम्बर आचार्यो द्वारा प्रतिपादित मतका ही अनुसरण किया गया है, किन्तु उक्त चूर्णि और उसकी टीका मूलका अनुसरण न करती हुई श्वेताम्बर आचर्यो द्वारा प्रतिपादित मतका ही अनुसरण करती है। फिर भी यहाँ विसंगतिकी सूचक उल्लेखनीय बात इतनी है कि श्वेताम्बर आचार्योंने उक्त टीकाओमें व अन्यत्र मिथ्यात्वके तीन हिस्से मिथ्यात्व गुणस्थानके अन्तिम समयमें स्वीकार करके भी उनमें मिथ्यात्वके द्रव्यका विभाग उसी समय न बतलाकर प्रथमोशम सम्यक्त्वके प्रथम समयमें स्वीकार किया है। यहाँ विसगति यह है कि मिथ्यात्व गुणस्थानके अन्तिम समयमें तो तीन भाग होनेकी व्यवस्था स्वीकार की गई और उन तीनो भागोमें कर्मपुंजका बँटवारा प्रथमोपशम सम्यक्त्वके प्रथम समयसे स्वीकार किया गया।

इस प्रकार इन दोनो परम्पराओके प्रमाणोसे स्पष्ट है कि कषायप्राभृत और उसकी चूर्णिपर दिगम्बर आचार्योंने टीका लिखी, केवल इसलिए हम उन्हे दिगम्बर आचार्योकी कृति नही कहते। किन्तु उनकी शब्द-योजना, रचना शैली, और विषय विवेचन दिगम्बर परम्पराके अन्य कार्मिक साहित्यके अनुरूप है, श्वेताम्बर परम्पराके कार्मिक साहित्यके अनुरूप नही, इसलिए उन्हे हम दिगम्बर आचार्योकी अमर कृति स्वीकार करते है।

अब आगे जिन चार उपशीर्षकोके अन्तर्गत उन्होने कषायप्राभृत और उसकी चूर्णिको श्वेताम्बर आचार्योकी कृति सिद्ध करनेका असफल प्रयत्न किया है उनपर क्रमसे विचार करते है—

( १ )

उन्होने सर्वप्रथम 'दिगम्बर परम्पराने अमान्य तेवा कषायप्राभृत चूर्णि अन्तर्गत पदार्थो' इस उप-शीर्षकके अन्तर्गत क प्रा. चूर्णिके ऐसे दो उल्लेख उपस्थित किये है जिन्हे वे स्वमतिसे दिगम्बर परम्पराके विरुद्ध समझते है। प्रथम उल्लेख है—"सव्वलिंगेसु भज्जाणि।" इस सूत्रका अर्थ है कि अतीतमे सर्व लिंगोमे बँधा हुआ कर्म क्षपकके सत्तामें विकल्पसे होता है। इस पर उक्त प्रस्तावना लेखकका कहना है कि 'क्षपक चारित्रवेषमा होय पण खरो अने न पण होय चारित्रना वेष वगर अर्थात् अन्य तापसादिना वेशमा रहेल जीव पण क्षपक थई शके छे, एटले प्रस्तुत सूत्र दिगम्बर मान्यता थी विरुद्ध छे।' आदि।

अब सवाल यह है कि उक्त प्र लेखकने उक्त सूत्र परसे यह निष्कर्ष कैसे फलित कर लिया कि 'क्षपक चारित्रवेषमा होय पण खरो अने न पण होय, चारित्रना वेष वगर अर्थात् अन्य तापसादिना वेशमा रहेल जीव पण क्षपक थई शके छे।' कारण कि वर्तमानमे जो क्षपक है उसके अतीत कालमे कर्मबन्धके समय कौन-सा लिंग था, उस लिंगमे बाँधा गया कर्म क्षपकके वर्तमानमें सत्तामें नियमसे होता है या विकल्प-से होता है ? इसी अन्तर्गत शकाको ध्यानमें रख कर यह समाधान किया गया है कि 'विकल्पसे होता है।' इस परसे यह कहाँ फलित होता है कि वर्तमानमे वह क्षपक किसी भी वेशमे हो सकता है। मालूम पडता है कि अपने सम्प्रदायके व्यामोह और अपने कल्पित वेशसे कारण ही उन्होने उक्त सूत्र परसे ऐसा गलत अभिप्राय फलित करनेकी चेष्टा की है।

थोडी देरके लिये उक्त ( श्वे ) मुनिजीने जो अभिप्राय फलित किया है यदि उसीको विचारके लिए ठीक मान लिया जाता है तो जिस गति आदिमें पूर्वमें जिन भावोके द्वारा बाँधे गये कर्म वर्तमानमें क्षपकके विकल्पसे बतलाये है वे भाव भी वर्तमानमें क्षपकके विकल्पसे मानने पडेगे। उदाहरणार्थ पहले सम्य-ग्मिथ्यात्वमें बाँधे गये कर्म वर्तमानमें जिस क्षपकके विकल्पसे बतलाये है तो क्या उस क्षपकके वर्तमानमे विकल्पसे सम्यग्मिथ्यात्व भी मानना पडेगा। यदि कहो कि नही, तो सम्यग्मिथ्यात्वमे बँधे हुए जो कर्म सत्ता-रूपसे वर्तमानमे क्षपकके विकल्पसे होते हुए भी अतीत कालमे उन कर्मोके बन्धके समय सम्यग्मिथ्यात्व भाव था इतना ही आशय जैसे सम्यग्मिथ्यात्व भावके विषयमें लिया जाता है उसी प्रकार सर्वलिगोके विषयमे भी यही आशय यहाँ लेना चाहिए।

हम यह तो स्वीकार करते है कि जैसे अतीत कालमे अन्य लिंगोमे बाँधे गये कर्म वर्तमानमे क्षपकके विकल्पसे बन जाते है वैसे ही अतीत कालमें जिनलिंगमे बाँधे गये कर्मोके वर्तमानमें क्षपकके विकल्पसे स्वीकार करनेमे कोई प्रत्यवाय नही दिखाई देता। कारण कि सयमभावका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण और जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण बतलाया है। यथा—

सजमाणुवादेण सजद-सामाइय-च्छेदोवट्ठावणसुद्धिसजद-परिहारसुद्धिसजद-संजदासजदाण-मतरं केवचिर कालादो होदि ॥ १०८॥ जहण्णेण अंतोमुहुत्त ॥ १०९॥ उक्कस्सेण अद्धपोग्गल-परियट्टं देसूणं ॥ ११० ॥ —खुद्दाबंध पृ० ३२१-३२२।

यहाँ जयधवला टीकाकारने उक्त सूत्रकी व्याख्या करते हुए 'णिग्गंथवदिरित्तसेसाण' यह लिखकर 'सर्वलिंग' पदसे निर्ग्रन्थ लिंगके अतिरिक्त जो शेष सविकार सब लिंगोका ग्रहण किया है वह उन्होने क्षपक-

श्रेणिपर आरोहण करनेवाला जीव अन्य लिंगवाला न होकर वर्तमानमे निर्ग्रन्थ ही होता है और इस अपेक्षासे उसके निर्ग्रन्थ अवस्थामे बाँधे गये कर्म भजनीय न होकर नियमसे पाये जाते है यह दिखलानेके लिए ही किया है, क्योकि जो जीव अन्तरंगमे निर्ग्रन्थ होता है वह बाह्यमे नियमसे निर्ग्रन्थ होता है। किन्तु इन दोनोंके परस्पर अविनाभावको न स्वीकार कर जो श्वेताम्बर सम्प्रदायवाले इच्छानुसार वस्त्र-पात्रादि सहित अन्य वेशमे रहते हुए भी वर्तमानमे क्षपकश्रेणि आदिपर आरोहण करना या रत्नत्रयस्वरूप मुनि लिंगकी प्राप्ति मानते है उनके उस मतका निषेध करनेके लिए जयधवला टीकाकारने 'णिग्गथवदिरित्तसेसाणं' पदकी योजना की हैं। विचार कर देखा जाय तो उनके इस निर्देशमें किसी भी प्रकारकी साम्प्रदायिकताकी गन्ध न होकर वस्तुस्वरूपका उद्घाटनमात्र हैं, क्योकि भीतरसे जीवनमे निर्ग्रन्थ वही हो सकता है जो वस्त्र-पात्रादिका बुद्धिपूर्वक त्यागकर बाह्यमें जिनमुद्राको पहले ही धारण कर लेता है। कोई बुद्धिपूर्वक वस्त्र-पात्र आदिको स्वीकार करे, उन्हें रखे, उनकी सम्हाल भी करे फिर भी स्वयंको वस्त्र-पात्र आदि सर्व परिग्रहका त्यागी बतलावे, इसे मात्र जीवनकी विडम्बना करनेवाला ही कहना चाहिए। अत वर्तमानमे जिसने वस्त्र-पात्रादि सर्व परिग्रहका त्यागकर निर्ग्रन्थ लिंग स्वीकार किया है वही क्षपक हो सकता है और ऐसे क्षपकके निर्ग्रन्थ लिंग ग्रहण करनेके समयसे लेकर बाँधे गये कर्म सत्तामे अवश्य पाये जाते है यह दिखलानेके लिये ही श्री जयधवला टीकाकारने अपनी टीकामे 'सर्व लिंग' पदका अर्थ 'निर्ग्रन्थ लिंग व्यतिरिक्त अन्य सब लिंग' किया है जो 'व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्ति ।' इस नीतिवचनको अनुसरण करनेवाला होनेसे वर्तमानमें उपयुक्त ही है।

दूसरा उल्लेख है—२४ 'णेगम-संगह-ववहारा सव्वे इच्छंति । २५ उजुसुदो ठवणवज्जे । (क प्रा चूर्णि पृ. १७) इसका व्याख्यान करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि नैगम, संग्रह और व्यवहार ये तीन द्रव्यार्थिक नय है और ऋजुसूत्र आदि चार पर्यायार्थिक नय है। इस विषयमें दिगम्बर परम्परामें कही किसी प्रकारका मतभेद नही दिखलाई देता। कषायप्राभृतचूर्णिकार भी अपने चूर्णिसूत्रोमें सर्वत्र ऋजुसूत्रनयका पर्यायार्थिकनयमें ही समावेश करते है। फिर भी उक्त ( श्वे ) मुनिजीने अपनी प्रस्तावनामें यह उल्लेख किस आधारसे किया है कि 'कषायप्राभृतचूर्णिकार ऋजुसूत्रनयको द्रव्यार्थिकनय स्वीकार करते है।' यह समझके बाहर है। उक्त कथनकी पुष्टि करनेवाला उनका वह वचन इस प्रकार है—'अही कषायप्राभृत चूर्णिकार ऋजुसूत्रनयनो द्रव्यार्थिकनयमा समावेश करवा द्वारा श्वेताम्बराचार्योनी सैद्धान्तिक परपराने अनुसरे छे कारण-के श्वेताम्बरोमें सैद्धान्तिक परम्परा ऋजुसूत्रनयनो द्रव्यार्थिक नयमा समावेश करे छे.'

कषायप्राभृत चूर्णिमें ऐसे चार स्थल है जहाँ निक्षेपोमें नययोजना की गई है। प्रथम पेज्ज निक्षेपके भेदोकी नययोजना करनेवाला स्थल। यथा—

२४ णेगम-सगह-ववहारा सव्वे इच्छति। २५. उजुसुदो ठवणज्जे। २६. सद्दणयस्स णामं भावो च। पृ १७।

दूसरा 'दोस' पदका निक्षेप कर उन सबमें नययोजना करनेवाला स्थल। यथा—

३२ णेगम-सगह-व्ववहारा सव्वे णिक्खेवे इच्छंति। ३३, उजुसुदो ठवणवज्जे। ३४ सद्दणयस्स णामं भावो च। पृ १७।

तीसरा 'सकम' पदका निक्षेप कर उन सबमें नययोजना करनेवाला स्थल। यथा—

५ णेगमो सव्वे संकमे इच्छइ। ६. सगह-ववहारा कालसकममवणेति। ७. उजुसुदो एदं च ठवण च अवणेइ। ८ सद्दस्स णामं भावो य। पृ. २५१।

चौथा 'ट्ठाण' पदका निक्षेप कर उन सबमें नययोजना करनेवाला स्थल। यथा—

१० णेगमो सव्वाणि ठाणाणि इच्छइ। ११ सगह-ववहारा पलिवीचिट्ठाण उच्चट्ठाण च अवणेति। १२ उजुसुदो एदाणि च ठवण च अद्धठाण च अवणेइ। १३. सद्दणयो णामट्ठाणं सजमट्ठाण खेत्तट्ठाण भावट्ठाण च इच्छदि। पृ. ६०७-६०८

ये चार स्थल है, जिनमें कौन निक्षेप किस नयका विपय है यह स्पष्ट किया गया है। स्थापना निक्षेप ऋजुसूत्रनयका विपय नही है इसे इन सब स्थलोमे स्वीकार किया गया है। इसीसे यह स्पष्ट हो जाता है कि कपायप्राभृत चूर्णिकारने द्रव्यार्थिकनयरूपसे ऋजुसूत्रनयको नही स्वीकार किया है, क्योकि सादृश्य सामान्यकी विवक्षामें ही किसी अन्य वस्तुमे अन्य वस्तुकी स्थापना की जा सकती है और सादृश्य-सामान्य द्रव्यार्थिकनयका विपय है, जिसे पर्यायार्थिकनयका भेद ऋजुसूत्रनय नही स्वीकार करता। अत यह स्पष्ट है कि कपायप्राभृतचूर्णिकारने ऋजुसूत्रनयको पर्यायार्थिकनयरूपसे ही स्वीकार किया है, द्रव्यार्थिकनयरूपसे नही। फिर नही मालूम उक्त प्रस्तावनामें किस आधारसे यह विधान करनेका साहस किया है कि 'कषायप्राभृतचूर्णिकार ऋजुसूत्रनयको द्रव्यार्थिकनयमे समावेश करनेके लिए श्वेताम्बर आचार्योकी परम्पराका अनुसरण करते है।'

शायद उन्होने अर्थनयको द्रव्यार्थिकनय समझकर यह विधान किया है। किन्तु यदि यही बात है तो हमें लिखना पडता है कि या तो यह उनकी नयविपयक अनभिज्ञताका परिणाम है या फिर इसे सम्प्रदायका व्यामोह कहना होगा। कारण कि जब कि आगममे द्रव्यार्थिकनयके नैगम, सग्रह और व्यवहार ये तीनो भेद अर्थनयस्वरूप ही स्वीकार किये गये है और पर्यायार्थिकनयके दो भेद करके उनमेंसे ऋजुसूत्रनयको अर्थनयस्वरूप स्वीकार किया गया है ऐसी अवस्थामें बिना आधारके उसे द्रव्यार्थिकनय स्वरूप बतलाना और अपने इस अभिप्रायसे कपायप्राभृतचूर्णिकारको जोडना इसे सम्प्रदायका व्यामोह नही कहा जायगा तो और क्या कहा जायगा।

यो तो सातो ही नयोका विषय अर्थ-वस्तु है। फिर भी उनमेंसे नैगमादि तीन नय पर्यायको गौण कर सामान्यकी मुख्यतासे वस्तुका बोध कराते है, इसलिए वे द्रव्यार्थिकरूपसे अर्थनय कहे गये है। ऋजुसूत्रनय सामान्यको गौणकर वर्तमान पर्यायकी मुख्यतासे वस्तुका बोध कराता है इसलिए वह पर्यायार्थिकरूपसे अर्थनय कहा गया है। और शब्दादि तीन नय यद्यपि सामान्यको गौणकर वर्तमान पर्यायकी मुख्यतासे ही वस्तुका बोध कराते है। फिर भी ऋजुसूत्रसे इन शब्दादि तीन नयोमे इतना अन्तर है कि ऋजुसूत्रनय अर्थप्रधाननय है और शब्दादि तीन नय शब्दप्रधान नय है। इसलिए नैगमादि सातो नय अर्थनय और शब्दनय इन दो भेदोमें विभक्त होकर अर्थनयके चार और शब्दनयके तीन भेद हो जाते है। यहाँ अर्थनयके चार भेदोमें ऋजुसूत्रनय सम्मिलित है, मात्र इसीलिए वह द्रव्यार्थिकनय नही हो जायगा। रहेगा वह पर्यायार्थिक ही। षट्खण्डागम और कपायप्राभृतचूर्णि प्रभृति जितना भी दिगम्वर आचार्यो द्वारा लिखा गया साहित्य है वह सब एक स्वरसे एकमात्र इसी अभिप्रायकी पुष्टि करता है। मालूम पडता है कि उक्त प्रस्तावना लेखकने दिगम्वर साहित्यका और स्वय कपायप्राभृतचूर्णिका सम्यक् प्रकारसे परिशीलन किये बिना ही यह अनर्गल विधान किया है। यहाँ प्रसगसे हम यह सूचित कर देना चाहते है कि श्रुतकेवली भद्रबाहुके कालमें ही वस्त्र-पात्रधारी श्वेताम्बर मतकी स्थापनाकी नीव पड गई थी। यह इसीसे स्पष्ट है कि श्वेताम्बर परम्परा जिनलिंगधारी भद्रबाहुको श्रुतकेवली स्वीकार करके भी उनके प्रति अनास्था दिखलाती है और इन्हे गौण कर अपनी परम्पराको स्थूलभद्र आदिसे स्वीकार करती है।

( २ )

प्रस्तावना लेखकने 'श्वेताम्बराचार्योना ग्रन्थोमा कपायप्राभृतना आधार साक्षी तथा अतिदेशो' इस दूसरे उपशीर्षकके अन्तर्गत श्वेताम्बर कार्मिक साहित्यमें जहाँ-जहाँ कषायप्राभृतके उल्लेखपूर्वक कपायप्राभृत और उसकी चूर्णिको विपयकी पुष्टिके रूपसे निर्दिष्ट किया गया है या विषयके स्पष्टीकरणके लिए उनको साधार उपस्थित किया गया है उनका संकलन किया है। ( १ ) उनमेंसे प्रथम उल्लेख पचसग्रह ( श्वे ) का है। इसकी दूसरी गाथामें 'शतक' आदि पाँच ग्रन्थोको सक्षिप्त कर इस पचसंग्रह ग्रन्थकी रचना की गई है, अथवा पाँच द्वारोके आश्रयसे इस पचसग्रह ग्रन्थकी रचना की गई है यह बतलाया गया है। किन्तु स्वयं चन्द्रर्षि महत्तरने उक्त ग्रन्थकी तीसरी गाथामें वे पाँच द्वार कौनसे, इनका जिस प्रकार नामोल्लेख कर दिया है उस प्रकार गाथारूप या वृत्तिरूप अपनी किसी भी रचनामें एक 'शतक' ग्रन्थके नामोल्लेखको छोडकर अन्य जिन चार ग्रथोके आधारसे इस पचसग्रह ग्रथकी रचना की गई है उनका नामोल्लेख नही किया है। अतएव

ऐक शतकके सिवाय अन्य जिन चार ग्रन्थोका अपने पचसग्रह ग्रथमें उन्होने संक्षेपीकरण किया है वे चार ग्रथ कौनसे इसका तो उनकी उक्त दोनो रचनाओसे पता चलता नही। हाँ उक्त ग्रथकी 'नमिऊण जिण वीर' इस मगल गाथाकी टीकामें मलयगिरिने अवश्य ही उन पाँच ग्रथोका नामोल्लेख किया है। स्वय चन्द्रर्षि महत्तर अपनी रचनामे पाँच द्वारोका नामोल्लेख तो करते है, परन्तु उन ग्रथोका नामोल्लेख नही करते इसमें क्या रहस्य है यह अवश्य ही विचारणीय है। बहुत सम्भव तो यही दिखलाई देता है कि श्वेताम्बर परम्परामे क्षपणा आदि विधिका आनुपूर्वीसे सविस्तर कथन उपलब्ध न होनेके कारण उन्होने कपायप्राभृत ( कषायप्राभृतमें उसकी चूर्णि भी परिगणित है ) का सहारा तो अवश्य लिया होगा, परन्तु यत कपाय-प्राभृत श्वेताम्बर परम्पराका ग्रंथ नही है, अतः पञ्चसंग्रहमे किन पाँच ग्रथोका सग्रह है इसका पूरा स्पष्टी-कारण करना उन्होने उचित नही समझा होगा।

( २ ) दूसरा उल्लेख शतकचूर्णिके टिप्पणका है। यह टिप्पण अभी तक मुद्रित नही हुए है। प्रस्तावना लेखकने अवश्य ही यह सकेत किया है कि उक्त टिप्पणमे किस कपायमें कितनी कृष्टियाँ होती है इस विपयकी प्ररूपणा करनेवाली कपायप्राभृतकी १६३ क्रमाक गाथा उद्धृत पाई जाती है। सो इससे यही तो समझा जा सकता है कि श्वेताम्बर परम्परामे क्षपणाविधिकी सागोपाग प्ररूपणा न होनेसे शतकचूर्णिके कर्त्ताने किस कपायकी कितनी कृष्टियाँ होती है इस विपयका विशेप विवेचन प्राय कपायप्राभृतके आधारसे किया है यह समझकर ही उक्त टिप्पणकारने प्रमाणस्वरूप उक्त गाथा उद्धृत की होगी।

( ३ ) तीसरा उल्लेख सप्ततिका चूर्णिका है। इसमें सूक्ष्मसाम्परायसम्बन्धी कृष्टियोकी रचनाका निर्देशकर उनके लक्षणको कपायप्राभृतके अनुसार जाननेकी सूचना सप्ततिका चूर्णिकारने इसीलिए की जान पडती है कि श्वेताम्बर परम्परामे इसप्रकारका सागोपाग विवेचन नही पाया जाता। सप्ततिका चूर्णिका उक्त उल्लेख इस प्रकार है—'त वेयंतो वितियकिट्टीओ तइयकिट्टीओ य दलिय घेतूण सुहुमसापराइयकिट्टीओ करेइ। तेसिं लक्खण जहा कसायपाहुडे।'

( ४ ) चौथा उल्लेख भी सप्ततिका चूर्णिका है। इसमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणमें जो अनेक वक्तव्य है उन्हें कपायप्राभृत और कर्मप्रकृतिसग्रहणीके अनुसार जाननेकी सूचना की गई है। सप्ततिका चूर्णिका वह उल्लेख इस प्रकार है—'एत्थ अपुव्वकरण-अणियट्टिअद्धासु अणेगाइ वत्तव्वगाइं जहा कसायपाहुडे कम्पगडिसगहणीए वा तह वत्तव्व। सो इस विपयमे इतना ही कहना है कि कर्मप्रकृतिसग्रहणी स्वय एक संग्रह रचना है। अत उसमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके कालो में होनेवाले कार्य-विशेषोका जो भी निर्देश उपलब्ध होता है वह सब अन्य ग्रन्थके आधारसे ही लिया गया होना चाहिए। इस विपयमें जहाँ तक हम समझ सके है, कपायप्राभृतचूर्णि और कर्मप्रकृति चूर्णिकी तुलना करने पर ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि कर्मप्रकृतिचूर्णिकारके समक्ष कपायप्राभृत अवश्य रही है। यथा—

१०२ चरियसमयमिच्छाइट्ठी से काले उवसतदंसणमोहणीओ। १०३ ताधे चेव तिण्णि कम्मंसा उप्पादिदा।—कपायप्राभृतचूर्णि

अब इसके प्रकाशमे कर्मप्रकृति उपशमनाकरण गाथा १९ की चूर्णिपर दृष्टिपात कीजिए—

चरिमसमयमिच्छादिट्ठी से काले उवसमसम्मद्दिट्ठि होहित्ति ताहे वितीयट्ठितीते तिहा अणुभागं करेति।

यहाँ कर्मप्रकृति चूर्णिकारने अपने सम्प्रदायके अनुसार मिथ्यात्व गुणस्थानके अन्तिम समयमें मिथ्यात्वके द्रव्यके तीन भाग हो जाते है, इस मतकी पुष्टि करनेके लिए उक्त वाक्य रचनाके मध्यमें 'होहित्ति' इतना पाठ अधिक जोड दिया है। बाकीकी पूरी वाक्य रचना कपायप्राभृतिचूर्णिसे ली गई है यह कर्मप्रकृतिकी १८ और १९वी गाथाओ तथा उनकी चूर्णियो पर दृष्टिपात करनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है।

यह एक उदाहरण है। पूरे प्रकरण पर दृष्टिपात करनेसे यह स्पष्ट विदित होता है कि कर्मप्रकृति और उसकी चूर्णिका उपशमना प्रकरण तथा क्षपणाविधि कपायप्राभृतिचूर्णिके आधारसे लिपिबद्ध करते हुए

भी कषायप्राभृतचूर्णिसे श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुसार मतभेदके स्थलोको यथावत् कायम रखा गया है। आवश्यकता होनेपर हम इस विषयपर विस्तृत प्रकाश डालेगे।

( ५ ) पाँचवाँ उल्लेख भी सप्ततिकाचूर्णिका है। इसमे मोहनीयके चारके बन्धकके एकका उदय होता है इस मतका सप्ततिकाचूर्णिकारने स्वीकार कर उसकी पुष्टि कषायप्राभृत आदिसे की है। तथा साथ ही दूसरे मतका भी उल्लेख कर दिया है। सो उक्त चूर्णिकारके उक्त कथनसे इतना ही ज्ञात होता है कि उनके समक्ष कषायप्राभृत और उसकी चूर्णि थी।

इस प्रकार श्वेताम्बर आचार्यो द्वारा रचित ग्रन्थोके पाँच उल्लेख है जिनमे कषायप्राभृतके आधारसे उसके नामोल्लेखपूर्वक प्रकृत विषयकी पुष्टि तो की गई है, परन्तु इन उल्लेखोपरसे एक मात्र यही प्रमाणित होता है कि श्वेताम्बर सम्प्रदायमे दर्शन-चरित्रमोहनीयके उपशमना-क्षपणाविधिकी प्ररूपणा करनेवाला सर्वांग साहित्य लिपिबद्ध न होनेसे इसकी पूर्ति दिगम्बर आचार्योद्वारा रचित कषायप्राभृत और उसकी चूर्णिसे की गई है। परन्तु ऐसा करते हुए भी उक्त शास्त्रकारोने उन दोनोको श्वेताम्बर परम्पराका स्वीकार करनेका साहस भूलकर नही किया है। यह तो केवल उक्त प्रस्तावना लेखक श्वे. मुनि हेमचन्द्रविजयजीका ही साहस है जो विना प्रमाणके ऐसा विधान करनेके लिए उद्यत हुए है। वस्तुत देखा जाय तो एक तो कुछ अपवादोको छोडकर कर्मसिद्धान्तकी प्ररूपणा दोनो सम्प्रदायोमे लगभग एक सी पाई जाती है, दूसरे जिन विषयोकी पुष्टिमें श्वेताम्बर आचार्योने कषायप्राभृत और उसकी चूर्णिका प्रमाणरूपमे उल्लेख किया है उन विषयोका सागोपाग विवेचन श्वेताम्बर परम्परामे उपलब्ध न होनेसे ही उन आचार्योको ऐसा करनेके लिए बाध्य होना पडा है, इसलिए श्वेताम्बर आचार्योने अपने साहित्यमे कषायप्राभृत और उसकी चूर्णिकाप्रकृत विषयोकी पुष्टिमें उल्लेख किया मात्र इसलिए उन्हे श्वेताम्बर आचार्योकी कृति घोषित करना युक्तियुक्त नही कहा जा सकता।

( ३ )

आगे खवगसेढिकी प्रस्तावनामे 'कषायप्राभृत मूल तथा चूर्णिनी रचनानो काल' उपशीर्षकके अन्तर्गत प्रस्तावना लेखकने जो विचार व्यक्त किये है वे क्यो ठीक नही है इसकी यहाँ मीमासा की जाती है—

१ जिस प्रकार जयधवलाके प्रारम्भमे दिगम्बर परम्पराके मान्य आचार्य वीरसेनने तथा श्रुतावतारमें इन्द्रनन्दिने कषायप्राभृतके कर्तारूपमें आचार्य गुणधरका और चूर्णिसूत्रोके कर्तारूपमे आचार्य यतिवृषभका स्मरण किया है इस प्रकार श्वेताम्बर परम्परामें किसी भी पट्टावली या कार्मिक या इतर साहित्यमे इन आचार्योका किसी भी रूपमे नामोल्लेख दृष्टिगोचर नही होता। अत इस विषयमे उक्त प्रस्तावना लेखकका यह लिखना युक्तियुक्त प्रतीत नही होता कि 'पट्टावलीमें पाटपरम्परामे आनेवाले प्रधानपुरुषोके नामोका उल्लेख होता है आदि,। क्योकि पट्टावलिमे पाटपरम्पराके प्रधान पुरुषोके रूपमे यदि उनका नाम नही भी आया था तो भी यदि वे श्वेताम्बर परम्पराके आचार्य होते तो अवश्य ही किसी न किसी रूपमे कही न कही उनके नामोका उल्लेख अवश्य ही पाया जाता। श्वेताम्बर परम्परामें इनके नामोका उल्लेख न पाया जाना ही यह सिद्ध करता है कि इन्हे श्वेताम्बर परम्पराके आचार्य मानना युक्तियुक्त नही है।

२ एक बात यह भी कही गई है कि जयधवलामें एक स्थल पर गुणधरका वाचकरूपसे उल्लेख दृष्टिगोचर होता है, इसलिए वे वाचकवशके सिद्ध होनेसे श्वेताम्बर परम्पराके आचार्य होने चाहिए, सो इसका समाधान यह है कि यह कोई ऐसा तर्क नही है कि जिससे उन्हे श्वेताम्बर परम्पराका स्वीकार करना आवश्यक समझा जाय। वाचक शब्दका अर्थ वाचना देनेवाला होता है जो श्वेताम्बर मतकी उत्पत्तिके पहलेसे ही श्रमण परम्परामे प्राचीनकालसे रूढ चला आ रहा है। अत जयधवलामे गुणधरको यदि वाचक कहा भी गया है तो इससे भी उन्हे श्वेताम्बर परम्पराका आचार्य मानना युक्तियुक्त नही कहा जा सकता।

३ यह ठीक है कि श्वेताम्बर परम्परामें नन्दिसूत्रकी पट्टावलिमे तथा अन्यत्र आर्यमंक्षु और नागहस्तिका नामोल्लेख पाया जाता है और जयधवलाके प्रथम मगलाचरणमे चूर्णिसूत्रोके कर्ता आचार्य यतिवृषभको आर्यमंक्षुका शिष्य और नागहस्तिका अन्तेवासी कहा गया है। परन्तु मात्र यह कारण भी आचार्य

यतिवृषभको श्वेताम्बर परम्पराका माननेके लिए पर्याप्त नही है, क्योकि जिस प्रकार श्वेताम्बर परम्परा उक्त दोनो आचार्योंको अपनी परम्पराका स्वीकार करती है उसी प्रकार दिगम्बर परम्पराने भी उन्हें अपनी परम्पराका स्वीकार किया है, जैसा कि जयधवला आदिके उक्त उल्लेखोसे ज्ञात होता है।

एक बात और है वह यह कि नन्दिसूत्रकी पट्टावलि विश्वसनीय भी नही मानी जा सकती, क्योकि उसमे जिस रूपमें आर्यमक्षु और नागहस्तिका उल्लेख पाया जाता है उसके अनुसार वे दोनो एक कालीन नही सिद्ध होते। श्रीमुनि जिन विजयजीका तो यहाँ तक कहना है कि यह पट्टावलि अधूरी है, क्योकि इस पट्टावलिमे आर्यमक्षु और आर्यनागहस्तीके मध्य केवल आर्यनन्दिलको स्वीकार किया गया है, किन्तु आर्य-मक्षु और आर्यनन्दिलके मध्य पट्टधर चार आचार्य और हो गये हैं जिनका उल्लेख इस पट्टावलिमें छूटा हुआ है। ( वी नि स और जैनका. ग पृ १२४। )

दूसरे नन्दिसूत्रकी पट्टावलिमे अलगसे ऐसा कोई उल्लेख भी दृष्टिगोचर नही होता, जिससे आर्य-मक्षुको स्वतन्त्ररूपसे कर्मशास्त्रका ज्ञाता स्वीकार किया जाय। उसमे आर्य नागहस्तिको अवश्य ही कर्मप्रकृतिमे प्रधान स्वीकार किया गया है। इससे इस बातका सहज ही पता लगता है कि जिसने नन्दिसूत्रकी पट्टावलिका सकलन किया है उसे इस बातका पता नही था कि गुणधर आचार्य द्वारा रची गई गाथाएँ साक्षात् या आचार्य परम्परासे आर्यमक्षुको प्राप्त हुई थी, जब कि दिगम्बर परम्परामे यह प्रसिद्धि आनुपूर्वीसे चली आ रही है। यही बात आर्य नागहस्तिके विषयमें भी समझनी चाहिए, क्योकि उस ( नन्दिसूत्र पट्टावलि ) में आर्य नागहस्तीको कर्मप्रकृतिमें प्रधान स्वीकार करके भी इन्हे न तो कषाय प्राभृतका ज्ञाता स्वीकार किया गया है और न ही उन्हें गुणधर आचार्य द्वारा रची गई गाथाऐ आचार्य परम्परासे या साक्षात् प्राप्त हुई यह भी स्वीकार किया गया है। यह एक ऐसा तर्क है जो प्रत्येक विचारकको यह माननेके लिये बाध्य करता है कि कषायप्राभृत श्वेताम्बर आचार्योंकी कृति न होकर दिगम्बर आचार्योंकी ही रचना है।

तीसरे दिगम्बर परम्परामें कषायप्राभृत और चूर्णिका जो प्रारम्भ कालसे पठन-पाठन होता आ रहा है इससे भी इस तथ्यकी पुष्टि होती है। इन्द्रनन्दिने अपने द्वारा रचित श्रुतावतारमे आचार्य यतिवृषभके चूर्णि-सूत्रोके अतिरिक्त दूसरी ऐसी कई पद्धिति पजिकाओका उल्लेख किया है जो कषायप्राभृत पर रची गई थी ( जयध. भाग १ प्रस्तावना पृ ९ तथा १२ से )। स्वय वीरसेनने अपनी जयधवला टीकामें ऐसी कई उच्चारणाओ, स्वलिखित उच्चारणा और वप्पदेवलिखित उच्चारणाका उल्लेख किया है जो जयधवला टीकाके पूर्व रची गई थी। बहुत सम्भव है कि इनमें इन्द्रिनन्दि द्वारा उल्लिखित पद्धति-पजिकाएँ भी सम्मिलित हो ( जयध भाग १ पृ ९ से लेकर )।

उक्त तथ्योके सिवाय प्रकृतमें यह भी उल्लेखनीय है कि आचार्य यतिवृषभने अपने चूर्णिसूत्रोमे प्रवा-ह्यमान और अप्रवाह्यमान इन दो प्रकारके उपदेशोका उल्लेख पद-पद पर किया है तथा इन दोनो प्रकारके उपदेशोमेंसे किसका उपदेश प्रवाह्यमान है और किसका उपदेश अप्रवाह्यमान है इस विषयका स्पष्ट निर्देश स्वय जयधवलाकारने अपनी टीकामे किया है ( देखो प्रस्तुत भाग पृ १८,२३-६६,७१,११६ और १४५ )। सो इससे भी इस बातका पता लगता है कि कर्मविषयक किस विषयमें इन दोनो (आर्यमंक्षु और नागहस्ति) का क्या अभिप्राय था और उनमेंसे कौन उपदेश प्रवाह्यमान अर्थात् आचार्य परम्परासे आया हुआ था और कौन उपदेश अप्रवाह्यमान अर्थात् आचार्य परम्परासे प्राप्त नही था, इसकी पूरी जानकारी जयधवला टीका-कारको नि शसयरूपसे थी।

यहाँ यह प्रश्न होता है कि कषाय प्राभृत और उसके चूर्णिसूत्रोके रचनाकालमे तथा जयधवला टीकाके रचना कालमें शताब्दियोका अन्तर रहते हुए भी जयधवलाके टीकाकारने उक्त जानकारी कहाँसे प्राप्त की होगी। समाधान यह है कि यह तो जयधवला टीकाके अवलोकनसे ही ज्ञात होता है कि उसकी रचना केवल कषायप्राभृत और उसके चूर्णिसूत्रोके आधारपर ही न होकर उसकी रचनाके समय इन दोनो

रचनाओसे सम्वन्ध रखनेवाला वहुत-सा उच्चारणा वृत्ति आदि रूप साहित्य जयधवलाकारके सामने रहा हैं। और इससे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि उच्चारणा वृत्ति आदि नामसे अभिहित किये गये उक्त साहित्यसे वे इस वातका निर्णय करते होगे कि इनमेसे कौन उपदेश अप्रवाह्यमान होकर आर्यमक्षु द्वारा प्रतिपादित है, कौन उपदेश प्रवाह्यमान होकर आर्य नागहस्ति या दोनो द्वारा प्रतिपादित हैं और कौन उपदेश ऐसा हैं जिसके विपयमे उक्त प्रकारसे निर्णय करना, सम्भव न होनेसे केवल चूर्णिसूत्रोके आधारसे प्रवाह्यमान और अप्रवाह्यमान रूपसे उनका उल्लेख किया गया हैं। प्रस्तुत ( १२ वे ) भागमें पद-पद पर इस विपयके ऐसे अनेक उल्लेख आये है जिनसे प्रत्येक पाठकको उक्त कथनकी पूरी जानकारी मिल जाती है यथा—

१ आर्यमक्षुका उपदेश अप्रवाह्यमान हैं और नागहस्तिका उपदेश प्रवाह्यमान हैं। यथा—

अथवा अज्जमखुभयवताणमुवएसो एत्थापवाइज्जमाणो णाम। णागहस्तिखवणाणमुवएसो पवाइज्जतओत्ति घेत्तव्वो। ( पृ. ७१ )

यहाँ उपयोग अर्थाधिकारकी ४ थी गाथाके व्याख्यानका प्रसग हैं। उसमे कषाय और अनुभागकी चर्चाके प्रसगसे आचार्य यतिवृपभने उक्त दोनो आचार्योके दो उपदेशोका उल्लेख किया है। उनमेंसे कषाय और अनुभाग एक हैं यह वतलानेवाले भगवान् आर्यमंक्षुके उपदेशको जयधवलाके टीकाकारसे अप्रवाह्यमान कहा है और कपाय और अनुभागमें भेद वतलानेवाले नागहस्ति श्रवणके उपदेशको प्रवाह्यमान वतलाया हैं। (पृ ६६ और ७१-७२ )

२ उक्त दोनो आचार्योका उपदेश प्रवाह्यमान होनेका प्रतिपादक वचन—तेसिं चेव भयवताणमअमंखु-णागहत्थिण पसहज्जतेणुवएसेण । ( पृ. २३ )

यहाँ क्रोधादि चारो कपायोके कालके अल्पवहुत्वको गतिमार्गणा और चौदह जीव समासोमें वतलानेके प्रसगसे उक्त वचन आया है। सो यहाँ चूर्णिसूत्रकारने गतिमार्गणा और चौदह जीव समासोमे मात्र प्रवाह्यमान उपदेशका निर्देश किया है अप्रवाह्यमान उपदेशका नही। जयधवलाकारने भी चूर्णिसूत्रोका अनुसरण कर दोनो स्थानोमें मात्र प्रवाह्यमान उपदेशका खुलासा करते हुए 'तेसि चेव उपदेसेण चोद्दस-जीवसमासेहिं दडगो भणिहिदि। ( पृ २३ ) इस चूर्णिसूत्रके व्याख्यानके प्रसगसे उसमे आये हुए 'तेसिं चेव' इस पदका व्याख्यान करते हुए उक्त पदसे उक्त दोनो भगवन्तोका ग्रहण किया है।

३. इस प्रकार उक्त दो प्रकारके उल्लेख तो ऐसे है जिनसे हमे उनमेसे कौन उपदेश प्रवाह्यमान है और कौन उपदेश अप्रवाह्यमान है इस वातका पता लगनेके साथ जयधवला टीकासे उनके उपदेष्टा आचार्योका भी पता लग जाता है। किन्तु चूर्णिसूत्रोमें प्रवाह्यमान और अप्रवाह्यमानके भेदरूप कुछ ऐसे भी उपदेश सकलित है जिनके विपयमे जयधवलाकारको विशेप जानकारी नही थी। अत जयधवलाकारने इनका स्पष्टीकरण तो किया हैं, परन्तु आचार्योके नामोल्लेख पूर्वक उनका निर्देश नही किया। इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस विपयमे जयधवलाकारके समक्ष उपस्थित साहित्यमे उक्त प्रकारका विशेष निर्देश नहीं होगा, अत उन्होने दोनो उपदेशोका स्पष्टीकरण मात्र करना उचित समझा। जयधवलाके आगे दिये जानेवाले इस उदाहरणसे यह स्पष्ट हो जाता है—

जो एसो अणतरपरूविदो उवएसो सो पवाइज्जदे • • । अपवाइज्जंतेण पुण उवदेसेण केरिसी पयदपरूवणा होदित्ति एवंविहासंकाए णिण्णयकरणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्ण। (पृ. ११६)

इस उल्लेखमें दो प्रकारके उपदेशोका निर्देश होते हुए भी चूर्णिकारकी दृष्टिमें उनके प्रवक्तारूपमे कौन प्रमुख आचार्य विवक्षित थे इसकी आनुपूर्वीसे लिखित या मौखिक रूपमें सम्यक् अनुश्रुति प्राप्त न होनेके कारण जयधवलाकारने मात्र उनकी व्याख्या कर दी है।

यह हैं जयधवलाकी व्याख्यानशैली। इसके टीकाकारको जिस विपयका किसी न किसी रूपमे आधार मिलता गया उसकी वे उसके साथ व्याख्या करते हैं और जिस विपयका आनुपूर्वीसे किसी प्रकारका आधार उपलव्ध नही हुआ उसकी वे अनुश्रुतिके अनुसार ही व्याख्या करते है। टीकामें वे प्रामाणिकताको वरावर वनाये

माणागरिसहिंतो कोहागरिसा विसेसाहिया त्ति वुत्तं होइ ।

§ ७४. एवं णिरयोघो परूविदो । एवं सव्वासु पुढवीसु । णवरि पढमपुढवीदो अण्णत्थ संखेज्जवस्सियभवग्गहणालावो ण कायव्वो । संपहि देवगदीए पयदप्पाबहुअ-गवेसणट्ठमाह—

*** देवगदीए कोधागरिसा थोवा ।**

§ ७५. ३ । णिरयगदीए लोभागरिसाणं थोवत्ते परूविदकारणमेत्थ वि परूवेयव्वं, विसेसाभावादो ।

*** माणागरिसा संखेज्जगुणा ।**

§ ७६. ६ । एत्थ वि कारणं सुगमं, णिरयगइमायागरिसेहिं वक्खाणिदत्थादो ।

*** मायागरिसा संखेज्जगुणा ।**

§ ७७. १८ । सुगममेदं पि सुत्तं, णिरयगदिमाणागरिसेहिं समाणपरूवणत्तादो ।

---

मायाके परिवर्तनवार मात्र क्रोधके परिवर्तनवार विशेष अधिक हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अर्थात् मानकषायके परिवर्तनवारोंमे लोभ और मायाके परिवर्तनवारोंको मिला देने पर क्रोधके परिवर्तनवार आ जाते है जो अपने अर्थात् क्रोधकषायके समस्त परिवर्तनवारोंके संख्यातवे भागप्रमाण हैं । इसे अंकसंदृष्टिसे अच्छी तरह समझा जा सकता है । अंकसंदृष्टि पहले दे ही आये हैं ।

§ ७४. इस प्रकार ओघसे नारकियोंमें प्ररूपणा की । इसी प्रकार सब पृथिवियोंमे जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि पहली पृथिवीके सिवाय अन्य पृथिवियोंमें संख्यात वर्षवाले भवग्रहणरूप आलाप नहीं कहना चाहिए । अब देवगतिमें प्रकृत अल्पबहुत्वका अनु-सन्धान करनेके लिए कहते है—

*** देवगतिमें क्रोधकषायके परिवर्तनवार सबसे थोड़े हैं ।**

§ ७५. ३ । नरकगतिमे लोभकषायके परिवर्तनवारोंके स्तोकपनेका जो कारण कह आये हैंउसे यहाँ भी कहना चाहिए, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । तात्पर्य यह है कि देवगति प्रेयबहुल गति है, इसलिए वहाँ पर क्रोधकषायके परिवर्तनवार सबसे थोड़े पाये जाते हैं । यहाँ अंकसंदृष्टिमें उनकी संख्या ३ प्राप्त होती है ।

*** उनसे मानकषायके परिवर्तनवार संख्यातगुणे हैं ।**

§ ७६. ६ । यहाँ पर भी कारणका कथन सुगम है, क्योंकि नरकगतिमें मायाकषायके परिवर्तनोंके कथनके साथ उस अर्थका व्याख्यान कर आये हैं । तात्पर्य यह है कि देवोंमें क्रोध-कषायका एक-एक परिवर्तनवार तब होता है जब मानकषायके संख्यात हजार परिवर्तनवार हो लेते हैं । पिछले चूर्णिसूत्रके प्रसंगसे अंकसंदृष्टि द्वारा क्रोधकषायके परिवर्तनवारोंकी संख्या ३ कल्पित की गई है । यहाँ मानकषायके परिवर्तनवारोंकी संख्या ६ कल्पित की है ।

*** उनसे मायाकषायके परिवर्तनवार संख्यातगुणे हैं ।**

§ ७७. १८ । यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि नरकगतिमें मानकषायके परिवर्तनवारोंके समान इसकी प्ररूपणा है ।

विशेषार्थ—यहाँ अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा संख्यात हजारकी सहनानी २ है । पूर्वमें मान-

* लोभागरिसा विसेसाहिया।

§ ७८. २७। केत्तियमेत्तो विसेसो? सगसंखे०भागभूदकोह-माणागरिसमेत्तो।

§ ७९. एवं भवणादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति वत्तव्वं, विसेसाभावादो। संपहि तिरिक्ख-मणुसगदीसु पयदप्पाबहुअविहासणट्ठमाह—

* तिरिक्ख-मणुसगदीए असंखेज्जवस्सिगे भवग्गहणे माणागरिसा थोवा।

§ ८० एत्थासंखेज्जवस्सियभवग्गहणविसेसणं संखेज्जवस्सियभवग्गहणे पयदप्पाबहुअसंभवो णत्थि त्ति जाणावणफलं दट्ठव्वं, तत्थ चदुण्हं कसायाणं परिवत्तणवाराणं सरिसत्तदंसणादो। एत्थ संदिट्ठीए माणागरिसाणं पमाणमेदं ३२।

* कोहागरिसा विसेसाहिया।

---

परिवर्तनवारोंकी संख्या अंकसंदृष्टिमें ६ बतला आये हैं। इसे ३ से गुणा करने पर १८ प्राप्त होते हैं। इसे ध्यानमें रख कर वास्तविक अर्थ जान लेना चाहिए।

* उनसे लोभकषायके परिवर्तनवार विशेष अधिक हैं।

§ ७८. शंका—विशेषका प्रमाण कितना है?

समाधान—अपने संख्यातवें भागप्रमाण जो क्रोध और मानकषायके परिवर्तनवार हैं उतना विशेषका प्रमाण है।

विशेषार्थ—यहाँ टीकामें 'सगसंखे०भागभूद' पद आया है। उसका तात्पर्य है कि लोभकषायके जितने परिवर्तनवार हैं उनके संख्यातवें भागप्रमाण। वह संख्यातवाँ भाग कितना होगा ऐसा प्रश्न होने पर बतलाया है कि क्रोध और मानकषायके जितने परिवर्तनवार हैं उतना है। अंकसंदृष्टिमें यहाँ अपने संख्यातवें भागकी सहनानी ९ का अंक है। पूर्व सूत्रके प्रसंगसे अंक संदृष्टिमें मायाकषायके परिवर्तनवारोंकी संख्या १८ दे आये हैं। उसका ९ संख्या संख्यातवां भाग है। यह क्रोध और मानके परिवर्तनवारोंकी जितनी संख्या है उतनी है। इन दोनोंका योग २७ है। इसलिए यहाँ अंकसंदृष्टिमें लोभकषायके परिवर्तनवार २७ बतलाये हैं।

§ ७९. इसी प्रकार अर्थात् देवगतिकी ओघप्ररूपणाके समान भवनवासियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें कथन करना चाहिए, क्योंकि उक्त प्ररूपणासे इसके कथनमें कोई अन्तर नहीं है। अब तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिमें प्रकृत अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

* तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिमें असंख्यात वर्षवाले भवग्रहणके भीतर मानकषायके परिवर्तनवार सबसे थोड़े हैं।

§ ८० संख्यात वर्षवाले भवग्रहणके भीतर प्रकृत अल्पबहुत्व सम्भव नहीं है इस बातका ज्ञान करानेके इस लिए सूत्रमें 'असंखेज्जवस्सियभवग्गहणे' यह विशेषण जानना चाहिए, क्योंकि संख्यात वर्षकी आयुवाले भवमें चारों कषायोंके परिवर्तनवार समान देखे जाते हैं। यहाँ पर अंकसंदृष्टिमें मानकषायके परिवर्तनवारोंका प्रमाण यह ३२ है।

* उनसे क्रोधकषायके परिवर्तनवार विशेष अधिक हैं?

§ ८१. केत्तियमेत्तो विसेसो? तस्सासंखेज्जदिभागमेत्तो। किं कारणं? असंखेज्जासु परियट्टीसु कोह-माणागरिसाणमवट्ठिदसरूवेण गदासु तदो सइं माणागरिसेहिंतो कोहागरिसाणमदिरेयभावो होदि त्ति भणिदाणंतरमेव पदुप्पायणादो। तदो माणागरिसाणमसंखे०भागमेत्तो एत्थ विसेसो त्ति घेत्तव्वं ३३।

* मायागरिसा विसेसाहिया।

§ ८२. केत्तियमेत्तो विसेसो? कोहागरिसाणमसंखे०भागमेत्तो ३५।

* लोभागरिसा विसेसाहिया।

§ ८३. केत्तियमेत्तेण? मायागरिसाणमसंखे०भागमेत्तेण ४४।

एवं गाहापच्छद्धस्स अत्थे विहासिय समत्ते पढमगाहा समत्ता भवदि।

---

§ ८१. शंका—विशेषका प्रमाण कितना है?

समाधान—उसका असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि क्रोध और मानकषायके परिवर्तनवारोंका अवस्थितरूपसे असंख्यात परिपाटियोंके जानेपर तदनन्तर मानके परिवर्तनवारोंसे क्रोधके परिवर्तनवारोंकी एक बार अधिकता होती है यह अभी ऊपर कहते ही कथन कर आये हैं। इसलिए मानकषायके परिवर्तनवारोंका असंख्यातवां भाग यहाँ पर विशेष ग्रहण करना चाहिए ३३।

विशेषार्थ—अंकसंदृष्टिमें विशेषका प्रमाण १ अंक स्वीकार करने पर क्रोध कषायके कुल परिवर्तनवार ३३ हुए, क्योंकि पूर्वमें मानकषायके परिवर्तनवारोंकी संख्या ३२ बता आये हैं।

* उनसे मायाकषायके परिवर्तनवार विशेष अधिक हैं।

§ ८२. शंका—विशेषका प्रमाण कितना है?

समाधान—क्रोधकषायके परिवर्तनवारोंका असंख्यातवां भाग विशेषका प्रमाण है ३५।

विशेषार्थ—पूर्वमें अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा क्रोधकषायके परिवर्तनवार ३३ बतला आये हैं। उनका असंख्यातवां भाग २ अंकप्रमाण स्वीकार कर लेनेपर मायाकषायके परिवर्तनवारोंकी कुल संख्या ३५ प्राप्त होती है।

* उनसे लोभकषायके परिवर्तनवार विशेष अधिक हैं।

§ ८३. शंका—कितने मात्रसे अधिक हैं?

समाधान—मायाकषायके परिवर्तनवारोंके असंख्यातवें भागमात्रसे अधिक हैं ४४।

विशेषार्थ—पूर्वमें अंकसंदृष्टिमें मायाकषायके परिवर्तनवार ३५ बतला आये हैं। उनका असंख्यातवां भाग ९ अंक प्रमाण स्वीकार कर लेनेपर लोभकषायके कुल परिवर्तनवारोंकी संख्या ४४ प्राप्त होती है।

इस प्रकार प्रथम गाथाके उत्तरार्धका व्याख्यान समाप्त
होने पर प्रथम गाथाका व्याख्यान समाप्त हुआ।

* एत्तो विदियगाहाए विभासा ।

§ ८४. एत्तो पढमगाहाविहासणादो अणंतरमिदाणिं विदियगाहाए विहासा अहिकीरदि त्ति भणिद होइ ।

* तं जहा ।

§ ८५. सुगममेद पुच्छावक्कं ।

* एक्कम्मि भवग्गहणे एक्ककसायम्मि कदि च उवजोगा त्ति ।

§ ८६. एदस्स ताव गाहापुव्वद्धस्स अत्थविहासणं[1] कस्सामो त्ति भणिदं होइ। एदम्मि गाहापुव्वद्धे णिरयादिगदीसु संखेज्जवस्सियमसखेज्जवस्सिय वा भवग्गहणमाहारं कादूण तत्थेगेगस्स कसायस्स केत्तिया उवजोगा होंति, किं संखेज्जा असंखेज्जा वा त्ति पुच्छाणिद्देसेण उवरिमसव्वपरूवणा संगहिया त्ति गहेयव्वं । संपहि एवंविहत्थविसेसपडिबद्धस्सेदस्स गाहापुव्वद्धस्स णिरयगइसंबंधेणत्थविहासणं कुणमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

* एक्कम्मि णेरइयभवग्गहणे कोहोवजोगा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा ।

§ ८७. एक्कम्मि णेरइयभवग्गहणे णिरुद्धे तत्थ कोहोवजोगा केत्तिया होंति त्ति संखेज्जा वा असंखेज्जा वा होंति त्ति भणिदं । तं जहा—दसवस्ससहस्सप्पहुडि कोहोव-

* इससे आगे अब दूसरी गाथाकी विभाषा करते हैं ।

§ ८४. 'एत्तो' अर्थात् प्रथम गाथाका विशेष विवेचन करनेके बाद अब दूसरी गाथाका विशेष विवेचन अधिकृत है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

* वह कैसे ?

§ ८५. यह पृच्छावाक्य सुगम है ।

* एक भवग्रहणके भीतर एक कषायके कितने उपयोग होते हैं ।

§ ८६. सर्व प्रथम इस गाथाके पूर्वार्धका विशेष विवेचन करेंगे यह उक्त कथनका तात्पर्य है । नरकादि गतियोंमें संख्यात वर्षवाले और असंख्यात वर्षवाले भवग्रहणको आधार बना कर वहाँ एक-एक कषायके कितने उपयोग होते है—क्या संख्यात उपयोग होते हैं या असंख्यात उपयोग होते है इस प्रकार इस गाथाके पूर्वार्धमें पृच्छाके निर्देश द्वारा आगेकी समस्त प्ररूपणा संगृहीत की गई है ऐसा यहाँ पर ग्रहण करना चाहिए । अब इस प्रकारके अर्थविशेषसे सम्बन्ध रखनेवाले गाथाके इस पूर्वार्धके अर्थका नरकगतिके सम्बन्धसे विशेष व्याख्यान करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* नारकियोंके एक भवग्रहणके भीतर क्रोधकषायके उपयोग संख्यात अथवा असंख्यात होते हैं ।

§ ८७. नरकियोंके एक भवग्रहणके विवक्षित होनेपर उसमें क्रोधसम्बन्धी उपयोग कितने होते है ऐसी पृच्छा होने पर संख्यात अथवा असंख्यात होते हैं यह कहा है । यथा—

१ ता०प्रतौ अ [ अ ] विहासणं आ०प्रतौ अविहासणं इति पाठ ।

जोगा संखेज्जा होदूण लब्भंति जाव तप्पाओग्गसंखेज्जवस्सियभवग्गहणं ति। पुणो तत्थुक्कस्ससंखेज्जमेत्ता कोहोवजोगा होदूण तत्तो प्पहुडि उवरिमसव्वभववियप्पेसु संखेज्जवस्सिएसु असंखेज्जवस्सिएसु च असंखेज्जा चेव होंति। किं कारणं ? तप्पाओग्गसंखेज्जवस्साणं सव्वोवजोगे एगपुंजं कादूण पुणो सरिस-वेभागे करिय तत्थेगभागं घेत्तूणुक्कस्ससंखेज्जमेत्ता कोहोवजोगा लब्भंति। सेसेगभागो वि माणादिउवजोगा होंति। एदेण कारणेण एदं भवग्गहणं संखेज्जोवजोगाणं पज्जवसाणत्तेण गहियं। एदस्स तप्पाओग्गसंखेज्जवस्समेत्तभवग्गहणस्स पमाणणिण्णयमुवरि कस्सामो। एवमेसा कोहोवजोगाणं परूवणा कया। संपहि माणोवजोगाणं पयदत्थगवेसणट्ठमाह।

*** माणोवजोगा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा।**

§ ८८. 'एक्कम्मि णेरइयभवग्गहणे' इदि अहियारसंबंधो एत्थ कायव्वो। सेसं सुगमं।

*** एवं सेसाणं पि।**

§ ८९. जहा कोह-माणाणं पयदपरूवणा कया एवं माया-लोभाणं पि वत्तव्वं, विसेसाभावादो। एवं णिरयगदीए पयदपरूवणं कादूण सेसासु वि गदीसु एसो चेव कमो अणुगंतव्वो त्ति पदुप्पायणट्ठमप्पणासुत्तमाह—

---

दस हजार वर्षसे लेकर तत्प्रायोग्य संख्यात वर्षप्रमाण आयुवाले भवमें क्रोधकषायके उपयोग संख्यात ही प्राप्त होते हैं। पुनः वहाँ क्रोधकषायके उपयोग उत्कृष्ट संख्यातप्रमाण प्राप्त होकर तदनन्तर आगेके सब संख्यात वर्षप्रमाण आयुवाले और असंख्यात वर्षप्रमाण आयुवाले भवके भेदोंमें असंख्यात ही क्रोधसम्बन्धी उपयोग होते हैं।

शंका—इसका क्या कारण है ?

समाधान—तत्प्रायोग्य संख्यात वर्षोंके भीतर प्राप्त हुए सब कषायोंसम्बन्धी उपयोगोंका एक पुञ्ज करके पुनः उसके परस्पर समान दो भाग करके उनमेंसे एक भागको ग्रहण कर उत्कृष्ट संख्यातप्रमाण क्रोधकषायसम्बन्धी उपयोग होते हैं। शेष एक भागप्रमाण उपयोग भी मानादिकषायसम्बन्धी होते हैं। इस कारणसे इस भवको, संख्यात उपयोगोंकी यहाँ परिसमाप्ति हो जाती है, यह बतलानेके लिए ग्रहण किया है। इस तत्प्रायोग्य संख्यात वर्षप्रमाण भवके प्रमाणका निर्णय आगे करेंगे। इस प्रकार यह क्रोधके उपयोगोंका कथन किया। अब मानसम्बन्धी उपयोगोंके प्रकृत अर्थका अनुसन्धान करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

* मानकषायके उपयोग संख्यात भी होते हैं और असंख्यात भी होते हैं।

§ ८८ नारकियोंके एक भवका अधिकार होनेसे 'एक्कम्मि भवग्गहणे' इस पदका यहाँ पर सम्बन्ध कर लेना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

* इसी प्रकार शेष कषायोंकी अपेक्षा भी जानना चाहिए।

§ ८९. जिस प्रकार क्रोध और मानकषायकी प्रकृत प्ररूपणा की है उसी प्रकार माया और लोभ कषायोंकी भी करनी चाहिए। इस प्रकार नरकगतिमें प्रकृत विषयकी प्ररूपणा करके शेष गतियोंमें यही क्रम जानना चाहिए इस तथ्यका कथन करनेके लिए अर्पणासूत्रको

* एवं सेसासु वि गदीसु ।

§ ९०. सुगममेदमप्पणासुत्तं, एक्कम्हि भवग्गहणे कोहादीणमुवजोगा संखेज्जा असंखेज्जा वा त्ति एदेण भेदाभावादो। संपहि एत्थेव सण्णियासविसेसपरूवणं कुणमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

* णिरयगदीए जम्हि कोहोवजोगा संखेज्जा तम्हि माणोवजोगा णियमा संखेज्जा ।

§ ९१. एदेण सुत्तेण णिरयगदीए कोहस्स संखेज्जोवजोगाणं णिरुंभणं कादूण तत्थ माणोवजोगा किं संखेज्जा असंखेज्जा वा त्ति मग्गणा कीरदे। तं कथं ? जम्हि णेरइय-भवग्गहणे कोहोवजोगा संखेज्जा तत्थ माणोवजोगा णियमा संखेज्जा चेव भवंति, कोहोवजोगेसु संखेज्जेसु संतेसु तत्तो विसेसहीणाणं माणोवजोगाणं तहाभावसिद्धीए बाहाणुवलंभादो ।

* एवं माया-लोभोवजोगा ।

§ ९२. जहा कोहोवजोगेसु संखेज्जेसु माणोवजोगा णियमा संखेज्जा जादा एवं माया-लोभोवजोगा च णियमा संखेज्जा त्ति वत्तव्वं, तेसु संखेज्जेसु संतेसु तत्तो संखेज्ज-

कहते हैं—

* इसी प्रकार शेष गतियोंमें भी कथन करना चाहिए ।

§ ९०. यह अर्पणासूत्र सुगम है, क्योंकि एक भवमें क्रोधादि कषायोंके उपयोग संख्यात या असंख्यात होते हैं इस प्रकार इस कथनसे यहाँके कथनमें कोई अन्तर नहीं है। अब इसी गतिमें सन्निकर्ष विशेषका कथन करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* नरकगतिमें जिस भवमें क्रोधकषायके उपयोग संख्यात होते हैं उस भवमें मानकषायके उपयोग नियमसे संख्यात होते हैं ।

९१. इस सूत्र द्वारा नरकगतिमें क्रोधकषायके संख्यात उपयोगोंको विवक्षित कर वहाँ मानकषायके उपयोग क्या संख्यात होते हैं या असंख्यात होते हैं इस विषयका अनुसन्धान किया गया है।

शंका—वह कैसे ?

समाधान— नारकियोंके जिस भवमें क्रोधके उपयोग संख्यात होते हैं वहाँ मानकषायके उपयोग नियमसे संख्यात होते हैं, क्योंकि क्रोधकषायके उपयोगोंके संख्यात होने पर उनसे विशेष हीन मानकषायके उपयोगोंके संख्यात सिद्ध होनेमें कोई बाधा नहीं पाई जाती।

* इसी प्रकार मायाकषाय और लोभ कषायके उपयोग जानने चाहिए ।

§ ९२. जिस प्रकार क्रोधकषायके उपयोगोंके संख्यात होने पर मानकषायके उपयोग नियमसे संख्यात होते हैं उसी प्रकार माया और लोभकषायके उपयोग नियमसे संख्यात होते हैं ऐसा कहना चाहिए, क्योंकि उनके संख्यात होने पर उनसे संख्यातगुणे हीन इन उपयोगों-

गुणहीणाणमेदेसिं तहाभावसिद्धीए णिव्वाहमुवलंभादो ।

*** जम्हि माणोवजोगा संखेज्जा तम्हि कोहोवजोगा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा ।**

§ ९३. जम्हि णेरइयभवग्गहणे माणोवजोगा संखेज्जा तम्हि कोहोवजोगा संखेज्जा चेवे त्ति णत्थि णियमो, किंतु संखेज्जा वा असंखेज्जा वा होंति । किं कारणं ? उक्कस्स-संखेज्जमेत्तेसु माणोवजोगेसु जादेसु तत्तो विसेसाहियाणं कोहोवजोगाणमसंखेज्जत्त-दंसणादो । उक्कस्ससंखेज्जादो पुण हेट्ठा तप्पाओग्गसंखेज्जमेत्तेसु जादेसु दोण्हं पि अप्पप्पणो पडिभागेण संखेज्जाणमुवजोगाणमुवलंभादो ।

*** मायोवजोगा लोहोवजोगा णियमा संखेज्जा ।**

§ ९४. कुदो ? माणोवजोगेसु संखेज्जेसु संतेसु तत्तो संखेज्जगुणहीणाणमेदेसिं तहाभावसिद्धीए णाइयत्तादो ।

*** जम्हि मायोवजोगा संखेज्जा तम्हि कोहोवजोगा माणोवजोगा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा ।**

§ ९५. कुदो मायोवजोगेसु उक्कस्ससंखेज्जमेत्तेसु जादेसु तत्तो संखेज्जगुणाणं कोह-माणोवजोगाणमसंखेज्जत्तुवलंभादो, तत्तो संखेज्जगुणहीणमद्धाणमोदरिय हेट्ठा

---

के संख्यातरूप होनेकी सिद्धि निर्बाधरूपसे पाई जाती है ।

*** नारकियोंके जिस भवमें मानकषायके उपयोग संख्यात होते हैं उस भवमें क्रोधकषायके उपयोग संख्यात अथवा असंख्यात होते हैं ।**

§ ९३. नारकियोंके जिस भवमें मानकषायके उपयोग संख्यात होते हैं उस भवमें क्रोधकषायके उपयोग संख्यात ही होते है यह नियम नहीं है। किन्तु संख्यात या असंख्यात होते हैं

शंका—इसका क्या कारण है ?

समाधान—मानकषायके उपयोग उत्कृष्ट संख्यात प्रमाण हो जाने पर उनसे विशेष अधिक क्रोधकषायके उपयोग असंख्यात देखे जाते हैं। परन्तु उत्कृष्ट संख्यातसे नीचे तत्प्रायोग्य संख्यातप्रमाण उपयोगोंके होनेपर दोनोंके ही अपने-अपने प्रतिभागके अनुसार संख्यात उपयोग पाये जाते हैं ।

*** मायाकषायके उपयोग और लोभकषायके उपयोग नियमसे संख्यात होते हैं ।**

§ ९४. क्योंकि मानकषायके उपयोगोंके संख्यात होनेपर उनसे संख्यातगुणे हीन उक्त दोनों कषायोंके उपयोगोंका संख्यात सिद्ध होना न्यायप्राप्त है ।

*** नारकियोंके जिस भवमें मायाकषायके उपयोग संख्यात होते हैं उस भवमें क्रोधकषायके उपयोग और मानकषायके उपयोग संख्यात अथवा असंख्यात होते हैं ।**

§ ९५. क्योंकि मायाकषायके उपयोगोंके उत्कृष्ट संख्यातप्रमाण होनेपर उनसे संख्यात-गुणे क्रोध और मानकषायके उपयोग असंख्यात पाये जाते हैं। तथा वहाँसे संख्यातगुणे हीन

सव्वत्थ मायोवजोगेहिं सह कोह-माणोवजोगाणं संखेज्जपमाणत्तुवलंभादो च।

*** लोभोवजोगा णियमा संखेज्जा।**

§ ९६. कुदो? मायोवजोगेसु संखेज्जेसु संतेसु तत्तो संखेज्जगुणहीणाणमेदेसिं तहाभावसिद्धीए णिप्पडिबंधमुवलंभादो।

*** जत्थ लोभोवजोगा संखेज्जा तत्थ कोहोवजोगा माणोवजोगा मायोवजोगा भजियव्वा।**

§ ९७. लोभस्स संखेज्जोवजोगेसु णिरुद्धेसु कोहादिकसायाणमुवजोगा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा होंति त्ति भजियव्वा। किं कारणं? आदीदो प्पहुडि सव्वेसिं संखेज्जोवजोगेसु गच्छमाणेसु पुव्वमेव कोधस्स असंखेज्जोवजोगा पारंभंति, तदो माणस्स, तदो मायाए, सव्वपच्छा लोभस्स। एदेण कारणेण लोहोवजोगेसु संखेज्जेसु संतेसु सेसकसायाणमुवजोगा संखेज्जासंखेज्जवियप्पेहिं भयणिज्जा त्ति णत्थि संदेहो। एवं ताव कोहादिकसायाणं संखेज्जोवजोगणिरुंभणं कादूण तत्थ सेसकसायोवजोगाणं संखेज्जासंखेज्जभागवियारं कादूण संपहि तेसिं चेवासंखेज्जोवजोगणिरुंभणमुहेण सण्णियासविहाणट्ठमुवरिमं पबंधमाह—

*** जत्थ णिरयभवग्गहणे कोहोवजोगा असंखेज्जा तत्थ सेसा**

---

स्थान उतरकर नीचे सर्वत्र मायाकषायके उपयोगोंके साथ क्रोध और मानकषायके उपयोग संख्यातप्रमाण ही पाये जाते हैं।

*** लोभकषायके उपयोग नियमसे संख्यात होते हैं।**

§ ९६ क्योंकि मायाकषायके उपयोगोंके संख्यात होने पर उनसे संख्यातगुणे हीन इनकी उक्त प्रकारसे सिद्धि बिना किसी बाधाके हो जाती है।

*** नारकियोंके जिस भवमें लोभकषायके उपयोग संख्यात होते हैं वहाँ क्रोधकषायके उपयोग, मानकषायके उपयोग और मायाकषायके उपयोग भजनीय होते हैं।**

§ ९७ लोभकषायके संख्यात उपयोगोंके होनेपर क्रोधादि कषायोंके उपयोग संख्यात या असंख्यात होते हैं, इसलिए ये भजनीय हैं, क्योंकि प्रारम्भसे लेकर सभी कषायोंके संख्यात उपयोग हो जानेपर सबसे पहले क्रोधकषायके असंख्यात उपयोग प्रारम्भ होते हैं, उसके बाद मानके और उसके बाद मायाके तथा सबके अन्तमें लोभके असंख्यात संख्याको लिये हुए उपयोग प्रारम्भ होते हैं। इस कारणसे लोभके उपयोगोंके संख्यात होने पर शेष कषायोंके उपयोग संख्यात और असंख्यातरूप विकल्पोंके द्वारा भजनीय होते हैं इसमें सन्देह नहीं है। इस प्रकार सर्वप्रथम क्रोधादिकषायोंके संख्यात उपयोगोंको विवक्षित कर वहाँ शेष कषायोंके उपयोग संख्यात या असंख्यात कहाँ कितने होते हैं इसका विचार कर अब उन्हीं कषायोंके असंख्यात उपयोगोंको विवक्षित कर सन्निकर्षका कथन करनेके लिए आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

*** नारकियोंके जिस भवमें क्रोधकषायके उपयोग असंख्यात होते हैं वहाँ शेष**

**सिया संखेज्जा सिया असंखेज्जा।**

§ ९८. कुदो एवं ? कोहस्स जहण्णपरित्तासंखेज्जमेत्तेसु उवजोगेसु जादेसु तदो विसेसाहियमद्धाणं गंतूण माणस्स असंखेज्जोवजोगाणं पारंभदंसणादो। माया-लोभाणं पि तत्तो संखेज्जगुणमद्धाणमप्पप्पणो पडिभागेण गंतूण तदो असंखेज्जोवजोगविसय-समुप्पत्तिदंसणादो। तम्हा जत्थ कोहोवजोगा असंखेज्जा तत्थ सेसोवजोगा सिया संखेज्जा सिया असंखेज्जा त्ति सिद्धमविरुद्धं।

*** जत्थ माणोवजोगा असंखेज्जा तत्थ कोहोवजोगा णियमा असंखेज्जा।**

§ ९९. कुदो ? कोहस्स असंखेज्जोवजोगेसु पारद्धेसु तत्तो विसेसाहियमद्धाणं गंतूण माणस्सासंखेज्जोवजोगाणं पारंभदंसणादो।

*** सेसा भजियव्वा।**

§ १००. कुदो ? मायालोभोवजोगाणं णिरुद्धविसयसंखेज्जाणमसंखेज्जाणं च संभवे बाहाणुवलंभादो।

*** जत्थ मायोवजोगा असंखेज्जा तत्थ कोहोवजोगा माणोवजोगा णियमा असंखेज्जा।**

---

कषायोंके उपयोग संख्यात भी होते हैं और असंख्यात भी होते हैं।

§ ९८. शंका—ऐसा किस कारणसे है ?

समाधान—क्रोधकषायके जघन्य परीतासंख्यातप्रमाण उपयोगोंके होने पर उससे विशेष अधिक स्थान जाकर मानकषायके असंख्यात उपयोगोंका प्रारम्भ देखा जाता है। माया और लोभोंके भी उससे अपने-अपने प्रतिभागके अनुसार संख्यातगुणे स्थान जाकर असंख्यात उपयोगोंके विषयकी उत्पत्ति देखी जाती है। इसलिए जहाँ क्रोधकषायके उपयोग असंख्यात हैं वहाँ शेष कषायोंके उपयोग संख्यात भी हैं और असंख्यात भी हैं यह बिना विरोधके सिद्ध हुआ।

* जिस भवमें मानकषायके उपयोग असंख्यात होते हैं वहाँ क्रोधकषायके उपयोग नियमसे असंख्यात होते हैं।

§ ९९. क्योंकि क्रोधकषायके असंख्यात उपयोगोंका प्रारम्भ होनेपर वहाँसे विशेष अधिक स्थान जाकर मानकषायके असंख्यात उपयोगोंका प्रारम्भ देखा जाता है।

* शेष कषायोंके उपयोग भजनीय हैं।

§ १००. क्योंकि वहाँ पर मायाकषाय और लोभकषायके उपयोगोंके संख्यात या असंख्यात होनेमें कोई बाधा नहीं पाई जाती।

* जिस भवमें मायाकषायके उपयोग असंख्यात होते हैं वहाँ क्रोध और मानकषायके उपयोग नियमसे असंख्यात होते हैं।

§ १०१. कुदो ? तेसिं तण्णांतरीयत्तादो ।

*** लोभोवजोगा भजियव्वा ।**

§ १०२. किं कारणं ? मायोवजोगेसु जहण्णपरित्तासंखेज्जमेत्तेसु जादेसु तत्तो संखेज्जगुणमद्धाणमुवरि गंतूण लोभस्सासंखेज्जोवजोगाणमुप्पत्तिदंसणादो ।

*** जत्थ लोहोवजोगा असंखेज्जा तत्थ कोह-माण-मायोवजोगा णियमा असंखेज्जा ।**

§ १०३. जत्थ णिरयभवग्गहणे लोभोवजोगा असंखेज्जा जादा तम्मि णिरुद्धे सेसकसायोवजोगा णियमा असंखेज्जा होंति, तेसिमसंखेज्जत्ताभावे णिरुद्धलोभकसायस्स वि असंखेज्जोवजोगाणमणुप्पत्तीदो । एवं ताव णिरयगदीए सव्वेसिं कसायाणं संखेज्जा-संखेज्जोवजोगाणं पादेक्कं णिरुंभणं कादूण सण्णियासविही परूविदो । संपहि एसो चेव सण्णियासविसेसो देवगदीए विवज्जाससरूवेण जोजेयव्वो त्ति पदुप्पायणट्ठमिदमाह—

*** जहा णेरइयाणं कोहोवजोगाणं वियप्पा तहा देवाणं लोभोवजोगाणं वियप्पा ।**

*** जहा णेरइयाणं माणोवजोगाणं वियप्पा तहा देवाणं मायोवजोगाणं वियप्पा ।**

---

§ १०१ क्योंकि वे उनके अविनाभावी हैं। अर्थात् क्रोध और मानके उपयोग असंख्यात होनेपर तत्प्रायोग्य स्थान जाकर ही मायाके उपयोग असंख्यात होते है, इसलिए मायाके उपयोग असंख्यात होने पर क्रोध और मानके उपयोग असंख्यात होंगे ही यह नियम है ऐसा इनमें अविनाभाव है।

* लोभकषायके उपयोग भजनीय हैं।

§ १०२. क्योंकि मायाकषायके उपयोगोंके जघन्य परीतासंख्यातप्रमाण होनेपर वहाँसे संख्यातगुणे स्थान आगे जाकर लोभकषायके असंख्यात उपयोगोंकी उत्पत्ति देखी जाती है।

*** जिस भवमें लोभकषायके उपयोग असंख्यात होते हैं वहाँ क्रोध, मान और मायाकषायके उपयोग नियमसे असंख्यात होते हैं ।**

§ १०३. नारकियोंके जिस भवमें लोभकषायके उपयोग असंख्यात हो जाते हैं वहाँ शेष कषायोंके उपयोग नियमसे असंख्यात होते है, क्योंकि यदि वे असंख्यात न हों तो विवक्षित लोभकषायके भी असंख्यात उपयोगोंकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। इस प्रकार नरकगतिमें सभी कषायोंके संख्यात और असंख्यात उपयोगोंमेंसे प्रत्येकको विवक्षित कर सन्निकर्षविधि कही। अब इसी सन्निकर्षविशेषको देवगतिमें विपरीतरूपसे लगा लेना चाहिए इस बातका कथन करनेके लिए इस प्रबन्धको कहते हैं—

*** जिस प्रकार नारकियोंके क्रोधकषायके उपयोगोंके सन्निकर्षविकल्प होते हैं उसी प्रकार देवोंके लोभकषायके उपयोगोंके सन्निकर्षविकल्प होते हैं।**

*** जिस प्रकार नारकियोंके मानकषायके उपयोगोंके सन्निकर्षविकल्प होते हैं उसी प्रकार देवोंके मायाकषायके उपयोगोंके सन्निकर्षविकल्प होते हैं ।**

*** जहा णेरइयाणं मायोवजोगाणं वियप्पा तहा देवाणं माणोवजोगाणं वियप्पा।**

*** जहा णेरइयाणं लोभोवजोगाणं वियप्पा तहा देवाणं कोहोवजोगाणं वियप्पा।**

§ १०४. एदेसिं सुत्ताणमत्थपरूवणा सुगमा। संपहि तिरिक्ख-मणुसगदीसु णत्थि एसो सण्णियासभेदो, तत्थ संखेज्जवस्सिये भवग्गहणे सव्वेसिमविसेसेण संखेज्जोवजोगणियमदंसणादो। असंखेज्जवस्सिये वि सव्वेसिमसंखेज्जोवजोगत्तेण णाणत्ताभावादो। किं कारणं? अवट्ठिदपरिवाडीए सव्वेसिमसंखेज्जेसु आगरिसेसु लोभ-मायादिकमेण गदेसु सइं विसरिसपरिवाडीए तत्थुप्पत्तिणियमदंसणादो।

§ १०५. एवमेत्तिएण पबंधेण गाहापुव्वद्धस्स अत्थविहासणं कादूण संपहि गाहापच्छिमद्धमवलंबिय अदीदकालसंबंधेण भवप्पाबहुअं परूवेमाणो तदवसरकरणट्ठमाह—

*** जेसु णेरइयभवेसु असंखेज्जा कोहोवजोगा माण-माया-लोभोव-**

---

*** जिस प्रकार नारकियोंके मायाकषायके उपयोगोंके सन्निकर्ष विकल्प होते हैं उसी प्रकार देवोंके मानकषायके उपयोगोंके सन्निकर्षविकल्प होते हैं।**

*** जिस प्रकार नारकियोंके लोभकषायके उपयोगोंके सन्निकर्षविकल्प होते हैं उसी प्रकार देवोंके क्रोधकषायके उपयोगोंके सन्निकर्षविकल्प होते हैं।**

§ १०४. इन सूत्रोंके अर्थका कथन सुगम है। अब तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिमें यह सन्निकर्षभेद नहीं है, क्योंकि वहाँ संख्यात वर्षकी आयुवाले भवग्रहणके भीतर सभी कषायोंके समानरूपसे संख्यात उपयोगोंका नियम देखा जाता है। असंख्यात वर्षकी आयुवाले भवमें भी सभी कषायोंके असंख्यात उपयोगरूपसे नानात्वका अभाव है, क्योंकि अवस्थित परिपाटीके द्वारा लोभ, माया आदिके क्रमसे सभी कषायोंके असंख्यात परिवर्तनवारोंके होने पर एकवार विसदृश परिपाटीके आश्रयसे वहाँ नानापनेकी उत्पत्तिका नियम देखा जाता है।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिमें लोभ, माया, क्रोध और मान इस क्रमसे यह जीव चारों कषायोंमें असंख्यात वार तक पुनः-पुनः उपयुक्त होता रहता है, इसलिए तो संख्यात वर्षकी आयुवाले भवमें चारों कषायोंके संख्यात सदृश उपभोगभेद बतला कर वहाँ नानात्वका निषेध किया है। तथा असंख्यात वर्षकी आयुवाले भवमें भी चारों कषायोंके असंख्यातवार सदृश उपयोग परिवर्तनोंके बाद ही एक वार विसदृश परिपाटीसे उपयोग परिवर्तन होना सम्भव है। इसलिए वहाँ भी चारों कषायोंके असंख्यात सदृश उपयोगोंको ख्यालमें रखकर नानापनेका निषेध किया है।

§ १०५. इस प्रकार इतने प्रबन्धके द्वारा गाथाके पूर्वार्धके अर्थका स्पष्टीकरण करके अब गाथाके उत्तरार्धका अवलम्बन लेकर अतीत कालके सम्बन्धसे भवके अल्पबहुत्वको कहते हुए उसका अवसर करनेके लिए कहते हैं—

*** नारकियोंके जिन भवोंमें क्रोधकषायके उपयोग तथा मान, माया और**

**जोगा वा, जेसु वा संखेज्जा, एदेसिमट्ठण्हं पदाणमप्पाबहुअं ।**

§ १०६. एत्थ णिरयगदीए ताव पयदपरूवणं वत्तइस्सामो त्ति जाणावणट्ठं णेरइयभवाणमहियरणभावेण णिद्देसो कओ 'जेसु णेरइयभवेसु' त्ति । ते च अट्ठभेद-भिण्णा । तं जहा—कोहस्स असंखेज्जोवजोगिगा, माणस्सासंखेज्जोवजोगिगा, मायाए असंखेज्जोवजोगिगा, लोभस्स असखेज्जोवजोगिगा, कोहस्स संखेज्जोवजोगिगा, माणस्स संखेज्जोवजोगिगा, मायाए संखेज्जोवजोगिगा, लोभस्स संखेज्जोवजोगिगा चेदि । एदेसि-मट्ठण्हं पदाणमदीदकालसंबंधेणप्पाबहुअं कायव्वमिदि सुत्तस्स समुच्चयत्थो ।

*** तत्थ उवसंदरिसणाए करणं ।**

§ १०७. किमुवसंदरिसणाकरणं णाम ? उवसंदरिसणाकरणं णिदरिसणकरणं णिण्णयकरणमिदि एयट्ठो । कोहादिकसायाणं संखेज्जोवजोगिगाणमसंखेज्जोवजोगिगाणं च भवाणं विसयविभागजाणावणट्ठमुवसंदरिसणामुहेण किं पि अट्ठपदं पयदप्पाबहुअ-साहणं वत्तइस्सामो त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो ।

*** एक्कम्मि वस्से जत्तियाओ कोहोवजोगद्धाओ तत्तिएण जहण्णा-संखेज्जयस्स भागो जं भागलद्धमेत्तियाणि वस्साणि जो भवो तम्हि**

लोभकषायके उपयोग असंख्यात होते हैं अथवा जिन भवोंमें ये सब उपयोग संख्यात होते हैं, उन आठों पदोंका अल्पबहुत्व इस प्रकार है ।

§ १०६. यहाँ नरकगतिमें सर्व प्रथम प्रकृत प्ररूपणाको बतलाते हैं इस बातका ज्ञान करानेके लिए नारकियोंके भवोंका 'जेसु णेरइयभवेसु' इस प्रकार अधिकरणरूपसे निर्देश किया है । और वे भव आठ प्रकारके हैं । यथा—क्रोध कषायके असंख्यात उपयोगवाले भव, मानकषायके असंख्यात उपयोगवाले भव, मायाकषायके असंख्यात उपयोगवाले भव, लोभ कषायके असंख्यात उपयोगवाले भव, क्रोध कषायके संख्यात उपयोगवाले भव, मान कषायके संख्यात उपयोगवाले भव, माया कषायके संख्यात उपयोगवाले भव और लोभ कषायके संख्यात उपयोगवाले भव । इन आठों पदोंका अतीत कालके सम्बन्धसे अल्पबहुत्व करना चाहिए इस प्रकार सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ है ।

* प्रकृतमें अब उनका निर्णय करते हैं ।

§ १०७ शंका—उपसंदर्शनाकरण पदका क्या अर्थ है ?

समाधान—उपसंदर्शनाकरण, निदर्शनकरण और निर्णयकरण ये तीनों एक अर्थके वाची शब्द हैं ।

क्रोधादि कषायोंके संख्यात उपयोगवाले और असंख्यात उपयोगवाले भवोंके विषय-विभागका ज्ञान करानेके लिए उपसंदर्शनाद्वारा प्रकृत अल्पबहुत्वकी सिद्धि करनेवाले कुछ अर्थपदको कहेंगे यह इस सूत्रका भावार्थ है ।

* एक वर्षके भीतर क्रोध कषायके जितने उपयोगकाल होते हैं उनके द्वारा जघन्य असंख्यातको भाजित किया, जो भाग उपलब्ध आया उतने वर्षप्रमाण जो

**असंखेज्जाओ कोहोवजोगद्धाओ ।**

§ १०८. एदेण सुत्तेण कोहस्स संखेज्जोवजोगिगाणमसंखेज्जोवजोगिगाणं च भवग्गहणाणमुवसंदरिसणं कयं होइ । तं कथं ? एगवस्सब्भंतरे संखेज्जसहस्समेत्तीओ कोहोवजोगद्धाओ होंति । अंतोमुहुत्तब्भंतरे जइ एगा कोहोवजोगद्धा लब्भइ तो एग-वस्सब्भंतरे केत्तियमेत्तीयो लहामो त्ति तेरासियकमेण तासिमुप्पत्तिदंसणादो । पुणो एदाहिं एगवस्सब्भंतर-कोहोवजोगद्धाहिं जहण्णासंखेज्जयस्स भागो घेत्तव्वो । संखेज्ज-सहस्समेत्ताणमुवजोगाणं जइ एगवस्सपमाणं लब्भइ तो जहण्णपरित्तासंखेज्जमेत्ताण-मुवजोगाणं केत्तियमेत्ताणि वस्साणि लहामो त्ति एवं तेरासियं कादूण पमाणेण फल-गुणिदिच्छाए ओवट्टिदाए जहण्णपरित्तासंखेज्जयस्स संखेज्जदिभागमेत्ताणि रूवाणि आगच्छंति । पुणो एत्तियाणि वस्साणि जो भवो भागलद्धमेत्ताणि वस्साणि घेत्तूण जो भवो त्ति भणिदं होदि । तम्हि असंखेज्जाओ कोहोवजोगद्धाओ । किं कारणं ? एग-वस्सब्भंतरे जइ संखेज्जसहस्समेत्तीओ कोहोवजोगद्धाओ लब्भंति तो अणंतरणिद्दिट्ठ-भागलद्धमेत्तवस्सेसु केत्तियमेत्तीओ लहामो त्ति तेरासियं कादूण जोइदे जहण्णपरित्ता-संखेज्जमेत्तीणं कोहोवजोगद्धाणमेत्थुवलंभादो । एवमेदेण सुत्तेण कोहस्स संखेज्जासंखेज्जो-

---

भव होता है उसमें क्रोधके असंख्यात उपयोगकाल होते हैं ।

§ १०८. इस सूत्र द्वारा क्रोधकषायके संख्यात उपयोगवाले और असंख्यात उपयोग-वाले भवोंका निर्णय किया गया है ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—एक वर्षके भीतर क्रोध कषायके संख्यात हजारप्रमाण उपयोगकाल होते है, क्योंकि अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर यदि क्रोधकषायका एक उपयोगकाल प्राप्त होता है तो एक वर्षके भीतर कितने उपयोगकाल प्राप्त होंगे इस प्रकार त्रैराशिक विधिसे संख्यात हजारप्रमाण उपयोगकालोंकी उत्पत्ति देखी जाती है । फिर एक वर्षके भीतर प्राप्त हुए क्रोधकषायके इन उपयोगकालोंके द्वारा जघन्य परीतासंख्यातको भाजित करना चाहिए—संख्यात हजार उपयोगोंका यदि एक वर्षप्रमाण काल प्राप्त होता है तो जघन्य परीता-संख्यातप्रमाण उपयोगोंके कितने वर्ष प्राप्त होंगे इस प्रकार त्रैराशिक कर फलराशिसे गुणित इच्छाराशिमें प्रमाणराशिसे भाजित करने पर जघन्य परीतासंख्यातके संख्यातवें भाग प्रमाण अंक प्राप्त होते हैं । पुनः इतने वर्षोंका जो भव है अर्थात् पूर्वोक्त त्रैराशिक करने पर जो भाग लब्ध आया उतने वर्षोंका जो भव है यह उक्त कथनका तात्पर्य है, उस भवमें क्रोध कषायके असख्यात उपयोगकाल होते हैं, क्योकि एक वर्षके भीतर क्रोधकषायके यदि सख्यात हजारप्रमाण उपयोगकाल प्राप्त होते हैं तो अनन्तर प्राप्त हुए जिस भागका निर्देश कर आये हैं तत्प्रमाण वर्षोंके भीतर क्रोधकषायके कितने उपयोगकाल प्राप्त होंगे इस प्रकार त्रैराशिक करके देखने पर क्रोधकषायके जघन्य परीतासंख्यातप्रमाण उपयोगकाल प्राप्त होते हैं । इस प्रकार इस सूत्रके द्वारा क्रोधकषायके संख्यात उपयोगवाले और असंख्यात उपयोगवाले भवोंके विषयविभागका सम्यक् प्रकारसे निर्णय कर दिया गया है, क्योंकि

वजोगिगाणं भवाणं विसयविभागो सम्ममुवसंदरिसिदो होदि, सुत्तुद्दिट्ठविसयादो उवरिमाणं सव्वेसिमेवासंखेज्जोवजोगियत्तदंसणादो। तत्तो हेट्ठिमाणं च सव्वेसिं संखेज्जोवजोगियत्तुवलंभादो।

§ १०९. संपहि सेसकसायाणं पि एव चेव संखेज्जासंखेज्जोवजोगिगाणं भवाणं विसयविभागो उवसंदरिसियव्वो त्ति पदुप्पायणट्ठमुवरिमसुत्तमाह—

*** एवं माण-माया-लोभोवजोगाणं।**

§ ११०. जहा कोहस्स जहण्णपरित्तासंखेज्जमेत्तोवजोगाणं विसओ परूविदो एवमेदेसिं पि कसायाणं कायव्वं, अप्पप्पणो एगवस्सोवजोगेहिं जहण्णपरित्तासंखेज्जयस्स भागं घेत्तूण तत्थ भागलद्धमेत्तवस्सेहिं तदुप्पत्ति पडि विसेसाभावादो। संपहि एदस्सेवत्थस्स सुहावबोहणट्ठमेत्थ संदिट्ठिमुहेण किं चि परूवणं कस्सामो। तं कथं? तत्थ कोहस्स एगवस्सोवजोगा एदे २७, माणस्स एगवस्सोवजोगा एदे १८, मायाए एग-

---

सूत्रमें निर्दिष्ट किये गये भवसे आगेके सभी भव असंख्यात उपयोगवाले देखे जाते हैं। तथा उससे पूर्वके सभी भव संख्यात उपयोगवाले उपलब्ध होते हैं।

विशेषार्थ—नारकियोंकी कितनी आयुके किस भव तक क्यों तो क्रोध कषायके संख्यात उपयोगकाल होते हैं और आगेके सब भवोंमें क्यों असंख्यात उपयोगकाल होते हैं इस बातका इस सूत्र द्वारा सम्यक् प्रकारसे निर्णय किया गया है। सामान्य नियम यह है कि एक अन्तर्मुहूर्तके भीतर क्रोधादि कषायोंका एक उपयोगकाल होता है, इसलिए एक वर्षके भीतर संख्यात हजार उपयोगकाल हुए। इस नियमके अनुसार इन उपयोगकालोंका जघन्य परीतासंख्यातमें भाग देने पर जितने वर्ष प्राप्त होंगे उतने वर्षका जो भव होता है उसमें नियमसे असंख्यात उपयोगकाल सुघटित हो जाते हैं। स्पष्ट है कि इस भवसे कम आयुवाले नारकियोंके जितने भव होते हैं उनमें क्रोध कषायके संख्यात उपयोगकाल ही प्राप्त होते हैं और पूर्वोक्त भव सहित आगेके जितने भव होते हैं उनमें क्रोध कषायके असंख्यात उपयोगकाल ही होते हैं।

§ १०९. अब शेष कषायोंके संख्यात उपयोगवाले और असंख्यात उपयोगवाले भवोंका विषय विभाग इसी प्रकार निर्णीत करना चाहिए इस बातका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

*** इसी प्रकार मान, माया और लोभकषायके उपयोगवाले भवोंका विषय-विभाग जानना चाहिए।**

§ ११० जिस प्रकार क्रोध कषायके जघन्य परीतासंख्यातप्रमाण उपयोगोंका विषय कहा उसी प्रकार इन कषायोंका भी करना चाहिए, क्योंकि एक वर्षके भीतर प्राप्त होनेवाले अपने-अपने उपयोगों अर्थात् उपयोगकालोंके द्वारा जघन्य परीतासंख्यातको भाजित कर वहाँ जो एक भाग लब्ध आवे तत्प्रमाण वर्षोंके द्वारा मान, माया और लोभ कषायके जघन्य परीतासंख्यातप्रमाण उपयोगकालोंकी उत्पत्ति होनेकी अपेक्षा उक्त कथनसे इस कथनमें कोई भेद नहीं है। अब इसी अर्थका सुखपूर्वक ज्ञान करानेके लिए यहाँपर संदृष्टि द्वारा कुछ कथन करेंगे।

शंका—वह कैसे?

समाधान—प्रकृतमें क्रोधकषायके वर्षके भीतर प्राप्त हुए उपयोग ये हैं—२७, मान-

वस्सोवजोगा ६, लोभस्स एगवस्सोवजोगा ३। एदेसिं भज्जमाणजहण्णपरित्तासंखेज्ज-मेत्तोवजोगपमाणं संदिट्ठीए अट्ठुत्तरसयमेत्तमिदि गहेयव्वं १०८। पुव्वुत्तसलागाहिं तेरासियकमेणेदमोवट्टिय[1] जहाकममुप्पाइदवस्साणि कोहस्स ४, माणस्स ६, मायाए १८, लोभस्स ३६। एत्थ कोहस्स लद्धवस्साणि थोवाणि, माणस्स संखेज्जभागब्भहियाणि, मायाए संखेज्जगुणाणि, लोभस्स संखेज्जगुणाणि। तदो कोहस्स जहण्णपरित्तासंखेज्जमेत्तोवजोगियवस्सेहिंतो संखेज्जभागब्भहियमेत्तवस्साणि जाव ण गदाणि ताव माणस्स जहण्णपरित्तासंखेज्जमेत्तोवजोगा ण भवंति। माणवस्सेहिंतो संखेज्जगुणमेत्तवस्साणि जाव ण गदाणि ताव मायाए जहण्णपरित्तासंखेज्जमेत्तोवजोगा ण संभवंति। मायावस्सेहिंतो संखेज्जगुणमेत्तवस्साणि जाव ण गदाणि ताव लोभस्स जहण्णपरित्तासंखेज्जमेत्तोवजोगा ण होंति त्ति घेत्तव्वं। तेसिमेसा संदिट्ठी—

०—००००१०००००००००००००००००००००००००००००००० एदे कोहभवा

०—०००००१००००००००००००००००००००००००००००००००००० एदे माणभवा।

०—०००००००००१००००००००००००००००००००००००००००००००

एदे मायाभवा।

०—०००००००००००००००००००००१००००००००००००००००००००

एदे लोभभवा।

§ १११. एत्थ एगंकादो उवरिमसव्वसुण्णट्ठाणाणि असंखेज्जोवजोगिगा भवा

कषायके एक वर्षके भीतर प्राप्त हुए उपयोग ये हैं—१८, मायाकषायके एक वर्षके भीतर प्राप्त हुए उपयोग ६ हैं और लोभकषायके एक वर्षके भीतर प्राप्त हुए उपयोग ३ हैं। इनकी भज्यमान राशि जघन्य परीतासंख्यातप्रमाण उपयोगकाल हैं, संदृष्टिमें उसका प्रमाण एक सौ आठ १०८ ग्रहण करना चाहिए। अब पूर्वोक्त शलाकाओंके द्वारा त्रैराशिकविधिसे इसे भाजित करने पर क्रमसे उत्पन्न हुए वर्ष क्रोधकषायके ४, मानकषायके ६, मायाकषायके १८ और लोभकषायके ३६ होते हैं। यहाँ क्रोधकषायके प्राप्त हुए वर्ष सबसे थोड़े हैं, उनसे मानकषायके वर्ष संख्यातवें भाग अधिक हैं, उनसे मायाकषायके वर्ष संख्यातगुणे हैं और उनसे लोभकषायके वर्ष संख्यातगुणे हैं। इसलिए क्रोधकषायके जघन्य परीतासंख्यातप्रमाण उपयोगवाले वर्षोंसे संख्यातवें भागप्रमाण अधिक वर्ष जब तक व्यतीत नहीं होते हैं तब तक मानकषायके जघन्य परीतासंख्यात प्रमाण उपयोग नहीं होते हैं। मानकषायके वर्षोंसे संख्यातगुणे अधिक वर्ष जब तक नहीं व्यतीत होते हैं तब तक मायाकषायके जघन्य परीतासंख्यातप्रमाण उपयोग नहीं होते हैं तथा मायाकषायके वर्षोंसे संख्यातगुणे अधिक वर्ष जब तक नहीं व्यतीत होते हैं तब तक लोभकषायके जघन्य परीतासंख्यातप्रमाण उपयोग नहीं होते हैं ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। उनकी यह संदृष्टि है—( संदृष्टि मूलमें दी है।)

§ १११. यहाँ पर संदृष्टिमें एक अंकसे आगेके सब शून्यस्थान असंख्यात उपयोगवाले

१. ता०प्रतौ -कमेण णे ( ए ) दमोवट्टिय इति पाठः।

त्ति गहेयव्वा। कोहस्स असंखेज्जोवजोगिगा भवा पुव्वमेव[1] पारभंति, तदो माणस्स, तदो मायाए, सव्वपच्छा लोभस्स असंखेज्जोवजोगिगा भवा पारभंति। एगंकादो हेट्ठिम-सव्वसुण्णट्ठाणाणि संखेज्जोवजोगिगभवा त्ति गेण्हियव्वा। कोहस्स संखेज्जोवजोगिगा भवा पुव्वमेव समप्पंति, तदो पच्छा माण-माया-लोहाणं संखेज्जोवजोगिगभवा अप्पप्पणो पाओग्गमद्धाणं गंतूण जहाकमं समप्पंति त्ति घेत्तव्वं। एवमेत्तिएण पबंधेण उवसंदरिसणा-करणं समाणिय संपहि एदम्हादो साहणादो पयदप्पाबहुअपरूवणट्ठमुवरिमं पबंधमाह—

*** एदेण कारणेण जे असंखेज्जलोभोवजोगिगा भवा ते भवा थोवा।**

§ ११२. जेण कारणेण सव्वपच्छा एदेसिं पारंभो तेणेदे सव्वत्थोवा त्ति भणिदं होइ। तेसिं पमाणं केत्तियं? एगवस्सब्भंतरलोभोवजोगेहिं जहण्णपरित्तासंखेज्जे भागे हिदे तत्थ भागलद्धसंखेज्जरूवमेत्तवस्सेहिं परिहीणतेत्तीसं सागरोवमपमाणा होदूण पुणो अदीदकालप्पणाए[2] अणंता त्ति घेत्तव्वा, पादेक्कमणंतवारमेदेसु भववियप्पेसु एगजीवस्स समुप्पत्तिदंसणादो। तदो एदे सव्वे संभूय अणंतसंखावच्छिण्णा होदूण सव्वत्थोवा त्ति

भवोंको सूचित करते हैं ऐसा ग्रहण करना चाहिए। क्रोधकषायके असंख्यात उपयोगवाले भव पहले ही प्रारम्भ हो जाते हैं। तदनन्तर मानकषायके, उनके बाद मायाकषायके और सबके बाद लोभकषायके असंख्यात उपयोगवाले भव प्रारम्भ होते है। एक अंकसे पूर्वके सब शून्यस्थान संख्यात उपयोगवाले भवोंके सूचक है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। क्रोध-कषायके संख्यात उपयोगवाले भव पहले ही समाप्त हो जाते है। उसके बाद मान, माया और लोभकषायके संख्यात उपयोगवाले भव अपने-अपने योग्य स्थान तक जाकर क्रमसे समाप्त होते हैं ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार इतने प्रबन्धके द्वारा उपसंदर्शनाकरणको समाप्त कर अब इस साधनके अनुसार प्रकृत अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिए आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

*** इस कारणसे लोभकषायके जो असंख्यात-उपयोगवाले भव हैं वे सबसे थोड़े हैं।**

§ ११२ जिस कारणसे लोभकषायके असंख्यात उपयोगवाले भवोंका सबके बाद प्रारम्भ होता है, इसलिए ये सबसे थोड़े हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका—उनका प्रमाण कितना है?

समाधान—एक वर्षके भीतर प्राप्त हुए लोभकषायके उपयोगोंके द्वारा जघन्य परीता-संख्यातके भाजित करने पर वहाँ लब्ध हुए एक भागप्रमाण जो संख्यात वर्ष उनसे हीन तेतीस सागरोपमप्रमाण होकर पुनः अतीत कालकी मुख्यतासे वे अनन्त हैं ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि पृथक्-पृथक् अनन्तवार भेदवाले भवविकल्पोंमें एक जीवकी उत्पत्ति देखी जाती है।

---

१. ता०प्रतौ० उवरिमसव्वसुण्णट्ठाणाणि असंखेज्जोवजोगिगा भवा एदाणि दसवस्ससहस्साणि तदो समयुत्तरादिकमेण गेण्हियव्वं जाव तेसिं सागरोवमाणि त्ति पुव्वमेव इति पाठः।

२. ता०आ०प्रत्योः —प्पणाए इति पाठः।

णिद्दिट्ठा ।

*** जे असंखेज्जमायोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा ।**

§ ११३. किं कारणं ? तत्तो पुव्वमेव एदेसिं पारंभदंसणादो । जइ वि एत्थ हेट्ठिमभववियप्पा उवरिमभववियप्पाणमसंखेज्जदिभागमेत्ता चेव तो वि णासंखेज्जगुणत्तमेदेसिं विरुज्झदे, हेट्ठिमभववियप्पेसु पादेक्कमसंखेज्जपरिवाडीओ वोलाविय पुणो उवरिमभववियप्पेसु समयाविरोहेण संकंतिणियमदंसणादो । तेणुवरिमभववियप्पा दोण्हं पि समाणा होदूण पुणो हेट्ठिमवियप्पे अस्सियूण पुव्विल्लेहिंतो एदे असंखेज्जगुणा त्ति घेत्तव्वं ।

*** जे असंखेज्जमाणोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा ।**

§ ११४. एत्थ वि कारणपरूवणा सुगमा, अणंतरादीदपबंधेणेव गयत्थत्तादो ।

*** जे असंखेज्जकोहोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा ।**

§ ११५. एत्थ वि कारणं अणंतरपरूविदमेव ।

*** जे संखेज्जकोहोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा ।**

---

इसलिए ये सब मिलकर अनन्त संख्यारूप होकर सबसे स्तोक है यह निर्देश किया है ।

*** जो मायाकषायके असंख्यात-उपयोगवाले भव हैं वे भव असंख्यातगुणे हैं ।**

§ ११३. क्योंकि उनसे पहले ही इनका प्रारम्भ देखा जाता है । यद्यपि यहाँ पर अधस्तन भवविकल्प उपरिम भवविकल्पोंके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है तो भी ये असंख्यातगुणे हैं यह विरोधको नहीं प्राप्त होता, क्योंकि अधस्तन भवविकल्पोंमें पृथक्-पृथक् असंख्यात परिपाटियोंको बिताकर पुनः उपरिम विकल्पोंमें आगमके अनुसार संक्रान्तिका नियम देखा जाता है । इसलिए उपरिम भवविकल्प दोनोंके समान होकर पुनः अधस्तन भवविकल्पोंका आश्रयकर लोभकषायके असंख्यात उपयोगवाले भवोंसे ये असंख्यातगुणे हैं ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए ।

विशेषार्थ—मायाकषायके असंख्यात उपयोगवाले भव पहले प्रारम्भ हो जाते हैं और लोभकषायके असंख्यात उपयोगवाले भव बादमें प्रारम्भ होते हैं । इसलिए मायाकषायके असंख्यात उपयोगवाले सभी भवविकल्प लोभकषायके असंख्यात उपयोगवाले भवविकल्पोंसे असंख्यातगुणे हो जाते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

*** जो मानकषायके असंख्यात-उपयोगवाले भव हैं वे भव असंख्यातगुणे हैं ।**

§ ११४. यहाँ भी कारणका कथन सुगम है, अनन्तर पूर्व कहे हुए प्रबन्धसे ही उसका ज्ञान हो जाता है ।

*** जो क्रोधकषायके असंख्यात-उपयोगवाले भव हैं वे भव असंख्यातगुणे हैं ।**

§ ११५. यहाँ पर भी वही कारण जानना चाहिए जिसका कथन इसके पूर्व कर आये हैं ।

*** जो क्रोधकषायके संख्यात-उपयोगवाले भव हैं वे भव असंख्यातगुणे हैं ।**

§ ११६. असंखेज्जोवजोगिगभवाणमसंखेज्जदिभागपमाणत्तादो णेदेसिमसंखेज्जगुणत्तं घडदि त्ति णासंकणिज्जं, तहाभावे संते वि हेट्ठिमभवपरिवत्तेहिंतो उवरिमभवपरिवत्ताणमसंखेज्जगुणहीणत्तावलंबणेणासंखेज्जगुणत्तसाहणादो । तं जहा—एगो णेरइएसुप्पज्जमाणो दसवस्ससहस्साउएसुववण्णो । एवमुववण्णस्स संखेज्जोवजोगिगभवसलागा एक्का जादा । पुणो वि एदेणेव विहिणा दसवस्ससहस्सम्मि असंखेज्जवारमुप्पज्जिय तदो एगवारं समयुत्तरदसवस्ससहस्साउअभवम्मि उववण्णो । पुणो पुव्वणिरुद्धदसवस्ससहस्सियभवम्मि असंखेज्जवारमुप्पज्जिय तदो समयुत्तरभवम्मि विदियवार मुववण्णो । पुणो वि एदेणेव विहिणा उप्पाइज्जमाणे समयुत्तराउअभवा वि असंखेज्जमेत्ता जादा । एवं संजादेसु पुणो एगवारं दुसमयुत्तराउअभवम्मि उववण्णो । पुणो पल्लट्टिय समयुत्तरभवम्मि समयाविरोहेण संखेज्जवारमुप्पज्जिय तदो विदियवारं दुसमयुत्तरभवम्मि उववण्णो । एवं णेदव्वं जाव दुसमयुत्तरभववियप्पा असंखेज्जा जादा त्ति । एवं तिसमयुत्तरादिभवेसु वि समुप्पाइय णेदव्वं जाव उक्कस्ससंखेज्जोवजोगिगभवं पत्तो त्ति । तदो उक्कस्ससंखेज्जोवजोगिगभवम्मि समयाविरोहेणासंखेज्जवारमुप्पज्जिय पुणो एगवारं जहण्णपरित्तासंखेज्जमेत्तोवजोगिगभवम्मि समुप्पज्जइ । पुणो वि एदेण विहाणेण पुव्वुत्त-

---

§ ११६ शंका—क्रोधकषायके संख्यात उपयोगवाले भव असंख्यात उपयोगवाले भवोंके असंख्यातवे भागप्रमाण हैं, इसलिए ये असंख्यातगुणे नहीं हो सकते ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि ऐसा होने पर भी अधस्तन भवपरिवर्तनोंकी अपेक्षा उपरिम भवपरिवर्तन असंख्यातगुणे हीन होते हैं, इसलिए इस तथ्यको ध्यानमे रखकर क्रोध कषायके असंख्यात-उपयोगवाले भवोंसे संख्यात-उपयोगवाले भव असंख्यातगुणे होते हैं यह सिद्ध किया है। यथा—एक जीव नारकियोंमें उत्पन्न होता हुआ दस हजारकी आयुवाले नारकियोंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार उत्पन्न हुए जीवकी संख्यात-उपयोगवाले भवकी एक शलाका हुई। फिर भी इसी विधिसे दस हजार वर्षकी आयुके साथ असंख्यातवार उत्पन्न होकर तदनन्तर एक वार एक समय अधिक दस हजार वर्षकी आयुवाले भवमें उत्पन्न हुआ। पुनः पहलेके समान दस हजार वर्षकी आयुवाले भवमें असख्यातवार उत्पन्न होकर तदन्तर एक समय अधिक दस हजार वर्षकी आयुवाले भवमे दूसरी वार उत्पन्न हुआ। फिर भी इसी विधिसे उत्पन्न कराने पर एक समय अधिक दस हजार वर्षकी आयुवाले भव भी असंख्यात हो जाते हैं। ऐसा हो जाने पर पुनः एक वार दो समय अधिक दस हजार वर्षकी आयुवाले भवमें उत्पन्न हुआ। पुनः लौटकर एक समय अधिक दस हजार वर्षकी आयुवाले भवमे आगमानुसार संख्यातवार उत्पन्न होकर तदनन्तर दूसरी वार दो समय अधिक दस हजार वर्षकी आयुवाले भवमे उत्पन्न हुआ। इस प्रकार दो समय अधिक दस हजार वर्षकी आयुवाले भव विकल्प असंख्यात होने तक उत्पन्न कराते रहना चाहिए। इस प्रकार उत्कृष्ट संख्यात-उपयोगवाले भवके प्राप्त होने तक तीन समय अधिक आदि दस हजार वर्षकी आयुवाले भवोंमें भी उत्पन्न कराते हुए ले जाना चाहिए। तदनन्तर उत्कृष्ट संख्यात-उपयोगवाले भवमे आगमके अनुसार असख्यात वार उत्पन्न होकर पुनः एक वार जघन्य परीतासंख्यातप्रमाण-उपयोगवाले भवमें उत्पन्न होता है।

भवम्मि असंखेज्जवारमुप्पज्जिय तदो विदियवारं समयुत्तरभवम्मि समुप्पज्जदि। एवमेत्थ वि असंखेज्जवारमुववण्णो। एवं समयुत्तरादिकमेण उवरिमासंखेज्जोवजोगिगभवेसु वि णिरंतरमुप्पायणविहिं कादूण णेदव्वं जाव तेत्तीसं सागरोवमियचरिमभवे त्ति। एदमेगं भवपरिवत्तं कादूण एवंविहा अणंता भवपरिवत्ता णेदव्वा, अदीदकालप्पणाए भवपरिवत्ताणं तप्पमाणत्तोवलंभादो। जेणेत्थ हेट्ठिमभवपरिवत्तेहिंतो उवरिमभवपरिवत्ता असंखेज्जगुणहीणा जादा तेणासंखेज्जकोहोवजोगिगभवाणमुवरि तस्सेव संखेज्जोवजोगिगभवा असंखेज्जगुणा त्ति भणिदा।

*** जे संखेज्जमाणोवजोगिगा भवा ते भवा विसेसाहिया।**

§ ११७. केत्तियमेत्तो विसेसो? कोहस्स संखेज्जोवजोगिगभवाणमसंखेज्जभागमेत्तो। किं कारणं? कोहस्स संखेज्जोवजोगिगभवेहिंतो विसेसाहियमद्धाणं विसईकरिय एदेसिमवट्ठिदत्तादो।

*** जे संखेज्जमायोवजोगिगा भवा ते भवा विसेसाहिया।**

§ ११८. एत्थ वि सयगुणगारो जइ वि संखेज्जरूवमेत्तो तो वि विसेसाहियत्तमेदं ण विरुज्झदे, हेट्ठिमभवपरिवत्तेहिंतो उवरिमभवपरिवत्ताणमसंखेज्जगुणहीणत्ते संते वि सयगुणगारस्स तत्थ पाहण्णियाभावादो।

---

फिर भी इसी विधिसे पूर्वोक्त भवमें असंख्यात वार उत्पन्न होकर तदनन्तर दूसरी वार एक समय अधिक भवमें उत्पन्न होता है। इस प्रकार इस भवमें भी असंख्यात वार उत्पन्न हुआ। इस प्रकार एक समय अधिक आदिके क्रमसे उपरिम असंख्यात-उपयोगवाले भवोंमें भी निरन्तर उत्पन्न करानेकी विधि करके तेतीस सागरोपमप्रमाण अन्तिम भवके प्राप्त होने तक उत्पन्न कराते हुए ले जाना चाहिए। यह एक भवपरिवर्तन करके इसी प्रकार अनन्त भव परिवर्तन कराने चाहिए, क्योंकि अतीत कालकी मुख्यतासे भवपरिवर्तन तत्प्रमाण उपलब्ध होते हैं। चूंकि यहाँ अधस्तन भव परिवर्तनोंसे उपरिम भवपरिवर्तन असख्यातगुणे हीन हुए, इसलिए क्रोधकषायके असंख्यात उपयोगवाले भवोंसे उसीके संख्यात-उपयोगवाले भव असंख्यातगुणे हैं यह कहा है।

*** जो मानकषायके संख्यात-उपयोगवाले भव हैं वे भव विशेष अधिक हैं।**

§ ११७ **शंका**—विशेषका प्रमाण कितना है?

**समाधान**—क्रोधकषायके संख्यात-उपयोगवाले भवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि क्रोधकषायके संख्यात उपयोगवाले भवसे विशेष अधिक अध्वानको विषयकर ये अवस्थित हैं।

*** जो मायाकषायके संख्यात-उपयोगवाले भव हैं वे भव विशेष अधिक हैं।**

§ ११८. यहाँपर भी अपना गुणकार यद्यपि संख्यात अंकप्रमाण है तो भी इनका विशेष अधिक होना विरोधको प्राप्त नहीं होता, क्योंकि अधस्तन भवपरिवर्तनोंसे उपरिम भवपरिवर्तन असंख्यातगुणे हीन होनेपर भी अपने गुणकारकी वहाँ प्रधानता नहीं है।

* जे संखेज्जलोभोवजोगिगा भवा ते भवा विसेसाहिया।

§ ११९. केत्तियमेत्तो विसेसो? पुव्विल्लाणमसंखेज्जभागमेत्तो। एवमेदेसिमट्ठण्हं पदाणं णिरयगइपडिबद्धाणं सकारणमप्पाबहुअं परूविय संपहि देवगदीए वि एसो चेव अप्पाबहुआलावो विलोमकमेण जोजेयव्वो त्ति पदुप्पायणट्ठमप्पणासुत्तमाह—

* जहा णेरइएसु तहा देवेसु। णवरि कोहादो आढवेयव्वो।

§ १२०. जहा णेरइएसु पयदप्पाबहुआलावो कओ तहा देवेसु वि कायव्वो। णवरि विसेसो कोहादो आढवेयव्वो त्ति। कोहादो आढविय पच्छाणुपुव्वीए जोजेयव्वो त्ति भणिदं होइ। संपहि एदस्सेव जोजणकमप्पदंसणट्ठं उवरिमं पबंधमाह—

* तं जहा।

§ १२१. सुगमं।

* जे असंखेज्जकोहोवजोगिगा भवा ते भवा थोवा।

* जे असंखेज्जमाणोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा।

* जे असंखेज्जमायोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा।

* जे असंखेज्जलोभोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा।

---

* जो लोभकषायके संख्यात-उपयोगवाले भव हैं वे भव विशेष अधिक हैं।

§ ११९. शंका—विशेषका प्रमाण कितना है?

समाधान—पहले जो विशेषका प्रमाण बतलाया है उनके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इस प्रकार नरकगतिसे सम्बन्ध रखनेवाले इन आठ पदोंके अल्पबहुत्वका सकारण कथन करके अब विलोमक्रमसे देवगतिमें भी यही अल्पबहुत्व आलाप योजित कर लेना चाहिए इस बातका कथन करनेके लिए अर्पणासूत्रको कहते हैं—

* जिस प्रकार नारकियोंमें प्रकृत अल्पबहुत्व है उसी प्रकार देवोंमें है। इतना विशेष है कि देवोंमें क्रोधकषायसे प्रारम्भ करना चाहिए।

§ १२०. जिस प्रकार नारकियोंमें प्रकृत अल्पबहुत्वका कथन किया है उसी प्रकार देवोंमें भी करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि क्रोधकषायसे अल्पबहुत्वका प्रारम्भ करना चाहिए। क्रोधकषायसे आरम्भ कर पश्चादानुपूर्वीसे योजना करनी चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अब इसी विषयके योजनाक्रमको दिखलानेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* वह कैसे?

§ १२१ यह सूत्र सुगम है।

* जो क्रोधकषायके असंख्यात उपयोगवाले भव हैं वे भव सबसे स्तोक हैं।

* जो मानकषायके असंख्यात उपयोगवाले भव हैं वे भव असंख्यातगुणे हैं।

* जो मायाकषायके असंख्यात उपयोगवाले भव हैं वे भव असंख्यातगुणे हैं।

* जो लोभकषायके असंख्यात उपयोगवाले भव हैं वे भव असंख्यातगुणे हैं।

* जे संखेज्जलोभोवजोगिणो भवा ते भवा असंखेज्जगुणा ।

* जे संखेज्जमायोवजोगिणो भवा ते भवा विसेसाहिया ।

* जे संखेज्जमाणोवजोगिणो भवा ते भवा विसेसाहिया ।

* जे संखेज्जकोधोवजोगिणो भवा ते भवा विसेसाहिया ।

§ १२२. सुगमत्वान्नात्र किंचिद्वक्तव्यमस्ति । णवरि भवपरियट्टे भण्णमाणे दसवस्ससहस्साणि कादूण समयुत्तरादिकमेण णेदव्वं जाव एक्कत्तीससागरोवमाणि त्ति । एत्थ तिरिक्ख-मणुसगदीसु पयदप्पाबहुअमग्गणा ण संभवइ, तत्थ सव्वेसिं कसायाणं संखेज्जासंखेज्जोवजोगिभवाणं समाणत्तेण पयदभेदाणुवलंभादो ।

* विदियगाहाए अत्थविहासा समत्ता ।

§ १२३. सुगममेदमुवसंहारवक्कं । संपहि तदियसुत्तगाहाए जहावसरपत्तमत्थविहासणं कुणमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

* 'उवजोगवग्गणाओ कम्हि कसायम्हि केत्तिया होंति' त्ति एसा सव्वा वि गाहा पुच्छासुत्तं ।

§ १२४. एसा सव्वा वि तदियगाहा सपुव्वद्ध-पच्छद्धा पुच्छासुत्तमिदि भणिदं होदि । किमेदेण पुच्छिज्जदे? कोहादिकसायविसयाणमुवजोगवग्गणाणं पमाणसंखादेसेहिं

---

* जो लोभकषायके संख्यात-उपयोगवाले भव हैं वे भव असंख्यातगुणे हैं ।

* जो मायाकषायके संख्यात-उपयोगवाले भव हैं वे भव विशेष अधिक हैं ।

* जो मानकषायके संख्यात उपयोगवाले भव हैं वे भव विशेष अधिक हैं ।

* जो क्रोधकषायके संख्यात उपयोगवाले भव हैं वे भव विशेष अधिक हैं ।

§ १२२. सुगम होनेसे यहाँपर कुछ वक्तव्य नहीं है । इतनी विशेषता है कि भवपरिवर्तनका कथन करनेपर दस हजार वर्षसे लेकर एक समय अधिक आदिके क्रमसे इकतीस सागरोपम तक ले जाना चाहिए । यहाँ तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिमें प्रकृत अल्पबहुत्व कहना सम्भव नहीं है, क्योंकि उनमें सभी कषायोंके संख्यात-उपयोगवाले और असंख्यात-उपयोगवाले भवोंके समान होनेसे प्रकृत भेद नहीं पाया जाता ।

* इस प्रकार दूसरी गाथाकी अर्थविभाषा समाप्त हुई ।

§ १२३. यह उपसंहारवाक्य सुगम है । अब अवसर प्राप्त तीसरी सूत्रगाथाके अर्थका व्याख्यान करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* 'उवजोगवग्गणाओ कम्हि कसायम्हि केत्तिया होंति' इस प्रकार यह समस्त गाथा पृच्छासूत्र है ।

§ १२४. पूर्वार्ध और उत्तरार्धके साथ यह समस्त ही तीसरी गाथा पृच्छासूत्र है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—इसके द्वारा क्या पृच्छा की गई है ?

पुच्छिज्जदे। तत्थ गाहापुव्वद्धेण 'उवजोगवग्गणाओ कम्हि कसायम्हि केत्तिया होंति' त्ति ओघेण पुच्छाणिद्देसो कओ। पच्छद्धेण वि 'कदरिस्से च गदीए केवडिया वग्गणा होंति' त्ति आदेसविसया पुच्छा णिद्दिट्ठा त्ति दट्ठव्वा, गदिमग्गणाविसयस्सेदस्स पुच्छाणिद्देसस्स सेसासेसमग्गणाणं देसामासयभावेणावट्ठाणदंसणादो।

* तस्स विहासा।

§ १२५. तस्सेदस्स तदियगाहासुत्तस्स कोहादिकसायाणमुवजोगवग्गणापमाणविसयपुच्छाए वावदस्स अत्थविहासा एत्तो कीरदि त्ति वुत्तं होइ।

* तं जहा।

§ १२६. सुगममेदं पुच्छावक्कं।

* **उवजोगवग्गणाओ दुविहाओ—कालोवजोगवग्गणाओ भावोवजोगवग्गणाओ य।**

§ १२७. उवजोगो णाम कोहादिकसाएहिं सह जीवस्स संपजोगो। तस्स वग्गणाओ वियप्पा भेदा त्ति एयट्ठो। जहण्णोवजोगट्ठाणप्पहुडि जाव उक्कस्सोवजोगट्ठाणे त्ति णिरंतरमवट्ठिदाणं तव्वियप्पाणमुवजोगवग्गणाववएसो त्ति वुत्तं होइ। सो च जहण्णुक्कस्सभावो दोहिं पयारेहिं संभवइ—कालदो भावदो च। तत्थ कालदो

---

समाधान—इसद्वारा ओघ और आदेशसे क्रोधादिविषयक उपयोगवर्गणाओंका प्रमाण पूछा गया है।

वहाँ गाथाके पूर्वार्ध द्वारा 'किस कषायमें कितनी उपयोगवर्गणाऐं होती हैं' इस प्रकार ओघसे पृच्छानिर्देश किया गया है तथा गाथाके उत्तरार्ध द्वारा भी 'किस गतिमें कितनी वर्गणाऐं होती हैं' इस प्रकार आदेशविषयक पृच्छा निर्दिष्ट की गई है ऐसा जानना चाहिए, क्योंकि गतिमार्गणाविषयक इस पृच्छा निर्देशमें शेष समस्त मार्गणाओंका देशामर्षकभावसे अवस्थान देखा जाता है।

* अब उसकी विभाषा करते हैं।

§ १२५. क्रोधादि कषायोंकी उपयोगवर्गणाओंकी प्रमाणविषयक पृच्छामें व्यापृत हुए उस इस तीसरे गाथासूत्रकी आगे अर्थविभाषा करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* वह कैसे ?

§ १२६. यह पृच्छावाक्य सुगम है।

* **उपयोगवर्गणाऐं दो प्रकारकी हैं—कालोपयोगवर्गणाऐं और भावोपयोगवर्गणाऐं।**

§ १२७. क्रोधादि कषायोंके साथ जीवके संप्रयोग करनेको उपयोग कहते हैं। उनकी वर्गणाऐं अर्थात् विकल्प, भेद इन सबका एक अर्थ है। जघन्य उपयोगस्थानसे लेकर उत्कृष्ट उपयोगस्थान तक निरन्तर अवस्थित हुए उपयोगके विकल्पोंकी उपयोगवर्गणा संज्ञा है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। वह जघन्यभाव और उत्कृष्टभाव दो प्रकारसे सम्भव है—कालकी

जहण्णोवजोगकालप्पहुडि जावुक्कस्सोवजोगकालो त्ति णिरंतरमवट्ठिदाणं वियप्पाणं कालोवजोगवग्गणा त्ति सण्णा, कालविसयाओ उवजोगवग्गणाओ कालोवजोगवग्गणाओ त्ति गहणादो। भावदो तिव्वमंदादिभावपरिणदाणं कसायुदयट्ठाणाणं जहण्णवियप्पप्पहुडि जावुक्कस्सवियप्पो त्ति छवड्ढिकमेणावट्ठियाणं भावोवजोगवग्गणा त्ति ववएसो, भावविसेसिदाओ उवजोगवग्गणाओ भावोवजोगवग्गणाओ त्ति विवक्खियत्तादो। एवंविहाओ दुविहाओ उवजोगवग्गणाओ एत्थाहिकयाओ त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो। संपहि काओ ताओ कालोवजोगवग्गणाओ काओ वा भावोवजोगवग्गणाओ त्ति विसेसियूण परूवणट्ठमुवरिमसुत्तद्दयमोइण्णं—

* **कालोवजोगवग्गणाओ णाम कसायोवजोगद्धट्ठाणाणि।**

§ १२८. कसायाणमुवजोगो तस्स अद्धा कालपरिच्छित्ती कसायोवजोगद्धा। तिस्से ट्ठाणाणि जहण्णुक्कस्सादिवियप्पा कालोवजोगवग्गणाओ णाम। कोहादिकसायोवजोगजहण्णकालमुक्कस्सकालादो सोहिय सुद्धसेसम्मि एगरूवे पक्खित्ते कसायोवजोगद्धट्ठाणाणि होंति। तेसिं कालोवजोगवग्गणाववएसो त्ति सुत्तत्थसंगहो।

* **भावोवजोगवग्गणाओ णाम कसायोदयट्ठाणाणि।**

§ १२९. कसायाणमुदयट्ठाणाणि कसायोदयट्ठाणाणि। ताणि भावोवजोगवग्गणाओ। एतदुक्तं भवति—कोहादिकसायाणमेक्केक्कस्स कसायस्स असंखेज्जलोग-

---

अपेक्षा और भावकी अपेक्षा। उनमेंसे कालकी अपेक्षा जघन्य उपयोगकालसे लेकर उत्कृष्ट उपयोगकाल तक निरन्तर अवस्थित हुए विकल्पोंकी कालोपयोगवर्गणा संज्ञा है, क्योंकि कालविषयक उपयोगवर्गणाएँ कालोपयोगवर्गणाएं हैं ऐसा यहाँ ग्रहण किया गया है। भावकी अपेक्षा तीव्र और मन्द आदि भावोंसे परिणत हुए तथा जघन्य विकल्पसे लेकर उत्कृष्ट विकल्प तक छह वृद्धिक्रमसे अवस्थित हुए कषाय-उदयस्थानोंकी भावोपयोगवर्गणा संज्ञा है, क्योंकि भावविशिष्ट उपयोगवर्गणाएँ भावोपयोगवर्गणाएँ कहलाती हैं ऐसी यहाँ विवक्षा की गई है। इस प्रकार दो प्रकारकी उपयोगवर्गणाएँ यहाँपर अधिकृत हैं यह इस सूत्रका भावार्थ है। अब वे कालोपयोगवर्गणाएँ क्या हैं और भावोपयोगवर्गणाएँ क्या हैं इस प्रकार विशेषरूपसे कथन करनेके लिए आगे दो सूत्र आये हैं—

* **कषायके उपयोगसम्बन्धी अद्धास्थानोंकी कालोपयोगवर्गणा संज्ञा है।**

§ १२८. जो कषायोंका उपयोग है उसकी 'अद्धा' अर्थात् कालमर्यादा वह कषायोपयोगाद्धा है। उसके जघन्य और उत्कृष्ट आदि भेदरूप स्थानोंको कालोपयोगवर्गणा कहते हैं। क्रोधादिकषायोंके उपयोगसम्बन्धी जघन्य कालको उत्कृष्ट कालमेंसे घटानेपर जो शेष रहे उसमें एक अंक मिलानेपर कषायसम्बन्धी उपयोग अद्धास्थान होते हैं। उनकी कालोपयोगवर्गणा संज्ञा है यह इस सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ है।

* **कषायोंके उदयस्थानोंकी भावोपयोगवर्गणा संज्ञा है।**

§ १२९. कषायोंके उदयस्थान कषायोदयस्थान कहलाते हैं। उनकी भावोपयोगवर्गणा संज्ञा है। इसका यह तात्पर्य है—क्रोधादि कषायोंमेंसे एक-एक कषायके असंख्यात लोक-

मेत्ताणि उदयट्ठाणाणि अत्थि। ताणि पुण माणे थोवाणि, कोहे विसेसाहियाणि, मायाए विसेसाहियाणि, लोभे विसेसाहियाणि। एदाणि सव्वाणि समुदिदाणि सग-सगकसायपडिबद्धाणि भावोवजोगवग्गणाओ णाम, तिव्व-मंदादिभावणिबंधणत्तादो त्ति।

*** एदासिं दुविहाणं पि वग्गणाणं परूवणा पमाणमप्पाबहुअं च वत्तव्वं।**

§ १३०. एदासिमणंतरणिद्दिट्ठाणं दुविहाणं पि वग्गणाणं काल-भावोवजोग-विसयाणमेत्तो परूवणादीहिं तीहिं अणियोगद्दारेहिं अणुगमो कायव्वो, अण्णहा तव्विसयसम्मण्णाणाणुववत्तीदो त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स पिंडत्थो। एदाणि च सुगमाणि त्ति चुण्णिसुत्तयारेण ण वित्थरिदाणि, तदो एदेसिं पज्जवट्ठियपरूवणं वत्तइस्सामो। तत्थ ताव कालोवजोगवग्गणाणं परूवणदाए ओघादेसेहिं चउण्हं पि कसायाणमत्थि कालोवजोगवग्गणाओ। पमाणाणुगमेण चउण्हं कसायाणं मज्झे तत्थ एक्केक्कस्स कसायस्स कालोवजोगवग्गणाओ अंतोमुहुत्तमेत्तीओ होंति।

§ १३१. अप्पाबहुअं दुविहं—सत्थाण-परत्थाणभेएण। सत्थाणे ताव पयदं—सव्वत्थोवा कोहस्स जहण्णकालोवजोगवग्गणा। उक्कस्सकालोवजोगवग्गणा संखेज्ज-गुणा। अहवा सव्वत्थोवा कोहस्स जहण्णकालोवजोगवग्गणा। वग्गणाविसेसो संखेज्जगुणो। किं कारणं? जहण्णकालोवजोगवग्गणमुक्कस्सकालोवजोगवग्गणाए सोहिय

---

प्रमाण उदयस्थान हैं। परन्तु मानमें वे सबसे स्तोक हैं, उनसे क्रोधमें विशेष अधिक हैं, उनसे मायामें विशेष अधिक हैं और उनसे लोभमें विशेष अधिक हैं। अपने-अपने कषाय-सम्बन्धी ये सब मिलकर भावोपयोगवर्गणा कहलाते हैं, क्योंकि ये तीव्रभाव और मन्दभाव आदिके निमित्तसे होते हैं।

*** इन दोनों ही प्रकारकी वर्गणाओंकी प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व कहना चाहिए।**

§ १३०. अनन्तर पूर्व कही गईं कालोपयोग और भावोपयोगको विषय करनेवाली इन दोनों ही प्रकारकी वर्गणाओंका आगे प्ररूपणा आदि तीन अनुयोगद्वारोंका आश्रय कर अनुगमन करना चाहिए, अन्यथा तद्विषयक सम्यग्ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता, इस प्रकार यह इस सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ है। किन्तु ये सुगम हैं, इसलिए चूर्णिसूत्रकारने इनका विस्तार नहीं किया। इसलिए इनकी पर्यायार्थिक अर्थात् अलग-अलग प्ररूपणा करेंगे। सर्वप्रथम उनमेंसे कालोपयोगवर्गणाओंकी प्ररूपणा करनेपर ओघ और आदेशसे चारों ही कषायोंकी कालोपयोगवर्गणाएं हैं। प्रमाणानुगमकी अपेक्षा चारों कषायोंमेंसे एक-एक कषायकी कालोपयोगवर्गणाएं अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होती हैं।

§ १३१ अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—स्वस्थान अल्पबहुत्व और परस्थान अल्पबहुत्व। स्वस्थान अल्पबहुत्वका प्रकरण है—क्रोधकी जघन्य कालोपयोगवर्गणा सबसे अल्प है। उससे उत्कृष्ट कालोपयोगवर्गणा संख्यातगुणी है। अथवा क्रोधकी जघन्य कालोपयोगवर्गणा सबसे स्तोक है। उससे वर्गणाविशेष संख्यातगुणा है, क्योंकि उत्कृष्ट कालोपयोगवर्गणामेंसे जघन्य कालोपयोगवर्गणाके घटानेपर जो शेष रहे उसके कथनका यहाँ अवलम्बन लिया गया है।

सुद्धसेसस्स तव्ववएसावलंबणादो। वग्गणाओ विसेसाहियाओ, जहण्णकालोवजोग-वग्गणाणं पि एत्थ पवेसदंसणादो। एवं माण-माया-लोहाणं पि सत्थाणप्पाबहुअं कायव्वं।

§ १३२. संपहि परत्थाणप्पाबहुए भण्णमाणे सव्वत्थोवाओ माणस्स कालोव-जोगवग्गणाओ। कोहस्स कालोवजोगवग्गणाओ विसेसाहियाओ। मायाए कालोव-जोगवग्गणाओ विसेसाहिया०। लोहस्स कालोवजोगवग्गणा० विसेसाहिया०। विसेसो पुण सव्वत्थावलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो। एवमेसा ओघेण परत्थाणप्पाबहुअपरूवणा कया। तिरिक्ख-मणुसगदीसु वि एवं चेव वत्तव्वं, विसेसाभावादो।

§ १३३. आदेसेण णेरइ० सव्वत्थोवाओ लोभस्स कालोवजोगवग्गणाओ। मायाए कालोवजोगवग्गणाओ संखेज्जगुणाओ। माणस्स कालोवजोगवग्गणा० संखेज्ज-गुणा०। कोहस्स कालोवजोगवग्गणा० संखेज्जगुणा०। एवं देवगदीए वि। णवरि कोहादो आढविय पच्छाणुपुव्वीए णेदव्वमिदि।

§ १३४. संपहि भावोवजोगवग्गणाणं परूवणे भण्णमाणे चउण्हं पि कसायाण-मत्थि भावोवजोगवग्गणाओ। पमाणं वुच्चदे—चउण्हं पि कसायाणं पादेक्कमसंखेज्ज-लोगमेत्तीओ भावोवजोगवग्गणाओ होंति। अप्पाबहुअं दुविहं—सत्थाण-परत्थाणभेदेण। सत्थाणे पयदं। सव्वत्थोवा कोहस्स जहण्णभावोवजोगवग्गणा। किं कारणं? सव्व-

---

उससे क्रोधकी कालोपयोगवर्गणाऐं विशेष अधिक हैं, क्योंकि जघन्य कालोपयोगवर्गणाओंका भी इनमें प्रवेश देखा जाता है। इसी प्रकार मान, माया और लोभकषायका भी स्वस्थान अल्पबहुत्व करना चाहिए।

§ १३२. अब परस्थान अल्पबहुत्वका कथन करनेपर मानकषायकी कालोपयोगवर्गणाऐं सबसे थोड़ी हैं। उनसे क्रोधकषायकी कालोपयोगवर्गणाऐं विशेष अधिक हैं। उनसे माया-कषायकी कालोपयोगवर्गणाऐं विशेष अधिक हैं और उनसे लोभकषायकी कालोपयोगवर्गणाऐं विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण सर्वत्र आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इस प्रकार यह ओघसे परस्थान अल्पबहुत्वप्ररूपणा की। तिर्यञ्च और मनुष्यगतिमें भी इसी प्रकार कथन करना चाहिए, क्योंकि ओघसे इनमें उक्त अल्पबहुत्वकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है।

§ १३३. आदेशसे नारकियोंमें लोभकषायकी कालोपयोगवर्गणाऐं सबसे स्तोक हैं। उनसे मायाकषायकी कालोपयोगवर्गणाऐं संख्यातगुणी हैं। उनसे मानकषायकी कालोपयोग-वर्गणाऐं संख्यातगुणी हैं। उनसे क्रोधकषायकी कालोपयोगवर्गणाऐं संख्यातगुणी हैं। इसी प्रकार देवगतिमें भी कथन करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि क्रोधसे आरम्भ कर पश्चादानुपूर्वीसे जानना चाहिए।

§ १३४. अब भावोपयोगवर्गणाओंका कथन करनेपर चारों ही कषायोंकी भावोपयोग-वर्गणाऐं हैं। प्रमाणका कथन करते हैं—चारों ही कषायोंमेंसे प्रत्येककी असंख्यात लोकप्रमाण भावोपयोगवर्गणाऐं होती हैं। स्वस्थान और परस्थानके भेदसे अल्पबहुत्व दो प्रकारका है। स्वस्थानका प्रकरण है। क्रोधकषायकी जघन्य भावोपयोगवर्गणा सबसे स्तोक है, 'क्योंकि

जहण्णकसायुदयट्ठाणस्सेक्कस्स चेव गहणादो। वग्गणाविसेसो असंखेज्जगुणो। को गुणगारो? असंखेज्जा लोगा। वग्गणाओ विसेसाहियाओ, जहण्णवग्गणाए वि एत्थंतब्भावदंसणादो। एवं माणादीणं पि वत्तव्वं।

§ १३५. परत्थाणे पयद। सव्वत्थोवाणि माणस्स कसायुदयट्ठाणाणि। कोहस्स कसायुदयट्ठाणाणि विसेसाहियाणि। मायाए कसायुदयट्ठाणाणि विसेसाहियाणि। लोभस्स कसायुदयट्ठाणाणि विसेसाहियाणि। विसेसो पुण सव्वत्थासंखेज्जा लोगा। एसा ओघेण भावोवजोगवग्गणाण दुविहप्पाबहुअपरूवणा कया। एत्तो आदेसपरूवणा वि चदुगदिपडिबद्धा एवं चेव णेदव्वा, विसेसाभावादो।

* तदो तदियाए गाहाए विहासा समत्ता।

§ १३६. सुगममेदं पयदत्थोवसंहारवक्कं। एवमेदं समाणिय संपहि चउत्थगाहाए जहावसरपत्तमत्थविहासणं कुणमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

* चउत्थीए गाहाए विहासा।

§ १३७. एत्तो चउत्थीए गाहाए अत्थविहासा अहिकया त्ति वुत्तं होइ। का सा चउत्थी गाहा त्ति सिस्साहिप्पायं मणेणासंकिय तण्णिद्देसकरणट्ठमाह—

* 'एक्कम्हि दु अणुभागे एक्ककसायम्मि एक्ककालेण। उवजुत्ता का

---

सबसे जघन्य एक ही कषाय उदयस्थानका ग्रहण किया है। उससे वर्गणाविशेष असंख्यातगुणा है। गुणकार क्या है? असंख्यात लोकप्रमाण है। उससे वर्गणाएं विशेष अधिक हैं, क्योंकि जघन्य वर्गणाका भी इसमें अन्तर्भाव देखा जाता है। इसी प्रकार मानादि कषायोंकी अपेक्षा भी उक्त अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

§ १३५. परस्थान अल्पबहुत्वका प्रकरण है। मानकषायके कषाय-उदयस्थान सबसे स्तोक हैं। उनसे क्रोधकषायके कषाय उदयस्थान विशेष अधिक हैं। उनसे मायाकषायके कषाय उदयस्थान विशेष अधिक हैं और उनसे लोभकषायके कषाय उदयस्थान विशेष अधिक हैं। विशेषका प्रमाण सर्वत्र असंख्यात लोकप्रमाण है। यह ओघसे भावोपयोग वर्गणाओंके दो प्रकारके अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा की। आगे चारों गतियोंसे सम्बन्ध रखनेवाली आदेशप्ररूपणा भी इसी प्रकार जाननी चाहिए, क्योंकि पूर्वोक्त प्ररूपणासे इसमें कोई अन्तर नहीं है।

* इस प्रकार तीसरी गाथाकी अर्थविभाषा समाप्त हुई।

§ १३६. प्रकृत अर्थका उपसंहार करनेवाला यह वचन सुगम है। इस प्रकार इसको समाप्त कर अब चौथी गाथाके अवसरप्राप्त अर्थका विशेष व्याख्यान करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* अब चौथी गाथाकी अर्थविभाषा अधिकृत है।

§ १३७. आगे चौथी गाथाकी अर्थविभाषा अधिकार प्राप्त है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। वह चौथी गाथा कौनसी है इस प्रकार शिष्योंके अभिप्रायको मनसे सोचकर उसका निर्देश करनेके लिए कहते हैं—

* एक कषायसम्बन्धी एक अनुभागमें एक कालमें कौन सी गति उपयुक्त

च गदी विसरिसमुवजुज्जदे का च ॥[२] त्ति ।

§ १३८. एसा सा चउत्थी गाहा त्ति वुत्तं होइ । एत्थ 'इदि'सद्दो गाहासुत्त-सरूवावहारणफलो । एसा च गाहा पुच्छामुहेण संगहियासेसपयदत्थपरूवणादो तदो पुच्छासुत्तमिदि जाणावणट्ठमाह—

* एदं सव्वं पुच्छासुत्तं ।

§ १३९. एदं सव्वमणंतरणिद्दिट्ठगाहासुत्तं सपुव्वपच्छद्धं पुच्छासुत्तमिदि भणिदं होदि ।

* एत्थ विहासाए दोण्णि उवएसा ।

§ १४०. एत्थ एदम्मि गाहासुत्ते विहासिज्जमाणे दोण्णि उवएसा अवलंबेयव्वा, परमगुरुसंपदायापरिच्चागेणेव वक्खाणपउत्तीए णाइयत्तादो[१] त्ति भणिदं होदि ।

* एक्केण उवएसेण जो कसायो सो अणुभागो ।

§ १४१. एक्केण उवएसेण अपवाइज्जंतेणुवएसेणे त्ति वुत्तं होइ । कुदो एदं णव्वदे ? पवाइज्जंतोवएसस्स सणामणिद्देसेण पुरदो भणिस्समाणत्तादो । तत्थ जो कसायो सो अणुभागो त्ति भणंतस्साहिप्पायो ण कसायादो वदिरित्तो अणुभागो अत्थि,

---

होती है तथा कौन सी गति विसदृशरूपसे उपयुक्त होती है ।

§ १३८ यह वह चौथी गाथा है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । गाथासूत्रके स्वरूपका अवधारण करनेके प्रयोजनसे यहाँ 'इदि' शब्द आया है । यह गाथा पृच्छामुखसे समस्त प्रकृत अर्थका संग्रह कर कथन करती है, इसलिए यह पृच्छासूत्र है इस बातका ज्ञान करानेके लिए कहते हैं—

* यह सब पृच्छासूत्र है ।

§ १३९ अपने पूर्वार्ध और उत्तराध सहित अनंतर पूर्व कहा गया यह समस्त गाथासूत्र पृच्छासूत्र है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

* इस गाथाकी अर्थविभाषामें दो उपदेश पाये जाते हैं ।

१४०. एत्थ अर्थात् इस गाथासूत्रका व्याख्यान करते समय दो उपदेशोंका अवलम्बन लेना चाहिए, क्योंकि परम गुरुसम्प्रदायका त्याग किये बिना ही व्याख्यानकी प्रवृत्तिका होना न्यायप्राप्त है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

* एक उपदेशके अनुसार जो कषाय है वही अनुभाग है ।

१४१. एक उपदेशके अनुसार अर्थात् अप्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—प्रवाह्यमान उपदेशका अपने नामके साथ चूर्णिसूत्रकार आगे स्वयं कथन करेंगे इससे उक्त तथ्य जाना जाता है ।

प्रकृतमें 'जो कषाय है वही अनुभाग है' ऐसा कहनेका यह अभिप्राय है कि अनुभाग

---

१. ता०प्रतौ —पउत्तीए णिरोहाणाणादो इति पाठः ।

तत्तो पुधभूदस्स तस्साणुवलद्धीदो। अणुभागो कारणं कसायपरिणामो तक्कज्जमिदि ताणं भेदो ण वोत्तुं जुत्तो, कज्जे कारणोवयारेण ताणमेयत्तब्भुवगमादो। संपहि एदस्सेव अत्थस्स पदसण्ढमिदमाह—

* कोधो कोधाणुभागो।

१४२. क्रोध एव क्रोधानुभागो नान्यः कश्चिदित्यर्थः।

* एवं माण-माया-लोभाणं।

§ १४३. यथा क्रोध एव क्रोधानुभाग इति समर्थितमेवं मान एव मानानुभागो, मायैव मायानुभागो, लोभ एव लोभानुभाग इति वक्तव्यं, कार्यकारणयोरभेदोपचारात्।

* तदो का च गदी एगसमएण एगकसायोवजुत्ता वा दुकसायोवजुत्ता वा तिकसायोवजुत्ता वा चदुकसायोवजुत्ता वा त्ति एदं पुच्छासुत्तं।

§ १४४. जदो एव कसायो चेवाणुभागो त्ति समत्थिदं तदो 'एकम्हि दु अणुभागे' इच्चादिपुच्छासुत्तस्स एवमणुगमो कायव्वो। तं जहा—णिरयादिगदीणं मज्झे का च गदी एगसमएण एगकसायोवजुत्ता वा होदि त्ति एसा पढमा पुच्छा, 'एकम्हि

---

कषायसे जुदा नहीं है, क्योंकि कषायसे पृथक् वह पाया नहीं जाता।

शंका—अनुभाग कारण है और कषाय परिणाम उसका कार्य है इस प्रकार इनमें भेद है ?

समाधान—ऐसा कहना ठीक नहीं, कार्यमें कारणका उपचार करके उन दोनोंमें अपृथक्पना स्वीकार किया गया है। अब इसी अर्थको दिखलानेके लिए कहते हैं—

* क्रोधकषाय ही क्रोधानुभाग है।

§ १४२. क्रोधकषाय ही क्रोधानुभाग है, अन्य कुछ नहीं यह इस सूत्रका अर्थ है।

* इसी प्रकार लोभ, मान और मायाकषायकी अपेक्षा कहना चाहिए।

§ १४३ जिस प्रकार क्रोधकषाय ही क्रोधानुभाग है इस प्रकार समर्थन किया है इसी प्रकार मानकषाय ही मानानुभाग है, मायाकषाय ही मायानुभाग है और लोभकषाय ही लोभानुभाग है ऐसा कहना चाहिए, क्योंकि यहाँ पर कार्य और कारणमें अभेदका उपचार किया गया है।

* इसलिए कौन गति एक समयमें एक कषायमें उपयुक्त है, दो कषायोंमें उपयुक्त है, तीन कषायोंमें उपयुक्त है अथवा चारों कषायोंमें उपयुक्त है इस प्रकार यह पृच्छासूत्र है।

§ १४४. यतः कषाय ही अनुभाग है इसका उक्त प्रकारसे समर्थन किया है, अतः 'एकम्हि दु अणुभागे' इत्यादि पृच्छासूत्रका इस प्रकार अनुगम करना चाहिए। यथा—नरकादि गतियोंमेंसे 'कौन सी गति एक समयमें एक कषायमें उपयुक्त है' यह प्रथम पृच्छा

दु अणुभागे एक्ककसायम्हि एक्ककालेण उवजुत्ता का च गदी' त्ति एत्थेदिस्से णिबद्धत्त-दंसणादो। संपहि 'विसरिसमुवजुज्जदे का च।' त्ति गाहासुत्तावयवमस्सियूण दुकसायोव-जुत्ता वा, तिकसायोवजुत्ता वा, चदुकसायोवजुत्ता वा का गदी होदि त्ति एदेसिं तिण्हं पुच्छाणिद्देसाणमणुगमो कायव्वो, एगकसायोवजोगविवज्जासलक्खणो विसरिसोवजोगो त्ति गहणादो। एवंविहपुच्छापडिबद्धत्थपदुप्पायणट्ठमेदं गाहासुत्तमोइण्णमिदि जाणा-वणट्ठमेदं पुच्छासुत्तमिदि भणिदं। संपहि एवंविहपुच्छाणं णिण्णयविहाणट्ठमुत्तरो सुत्तपबंधो—

* तदो णिदरिसणं।

§ १४५. तदो पुच्छाणुगमादो अणंतरमिदाणिं णिदरिसणं णिण्णयकरणं वत्त-इस्सामो त्ति वुत्तं होइ।

* तं जहा।

* **णिरय-देवगदीणमेदे वियप्पा अत्थि, सेसाओ गदीओ णियमा चदुकसायोवजुत्ताओ।**

§ १४६. एदे अणंतरपरूविदा पुच्छावियप्पा तदुत्तरवियप्पा च णिरय-देव-गदीणमत्थि। किं कारणं? णिरयगदीए ताव कोधकसायोवजुत्तजीवरासी अद्धा-माहप्पेण सव्वबहुओ होदूण णिरंतररासित्तमणुहवइ। एवं देवगदीए वि लोभोव-

---

है, क्योंकि 'एक कषायसम्बन्धी एक अनुभागमें एक कालमें कौन सी गति उपयुक्त है' इस प्रकार इस सूत्रवचनमें यह अर्थ निबद्ध देखा जाता है। अब 'विसरिसमुवजुज्जदे का च' इस प्रकार गाथासूत्रके इस अंशका आश्रय कर दो कषायोंमें उपयुक्त, तीन कषायोंमें उपयुक्त अथवा चार कषायोंमें उपयुक्त कौन-कौन सी गति होती है इस प्रकार इन तीन पृच्छा निर्देशों का अनुगम करना चाहिए, क्योंकि यहाँपर गाथामें आये हुए 'विसदृश उपयोग' पदका अर्थ एक कषायके उपयोगसे विपर्यास अर्थात् भिन्न प्रकारके लक्षणवाला उपयोग ग्रहण किया गया है। इस प्रकारकी पृच्छासे सम्बन्ध रखनेवाले अर्थका कथन करनेके लिए यह गाथासूत्र आया है इस बातका ज्ञान करानेके लिए यह पृच्छासूत्र है इस प्रकार कहा है। अब इस प्रकारकी पृच्छाओंका निर्णय करनेके लिए आगेका सूत्रप्रबन्ध है—

* अब आगे निर्णय करते हैं।

§ १४५. 'तदो' अर्थात् पृच्छाओंके अनुगमके अनन्तर अब इनका 'णिदरिसणं' अर्थात् निर्णय करके बतलावेंगे यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* वह कैसे?

* नरकगति और देवगतिमें ये विकल्प होते हैं, शेष गतियाँ नियमसे चारों कषायोंमें उपयुक्त होती हैं।

§ १४६ ये अनन्तर पूर्व कहे गये पृच्छा विकल्प और उनके उत्तरस्वरूप कहे गये विकल्प नरकगति और देवगतिमें हैं, क्योंकि नरकगतिमें तो क्रोधकषायमें उपयुक्त हुई जीव-राशि कालके माहात्म्यके कारण सबसे अधिक होकर निरन्तर राशिपनेका अनुभव करती है।

जुत्तजीवरासीए णिरंतरभावो दट्ठव्वो। तदो दोण्हमेदेसिमुभयत्थ णिरंतररासित्तादो एगकसायोवजुत्ताणं धुवभावं कादूण सेसकसाएहिं सह दु-ति-चदुसंजोगा वत्तव्वा त्ति। एदेण कारणेण णिरय-देवगदीओ एगकसायोवजुत्ताओ दुकसायोवजुत्ताओ तिकसायोवजुत्ताओ चदुकसायोवजुत्ताओ वा होंति त्ति सिद्धं। सेसगदीओ णियमा एवं भणिदे तिरिक्ख-मणुसगदीओ णियमेण चदुकसायोवजुत्ताओ होंति त्ति घेत्तव्वं। किं कारणं? तत्थ चउण्हं पि कसायरासीणं धुवभावोवलंभादो। एवमेदं परूविय संपहि णिरय-देवगदीसु चउण्हं पि वियप्पाणं संभवे तत्थ कदमेण कसाएण कदमो वियप्पो समुप्पज्जदि त्ति एदस्सत्थस्स फुडीकरणट्ठमुवरिम पवंधमुवइसइ—

* णिरयगईए जइ एक्को कसायो णियमा कोहो।

§ १४७. कुदो? कोहोवजोगकालस्स तत्थ सव्वबहुत्तोवएसेण सव्वस्स णेरइय-रासिस्स तत्थेवावट्ठाणे विरोहाभावादो। ण सेसकसायोवजोगद्धासु वि तहासंभवासंका कायव्वा, तहाविहसंभवस्स पुव्वुत्तकालप्पाबहुअसुत्तेण बाहियत्तादो।

* जदि दुकसायो कोहेण सह अण्णदरो दुसंजोगो।

§ १४८. दोण्हं कसायाण समाहारेण जणिदो उवजोगो दुकसायो त्ति भण्णदे। सो कथमुप्पज्जदि त्ति भणिदे 'कोहेण सह अण्णदरो दुसंजोगो' त्ति णिद्दिट्ठं। कोहरासिं

---

इसी प्रकार देवगतिमें भी लोभकषायमें उपयुक्त हुई जीवराशिको निरन्तर जानना चाहिए। इसलिए क्रमसे ये दोनों राशियाँ नरकगति और देवगतिमे निरन्तर राशि होनेसे एक कषायमें उपयुक्त हुए जीवोंको ध्रुव करके शेष कषायोंके साथ दो संयोगी, तीन संयोगी और चार संयोगी भंग कहना चाहिए। इस कारणसे नरकगति और देवगति एक कषाय-उपयुक्त, दो कषाय-उपयुक्त, तीन कषाय-उपयुक्त अथवा चार कषाय-उपयुक्त होती है यह सिद्ध हुआ। शेष गतियाँ नियमसे' ऐसा कहने पर तिर्यञ्चगति और मनुष्यगति नियमसे चार कषायोंमें उपयुक्त होती हैं ऐसा ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि इन दो गतियोंमें चारों ही कषायराशियाँ ध्रुवरूपसे पाई जाती हैं। इस प्रकार उक्त चूर्णिसूत्रकी व्याख्या करके अब नरकगति और देवगतिमें चारों ही विकल्पोंके सम्भव होनेपर वहाँ किस कषायके साथ कौन विकल्प बनता है इस अर्थको स्पष्ट करनेके लिए उपरिम प्रबन्धका उपदेश करते हैं—

* नरकगतिमें यदि एक कषाय है तो नियमसे क्रोधकषाय होती है।

§ १४७ क्योंकि क्रोधकषायके उपयोग कालका वहाँ सबसे अधिक उपदेश होनेके कारण समस्त नारकराशिका क्रोधकषायमें अवस्थान होनेमें कोई विरोध नहीं पाया जाता। पर इससे शेष कषायोंके उपयोग कालोंमे भी उस प्रकारसे सम्भव होनेकी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उस प्रकारका सम्भव पूर्वमे कहे गये अल्प-बहुत्व सूत्रसे बाधित हो जाता है।

* यदि दो कषायोंका संयोग है तो क्रोधके साथ अन्यतर एक कषाय इस प्रकार दो कषायोंका संयोग होता है।

§ १४८. दो कषायोंके समाहारसे उत्पन्न हुआ उपयोग दो-कषाय ऐसा कहा जाता है। वह कैसे उत्पन्न होता है ऐसी पृच्छा होने पर 'कोहेण सह अण्णदरो दुसंजोगो'

धुवं कादूण तेण सह माणादीणमण्णदरं घेत्तूण दुसंजोगे कीरमाणे समुप्पज्जइ त्ति भणिदं होइ। तं कथं ? कोह-माणोवजुत्ता वा, कोह-मायोवजुत्ता वा, कोह-लोभोवजुत्ता वा त्ति एवमेदे तिण्णि दुसंजोगभंगा ३। संपहि तिकसायोवजुत्तवियप्पपदुप्पायणट्ठमाह—

*** जदि तिकसायो कोहेण सह अण्णदरो तिसंजोगो।**

§ १४९. तिण्हं कसायाणं संजोगो तिकसायो त्ति वुच्चदे। सो कथमुप्पज्जइ त्ति भणिदे कोहेण सह सेसकसायाणमण्णदरदोकसाए घेत्तूण तिसंजोगे कीरमाणे समुप्पज्जदि त्ति भणिदं। तं कथं ? कोह-माण-मायोवजुत्ता वा, कोह-माण-लोभोवजुत्ता वा, कोह-माया-लोभोवजुत्ता वा त्ति। एवमेत्थ वि तिण्णि चेव भंगा ३। संपहि चदुकसायपदुप्पायणट्ठमाह—

*** जदि चउकसायो सव्वे चेव कसाया।**

§ १५०. सुगममेदं, सव्वे चेव कोहादिकसाए घेत्तूण चदुकसायोवजुत्तवियप्पुप्पत्तीए विसंवादाभावादो। एवमेत्थ एक्को चेव भंगो होदि। एवं णिरयोघो परूविदो।

---

यह निर्देश किया है। क्रोधराशिको ध्रुव कर उसके साथ मानादिकमेंसे अन्यतर कषायको ग्रहण कर दोका संयोग करने पर द्विसंयोगी भंग उत्पन्न होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

**शंका**—वह कैसे ?

**समाधान**—क्रोध और मानमें उपयुक्त हुए जीव, अथवा क्रोध और मायामें उपयुक्त हुए जीव अथवा क्रोध और लोभमें उपयुक्त हुए जीव इस प्रकार ये तीन द्विसंयोगी भंग ३ होते हैं।

अब तीन कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंके विकल्पोंका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

*** यदि तीन कषायोंका संयोग है तो क्रोधके साथ अन्यतर दो कषाय इस प्रकार तीन कषायोंका संयोग होता है।**

§ १४९. तीन कषायोंका संयोग तीन-कषाय ऐसा कहा जाता है। वह कैसे उत्पन्न होता है ऐसी पृच्छा होनेपर क्रोधके साथ शेष कषायोंमेंसे अन्यतर दो कषायोंको ग्रहणकर तीनका संयोग करने पर उत्पन्न होता है ऐसा कहा है।

**शंका**—वह कैसे ?

**समाधान**—क्रोध, मान और मायामें उपयुक्त हुए जीव, अथवा क्रोध, मान और लोभमें उपयुक्त हुए जीव अथवा क्रोध, माया और लोभमें उपयुक्त हुए जीव। इस प्रकार यहाँ पर भी तीन ही भंग ३ होते हैं।

अब चार कषायोंके कथन करनेके लिए कहते हैं—

*** यदि चार कषायोंका संयोग है तो सभी कषायें होती हैं।**

§ १५० यह सूत्र सुगम है, क्योंकि सभी क्रोधादि कषायोंको ग्रहण कर चार कषायोंमें उपयुक्तरूप विकल्पकी उत्पत्तिमें विसंवाद नहीं है। इस प्रकार यहाँ पर एक ही भंग होता

एवं चेव सत्तसु पुढवीसु णेदव्वं, विसेसाभावादो। संपहि देवगदीए वि एसा चेव परूवणा लोभादो आढविय विवज्जाससरूवेण णेदव्वा त्ति जाणावणट्ठमिदमाह—

*** जहा णिरयगदीए कोहेण तहा देवगदीए लोभेण कायव्वा ।**

§ १५१. जहा णिरयगइमग्गणाए कोहेण धुवभावमावण्णेण सह सेसकसाए ढोएदूण एग-दु-ति-चदुकसायोवजुत्तवियप्पपरूवणा कया एवं देवगदीए वि लोभेण सह पयदपरूवणा णिव्वामोहमणुमग्गियव्वा त्ति वुत्तं होइ। एवं ताव अपवाइज्जंतोवएस-मस्सियूण गाहासुत्तत्थमेक्केण पयारेण विहासिय पयदत्थोवसंहारवक्कमाह—

*** एक्केण उवएसेण चउत्थीए गाहाए विहासा समत्ता भवदि ।**

§ १५२. सुगममेदमुवसंहारवक्कं। संपहि विदियोवएसमस्सियूण गाहासुत्तत्थं विहासिदुकामो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

*** पवाइज्जंतेण उवएसेण चउत्थीए गाहाए विहासा ।**

§ १५३. एत्तो पवाइज्जंतोवएसमवलंबिय एदिस्से चउत्थीए सुत्तगाहाए अत्थ-विहासणा कीरदि त्ति वुत्तं होइ। को वुण पवाइज्जंतोवएसो णाम ? वुच्चदे—वुत्तमेदं सव्वाइरियसम्मदो चिरकालमव्वोच्छिण्णसंपदायकमेणागच्छमाणो जो सिस्सपरंपराए

है। इस प्रकार ओघसे नरकगतिमें कथन किया। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें कथन करना चाहिए, क्योंकि विवक्षित ओघ प्ररूपणासे उसमें कोई भेद नहीं है। अब देवगतिमें भी लोभसे आरम्भकर पश्चादानुपूर्वीसे यही प्ररूपणा कहनी चाहिए इस बातका कथन करनेके लिए यह सूत्र कहते है—

*** जिस प्रकार नरकगतिमें क्रोधके साथ कथन किया है उसी प्रकार देव-गतिमें लोभके साथ कथन करना चाहिए ।**

§ १५१. जिस प्रकार नरकगति मार्गणामे ध्रुवपनेको प्राप्त हुए क्रोधके साथ शेष कषायोंका आश्रय कर एक, दो, तीन और चार कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंके विकल्पोंका कथन किया है उसी प्रकार देवगतिमे भी लोभके साथ प्रकृत प्ररूपणा निःसंशयरूपसे जान लेनी चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस प्रकार सर्व प्रथम अप्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार गाथासूत्रके अर्थका एक प्रकारसे व्याख्यान करके अब प्रकृत अर्थका उपसंहार वाक्य कहते हैं—

*** एक उपदेशके अनुसार चौथी गाथाकी व्याख्या समाप्त होती है ।**

§ १५२. यह उपसंहार वाक्य सुगम है। अब दूसरे उपदेशका आश्रय कर गाथासूत्रके अर्थका विशेष व्याख्यान करते हुए आगेके सूत्र प्रबन्धको कहते हैं—

*** प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार चौथी गाथाका विशेष व्याख्यान करते हैं ।**

§ १५३ आगे प्रवाह्यमान उपदेशका आलम्बन लेकर इस चौथी सूत्रगाथाके अर्थका विशेष व्याख्यान करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका—प्रवाह्यमान उपदेश किसे कहते हैं ?

समाधान—यह कहा है कि जो सब आचार्योंके द्वारा सम्मत है, चिरकालसे अत्रुटित

पवाइज्जदे पण्णविज्जदे सो पवाइज्जंतोवएसो त्ति भण्णदे। अथवा अज्जमंखुभयवंताणमुवएसो एत्थापवाइज्जमाणो णाम। णागहत्थिखवणाणमुवएसो पवाइज्जंतओ त्ति घेत्तव्वो।

* 'एक्कम्मि दु अणुभागे त्ति' जं कसायउदयट्ठाणं सो अणुभागो णाम।

§ १५४. एतदुक्तं भवति, पुव्विल्लपरूवणाए जो कसायो सो चेवाणुभागो त्ति विवक्खियं, कज्जकारणाणमव्वदिरेगणयावलंवणादो कज्जे कारणोवयारादो च। एत्थ वुण अण्णो कसायो अण्णो च अणुभागो त्ति विवक्खियं, कज्ज-कारणाणं भेदणयावलंवणादो। ण च कज्जं चेव कारणं होइ, विप्पडिसेहादो। तदो एवंविहाहिप्पाएण पयट्टा एसा परूवणा त्ति घेत्तव्वं। संपहि सुत्तत्थविवरणं कस्सामो। 'एक्कम्हि दु अणुभागे त्ति' एदेण गाहासुत्तावयवमिदि सद्दपरं परामरसिय तदो जं कसायउदयट्ठाणं सो अणुभागो त्ति तस्स अत्थणिद्देसो कओ। ण कसायो चेवाणुभागो, किंतु जं कसायमुदयट्ठाणमसंखेज्जलोगभेयभिण्णं तमेत्थाणुभागो त्ति विवक्खियमिदि एसो एदस्स भावत्थो।

* 'एगकालेणे त्ति' कसायोवजोगद्धट्ठाणे त्ति भणिदं होदि।

---

सम्प्रदाय क्रमसे चला आ रहा है, और जो शिष्य परम्पराके द्वारा प्रवाहित किया जाता है प्रज्ञापित किया जाता है वह प्रवाह्यमान उपदेश कहा जाता है। अथवा आर्यमंक्षु भगवान्का उपदेश प्रकृतमें अप्रवाह्यमान उपदेश है और नागहस्तिक्षमाश्रमणका उपदेश प्रवाह्यमान उपदेश है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

* 'एक अनुभागमें' यहाँपर जो कषाय उदयस्थान है उसकी अनुभाग संज्ञा है।

§ १५४ इसका यह तात्पर्य है कि पिछली प्ररूपणामें जो कषाय है वही अनुभाग है ऐसी विवक्षा की थी, क्योंकि वहाँ कार्य और कारणमें अभेदनयका अवलम्बन लिया गया था और कार्यमें कारणका उपचार किया गया था। परन्तु यहाँ पर कषाय अन्य है और अनुभाग अन्य है यह विवक्षा की गई है, क्योंकि यहाँ कार्य और कारणमें भेदविवक्षाका अवलम्बन लिया गया है। और कार्य ही कारण नहीं होता, क्योंकि इन दोनोंके एक होनेका निषेध है। इसलिए इस प्रकारके अभिप्रायसे यह प्ररूपणा प्रवृत्त हुई है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। अब सूत्रके अर्थका विवरण करते हैं—'एक्कम्हि दु अणुभागे' इस वचन द्वारा गाथा सूत्रके अंशके शब्दार्थका परामर्श करके तदनुसार जो कषाय-उदयस्थान है वह अनुभाग है इस प्रकार उसका अर्थनिर्देश किया। कषाय ही अनुभाग नहीं है किन्तु असंख्यात लोकप्रमाण भेदोंको लिये हुए जो कषाय-उदयस्थान है वह यहाँ पर अनुभाग है ऐसी विवक्षा की है यह इस सूत्रका भावार्थ है।

* 'एगकालेण' इस पदका अर्थ कषायोपयोगाद्धास्थान है ऐसा कहा गया है।

§ १५५. एगकालेणे त्ति एत्थतणकालसद्दो समवायवाचओ त्ति पुव्विल्लपरूवणाए वक्खाणिदो। एत्थ पुण तहा ण घेप्पइ, किंतु एसो कालसद्दो कालोवजोगवग्गणाण वाचओ। तदो 'एगकालेणे त्ति' वुत्ते एगेण कसायोवजोगद्धट्ठाणेणे त्ति भणिदं होदि।

* एसा सण्णा।

§ १५६. एसा अणंतरपरूविदा सण्णा पवाइज्जंतोवएसेण णायव्वा त्ति भणिदं होइ।

* तदो पुच्छा।

§ १५७. एदं सण्णाविसेसमवलंबिय तदो गाहासुत्ताणुसारेण एसा पुच्छा कायव्वा त्ति वुत्तं होइ। केरिसी सा पुच्छा त्ति आसंकाए उत्तरमाह—

* 'का च गदी एक्कम्हि कसायउदयट्ठाणे एक्कम्हि वा कसायउवजोगद्धट्ठाणे भवे।

§ १५८. णिरयादिगदीणं मज्झे का णाम गदी कोहादीणमण्णदरकसायपडिबद्धे एक्कम्हि चेव कसायुदयट्ठाणे एक्कम्हि चेव वा कसायोवजोगद्धट्ठाणे एगसमएणुवजुत्ता भवे किमेवंविहसंभवो अत्थि वा ण वेत्ति पुच्छिदं होदि। संपहि 'विसरिसमुवजुज्जदे का च' त्ति एदं चरिमावयवमस्सियूण विसरिसोवजोगविसयं विदियं पुच्छावक्कमाह—

§ १५५ एगकालेण' इस पदमें आया हुआ काल शब्द समवायवाचक है ऐसी पिछली प्ररूपणामे कह आये हैं। परन्तु यहाँ पर उस प्रकार ग्रहण नहीं करना है, किन्तु यह काल शब्द कालोपयोग वर्गणाओंका वाचक है। इसलिए 'एगकालेण' ऐसा कहनेपर उसका अर्थ एक कषायोपयोगाद्धास्थान होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* यह संज्ञा है।

§ १५६. अनन्तर पूर्व कही गई यह संज्ञा प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार जानना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* इसके बाद पृच्छा करनी चाहिए।

§ १५७. इस संज्ञाविशेषका अवलम्बन लेकर अनन्तर गाथासूत्रके अनुसार यह पृच्छा करनी चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है। वह पृच्छा किस प्रकार की है ऐसी आशंका होनेपर उत्तरका कथन करते है—

* एक कषाय उदयस्थानमें अथवा एक कषाय उपयोगाद्धास्थानमें कौन गति होती है।

§ १५८. नरकादि गतियोंमेंसे कौन गति क्रोधादिकमेंसे अन्यतर कषाय-सम्बन्धी एक ही कषाय उदयस्थानमें अथवा एक ही कषायोपयोगाद्धास्थानमे एक समयमें उपयुक्त होती है। क्या इस प्रकारका सम्भव है अथवा नहीं है यह इस पृच्छाका तात्पर्य है। अब विसरिसमुवजुज्जदे का च' इस प्रकार इस अन्तिम अंशका आश्रय कर विसदृश उपयोगविषयक दूसरे पृच्छावाक्यको कहते है—

*** अथवा अणेगेसु कसायउदयट्ठाणेसु अणेगेसु वा कसायउवजोगद्ध-ट्ठाणेसु का च गदी।**

§ १५९. अणेगेसु कसायउदयट्ठाणेसु अणेगेसु वा कसायोवजोगद्धट्ठाणेसु एग-समयम्मि उवजुत्ता भवे इदि पुच्छाहिसंबंधो अहियारवसेणेत्थ वि जोजेयव्वो।

*** एसा पुच्छा।**

§ १६०. एसा अणंतरपरूविदा दुविहा पुच्छा एदम्मि गाहासुत्ते पडिबद्धा त्ति भणिदं होदि। एवमेदम्मि उवदेसे पुच्छाभेदमुवसंदरिसिय संपहि एदिस्से पुच्छाए णिण्णयकरणट्ठमिदमाह—

*** अयं णिद्देसो।**

§ १६१. सुगमो।

*** तसा एक्केक्कम्मि कसायुदयट्ठाणे आवलियाए असंखेज्जदिभागो।**

§ १६२. सो च दुविहो णिद्देसो—कसायुदयट्ठाणविसयो कसायोवजोगद्धट्ठाण-विसयो च। तत्थ ताव कसायुदयट्ठाणेसु तसजीवे अस्सियूण पयदपरूवणट्ठमेदं सुत्तमोइण्णं। तं जहा—तसकाइया जीवा एक्केक्कम्मि कसायुदयट्ठाणे उक्कस्सेण आवलि-

---

* अथवा अनेक कषाय उदयस्थानोंमें अथवा अनेक कषाय-उपयोगाद्धास्थानोंमें कौन गति उपयुक्त होती है।

§ १५९. अनेक कषाय-उदयस्थानोंमें अथवा अनेक कषायोपयोगाद्धास्थानोंमें एक समयमें उपयुक्त कौन गति होती है इस प्रकार अधिकारके वशसे यहाँ पर भी पृच्छाका सम्बन्ध कर लेना चाहिए।

* यह पृच्छा है।

§ १६० यह अनन्तर पूर्व कही गईं दो प्रकारकी पृच्छायें इस गाथासूत्रसे प्रतिबद्ध हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस प्रकार इस उपदेशमें पृच्छाभेदको दिखलाकर अब इस पृच्छाका निर्णय करनेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

* यह निर्देश है।

§ १६१. यह सूत्र सुगम है।

* त्रसजीव एक-एक कषाय उदयस्थानमें अवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं।

§ १६२. यह निर्देश दो प्रकारका है—कषाय-उदयस्थानविषयक और कषायोपयोगा-द्धास्थानविषयक। वहाँ सर्व प्रथम कषाय-उदयस्थानोंमें त्रसजीवोंका आश्रयकर प्रकृत विषयकी प्ररूपणा करनेके लिए यह सूत्र आया है। यथा—त्रसकायिक जीव एक-एक कषाय-उदयस्थानमें उत्कृष्टरूपसे आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं। इस वचनसे त्रसजीव नियमसे अनेक कषाय-उदयस्थानोंमें रहते हैं इस बातका ज्ञान हो जाता है, क्योंकि आवलिके

याए असंखेज्जदिभागमेत्ता हवंति । एदेण तसजीवा णियमा अणेगेसु कसायुदयट्ठाणेसु अच्छंति त्ति जाणाविदं । किं कारणं ? आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तजीवाणं जइ एगं कसायुदयट्ठाणमुवलब्भदे तो जगपदरासंखेज्जभागमेत्तस्स तसजीवरासिस्स केत्तियाणि कसायुदयट्ठाणाणि लहामो त्ति तेरासियं कादूण जोइदे असंखेज्जसेढिमेत्ताणं कसायुदयट्ठाणाणमागमणदंसणादो । जइ वि एत्थ सव्वेसु कसायुदयट्ठाणेसु तसजीवाणं सरिसभावेणावट्ठाणसंभवो णत्थि तो वि समकरणं कादूण तेरासियविहाणमेदमणुगतव्वं । जेणेवमेत्तियमेत्तेसु कसायुदयट्ठाणेसु एक्ककालेण तसजीवरासी अच्छदि तेण पढमपुच्छाए संभवमोसारिय 'विसरिसमुवजुज्जदे का च' त्ति एदिस्से विदियपुच्छाए चेय संभवो पदरिसिओ होइ । एवं णिरयादिगदीणं पि पादेक्कणिरुंभणं कादूण पयदपरूवणा णिरवसेसमणुगंतव्वा, एक्केक्कम्मि कसायोदयट्ठाणे आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता जीवा होंति त्ति एदेण भेदाभावादो । एवं कसायुदयट्ठाणेसु पयदणिद्देसं कादूण संपहि कसायुवजोगद्धट्ठाणेसु पयदत्थपरूवणट्ठमाह—

*** कसायउवजोगद्धट्ठाणेसु पुण उक्कस्सेण असंखेज्जाओ सेढीओ ।**

§ १६३. एक्केक्कम्मि कसाए उवजोगद्धट्ठाणे तसजीवा उक्कस्सेणासंखेज्जदिभागमेत्ता अच्छंति त्ति वुत्तं होदि । किं कारणं ? अंतोमुहुत्तमेत्तकसायोवजोगद्धट्ठाणेसु सव्वो तसजीवरासी जहापविभागमवचिट्ठदि त्ति कादूण तेरासियकमेण जोइदे असंखेज्ज-

---

असंख्यातवें भागप्रमाण जीवोंका यदि एक कषाय-उदयस्थान प्राप्त होता है तो जगप्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण त्रसजीवराशिके कितने कषाय-उदयस्थान प्राप्त होंगे इस प्रकार त्रैराशिक करके देखनेपर असंख्यात जगश्रेणिप्रमाण कषाय-उदयस्थानोंका आगमन देखा जाता है। यद्यपि यहाँपर समस्त कषाय-उदयस्थानोंमें त्रसजीवोंका सदृशरूपसे अवस्थान सम्भव नहीं है तो भी समीकरण करके यह त्रैराशिकविधान जानना चाहिए। यतः इस प्रकार इतनेमात्र कषाय-उदयस्थानोंमें एक कालमें त्रस जीवराशि रहती है, इसलिए प्रथम पृच्छा यहाँ सम्भव नहीं, इसलिये उसका अपसरण कर 'विसरिसमुवजुज्जदे का च' इस प्रकार इस दूसरी पृच्छाकी ही यहाँ सम्भावना दिखलाई है। इसी प्रकार नरकादि गतियोंमेंसे प्रत्येक गतिको विवक्षित कर प्रकृत प्ररूपणा पूरी जाननी चाहिए, क्योंकि एक-एक कषाय-उदयस्थानमें आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण जीव होते हैं इस प्रकार इस कथनकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है। इस प्रकार कषाय-उदयस्थानोंमें प्रकृत विषयका निर्देश करके सब कषायोपयोगाद्धास्थानोंमें प्रकृत अर्थका कथन करनेके लिए कहते हैं—

* किन्तु कषायोपयोगकालस्थानोंमें उत्कृष्टरूपसे असंख्यात जगश्रेणिप्रमाण होते हैं।

§ १६३. एक-एक कषाय-उपयोगाद्धास्थानमें त्रस जीव उत्कृष्टरूपसे असंख्यातवें भागमात्र होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है, क्योंकि अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कषाय-उपयोगाद्धास्थानोंमें समस्त त्रसजीवराशि यथा प्रविभागके अनुसार रहती है यह विधि करके त्रैराशिक-

सेढिमेत्ताणं जीवाणमेक्कम्मि कसायुवजोगद्धट्ठाणे समुवलंभादो । जइ वि सव्वेसु कसायोवजोगद्धट्ठाणेसु समपविभागेण तसजीवरासीए अवट्ठाणसंभवो णत्थि तो वि समकरणविहाणेणेदं तेरासियमणुगंतव्वं । एत्थ वि णिरयादिगदीणं पादेक्कणिरुंभणं कादूण पयदपरूवणा समयाविरोहेणाणुगंतव्वा । तदो एत्थ वि सो चेव भावत्थो अणेगेसु कसायोवजोगद्धट्ठाणेसु णियमा सव्वा गदी उवजुज्जदि त्ति । संपहि एदस्स चेव भावत्थस्स फुडीकरणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

*** एवं भणिदं होइ सव्वगदीओ णियमा अणेगेसु कसायुदयट्ठाणेसु अणेगेसु च कसायउवजोगद्धट्ठाणेसु त्ति ।**

§ १६४. कुदो पुव्वुत्तेण णाएण तहाभावसिद्धीए णिव्वाहमुवलंभादो[1] । एवमेदं परूविय संपहि पयदविसये जीवप्पाबहुअपदुप्पायणट्ठमुवरिमं पबंधमाह—

*** तदो एवं परूवणं कादूण णवहि पदेहि अप्पाबहुअं ।**

§ १६५. एवं कसायुदयट्ठाणेसु उवजोगद्धट्ठाणेसु च जीवाणमवट्ठाणकमं परूविय तदो पयदविसये तसजीवाणमप्पाबहुअमिदाणिं कस्सामो त्ति भणिदं होदि । तं कथं कीरदि त्ति भणिदे 'णवहिं पदेहिं' कायव्वमिदि णिद्दिट्ठं । काणि ताणि णवपदाणि ?

क्रमसे देखनेपर एक-एक कषाय-उपयोगाद्धास्थानमें असंख्यात जगश्रेणिप्रमाण जीव उपलब्ध होते हैं। यद्यपि उक्त सभी कषाय-उपयोगाद्धास्थानोंमें समान प्रविभागसे त्रसजीवराशिका अवस्थान सम्भव नहीं है तो भी समीकरण विधानके अनुसार यह त्रैराशिक जानना चाहिए। यहाँपर भी नरकादि गतियोंमेंसे प्रत्येक गतिको विवक्षित कर आगमानुसार प्रकृत प्ररूपणा जानना चाहिए। इसलिए यहाँपर भी वही तात्पर्य है कि अनेक कषाय-उपयोगाद्धास्थानोंमें नियमसे सब गतियाँ प्रयुक्त होती हैं। अब इसी भावार्थका स्पष्टीकरण करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

*** इस प्रकार पूर्वोक्त कथनका यह तात्पर्य है कि सभी गतियाँ अनेक कषाय उदयस्थानोंमें और अनेक कषाय-उपयोगकालस्थानोंमें नियमसे हैं ।**

§ १६४. क्योंकि पूर्वोक्त न्यायसे इस प्रकारसे सिद्धि निर्बाध पाई जाती है। इस प्रकार इसका कथन करके अब प्रकृत विषयमें जीव-अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिए आगेका प्रबन्ध कहते हैं—

*** इस प्रकार उक्त कथन करके नौ पदों द्वारा अल्पबहुत्व करना चाहिए ।**

§ १६५. इस प्रकार कषाय-उदयस्थानोंमे और उपयोगाद्धास्थानोंमें जीवोंके अवस्थान-क्रमका कथन करके तदनन्तर प्रकृत विषयमे इस समय त्रसजीवोंका अल्पबहुत्व करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। वह कैसे किया जाता है ऐसी पृच्छा होनेपर नौ पदोंके द्वारा करना चाहिए यह निर्देश किया है।

शंका—वे नौ पद कौन हैं ?

१ आ०प्रतौ णिव्वाहणुवलंभादो इति पाठ. ।

माणादीणमेक्केक्कस्स कसायस्स जहण्णुक्कस्साजहण्णाणुक्कस्सभेयभिण्णकसायुदयट्ठाण-पडिबद्धाण तिण्हं पदाणं कसायोवजोगद्धट्ठाणेहिं तहा चेव तिहाविहत्तेहिं संजोगेण समुप्पण्णाणि णवपदाणि होंति । तं जहा—कोहादीणमुक्कस्सकसायुदयट्ठाणे कसायोव-जोगद्धाए च पडिबद्धमेक्कं पदं । तेसिं चेवुक्कस्सकसायुदयट्ठाणे जहण्णकसायोवजोगद्धाए च विदियं । उक्कस्सकसायुदयट्ठाणे अजहण्णाणुक्कस्सकसायोवजोगद्धासु च तदियं । जहण्णकसायुदयट्ठाणे उक्कस्सकसायोवजोगद्धाए च चउत्थं । जहण्णकसायुदयट्ठाणे जहण्णकसायोवजोगद्धाए च पंचमं । जहण्णकसायुदयट्ठाणे अजहण्णाणुक्कस्सकसायोव-जोगद्धट्ठाणेसु च छट्ठं । अजहण्णाणुक्कस्सकसायुदयट्ठाणेसु उक्कस्सकसायोवजोगद्धाए च सत्तम । अजहण्णाणुक्कस्सकसायुदयट्ठाणेसु जहण्णकसायोवजोगद्धाए च अट्ठमं । अजहण्णाणुक्कस्सकसायुदयट्ठाणेसु अजहण्णाणुक्कस्सकसायोवजोगद्धट्ठाणेसु च णवममिदि । एवमेदेहिं णवहि पदेहिं तसजीवाणं थोवबहुत्तमेत्तो अहिकीरदि त्ति सुत्तत्थसब्भावो ।

* तं जहा ।

§ १६६. सुगममेदं पुच्छावक्कं । एवं च पुच्छाविसईकयस्स अप्पाबहुअस्स माणादिकसायपरिवाडीए एसो णिद्देसो ।

* **उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे उक्कस्सियाए माणोवजोगद्धाए जीवा थोवा ।**

---

समाधान—मानादि कषायोंमेंसे एक-एक कषायके जघन्य, उत्कृष्ट और अजघन्यानुत्कृष्ट इस प्रकारसे भेदरूप कषाय-उदयस्थानोंसे सम्बन्ध रखनेवाले तीन पदोंके तथा उसी प्रकार तीन रूपसे विभक्त हुए कषाय-उपयोगाद्धास्थानोंके संयोगसे उत्पन्न हुए नौ पद होते हैं। यथा—क्रोधादिके उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें और कषाय-उपयोगकालस्थानमे प्रतिबद्ध एक पद है। उन्हींके उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमे और जघन्य कषाय उपयोगकालस्थानमें प्रतिबद्ध दूसरा पद है। उत्कृष्ट कषाय उदयस्थानमे और अजघन्यानुत्कृष्ट कषाय-उपयोगकालस्थानोंमे प्रतिबद्ध तीसरा पद है। जघन्य कषाय-उदयस्थानमें और उत्कृष्ट कषाय उपयोगकालस्थानमे प्रतिबद्ध चौथा पद है। जघन्य कषाय उदयस्थानमें और जघन्य कषाय-उपयोगकालस्थानमे प्रतिबद्ध पाँचवाँ पद है। जघन्य कषाय-उदयस्थानमे और अजघन्यानुत्कृष्ट कषाय-उपयोग-कालस्थानोंमे प्रतिबद्ध छठा पद है। अजघन्यानुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमे और उत्कृष्ट कषाय-उपयोगकालस्थानमे प्रतिबद्ध सातवाँ पद है। अजघन्यानुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और जघन्य कषाय-उपयोगकालस्थानमें प्रतिबद्ध आठवाँ स्थान है। अजघन्यानुत्कृष्ट कषाय-उदय-स्थानोंमे और अजघन्यानुत्कृष्ट कषाय-उपयोगकालस्थानोंमें प्रतिबद्ध नौवाँ स्थान है। इस प्रकार इन नौ पदोंके द्वारा आगे त्रसजीवोंका अल्पबहुत्व अधिकृत है यह इस सूत्रके अर्थका आशय है।

* वह कैसे ?

§ १६६. यह पृच्छावाक्य सुगम है। इस प्रकार पृच्छाके विषयभूत हुए अल्पबहुत्वका मानादि कषायोंके क्रमसे यह निर्देश है।

* उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और उत्कृष्ट मानोपयोगकालमें जीव सबसे थोड़े हैं।

§ १६७. उक्कस्सकसायोदयट्ठाणं णाम उक्कस्साणुभागोदयजणिदो कसायपरिणामो असंखेज्जलोयमेयभिण्णाणमज्झवसाणट्ठाणाणं चरिमज्झवसाणट्ठाणमिदि वुत्तं होदि। 'उक्कस्समाणोवजोगद्धाए' त्ति वुत्ते माणकसायस्स उक्कस्सकालोवजोगवग्गणाए गहणं कायव्वं। तदो एदेहिं दोहिं उक्कस्सपदेहिं माणकसायपडिबद्धेहिं अण्णोण्णसंजुत्तेहिं परिणदा तसजीवा थोवा त्ति सुत्तत्थसंबंधो। कुदो एदेसिं थोवत्तमवगम्मदे? ण, दोण्हं पि उक्कस्सभावेण परिणमंताणं जीवाणं सुट्ठु विरलाणमुवएसादो। किं माणमेदेसिं? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। जइ वि उक्कस्समाणोवजोगद्धाए असंखेज्जसेढिमेत्तजीवाणमवट्ठाणसंभवो तो वि उक्कस्सकसायुदयट्ठाणे णिरुद्धे तत्थावलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो चेव जीवरासी होदि, पयारंतरासंभवादो।

*** जहण्णियाए माणोवजोगद्धाए जीवा असंखेज्जगुणा।**

§ १६८. एत्थ उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे त्ति अहियारसंबंधो कायव्वो। तेण उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे जहण्णियाए माणोवजोगद्धाए च परिणदा जीवा पुव्वि-

---

§ १६७. उत्कृष्ट अनुभागके उदयसे उत्पन्न हुए तथा असंख्यात लोकप्रमाण अध्यवसानस्थानोंमेंसे अन्तिम अध्यवसानस्थानरूप कषाय परिणामकी उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थान संज्ञा है। 'उत्कृष्ट मानोपयोगाद्धामें' ऐसा कहनेपर मानकषायकी उत्कृष्ट कालोपयोगवर्गणाका ग्रहण करना चाहिए। इसलिए मानकषायसे सम्बन्ध रखनेवाले और परस्पर संयुक्त हुए इन दोनों उत्कृष्ट पदरूपसे परिणत हुए त्रसजीव सबसे थोड़े हैं ऐसा सूत्रके अर्थका सम्बन्ध करना चाहिए।

शंका—इसका स्तोकपना किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि दोनों ही पदोंके उत्कृष्टभावसे परिणत हुए जीव बहुत विरल होते हैं ऐसा परमागमका उपदेश है

शंका—इनका प्रमाण क्या है?

समाधान—इनका प्रमाण आवलिके असंख्यातवें भागमात्र है। यद्यपि मानकषायके उत्कृष्ट उपयोगकालमें असंख्यात जगश्रेणिप्रमाण त्रसजीवोंका अवस्थान सम्भव है तो भी उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानसे युक्त उसमें आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण ही जीवराशि होती है, क्योंकि यहाँ अन्य प्रकार सम्भव नहीं है।

विशेषार्थ—यहाँ उदयस्थानका अर्थ कषायपरिणाम और उपयोगाद्धाका अर्थ कषायपरिणामका काल लिया है। ये दोनों जिन जीवोंके उत्कृष्ट होते है उनकी संख्या आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाणसे अधिक नहीं पाई जाती यह उक्त कथनका तात्पर्य है। आगे भी इसी प्रकार तात्पर्य घटित कर लेना चाहिए।

*** उनसे जघन्य मानकषायसम्बन्धी उपयोगकालमें स्थित हुए जीव असंख्यात गुणे हैं।**

§ १६८. इस सूत्रमें 'उत्कृष्ट कषाय उदयस्थानमें' अधिकारवश इस पदका सम्बन्ध कर लेना चाहिए। इससे उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें और मानकषायके जघन्य उपयोगकालमें

ल्लेहिंतो असंखेज्जगुणा त्ति सुत्तत्थो। एसो वि रासी आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो चेव। किंतु उक्कस्समाणोवजोगद्धाए परिणममाणजीवेहिंतो जहण्णमाणोवजोगद्धाए परिणममाणजीवा बहुआ होंति, जहण्णकालस्स पउरं संभवादो। तदो सिद्धमसंखेज्जगुणत्तं। को गुणगारो? आवलियाए असंखेज्जदिभागो।

*** अणुक्कस्समजहण्णासु माणोवजोगद्धासु जीवा असंखेज्जगुणा।**

§ १६९. एत्थ वि पुव्वं व अहियारसंबंधो कायव्वो। तदो एसो वि जीवरासी आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो चेव होइ। होंतो वि पुव्विल्लरासीदो एसो असंखेज्जगुणो। किं कारणं? जहण्णिया माणोवजोगद्धा एयवियप्पा चेव, अजहण्णाणुक्कस्समाणोवजोगद्धाओ पुण अणेयवियप्पाओ। तेणेत्थ बहुवियप्पसंभवादो बहुओ जीवरासी परिणमदि त्ति सिद्धमसंखेज्जगुणत्तं। गुणगारो च आवलियाए असंखेज्जदिभागो।

---

मानकषायरूपसे परिणत हुए जीव पूर्वोक्त जीवोंसे असंख्यातगुणे होते हैं इस प्रकार सूत्रका अर्थ फलित हो जाता है। यह राशि भी आवलिके असंख्यातवे भागप्रमाण ही है। किन्तु उत्कृष्ट मानोपयोगकालमे परिणमन करते हुए जीवोंसे जघन्य मनोपयोगकालमे परिणमन करनेवाले जीव बहुत होते हैं, क्योंकि जघन्य काल प्रचुररूपसे पाया जाता है, इसलिये ये जीव असंख्यातगुणे हैं यह सिद्ध हुआ।

शंका—गुणकार क्या है?

समाधान—गुणकार आवलिके असंख्यातवे भागप्रमाण है।

*** उनसे अनुत्कृष्ट-अजघन्य मानकषायसम्बन्धी उपयोगकालोंमें जीव असंख्यातगुणे हैं।**

§ १६९ यहॉपर भी पहलेके समान अधिकारका सम्बन्ध करना चाहिए। इसलिए यह जीवराशि भी आवलिके असंख्यातवे भागप्रमाण ही होती है। उतनी होती हुई भी पिछली राशिसे यह राशि असंख्यातगुणी है, क्योंकि मानोपयोगका जघन्य काल एक ही प्रकारका है, किन्तु अजघन्य-अनुत्कृष्ट मानोपयोगकाल अनेक भेदोको लिये हुए है। इसलिए यहॉपर बहुत विकल्प सम्भव होनेसे बहुत जीवराशि मानकषायरूपसे परिणमन करती है, इसलिए पूर्वोक्त जीवराशिसे यह राशि असंख्यातगुणी है यह सिद्ध हुआ। यहॉ गुणकार आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

विशेषार्थ—मानकषायके उत्कृष्टकाल और जघन्यकालको छोड़कर शेष समस्त काल अजघन्य-अनुत्कृष्टकालमें परिगृहीत हो जाता है। यतः इस कालके भीतर मानकषायरूपसे परिणत सब त्रसजीवराशि नहीं ली गई है। किन्तु उत्कृष्ट मानकषायरूपसे परिणत त्रसजीवराशि ही ली गई है, इसलिए वह आवलिके असंख्यातवे भागप्रमाण होकर भी पूर्वोक्त जीवराशिसे असंख्यातगुणी बन जाती है, क्योंकि मानकषायके जघन्यकालका प्रमाण एक समय मात्र है और अजघन्य-अनुत्कृष्टकाल असंख्यात समयप्रमाण है, इसलिए उक्तरूपसे जीवराशि बन जाती है। यहॉ सर्वत्र त्रस जीवराशिकी अपेक्षा यह अल्पबहुत्व बतलाया जा रहा है यह ध्यान रहे।

* जहण्णए कसायुदयट्ठाणे उक्कस्सियाए माणोवजोगद्धाए जीवा असंखेज्जगुणा ।

§ १७०. सव्वजहण्णयमणुभागोदयट्ठाणं तसजीवपाओग्गमेत्थ जहण्णकसायुदयट्ठाणमिदि विवक्खियं । तेण जहण्णए कसायुदयट्ठाणे उक्कस्समाणोवजोगद्धापडिबद्धे वट्टमाणो जीवरासी असंखेज्जगुणो त्ति सुत्तत्थसंबंधो । एसो वि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो चेव, एक्केक्कम्मि कसायुदयट्ठाणे णिरुद्धे आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो चेव तस जीवरासी होदि त्ति पुव्वमेव णिण्णीयत्तादो । णवरि उक्कस्सकसायुदयट्ठाणादो जहण्णकसायुदयट्ठाणस्स सुलहत्तेण पुव्विल्लरासीदो एसो असंखेज्जगुणो जादो । एत्थ गुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

* जहण्णियाए माणोवजोगद्धाए जीवा असंखेज्जगुणा ।

§ १७१. एत्थ जहण्णकसायुदयट्ठाणग्गहणमणुवट्टदे, तेणेवमहिसंबंधो कायव्वो— जहण्णए कसायुदयट्ठाणे जहण्णियाए माणोवजोगद्धाए च अक्कमेण परिणदा जीवा पुव्विल्लेहिंतो असंखेज्जगुणा त्ति । एत्थ कारणं सुगमं । गुणगारो च आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो ।

* अणुक्कस्समजहण्णासु माणोवजोगद्धासु जीवा असंखेज्जगुणा ।

§ १७२. एसो वि जीवरासी आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो होदूण पुव्विल्लादो असंखेज्जगुणो होइ । कारणं सुगमं ।

---

* उनसे जघन्यकषाय उदयस्थानमें और उत्कृष्ट मानकषायसम्बन्धी उपयोगकालमें जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ १७० सबसे जघन्य अनुभागोदयस्थान त्रसजीवोंके योग्य जघन्य कषाय-उदयस्थान है ऐसी यहाँपर विवक्षाकी गई है । तदनुसार उत्कृष्ट मानोपयोगकालसे सम्बन्ध रखनेवाले जघन्य कषायोदयस्थानमें विद्यमान जीवराशि असंख्यगुणी है ऐसा यहाँ सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध करना चाहिए । यह जीवराशि भी आवलिके असंख्यातवे भागप्रमाण ही है, क्योंकि एक-एक कषाय-उदयस्थानमें आवलिके असंख्यातवे भागप्रमाण ही त्रसराशि होती है, इस बातका पहले ही निर्णय कर आये हैं । इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट कषायोदयस्थानसे जघन्य कषायोदयस्थान सुलभ है, इसलिए पूर्वोक्त राशिसे यह राशि असंख्यातगुणी हो जाती है । यहाँपर गुणकार आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

* उनसे जघन्य मानकषायोपयोगकालमें जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ १७१ यहाँपर 'जघन्य कषाय-उदयस्थान' पदकी अनुवृत्ति होती है । इसलिए ऐसा सम्बन्ध करना चाहिए । जघन्य कषाय उदयस्थानमें और जघन्य मानोपयोगकालमें युगपत् परिणत हुए जीव पिछले जीवोंसे असंख्यातगुणे हैं । यहाँपर कारणका कथन सुगम है । गुणकार आवलिके असंख्यातवे भागप्रमाण है ।

* उनसे अनुत्कृष्ट-अजघन्य मानोपयोगकालोंमें जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ १७२ यह भी जीवराशि आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण होकर पिछली राशिसे असंख्यातगुणी है । कारणका कथन सुगम है ।

* अणुक्कस्समजहण्णेसु अणुभागट्ठाणेसु उक्कस्सियाए माणोवजोगद्धाए जीवा असंखेज्जगुणा ।

§ १७३. पुव्विल्लरासी आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो, एसो वुण असंखेज्जसेढिमेत्तो, अजहण्णाणुक्कस्सकसायुदयट्ठाणेसु णिरुद्धेसु तदुवलंभसंभवादो । तम्हा पुव्विल्लादो असंखेज्जगुणो जादो । गुणगारो वि असंखेज्जाओ सेढीओ ।

* जहण्णियाए माणोवजोगद्धाए जीवा असंखेज्जगुणा ।

§ १७४. 'अणुक्कस्समजहण्णेसु अणुभागट्ठाणेसु' त्ति पुव्वसुत्तादो अणुवट्टदे । तेणेसो वि रासी असंखेज्जसेढिमेत्तो होदूण पुव्विल्लादो असंखेज्जगुणो जादो, उक्कस्समाणोवजोगद्धापरिणदजीवेहिंतो जहण्णमाणोवजोगद्धापरिणदजीवाणं सरिसकसायुदयट्ठाणविसयाणं तहाभावसिद्धीए बाहाणुवलंभादो ।

* अणुक्कस्समजहण्णासु माणोवजोगद्धासु जीवा असंखेज्जगुणा ।

§ १७५. एत्थ वि 'अणुक्कस्समजहण्णेसु' त्ति अहियारसंबंधो । सेसं सुगमं ।

* एवं सेसाणं कसायाणं ।

§ १७६. जहा माणकसायस्स णवहिं पदेहिं पयदप्पाबहुअविणिण्णयो कओ तहा कोह-माया-लोभाणं पि कायव्वो, विसेसाभावादो । संपहि एदेणेव परत्थाणप्पा-

---

* उनसे अनुत्कृष्ट-अजघन्य अनुभागस्थानोंमें और उत्कृष्ट मानोपयोगकालमें जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ १७३. पिछली राशि आवलिके असंख्यातवे भागप्रमाण है, किन्तु यह राशि असंख्यात जगश्रेणिप्रमाण है, क्योंकि अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें उनकी उपलब्धि सम्भव है । इसलिए पिछली राशिसे यह राशि असंख्यातगुणी है । गुणकार भी असंख्यात जगश्रेणिप्रमाण है ।

* उनसे जघन्य मानोपयोगकालमें जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ १७४. 'अनुत्कृष्ट-अजघन्य अनुभागस्थानोंमें' इस पदकी पूर्व सूत्रसे अनुवृत्ति होती है । इसलिए यह राशि भी असंख्यात जगश्रेणिप्रमाण होकर पिछली राशिसे असंख्यातगुणी बन जाती है, क्योंकि उत्कृष्ट मानोपयोगकालसे युक्त जीवोंसे उक्त जीवोंके समान कषाय-उदयस्थानके विषयभूत ऐसे जघन्य मानोपयोगकालसे युक्त जीवोंके असंख्यातगुणे सिद्ध होनेमें कोई बाधा नहीं आती ।

* उनसे अनुत्कृष्ट-अजघन्य मानकषायसम्बन्धी उपयोगकालोंमें स्थित जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ १७५. यहाँपर भी 'अनुत्कृष्ट-अजघन्य अनुभागस्थानोंमें' इस पदका अधिकारवश सम्बन्ध कर लेना चाहिए । शेष कथन सुगम है ।

* इसी प्रकार शेष कषायोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व जानना चाहिए ।

§ १७६. जिस प्रकार नौ पदोंके आश्रयसे मानकषायके प्रकृत अल्पबहुत्वका निर्णय किया उसी प्रकार क्रोध, माया और लोभकषायकी अपेक्षा भी करना चाहिए, क्योंकि उससे

बहुअं पि साहेयव्वमिदि पदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

* एत्तो छत्तीसपदेहिं अप्पाबहुअं कायव्वं ।

§ १७७. एदम्हादो चेव सत्थाणप्पाबहुआदो साहेयूण परत्थाणप्पाबहुअं पि छत्तीसपदेहिं पडिबद्धं कायव्वमिदि वुत्तं होइ । तं जहा—उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे उक्कस्सियाए माणोवजोगद्धाए उवजुत्तजीवा थोवा । उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे उक्कस्सियाए कोधोवजोगद्धाए परिणदजीवा विसेसाहिया । एत्थ कारणं माणद्धादो कोधद्धा विसेसाहिया, तेण रासी वि तप्पडिभागो चेव होइ त्ति वत्तव्वं । विसेसो पुण पवाइज्जंतोवएसेणावलियाए असंखेज्जदिभागपडिभागिओ । एवमुवरिमपदेसु वि विसेसाहियपमाणमणुगंतव्वं । उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे उक्कस्सियाए मायोवजोगद्धाए परिणदजीवा विसेसाहिया । उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे उक्कस्सियाए लोहोवजोगद्धाए जीवा विसेसाहिया । उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे जहण्णियाए माणोवजोगद्धाए जीवा असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे जहण्णियाए कोहोवजोगद्धाए जीवा विसेसाहिया । उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे जहण्णियाए मायोवजोगद्धाए जीवा विसेसाहिया । उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे जहण्णियाए लोभोवजोगद्धाए जीवा विसेसाहिया । उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे अजहण्णमणुक्कस्सियासु माणोवजोगद्धासु

---

इन तीनों कषायोंके अल्पबहुत्वके कथनमें कोई भेद नहीं है । अब इसी अल्पबहुत्वके आश्रयसे परस्थान अल्पबहुत्वकी भी सिद्धि कर लेनी चाहिए इस बातका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

* अब इससे आगे छत्तीस पदोंके द्वारा अल्पबहुत्व करना चाहिए ।

§ १७७. इसी स्वस्थानअल्पबहुत्वसे साधकर छत्तीस पदोंसे सम्बन्ध रखनेवाला परस्थान अल्पबहुत्व करना चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यथा—उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें और उत्कृष्ट मानोपयोगकालमें उपयुक्त हुए जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें और उत्कृष्ट क्रोधोपयोगकालमें स्थित जीव विशेष अधिक हैं । यहाँपर मानके कालसे क्रोधके कालका विशेष अधिक होना इसका कारण है, इसलिए जीवराशि भी उसी प्रतिभागके हिसाबसे अधिक है ऐसा यहाँ कहना चाहिए । किन्तु विशेषका प्रमाण प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना है । इसी प्रकार आगेके पदोंमें भी विशेष अधिकका प्रमाण जान लेना चाहिए । उनसे उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें और उत्कृष्ट मायोपयोगकालमें स्थित जीव विशेष अधिक हैं । उनसे उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें और उत्कृष्ट लोभोपयोगकालमें स्थित जीव विशेष अधिक हैं । उनसे उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें और जघन्य मानोपयोगकालमें स्थित जीव असंख्यातगुणे हैं । गुणकार क्या है ? आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण गुणकार है । उनसे उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें और जघन्य क्रोधोपयोगकालमें जीव विशेष अधिक हैं । उनसे उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें और जघन्य मायोपयोगकालमें जीव विशेष अधिक हैं । उनसे उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें और जघन्य लोभोपयोगकालमें जीव विशेष अधिक हैं । उनसे उत्कृष्ट कषाय उदयस्थानमें और अजघन्य-अनुत्कृष्ट मानोपयोगकालोंमें जीव असंख्यातगुणे

जीवा असंखेज्जगुणा। गुणगारो पुव्वुत्तो चेव वत्तव्वो। उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे अजण्णमणुक्कस्सियासु कोधोवजोगद्धासु जीवा विसेसाहिया। उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे अजहण्णमणुक्कस्सियासु मायोवजोगद्धासु जीवा विसेसाहिया। उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे अजहण्णमणुक्कस्सियासु लोभोवजोगद्धासु जीवा विसेसाहिया। जहण्णए कसायुदयट्ठाणे उक्कस्सियाए माणोवजोगद्धाए जीवा असंखेज्जगुणा। को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। जहण्णए कसायुदयट्ठाणे उक्कस्सिया० कोहोवजोगद्धा० जीवा विसेसाहिया। जहण्णए कसायुदयट्ठाणे उक्कस्सिया० मायोवजोगद्धा० जीवा विसेसाहिया। जहण्णए कसायुदयट्ठाणे उक्कस्सिया० लोभोवजोगद्धा० जीवा विसेसाहिया। जहण्णए कसायुदयट्ठाणे जहण्णिया० माणोवजोगद्धा० जीवा असंखेज्ज-गुणा। गुणगारो पुव्वं व वत्तव्वो। जहण्णए कसायुदयट्ठाणे जहण्णिया० कोहोव-जोगद्धा० जीवा विसेसाहिया। जहण्णए कसायुदयट्ठाणे जहण्णिया० मायोवजोगद्धा० जीवा विसेसाहिया। जहण्णए कसायुदयट्ठाणे जहण्णिया० लोहोवजोगद्धा० जीवा विसेसाहिया। जहण्णए कसायुदयट्ठाणे अजहण्णमणुक्कस्सिया० माणोवजोगद्धा० जीवा असंखेज्जगुणा। एत्थ वि सो चेव गुणगारो। जहण्णए कसायुदयट्ठाणे अजहण्ण-मणुक्कस्सियासु कोहोवजोगद्धासु जीवा विसेसाहिया। जहण्णए कसायुदयट्ठाणे अजहण्ण-मणुक्कस्सियासु मायोवजोगद्धासु जीवा विसेसाहिया। जहण्णए कसायुदयट्ठाणे अजहण्ण-मणुक्क० लोभोवजोगद्धासु जीवा विसेसाहिया। अजहण्णमणुक्क० कसायुदयट्ठाणे०

हैं। गुणकार पूर्वोक्त ही कहना चाहिए। उनसे उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें और अजघन्य-अनुत्कृष्ट क्रोधोपयोगकालोंमें जीव विशेष अधिक हैं। उनसे उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें और अजघन्य-अनुत्कृष्ट मायोपयोगकालोंमें जीव विशेष अधिक हैं। उनसे उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें और अजघन्य-अनुत्कृष्ट लोभोपयोगकालोंमें स्थित जीव विशेष अधिक हैं। उनसे जघन्य कषाय-उदयस्थानमे और उत्कृष्ट मानोपयोगकालमें जीव असंख्यातगुणे हैं। गुणकार क्या है ? आवलिके असंख्यातवे भागप्रमाण गुणकार है। उनसे जघन्य कषाय-उदयस्थानमे और उत्कृष्ट क्रोधोपयोगकालमें जीव विशेष अधिक हैं। उनसे जघन्य कषाय-उदयस्थानमें और उत्कृष्ट मायोपयोगकालमें जीव विशेष अधिक है। उनसे जघन्य कषाय-उदयस्थानमें और उत्कृष्ट लोभोपयोगकालमे जीव विशेष अधिक हैं। उनसे जघन्य कषाय उदयस्थानमें और जघन्य मानोपयोगकालमें जीव असंख्यातगुणे हैं। गुणकार पहलेके समान कहना चाहिए। उनसे जघन्य कषाय-उदयस्थानमें और जघन्य क्रोधोपयोगकालमें जीव विशेष अधिक हैं। उनसे जघन्य कषाय-उदयस्थानमें और जघन्य मायोपयोगकालमें जीव विशेष अधिक हैं। उनसे जघन्य कषाय-उदयस्थानमें और जघन्य लोभोपयोगकालमें जीव विशेष अधिक हैं। उनसे जघन्य कषाय-उदयस्थानमें और अजघन्य अनुत्कृष्ट मानोपयोगकालोंमे जीव असंख्यातगुणे हैं। यहाँपर भी वही गुणकार है। उनसे जघन्य कषाय-उदयस्थानमें और अजघन्य-अनुत्कृष्ट क्रोधोपयोगकालोंमें जीव विशेष अधिक हैं। उनसे जघन्य कषाय-उदयस्थान-मे और अजघन्य-अनुत्कृष्ट मायोपयोगकालोमे जीव विशेष अधिक हैं। उनसे जघन्य कषाय-उदयस्थानमे और अजघन्य-अनुत्कृष्ट लोभोपयोगकालोंमें जीव विशेष अधिक हैं। उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और उत्कृष्ट मानोपयोगकालमे जीव असंख्यातगुणे हैं।

उक्कस्सिया० माणोवजोगद्धा० जीवा असंखेज्जगुणा। को गुणगारो ? असंखेज्जाओ सेढीओ। अजहण्णमणुक्क० कसायुदयट्ठाणे० उक्कस्सिया० कोहोवजोगद्धा० जीवा विसेसाहिया। अजहण्णमणुक्क० कसायुदयट्ठाणे० उक्कस्सिया० मायोवजोगद्धा० जीवा विसेसाहिया। अजहण्णमणुक्क० कसायुदयट्ठाणे० उक्क० लोभोव० जीवा विसे०। अजहण्णमणुक्कस्सए० कसायुदयट्ठाणे० जहण्णिया० माणोवजोगद्धा० जीवा असंखेज्जगुणा। अजहण्णमणुक्कस्स० कसायुदयट्ठा० जहण्णिया० कोहोवजोगद्धा० जीवा विसेसाहिया। अजहण्णमणुक्कस्स० कसायुदयट्ठा० जहण्णिया० मायोवजोगद्धा० जीवा विसेसाहिया। अजहण्णमणुक्कस्स० कसायुदयट्ठा० जहण्णिया० लोभोवजोगद्धा० जीवा विसेसाहिया। अजहण्णमणुक्कस्स० कसायुदयट्ठा० अजहण्णमणुक्कस्सियासु माणोवजोगद्धासु जीवा असंखेज्जगुणा। अजहण्णमणुक्कस्स० कसायुदयट्ठा० अजहण्णमणुक्कस्सियासु कोहोवजोगद्धासु जीवा विसेसाहिया। अजहण्णमणुक्कस्स० कसायुदयट्ठा० अजहण्णमणुक्कस्सियासु मायोवजोगद्धासु जीवा विसेसाहिया। अजहण्णमणुक्कस्स० कसायुदयट्ठाणेसु अजहण्णमणुक्कस्सियासु लोभोवजोगद्धासु जीवा विसेसाहिया। एवमोघेण परत्थाणप्पाबहुअमेदं परूविदं। एवं चेव तिरिक्खमणुसगदीसु वि वत्तव्वं, विसेसाभावादो। णिरयगदीसु परत्थाणप्पाबहुअं चिंतिय णेदव्वं। तदो चउत्थीए गाहाए अत्थविहासा समप्पदि त्ति उवसंहारवक्कमाह—

* एवं चउत्थीए गाहाए विहासा समत्ता।

---

गुणकार क्या है ? असंख्यात जगच्छ्रेणिप्रमाण गुणकार है। उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और उत्कृष्ट क्रोधोपयोगकालमे जीव विशेष अधिक हैं। उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और उत्कृष्ट मायोपयोगकालमें जीव विशेष अधिक हैं। उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और उत्कृष्ट लोभोपयोगकालमें जीव विशेष अधिक हैं। उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और जघन्य मानोपयोगकालमें जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और जघन्य क्रोधोपयोगकालमें जीव विशेष अधिक हैं। उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और जघन्य मानोपयोगकालमें जीव विशेष अधिक हैं। उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और जघन्य लोभोपयोगकालमें जीव विशेष अधिक हैं। उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और अजघन्य-अनुत्कृष्ट मानोपयोगकालोंमें जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और अजघन्य-अनुत्कृष्ट क्रोधोपयोगकालोंमें जीव विशेष अधिक हैं। उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और अजघन्य-अनुत्कृष्ट मायोपयोगकालोंमें जीव विशेष अधिक हैं। उनसे अजघन्य-अनुत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानोंमें और अजघन्य-अनुत्कृष्ट लोभोपयोगकालोंमें जीव विशेष अधिक हैं। इस प्रकार ओघसे परस्थान अल्पबहुत्वका कथन किया। इसी प्रकार तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिमें भी कहना चाहिए, क्योंकि ओघकथनसे इनके कथनमें कोई भेद नहीं है। नरकगति और देवगतिमें परस्थान अल्पबहुत्वको विचारकर जानना चाहिए। इसके बाद चौथी गाथाके अर्थका विशेष व्याख्यान समाप्त होता है इस आशयके उपसंहार वाक्यको कहते हैं—

* इस प्रकार चौथी गाथाके अर्थका विशेष व्याख्यान समाप्त हुआ।

§ १७८. सुगममेदं पयदत्थोवसंहारवक्कं । एवमेदं समाणिय संपहि पंचमगाहा-सुत्तस्स जहावसरपत्तमत्थविहासणं कुणमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

*** केवडिगा उवजुत्ता सरिसीसु च वग्गणाकसाएसु चेति एदिस्से गाहाए अत्थविहासा ।**

§ १७९. सुगममेदं, एदिस्से पंचमीए गाहाए अत्थविहासा एत्तो अहिकीरदि त्ति पदुप्पायणफलदात्तो । णवरि गाहाए पुव्वद्धमिदि सद्दपरमुच्चारिय तेण देसामासयेण सव्विस्से चेव गाहाए सपुव्वपच्छद्धाए परामरसो एत्थ कओ दट्ठव्वो । एसा च गाहा कोहादिकसायोवजुत्ताणं परूवणट्ठदाए अट्ठण्हमणियोगद्दाराणं सूचणट्ठमागया । तदो सूचणासुत्तमेदमिति पदुप्पायणट्ठमाह—

*** एसा गाहा सूचणासुत्तं ।**

§ १८०. सुगमं। संपहि किमेदेण सूचिज्जमाणमत्थजादमिच्चासंकाए उत्तरमाह—

*** एदीए सूचिदाणि अट्ठ अणिओगद्दाराणि ।**

§ १८१. एदीए गाहाए कोहादिकसायोवजोगजुत्तजीवाणं परूवणट्ठदाए अट्ठ अणियोगद्दाराणि सूचिदाणि त्ति भणिदं होइ । संपहि काणि ताणि अट्ठ अणिओगद्दाराणि त्ति आसंकिय पुच्छासुत्तमाह—

---

§ १७८ प्रकृत अर्थका उपसंहार करनेवाला यह वचन सुगम है। इस प्रकार इसको समाप्त कर अब पाँचवीं सूत्रगाथाके अवसरप्राप्त अर्थका विशेष व्याख्यान करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* 'सदृश कषायोपयोगवर्गणाओंमें कितने जीव उपयुक्त हैं' इस गाथाके अर्थका विशेष व्याख्यान करते हैं।

§ १७९. यह वचन सुगम है, क्योंकि इस पाँचवीं गाथाके अर्थका विशेष व्याख्यान अधिकार प्राप्त है इस बातका कथन करना इसका फल है। इतनी विशेषता है कि गाथाके पूर्वार्धका शब्दपरक उच्चारण करके उससे देशामर्षकभावसे पूर्वार्ध और उत्तरार्ध सहित पूरी गाथाका परामर्श यहाँपर किया गया जानना चाहिए। यह गाथा क्रोधादि कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंका कथन करनेके लिए आठों अनुयोगद्वारोंका सूचन करनेके लिए आई है। इसलिए यह सूचनासूत्र है इस बातका कथन करनेके लिए कहते हैं—

* यह गाथा सूचनासूत्र है।

§ १८०. यह वचन सुगम है। अब इसके द्वारा क्या अर्थसमूह सूचित किया जानेवाला है इस आशंकाका उत्तर देते हैं—

* इसके द्वारा आठ अनुयोगद्वार सूचित किये गये हैं।

§ १८१ क्रोधादि कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंका कथन करनेके लिए इस गाथा द्वारा आठ अनुयोगद्वार सूचित किये गये हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अब वे आठ अनुयोगद्वार कौनसे हैं ऐसी आशंका कर पृच्छासूत्र कहते हैं—

* तं जहा ।

§ १८२. सुगमं ।

*** संतपरूवणा दव्वपमाणं खेत्तपमाणं फोसणं कालो अंतरं भागाभागो अप्पाबहुगं च ।**

§ १८३. एवमेदाणि अट्ठ अणिओगद्दाराणि एदीए गाहाए सूचिदाणि त्ति वुत्तं[1] होइ । संपहि एदस्स गाहासुत्तस्स कदमम्मि अवयवे कदममणिओगद्दारं पडिबद्धमिदि एदस्स जाणावणट्ठमुवरिमं पबंधमाह—

*** केवडिगा उवजुत्ता त्ति दव्वपमाणाणुगमो ।**

§ १८४. एदम्मि गाहापढमावयवे दव्वपमाणाणुगमो पडिबद्धो त्ति भणिदं होइ, कोहादिकसायेसु उवजुत्ता जीवा केवडिया होंति त्ति पुच्छामुहेणेत्थ तस्स पडिबद्धत्तदंसणादो ।

*** सरिसीसु च वग्गणा-कसाएसु त्ति कालाणुगमो ।**

§ १८५. एदम्मि गाहासुत्तविदियावयवे कालाणुगमो णिबद्धो त्ति भणिदं होदि । कथमेत्थ कालाणुगमस्स णिबद्धत्तमिदि चे ? वुच्चदे—सरिसीसु च एगकसायपडिबद्धासु

* वे जैसे ।

§ १८२ यह वचन सुगम है ।

*** सत्प्ररूपणा, द्रव्यप्रमाण, क्षेत्रप्रमाण, स्पर्शन, काल, अन्तर, भागाभाग और अल्पबहुत्व ।**

§ १८३. इस प्रकार ये आठ अनुयोगद्वार इस गाथा द्वारा सूचित किये गये हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब इस गाथासूत्रके किस अवयवमें कौनसा अनुयोद्वार प्रतिबद्ध है इस प्रकार इस बातका ज्ञान करानेके लिए आगेका प्रबन्ध कहते हैं—

*** 'कितने जीव उपयुक्त हैं' इस वचन द्वारा द्रव्यप्रमाणानुगम सूचित किया गया है ।**

§ १८४. गाथाके इस प्रथम पादमें द्रव्यप्रमाणानुगम प्रतिबद्ध है यह उक्त कथनका तात्पर्य है, क्योंकि 'क्रोधादि कषायोंमें उपयुक्त हुए जीव कितने हैं' इस पृच्छा द्वारा यहाँपर उक्त गाथावचन प्रतिबद्ध देखा जाता है ।

*** 'सदृश कषायोपयोगवर्गणाओंमें' इस वचन द्वारा कालानुगम सूचित किया गया है ।**

§ १८५. गाथासूत्रके इस दूसरे पादमें कालानुगम निबद्ध है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—इसमें कालानुगमका निबद्धपना कैसे है ?

समाधान—'सरिसीसु च' अर्थात् एक कषायसे सम्बन्ध रखनेवाली 'वग्गणाकसाएसु'

१ ता०प्रतौ भणिदं इति पाठः ।

वग्गणाकसायेसु कसायोवजोगवग्गणासु केवचिरमुवजुत्ता होंति त्ति सुत्तत्थावलंबणादो कालाणुगमस्स पडिबद्धत्तमेत्थ दट्ठव्वं ।

* 'केवडिगा च कसाए' त्ति भागाभागो ।

§ १८६. एदम्मि तदियावयवे भागाभागाणुगमो णिवद्धो त्ति गहेयव्वो, कम्हि कसाये कसायोवजुत्तसव्वजीवाणं केवडिया भागा उवजुत्ता होंति त्ति पदसंबंधावलंबणादो ।

* 'के के च विसिस्सदे केणे' त्ति अप्पाबहुअं ।

§ १८७. एदम्मि गाहासुत्तचरिमावयवे अप्पाबहुआणुगमो णिबद्धो, के कसायोवजुत्ता जीवा कत्तो कसायोवजुत्तजीवरासीदो केत्तियमेत्तेण विसिस्सदे अहिया होंति त्ति पदसंबंधं कादूण सुत्तत्थावलंबणादो ।

* एवमेदाणि चत्तारि अणिओगद्दाराणि सुत्तणिबद्धाणि ।

§ १८८. कुदो ? चदुण्हमेदेसिं णामणिद्देसं कादूणेदम्मि गाहासुत्ते णिद्दिट्ठत्तादो ।

* सेसाणि सूचणाणुमाणेण कायव्वाणि ।

§ १८९. सेसाणि पुण संतपरूवणादीणि चत्तारि अणिओगद्दाराणि सूचणाणुमाणेणेत्थ गहेयव्वाणि, सुत्तणिद्दिट्ठाणं चउण्हमणियोगद्दाराणं देसामासयभावेणावट्ठाणदंसणादो त्ति भणिदं होइ । तम्हा एदाणि अट्ठ अणिओगद्दाराणि एदीए गाहाए सूचिदाणि

---

अर्थात् कषायोपयोगवर्गणाओंमें जीव कितने काल तक उपयुक्त होते हैं इस प्रकार सूत्रके अर्थका अवलम्बन करनेसे प्रकृतमें कालानुगम प्रतिबद्ध है ऐसा जानना चाहिए ।

* 'किस कषायमें कौन कितनेवाँ भाग उपयुक्त हैं' इस वचन द्वारा भागाभागानुगम सूचित किया गया है ।

§ १८६. गाथाके इस तृतीय पादमें भागाभागानुगम निबद्ध है ऐसा ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि किस कषायमें कषायसे उपयुक्त हुए सब जीवोंके कितनेवें भाग जीव उपयुक्त होते हैं इस प्रकार पदके सम्बन्धका अवलम्बन लिया गया है ।

* 'कौन-कौन कषायवाले जीव किस कषायवाले जीवोंसे अधिक होते हैं' इस वचन द्वारा अल्पबहुत्व सूचित किया गया है ।

§ १८७. गाथासूत्रके इस अन्तिम पादमें अल्पबहुत्वानुगम निबद्ध है, क्योंकि कषायसे उपयुक्त हुए कौन जीव कषायसे उपयुक्त हुई किस जीवराशिसे कितने 'विसिस्सदे' अर्थात् अधिक होते हैं इस प्रकार पद सम्बन्ध करके सूत्रके अर्थका अवलम्बन लिया गया है ।

* इस प्रकार ये चार अनुयोगद्वार सूत्रनिबद्ध हैं ।

§ १८८ क्योंकि इन चारका नामनिर्देश करके ये इस गाथासूत्रमें निर्दिष्ट किये गये हैं ।

* शेष अनुयोगद्वार सूचनावश अनुमानद्वारा ग्रहण कर लेने चाहिए ।

§ १८९. किन्तु शेष सत्प्ररूपणा आदि चार अनुयोगद्वार सूचनावश अनुमानद्वारा यहाँपर ग्रहण कर लेने चाहिए, क्योंकि सूत्रमें निर्दिष्ट किये गये चार अनुयोगद्वारोंका देशामर्षकभावसे अवस्थान देखा जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इसलिए ये आठ अनु-

त्ति सिद्धं । संपहि एदेहिं अट्ठहिं अणिओगद्दारेहिं कसायोवजुत्ताणं मग्गणट्ठदाए तत्थ इमाणि मग्गणट्ठाणाणि होंति त्ति जाणावणट्ठमिदमाह—

*** कसायोवजुत्ते अट्ठहिं अणिओगद्दारेहिं गदि-इंदिय-काय-जोग-वेद-णाण-संजम-दंसण-लेस्स-भविय-सम्मत्त-सण्णि-आहारा त्ति एदेसु तेरससु अणुगमेसु मग्गियूण ।**

§ १९० एदेसु गदियादितेरसमग्गणट्ठाणेसु कसायोवजुत्ता जीवा अणंतरणिद्दिट्ठेहिं अट्ठहिं अणिओगद्दारेहिं अणुगंतव्वा त्ति वुत्तं होइ । साम्प्रतं यथोक्तेषु मार्गणास्थानेषु यथोक्तैरनुयोगद्वारैः सदादिभिर्विशेषितान् कषायोपयुक्तानन्वेषयिष्यामः । तद्यथा—तत्थ संतपरूवणाए दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण अत्थि कोह-माण-माया-लोभोवजुत्ता जीवा । एवं सव्वमग्गणासु णेदव्वं ।

§ १९१. दव्वपमाणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण कोह-माण-माया-लोभोवजुत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? अणंता । एवं तिरिक्खा० । आदेसेण णिरयगदीए णेरइया दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा । एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-सव्वमणुस-सव्वदेवा त्ति । णवरि मणुसपज्जत्त-मणुसिणी-सव्वट्ठ-देवा चदुकसायोवजुत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा । एवं जाव अणाहारि त्ति ।

---

योगद्वार इस गाथाद्वारा सूचित किये गये है यह सिद्ध हुआ । अब इन आठ अनुयोगद्वारोंकें अवलम्बनसे कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंका अनुसन्धान करनेपर वहाँ ये मार्गणास्थान होतें हैं इस बातका ज्ञान करानेके लिए कहते हैं—

*** कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंका आठ अनुयोगद्वारोंका आश्रय लेकर गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञित्व और आहार इन तेरह अनुगमोंमें मार्गण करके ।**

§ १९०. इन गति आदि तेरह मार्गणास्थानोंमें कषायोंसे उपयुक्त हुए जीव अनन्तर पूर्व कहे गये आठ अनुयोगद्वारोंके आश्रयसे जानना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब यथोक्त मार्गणास्थानोंमें सत् आदि यथोक्त अनुयोगद्वारोंसे विशेषताको प्राप्त हुए कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंका अन्वेषण करते हैं । यथा—उनमेंसे सत्प्ररूपणाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे क्रोध, मान, माया और लोभ कषायमें उपयुक्त जीव हैं । इसी प्रकार सब मार्गणाओंमें कथन करना चाहिए ।

§ १९१. द्रव्यप्रमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे क्रोध, मान, माया और लोभ कषायमें उपयुक्त जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार तिर्यञ्च जीव जानने चाहिये । आदेशसे नरकगतिमें नारकी जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, सब मनुष्य और सब देव जानने चाहिए । इतनी विशेषता है कि चारों कषायोंमें उपयुक्त हुए मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी और सर्वार्थसिद्धिके देव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने

खेत्त-पोसणं जाणियूण णेदव्वं ।

§ १९२. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण कोहादिकसायोवजुत्ता केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवे पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । एवं गदियादिसव्वमग्गणासु णेयव्वं ।

§ १९३. अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण कोहादिकसायोवजुत्ताणं णाणाजीवे पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । एवं गदियादिसु णेदव्वं ।

§ १९४. भागाभागाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण कोहोवजुत्ता सव्वजीवा० केवडिओ भागो ? चदुब्भागो देसूणो । एवं माण-मायोवजुत्ताणं पि वत्तव्वं । लोभोवजुत्ता सव्वजीवा० केवडिओ भागो ? चदुब्भागो सादिरेओ । एवं तिरिक्ख-मणुस्सेसु । आदेसेण णेरइया कोहोवजुत्ता सव्वजीवा० केवडिओ भागो ? संखेज्जा भागा । सेसं संखेज्जदिभागो । एवं सव्वणेरइय० । देवगदीए लोभोवजुत्ता सव्वजीवा० केवडिओ भागो ? संखेज्जा भागा । मायादिकसायोवजुत्ता जीवा संखेज्जदिभागो । एवं णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

---

हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए । क्षेत्र और स्पर्शनका जानकर कथन करना चाहिए ।

§ १९२ कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे क्रोधादि कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वदा काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार गति आदि सब मार्गणाओंमे जानना चाहिए ।

§ १९३. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे क्रोधादि कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार गति आदि मार्गणाओंमे जानना चाहिए ।

§ १९४ भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे क्रोधमे उपयुक्त हुए जीव सब जीवोके कितने भागप्रमाण हैं ? कुछ कम चतुर्थ भागप्रमाण हैं । इसी प्रकार मान और माया कषायमे उपयुक्त हुए जीवोंका भी कथन करना चाहिए । लोभकषायमे उपयुक्त हुए जीव सब जीवोके कितने भागप्रमाण हैं ? साधिक चतुर्थ भागप्रमाण हैं । इसी प्रकार तिर्यञ्च और मनुष्योंमे जान लेना चाहिए । आदेशसे क्रोध कषायमें उपयुक्त हुए नारकी जीव सब नारकी जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यात बहुभागप्रमाण हैं । शेष कषायोंमें उपयुक्त हुए जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं । इसी प्रकार सब नारकियोंमे जानना चाहिए । देवगतिमे लोभकषायमे उपयुक्त हुए जीव सब देव जीवोके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यात बहुभागप्रमाण हैं । माया आदि कषायोमे उपयुक्त हुए जीव संख्यातवे भागप्रमाण हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

§ १९५. अप्पाबहुआणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण सव्वत्थोवा माणकसायोवजुत्ता जीवा। कोहकसायोवजुत्ता जीवा विसेसाहिया। मायकसायोवजुत्ता विसेसाहिया। लोभकसायोवजुत्ता विसेसाहिया। एवं तिरिक्ख-मणुस्सेसु। णिरयगदीए सव्वत्थोवा लोभोवजुत्ता जीवा। मायोवजुत्ता संखेज्जगुणा। माणोवजुत्ता जीवा संखेज्जगुणा। कोहोवजुत्ता संखेज्जगुणा। एवं देवगदीए वि। णवरि कोहादी वत्तव्वं। एवं जाव अणाहारि त्ति णेदव्वं। एवमेदेसु तेरससु अणुगमेसु संतपरूवणादीहिं कसायोवजुत्ताणं मग्गणं कादूण तदो किं कायव्वमिदि आसंकाए इदमाह—

* महादंडयं च कादूण समत्ता पंचमी गाहा।

§ १९६. चदुगदिसमासप्पाबहुअविसओ दंडओ महादंडओ त्ति एत्थ विवक्खिओ, एगेगगदिपडिबद्धदंडगेहिंतो एदस्स बहुविसयत्तेण तहाभावोवत्तीदो। सो च महादंडओ एवमणुगंतव्वो—

§ १९७. सव्वत्थोवा मणुसगदीए माणोवजुत्ता जीवा। कोहोवजुत्ता जीवा विसेसाहिया। मायोवजुत्ता जीवा विसेसाहिया। लोभोवजुत्ता जीवा विसेसाहिया। णिरयगदीए लोभोवजुत्ता० असंखेज्जगुणा। मायोव० संखेज्जगुणा। माणोव०

---

§ १९५ अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मानकषायमें उपयुक्त हुए जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीव विशेष अधिक हैं। उनसे माया कषायमें उपयुक्त हुए जीव विशेष अधिक हैं। उनसे लोभ कषायमें उपयुक्त हुए जीव विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें जानना चाहिए। नरकगतिमें लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे मायाकषायमें उपयुक्त हुए जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे मानकषायमें उपयुक्त हुए जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीव संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार देवगतिमें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि क्रोधकषायको आदि कर कथन करना चाहिए। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए। इस प्रकार इन तेरह अनुगमोंमें सत्प्ररूपणा आदिके द्वारा कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंका अनुसन्धान करनेके बाद क्या करना चाहिए ऐसी आशंका होनेपर यह कहते हैं—

* और महादण्डक करके पाँचवीं गाथा समाप्त हुई।

§ १९६. चारों गतियोंके समुदायरूप अल्पबहुत्वको विषय करनेवाले दण्डकको महा-दण्डक कहते हैं यह प्रकृतमें विवक्षित है, क्योंकि एक-एक गतिसे सम्बन्ध रखनेवाले दण्डकसे यह बहुतको विषय करनेवाला होनेसे इसे महादण्डकपना बन जाता है। और वह महादण्डक इस प्रकार जानना चाहिए—

§ १९७. मनुष्यगतिमें मानकषायमें उपयुक्त हुए जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे क्रोध-कषायमें उपयुक्त हुए जीव विशेष अधिक हैं। उनसे मायाकषायमें उपयुक्त हुए जीव विशेष अधिक हैं। उनसे लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीव विशेष अधिक हैं। उनसे नरकगतिमें लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे मायाकषायमें उपयुक्त हुए जीव

संखेज्जगुणा। कोहोव० संखेज्जगुणा। देवगदीए कोहोवजुत्ता असंखेज्जगुणा। माणोवजुत्ता संखेज्जगुणा। मायोवजुत्ता संखेज्जगुणा। लोभोवजुत्ता संखेज्जगुणा। तिरिक्खगदीए माणोवजुत्ता अणंतगुणा। कोहोव० विसेसाहिया। मायो० विसेसाहिया। लोभोवजुत्ता विसेसाहिया। एवमेसो गइमग्गणाविसओ एगो महादंडओ। एवमिंदियमग्गणाए वि पंचण्हमिंदियाणं समासेण चदुकसायोवजुत्ताणमप्पाबहुए कीरमाणे विदिओ महादंडगो होइ। पुणो एदेणेव विहिणा कसायमग्गणं मोत्तूण सेससव्वमग्गणासु पादेक्कमेगेगमहादंडओ जाणिय णेयव्वो। एवं णीदे पंचमी गाहा समत्ता भवदि।

* 'जे जे जम्हि कसाए उवजुत्ता किण्णु भूदपुव्वा ते' त्ति एदिस्से छट्ठीए गाहाए कालजोणी कायव्वा।

§ १९८. एदेण गाहापुव्वद्धसिदि सद्दपरमुच्चारिय पच्छद्धस्स वि देसामासयण्णाएण बुद्धीए परामरसं कादूण तदो एदिस्से छट्ठीए गाहाए अत्थविहासणट्ठं कालजोणी कायव्वा त्ति णिद्दिट्ठं। कालो चेव जोणी आसयो पयदपरूवणाए कायव्वो त्ति वुत्त होइ। कुदो एवं? एदिस्से गाहाए वट्टमाणसमय-माणादिकसायोवजुत्ताण-

संख्यातगुणे हैं। उनसे मानकपायमें उपयुक्त हुए जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे क्रोधकपायमें उपयुक्त हुए जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे देवगतिमें क्रोधकपायमें उपयुक्त हुए जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे मानकपायमें उपयुक्त हुए जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे मायाकपायमें उपयुक्त हुए जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे लोभकपायमें उपयुक्त हुए जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे तिर्यञ्चगतिमें मानकपायमें उपयुक्त हुए जीव अनन्तगुणे हैं। उनसे क्रोधकपायमें उपयुक्त हुए जीव विशेष अधिक हैं। उनसे मायाकपायमें उपयुक्त हुए जीव विशेष अधिक हैं। उनसे लोभकपायमें उपयुक्त हुए जीव विशेष अधिक हैं। इस प्रकार यह गतिमार्गणाविपयक एक महादण्डक है। इसी प्रकार इन्द्रियमार्गणामें भी पाँच इन्द्रियोंके समुदायके साथ चार कपायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंका अल्पबहुत्व करनेपर दूसरा महादण्डक होता है। पुनः इसी विधिसे कपायमार्गणाको छोड़कर शेष सब मार्गणाओंमेंसे प्रत्येकके आश्रयसे एक-एक महादण्डकको जानकर ले जाना चाहिए। इस प्रकार ले जाने पर पाँचवीं गाथा समाप्त होती है।

* 'जो जो जीव वर्तमान समयमें जिस कपायमें उपयुक्त हैं क्या वे अतीत कालमें उसी कपायमें उपयुक्त थे' इस छठी गाथाकी कालके आश्रयसे प्ररूपणा करनी चाहिए।

§ १९८ इस द्वारा गाथाके पूर्वार्धका उल्लेखपूर्वक उच्चारण करके तथा इसके उत्तरार्धका भी देशामर्पक न्यायसे बुद्धिद्वारा परामर्श करके अनन्तर इस छठी गाथाके अर्थका विशेष व्याख्यान करनेके लिए कालयोनि करना चाहिए। प्रकृत प्ररूपणामें काल ही योनि अर्थात् आश्रय करने योग्य है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका—ऐसा क्यों है?

मदीदाणागदकालेसु माण-णोमाण-मिस्सादिकालवियप्पपडिबद्धपमाणपरूवणाए णिबद्धत्तादो। कथमेदं णव्वदे? जे जे जीवा जम्हि कसाए वट्टमाणसमए उवजुत्ता ते तप्पमाणा चेव होदूण किण्णु भूदपुव्वा किं माणोवजुत्ता चेव होदूण माणकालेण परिणदा आहो माणवदिरित्तसेसकसायोवजुत्ता होदूण णोमाणकालपरिणदा, किं वा माण-णोमाणेहिं जहापविभागमक्कमोवजुत्ता होदूण मिस्सयकालेण परिणदा त्ति एवमादि-पुच्छाहिसंबंधेण सुत्तत्थवक्खाणावलंबणादो। एत्थ गाहापुव्वद्धम्मि अदीदकालविसयो पुच्छाणिद्देसो पडिबद्धो। 'होहिंति च उवजुत्ता' त्ति एदम्मि वि पच्छद्धावयवे अणागय-कालविसयो पुच्छाणिद्देसो णिबद्धो। एवमोघेण पुच्छाणिद्देसं कादूण तदो आदेस-परूवणाए वि किंचि बीजपदमुवइट्ठं 'एवं सव्वत्थ बोद्धव्वा' त्ति। तदो एदिस्से छट्ठीए गाहाए कालजोणिया परूवणा कायव्वा त्ति सिद्धं।

---

**समाधान**—क्योंकि इस गाथामें वर्तमान समयमें मानादि कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंकी अतीत और अनागत कालमें मान, नोमान और मिश्र आदि कालके भेदोंसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रमाणकी प्ररूपणा निबद्ध है।

**शंका**—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

**समाधान**—क्योंकि जो जो जीव वर्तमान समयमें जिस कषायमें उपयुक्त हैं वे सबके सब क्या भूतपूर्व अर्थात् अतीत कालमें भी मानकषायमें ही उपयुक्त होकर क्या मानकालसे परिणत थे या मानव्यतिरिक्त शेष कषायोंमें उपयुक्त होकर नोमानकालसे परिणत थे अथवा क्या यथाविभाग मान और नोमानरूपसे युगपत् उपयुक्त होकर मिश्रकालसे परिणत थे इत्यादि पृच्छाके सम्बन्धसे सूत्रार्थके व्याख्यानका अवलम्बन लिया है, इससे जाना जाता है कि इस गाथामें उक्त प्ररूपणा निबद्ध है।

यहाँ गाथाके पूर्वार्धमें अतीतकालविषयक पृच्छाका निर्देश किया गया है तथा गाथाके उत्तरार्धके 'होहिंति च उवजुत्ता' इस पादमें भी अनागत कालविषयक पृच्छाका निर्देश किया गया है। इस प्रकार ओघसे पृच्छाका निर्देश करके तदनन्तर आदेशप्ररूपणासम्बन्धी भी 'एवं सव्वत्थ बोद्धव्वा' इस चरणद्वारा संक्षेपमें बीजपदका निर्देश किया गया है। इसलिए इस छठी गाथाकी कालके आश्रयसे प्ररूपणा करनी चाहिए यह सिद्ध हुआ।

**विशेषार्थ**—कषायके चार भेदोंमेंसे वर्तमान समयमें जो जीव जिस कषायसे उपयुक्त हैं वे अतीत कालमें क्या उसी कषायसे उपयुक्त थे या भविष्य कालमें उसी कषायसे उपयुक्त रहेंगे ऐसी पृच्छा होनेपर मानकषायकी अपेक्षा इसका उत्तर तीन प्रकारसे होगा। प्रथम उत्तर होगा कि वे सब जीव अतीत कालमें भी मानकषायसे उपयुक्त थे या मानकषायसे उपयुक्त रहेंगे। दूसरा उत्तर होगा कि वे सब जीव अतीत कालमें क्रोध, माया और लोभ कषायसे उपयुक्त थे या क्रोध, माया और लोभकषायसे उपयुक्त रहेंगे। तथा तीसरा उत्तर होगा कि उन जीवोंमेंसे कुछ तो क्रोध, माया और लोभकषायसे उपयुक्त थे और कुछ जीव मानकषायसे उपयुक्त थे या कुछ जीव तो क्रोध, माया और लोभ कषायसे उपयुक्त रहेंगे और कुछ जीव मानकषायसे उपयुक्त रहेंगे। उक्त पृच्छाके ये तीन उत्तर हैं। अतएव इस हिसाबसे काल भी तीन भागोंमें विभक्त हो जाता है—प्रथम उत्तरके अनुसार मानकाल, दूसरे उत्तरके अनुसार

§ १९९. संपहि पयदपरूवणाए अवसरकरणट्ठं पुच्छावक्कमाह—

* तं जहा ।

§ २००. सुगमं ।

*** जे अस्सिं समए माणोवजुत्ता तेसिं तीदे काले माणकालो णोमाणकालो मिस्सयकालो इदि एवं तिविहो कालो ।**

§ २०१. जे जीवा एदम्मि वट्टमाणसमये माणोवजुत्ता अणंता होदूण दीसंति तेसिं तीदे काले तिविहो कालो वोलीणो—माणकालो णोमाणकालो मिस्सयकालो चेदि । तत्थ जम्मि कालविसेसे एसो आदिट्ठो वट्टमाणसमयमाणोवजुत्ता जीवरासी अणूणाहियो होदूण माणोवजोगेणेव परिणदो लब्भइ सो माणकालो त्ति भण्णइ । एसो चेव णिरुद्धजीवरासी जम्मि कालविसेसे एगो वि माणो अहोदूण कोह-माया-लोभेसु चेव जहापविभागं परिणदो सो णोमाणकालो त्ति भण्णदे माणवदिरित्तसेसकसायाणं

---

णोमानकाल और तीसरे उत्तरके अनुसार मिश्रकाल ये उनकी संज्ञाये हैं। जो जीव वर्तमान समयमें मानकषायसे उपयुक्त हैं वे सबके सब यदि अतीत कालमे मानकषायसे उपयुक्त थे भविष्यकालमें मानकषायसे उपयुक्त रहेंगे तो उनके उस कालकी मानकाल संज्ञा है। इसी प्रकार जो जीव वर्तमान समयमें मानकषायसे उपयुक्त हैं वे सबके सब अतीतकालमें यदि मानके सिवाय अन्य कषायसे उपयुक्त थे या अन्य कषायसे उपयुक्त रहेंगे तो उनके उस कालकी नोमानकाल संज्ञा है। तथा इसी प्रकार जो जीव वर्तमान समयमें मानकषायसे उपयुक्त हैं उनमेंसे कुछ तो अतीत कालमें मानके सिवाय अन्य कषायसे उपयुक्त थे और कुछ मानकषायसे उपयुक्त थे या कुछ अन्य कषायसे उपयुक्त रहेंगे और कुछ मानकषायसे उपयुक्त रहेंगे तो उनके उस कालकी मिश्रकाल संज्ञा है। यह मानकषायको विवक्षित कर कालके भेदोंका निरूपण है। इसी प्रकार अन्य कषायोंको विवक्षित कर आगमानुसार कालके भेदोंका निरूपण कर लेना चाहिए। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि जब जो कषाय विवक्षित हो तब उसके अनुसार कालके भेदोंकी संज्ञा हो जाती है। जैसे क्रोधकाल, नोक्रोधकाल और मिश्रकाल आदि।

§ १९९. अब प्रकृत प्ररूपणाका अवसर करनेके लिए पृच्छावाक्यको कहते हैं—

* वह जैसे ।

§ २००. यह सूत्र सुगम है।

*** जो जीव इस समय मानकषायसे उपयुक्त हैं उनका अतीत कालमें मानकाल, नोमानकाल और मिश्रकाल इस प्रकार तीन प्रकारका काल व्यतीत हुआ है।**

§ २०१. जो इस अर्थात् वर्तमान समयमें मानकषायमें उपयुक्त अनन्त जीव दिखलाई देते हैं उनका अतीतकालमे तीन प्रकारका काल व्यतीत हुआ है—मानकाल, नोमानकाल और मिश्रकाल। उनमेंसे जिस कालविशेषमें यह विवक्षित वर्तमान समयमें मानकषायमें उपयुक्त हुई जीवराशि न्यूनाधिक हुए विना मानोपयोगसे ही परिणत होकर प्राप्त होती है उसे मानकाल कहते हैं। तथा यही विवक्षित जीवराशि जिस कालविशेषमे एक भी मानरूप न होकर यथाविभाग क्रोध, माया और लोभरूपसे ही परिणत हुई उस कालविशेषको नोमानकाल कहते हैं, क्योंकि मानके सिवाय शेष कषायें नोमान संज्ञाके योग्य हैं इस विवक्षाका यहाँ अवलम्बन लिया गया

णोमाणववएसारिहंतेणावलंबणादो। पुणो इमो चेव णिरुद्धजीवरासी जम्मि काले थोवो माणोवजुत्तो थोवो च कोह-माया-लोभेसु जहासंभवमुवजुत्तो होदूण परिणदो दिट्ठो सो मिस्सयकालो णाम। तम्हा माणोवजुत्ताणमेसो सत्थाणविसयो तिविहो कालो समदिक्कंतो त्ति सम्ममवहारिदं। ण केवलमेसो तिविहो चेव कालपरिवत्तो विवक्खियजीवाणं, किंतु अण्णो वि कालपरिवत्तो परत्थाणविसयो समइक्कंतो त्ति पदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

* कोहे च तिविहो कालो।

§ २०२. तस्सेव वट्टमाणसमयमाणोवजुत्तजीवरासिस्स कोहे वि तिविहो कालो अइक्कंतो त्ति वुत्तं होइ। तं जहा—कोहकालो णोकोहकालो मिस्सयकालो चेदि। तत्थ जम्मि समये सो चेव वट्टमाणसमयमाणोवजुत्तजीवरासी कसायंतरपरिहारेण कोहकसाएणेव परिणदो होदूणच्छिदो सो माणोवजुत्ताणं कोहकालो त्ति भण्णदे। पुणो एसो चेव जीवरासी जम्मि कालविसेसे कोह-माणेसु एक्केण वि जीवेणाहोदूण माया-लोभेसु चेव परिणदो सो माणोवजुत्ताणं णोकोहकालो त्ति विण्णायदे। पुणो माणे एगो वि जीवो अहोदूण थोवो कोहोवजुत्तो थोवो च माया-लोभोवजुत्तो होदूण जम्हि काले परिणदो सो माणोवजुत्ताणं कोहमिस्सयकालो त्ति भण्णदे। अहवा णोकोह-मिस्सयकालेसु माणेण वि परिणामिदे ण दोसो, तेण वि परिणदस्स णोकोह-

---

है। तथा यही विवक्षित जीवराशि जिस कालमें कुछ मानमें उपयुक्त होकर और कुछ क्रोध, माया और लोभमें यथासम्भव उपयुक्त होकर परिणत दिखाई दी उसकी मिश्रकाल संज्ञा है। इसलिए मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका स्वस्थानविषयक यह तीन प्रकारका काल व्यतीत हुआ यह सम्यक् प्रकारसे निश्चित किया। विवक्षित जीवोंका तीन प्रकारका केवल यही कालपरिवर्तन नहीं है किन्तु परस्थानविषयक अन्य भी कालपरिवर्तन व्यतीत हुआ है इस बातका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र आया है—

* क्रोधकषायमें तीन प्रकारका काल होता है।

§ २०२. वर्तमान समयमें मानमें उपयुक्त हुई उसी जीवराशिका क्रोधकषायमें भी तीन प्रकारका काल व्यतीत हुआ यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यथा—क्रोधकाल नोक्रोधकाल और मिश्रकाल। उनमेंसे वर्तमान समयमें मानकषायमें उपयुक्त हुई वही जीवराशि जिस समयमें अन्य कषायोंका परिहार कर क्रोधकषायरूपसे परिणत होकर रही, वह मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवों का क्रोधकाल कहा जाता है। पुनः यही जीवराशि जिस कालविशेषमें एक भी जीव क्रोध और मानरूप न होकर माया और लोभ रूपसे ही परिणत हुई, वह मानमें उपयुक्त हुए जीवोंका नोक्रोधकाल जाना जाता है। पुनः एक भी जीव मानरूप न होकर थोड़ेसे जीव क्रोधकषायमें उपयुक्त होकर और थोड़ेसे जीव माया और लोभकषायमें उपयुक्त होकर जिस कालमें परिणत हुए, वह मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका क्रोधकी अपेक्षा मिश्रकाल कहा जाता है। अथवा नोक्रोधकाल और मिश्रकाल इनमें मानकषायरूपसे भी परिणमावे, दोष नहीं है, क्योंकि

मिस्सत्तसंभवे विरोहाभावादो। एवमेसो वट्टमाणसमयम्मि माणोवजुत्ताणं कोहावेक्खाए वि तिविहो कालो वोलीणो त्ति सिद्धं। संपहि माया-लोभेसु वि एसो चेव कमो त्ति पदुप्पायणट्ठमाह—

*** मायाए तिविहो कालो।**

§ २०३. माय-णोमाय-मिस्सयभेदेण तत्थ वि तिविहकालसिद्धीए णिप्पडिबंध-मुवलंभादो।

*** लोभे तिविहो कालो।**

§ २०४. लोभ-णोलोभ-मिस्सयभेदेण तत्थ वि तिविहकालसिद्धीए पडिबंधाणुव-लंभादो। एदेसिं च कालाणं कोहभंगेणेव जोजणा कायव्वा। एवमेसो कालविभागो वट्टमाणसमयम्मि माणोवजुत्ताणमेक्केक्कम्मि कसाए पादेक्कं तिविहो होदूण बारस-विहो होदि त्ति घेत्तव्वं। एदस्सेवत्थस्सोवसंहारवक्कमुत्तरं—

*** एवमेसो कालो माणोवजुत्ताणं बारसविहो।**

§ २०५. सुगममेदं।

---

मानकषायरूपसे परिणत हुए जीवके नोक्रोध और मिश्रपना सम्भव है, इसमें कोई विरोध नहीं है। इस प्रकार वर्तमान समयमें मानमें उपयुक्त हुए जीवोंका क्रोधकी अपेक्षा भी यह तीन प्रकारका काल व्यतीत हुआ यह सिद्ध हुआ। अब माया और लोभमें भी यही क्रम है यह कथन करनेके लिए कहते हैं—

*** मायाकषायमें तीन प्रकारका काल होता है।**

§ २०३ क्योंकि माया, नोमाया और मिश्रके भेदसे मायाकषायमें भी तीन प्रकारके कालकी सिद्धि बिना बाधाके उपलब्ध होती है।

*** लोभकषायमें तीन प्रकारका काल है।**

§ २०४. लोभ, नोलोभ और मिश्रके भेदसे लोभकषायमें भी तीन प्रकारके कालकी सिद्धि बिना बाधाके उपलब्ध होती है। इन कालोंकी क्रोधकालके भंगके समान योजना करनी चाहिए। इस प्रकार यह कालविभाग वर्तमान समयमें मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका एक-एक कषायमें प्रत्येकके तीन भेद होकर बारह प्रकारका होता है ऐसा यहाँपर ग्रहण करना चाहिए। अब इसी अर्थके उपसंहाररूप आगेके वाक्यको कहते हैं—

*** इस प्रकार मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका यह बारह प्रकारका काल है।**

§ २०५. यह सूत्र सुगम है।

विशेषार्थ—पहले वर्तमानमें मानकषाय परिणत जीवोंके स्वस्थानकी अपेक्षा मानकाल, नोमानकाल और मिश्रकाल ऐसे तीन भेद बतला आये हैं। यहाँ परस्थानकी अपेक्षा भेदोंका निरूपण करते हुए नौ भेद बतलाये गये हैं। खुलासा इस प्रकार है—

§ २०६. संपहि वट्टमाणसमयकोहोवजुत्ताणं कदिविधो कालो होदि त्ति आसंकाए णिण्णयकरणट्ठमाह—

*** अस्सिं समये कोहोवजुत्ता तेसिं तीदे काले माणकालो णत्थि, णोमाणकालो मिस्सयकालो य।**

§ २०७. कुदो ताव माणकालो णत्थि त्ति पुच्छिदे वुच्चदे—कोहरासी बहुओ, माणोवजुत्तजीवरासी थोवो होइ, अद्धाविसेसमस्सियूण माणरासीदो कोहरासिस्स विसेसाहियत्तदंसणादो। तदो वट्टमाणसमये कोहोवजुत्तो होदूण ट्ठिदरासी अदीदकालम्मि एक्कसमएण सव्वो चेव माणोवजुत्तो होदूणावट्ठाणं ण लहइ, तत्तो विसेस-

| नानाजीव | वर्तमानमें | अतीतकालमें | कालसंज्ञा | अपेक्षा |
|---|---|---|---|---|
| " | मानपरिणत | मानपरिणत | मानकाल | स्वस्थानकी अ० |
| " | " | क्रो०, माया, या लो० प० | नोमानकाल | " |
| " | " | कुछ मान परिणत कुछ अन्य कषाय परिणत | मिश्रकाल | " |
| " | " | क्रोध परिणत | क्रोधकाल | परस्थानकी अ० |
| " | " | मान, माया या लोभ प० | नोक्रोधकाल | परस्थानकी अ० |
| " | " | कुछ क्रोधप०, कुछ अन्य कषाय परिणत | मिश्रकाल | " |
| " | " | मायापरिणत | मायाकाल | " |
| " | " | क्रोध०, मान या लोभ प० | नोमायाकाल | " |
| " | " | कुछ मायाप०, कुछ अन्य कषाय परिणत | मिश्रकाल | " |
| " | " | लोभपरिणत | लोभकाल | " |
| " | " | क्रो०, मान या मायाप० | नोलोभकाल | " |
| " | " | कुछ लोभप०, कुछ अन्य कषाय परिणत | मिश्रकाल | " |

§ २०६ अब वर्तमान समयमें क्रोधमें उपयुक्त हुए जीवोंका कितने प्रकारका काल होता है ऐसी आशंका होनेपर निर्णय करनेके लिए कहते हैं—

*** इस समयमें जो जीव क्रोधकषायमें उपयुक्त हैं उनका अतीत कालमें मानकाल नहीं है, नोमानकाल और मिश्रकाल है।**

§ २०७. सर्व प्रथम मानकाल किस कारणसे नहीं है ऐसी पृच्छा होनेपर कहते है—क्रोधकषाय परिणत जीवराशि बहुत है और मानकषायमें उपयुक्त हुई जीवराशि अल्प है, क्योंकि क्रोधकषायपरिणत जीवराशिका काल अधिक है, इसलिए मानराशिसे क्रोधराशि विशेष अधिक देखी जाती है। अतः वर्तमान समयमें क्रोधमें उपयुक्त होकर स्थित हुई जीवराशि अतीतकालमें एक समयके द्वारा सबकी सब मानमें उपयुक्त होकर अवस्थानको

हीणस्सेव जीवरासिस्स तब्भावेण परिणमणदंसणादो। ण च तहा परिणममाणयस्स तस्स माणकालसंभवो अत्थि, माणकसाये चेव सव्वोवसंहारेण तदवट्ठाणाणुलंभादो। तम्हा एत्थ माणकालो णत्थि त्ति भणिद। णोमाणकालो मिस्सयकालो य अत्थि। किं कारणं? णिरुद्धसव्वजीवरासिस्स माणवदिरित्तसेसकसाएसु चेवावट्ठाणे णोमाण-कालो होइ, माणेदरकसाएसु जहापविभागमवट्ठाणे मिस्सकालो होदि त्ति एवंविहसंभवस्स परिप्फुडमुवलंभादो।

*** अवसेसाणं णवविहो कालो।**

§ २०८. तेसिं चेव वट्टमाणसमयकोहोवजुत्तजीवाणं माणवदिरित्तसेसकसाएसु पादेक्कं तिविहकालसंभवादो तत्थ णवविहो कालो समुप्पज्जइ त्ति वुत्तं होइ। कुदो एवं? वट्टमाणसमए कोहोवजुत्तसव्वजीवरासिस्स अदीदकालम्मि एगसमएण सव्वप्पणा

प्राप्त नहीं हो सकती, क्योंकि उससे विशेष हीन जीवराशिका ही मानभावसे परिणमन देखा जाता है और इस प्रकार परिणमन करनेवाली उस जीवराशिका मानकाल सम्भव नहीं है, क्योंकि समस्त राशिका उपसंहार होकर मानकषायमें ही उसका अवस्थान नहीं पाया जाता। इसलिए यहाँ मानकाल नहीं है यह कहा है। नोमानकाल और मिश्रकाल है, क्योंकि विवक्षित समस्त जीवराशिका मानकषायके सिवाय शेष कषायोंमें ही अवस्थान होनेपर नोमानकाल होता है तथा मानकषाय और अन्य कषायोंमें यथाविभाग अवस्थान होनेपर मिश्रकाल होता है, क्योंकि इस प्रकारका सम्भव स्पष्टरूपसे बन जाता है।

विशेषार्थ—वर्तमानमें जितनी जीवराशि क्रोधभावसे परिणत है उतनी सबकी सब जीवराशि अतीतकालमें एक साथ मानभावसे परिणत नहीं हो सकती, क्योंकि क्रोधकषायके कालसे मानकषायका काल अल्प है, इसलिये अपने कालके भीतर जितनी अधिक क्रोधराशिका संचय होता है, मानकालके भीतर उतनी अधिक मानराशिका संचय होना संभव नहीं है। स्पष्ट है कि वर्तमानमें जो जीव क्रोधभावसे परिणत हैं उन सबका अतीतकालमें केवल मानभावसे परिणत होना सम्भव नहीं है, इसलिए परस्थानकी अपेक्षा यहाँ मानकालका निषेध किया है। परस्थानकी अपेक्षा इन जीवोंका नोमानकाल और मिश्रकाल बन जाता है, क्योंकि यह सम्भव है कि जो वर्तमानमें क्रोधभावसे परिणत हैं वे अतीतकालमें मानकषायसे परिणत न होकर अन्य कषायरूपसे परिणत रहे हैं, इसलिए तो नोमानकाल बन जाता है और जो वर्तमानमें क्रोधभावसे परिणत हैं वे अतीत कालमें कुछ तो मानभावसे परिणत रहे हैं और कुछ अन्य कषायरूपसे परिणत रहे हैं, इसलिए मिश्रकाल भी बन जाता है।

*** अवशेष कषायोंकी अपेक्षा नौ प्रकारका काल होता है।**

§ २०८. क्योंकि वर्तमान समयमें क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए उन्हीं जीवोंका मान-कषायके सिवाय शेष कषायोंमेंसे प्रत्येक कषायकी अपेक्षा तीन प्रकारका काल सम्भव होनेसे यहाँ नौ प्रकारका काल उत्पन्न होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका—ऐसा कैसे होता है?

समाधान—क्योंकि वर्तमान समयमें क्रोधकषायमें उपयुक्त हुई सब जीवराशिका

कोह-माया-लोभेसु परिणमणसंभवे विरोहाणुवलंभादो। सुगममण्णं। एवमेसो णवविहो कालो, पुव्वुत्तो दुविहो माणकालो, एवमेदे घेत्तूण वट्टमाण-समयकोहोवजुत्तजीवरासिस्स एक्कारसविहो कालो होदि त्ति पयदत्थोवसंहारवक्कमुत्तरं—

*** एवं कोहोवजुत्ताणमेक्कारसविहो कालो विदिक्कंतो।**

§ २०९. सुगमं। संपहि वट्टमाणसमयमायोवजुत्ताणमदीदकालमस्सियूण कद्-विधो कालो संभवदि त्ति पुच्छाए णिच्छयकरणट्ठमुवरिमो पबंधो—

**जे अस्सिं समए मायोवजुत्ता तेसिं तीदे काले माणकालो दुविहो, कोहकालो दुविहो, मायाकालो तिविहो, लोभकालो तिविहो।**

§ २१०. कुदो ताव कोह-माणकालाणमेत्थ दुविहत्तणियमो? वट्टमाणसमय-मायोवजुत्तजीवरासिस्स कोह-माणजीवरासीहिंतो अद्धामाहप्पेण विसेसाहियत्तदंसणादो। तम्हा णिरुद्धजीवरासिस्स माणकालो कोहकालो च णत्थि। णोमोह-णोकोह-मिस्स-कालाणं चेव तत्थ संभवो त्ति सिद्धं। माया-लोभकसाएसु पुण तिविहकालसंभवो ण विरुज्झदे, णिरुद्धजीवरासिस्स तत्थ सव्वप्पणा उवसंहारसंभवादो। तम्हा एत्थ सव्व-

---

अतीतकालमें एक साथ पूरी तरहसे क्रोध, माया और लोभरूपसे परिणमन सम्भव है, इसमें कोई विरोध नहीं आता। शेष कथन सुगम है। इस प्रकार यह नौ प्रकारका काल तथा पूर्वोक्त दो प्रकारका मानकाल इस प्रकार इनको ग्रहणकर वर्तमान समयमें क्रोधमें उपयुक्त हुई जीवराशिका ग्यारह प्रकारका काल होता है। इस प्रकृत अर्थका उपसंहार करनेवाले आगेके सूत्रवचनको कहते हैं—

*** इस प्रकार क्रोधकषायमें उपयुक्त जीवोंका ग्यारह प्रकारका काल व्यतीत हुआ।**

§ २०९. यह सूत्रवचन सुगम है। अब वर्तमान समयमें मायाकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका अतीतकालकी अपेक्षा कितने प्रकारका काल सम्भव है ऐसी पृच्छा होनेपर निश्चय करनेके लिए आगेका सूत्रप्रबन्ध कहते हैं—

*** जो वर्तमान समयमें मायाकषायमें उपयुक्त हैं उनके अतीतकालमें मानकाल दो प्रकारका, क्रोधकाल दो प्रकारका, मायाकाल तीन प्रकारका और लोभकाल तीन प्रकारका होता है।**

§ २१०. शंका—यहाँ क्रोधकाल और मानकालके द्विविधपनेका नियम किस कारणसे है?

समाधान—क्योंकि वर्तमान समयमें मायाकषायमें उपयुक्त हुई जीवराशिका कालके माहात्म्यवश क्रोध और मानभावसे परिणत हुई जीवराशिकी अपेक्षा विशेष अधिकपना देखा जाता है, इसलिए विवक्षित जीवराशिका मानकाल और क्रोधकाल नहीं है। वहाँ नोमान, नोक्रोध और मिश्रकाल ही सम्भव है यह सिद्ध हुआ। माया और लोभकषायोंमें तो तीनों प्रकारके कालोंका सम्भव विरोधको नहीं प्राप्त होता, क्योंकि विवक्षित जीवराशिका उनमें

समासेण दसविहो पयदकालो लब्भइ त्ति पयदत्थमुवसंहरइ—

*** एवं मायोवजुत्ताणं दसविहो कालो ।**

§ २११. सुगममेदं, अणंतरादीदपबंधेणेव गयत्थत्तादो । संपहि वट्टमाणसमय-लोभोवजुत्ताणमदीदकालविसये पयदकालाणमियत्तावहारणट्ठमुवरिमं सुत्तपबंधमाह—

*** जे अस्सिं समये लोभोवजुत्ता तेसिं तीदे काले माणकालो दुविहो, कोहकालो दुविहो, मायाकालो दुविहो, लोभकालो तिविहो ।**

§ २१२. एत्थ कारणं पुव्वं व परूवेयव्वं[1] ।

*** एवमेसो कालो लोहोवजुत्ताणं णवविहो ।**

§ २१३. सुगमं चेदं पयदत्थोवसंहारवक्कं । संपहि चदुण्हं कसायाणं सव्व-पदसमासो एत्तिओ होइ त्ति पदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तोवण्णासो—

*** एवमेदाणि सव्वाणि पदाणि बादालीसं भवंति ।**

§ २१४. माणादिकसाएसु जहाकमं १२ ११ १० ९ एत्तियाणं पदाण-मेगट्ठीकरणेण तदुप्पत्तिदंसणादो ।

---

पूरी तरहसे उपसंहार सम्भव है, इसलिए यहाँपर सब कालोंको मिलाकर दस प्रकारका प्रकृत काल प्राप्त होता है इस प्रकृत अर्थका उपसंहार करते हैं—

*** इस प्रकार मायामें उपयुक्त हुए जीवोंके दस प्रकारका काल होता है ।**

§ २११. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि अनन्तर अतीत हुए प्रबन्धके द्वारा इसका अर्थ ज्ञात है। अब वर्तमान समयमे लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंके अतीत कालकी अपेक्षा प्रकृत कालोंकी संख्याका अवधारण करनेके लिए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते है—

*** जो इस समय लोभकषायमें उपयुक्त हैं उनके अतीत कालमें मानकाल दो प्रकारका, क्रोधकाल दो प्रकारका, मायाकाल दो प्रकारका और लोभकाल तीन प्रकारका होता है।**

§ २१२. यहाँपर कारणका कथन पहलेके समान करना चाहिए।

*** इस प्रकार लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंके यह काल नौ प्रकारका होता है।**

§ २१३. प्रकृत अर्थका उपसंहार करनेवाला यह वचन सुगम है । अब चारों कषायोंके सब पदोंका योग इतना होता है इस बातका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रका उपन्यास करते हैं—

*** इस प्रकार ये सब पद ब्यालीस होते हैं ।**

§ २१४. मानादि कषायोंमें यथाक्रम १२ + ११ + १० + ९ इतने पदोंका योग करनेपर उनकी अर्थात् ४२ पदोंकी उत्पत्ति देखी जाती है।

विशेषार्थ—पहले हम मानकषायके तीन स्वस्थान पद दिखला आये है। इसी प्रकार क्रोध, माया और लोभकषाय इनमेंसे प्रत्येकके तीन-तीन स्वस्थान पद जान लेना चाहिए।

---

१ ता०प्रतौ वत्तव्व इति पाठ ।

§ २१५. एत्थ ताव बारस सत्थाणपदाणि घेत्तूणप्पाबहुअं परूवेमाणो तदवसरकरणट्ठमुवरिमं पबंधमाह—

* एत्तो बारस सत्थाणपदाणि गहियाणि ।

§ २१६. एत्तो बादालीसपदपिंडादो बारस सत्थाणपदाणि ताव गहिदाणि त्ति वुत्तं होइ । काणि ताणि सत्थाणपदाणि त्ति सिस्साहिप्पायमासंकिय सुत्तमुत्तरं भणइ—

* कधं सत्थाणपदाणि भवंति ?

§ २१७. किं सरूवाणि ताणि त्ति पुच्छिदं होइ ।

* माणोवजुत्ताणं माणकालो णोमाणकालो मिस्सयकालो ।

§ २१८. एदाणि ताव तिण्णि सत्थाणपदाणि माणोवजुत्ताणं भवंति, सेसाणं णवण्हं पदाणं कोहादिसंबंधीणं परत्थाणविसयत्ते एत्थ गहणाभावादो ।

* कोहोवजुत्ताणं कोहकालो णोकोहकालो मिस्सयकालो ।

---

ये सब मिलाकर १२ हुए । शेष ३० परस्थान पद जानने चाहिए । उनमेंसे जो वर्तमानमें मानकषायसे उपयुक्त हैं उनके ९ परस्थान पद, जो वर्तमानमें क्रोधकषायसे उपयुक्त हैं उनके ८ परस्थान पद, जो वर्तमानमें मायाकषायसे उपयुक्त हैं उनके ७ परस्थान पद और जो वर्तमानमें लोभकषायसे उपयुक्त हैं उनके ६ परस्थान पद इस प्रकार सब मिलाकर सब परस्थानपद ३० होते हैं । इन सबका स्पष्टीकरण सुगम है ।

§ २१५. अब यहाँपर सर्व प्रथम बारह स्वस्थान पदोंके अल्पबहुत्वका कथन करते हुए उसका अवसर करनेके लिए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* इनमेंसे बारह स्वस्थान पदोंको ग्रहण किया है ।

§ २१६ यह जो ब्यालीस पदोंका पिंड है उनमेंसे सर्वप्रथम बारह स्वस्थान पद ग्रहण किये हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । वे स्वस्थान पद कौनसे हैं इस प्रकार शिष्यके अभिप्रायानुसार आशंकारूप आगेका सूत्र कहते हैं—

* वे स्वस्थान पद क्यों हैं ?

§ २१७. इस सूत्र द्वारा उनका अर्थात् स्वस्थान पदोंका स्वरूप क्या है यह पृच्छा की गई है ।

* मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंके मानकाल, नोमानकाल और मिश्रकाल ये तीन स्वस्थान पद होते हैं ।

§ २१८. मात्र ये तीन स्वस्थानपद मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंके होते हैं, क्योंकि क्रोधादि कषायोंसे सम्बन्ध रखनेवाले शेष नौ पद परस्थानको विषय करनेवाले होनेसे यहाँ उनका ग्रहण नहीं किया है ।

* क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंके क्रोधकाल, नोक्रोधकाल और मिश्रकाल ये तीन स्वस्थान पद होते हैं ।

§ २१९. वट्टमाणसमए कोहोवजुत्ताणं पि एदाणि तिण्णि चेव सत्थाणपदाणि गहेयव्वाणि, सेसाणमट्ठण्हं पदाणं परत्थाणविसयाणमेत्थ गहणाभावादो ।

* एवं मायोवजुत्त-लोहोवजुत्ताणं पि ।

§ २२०. माया-लोभोवजुत्ताणं पि एवं चेव तिण्णि तिण्णि सत्थाणपदाणि गहेयव्वाणि । तं जहा—मायोवजुत्ताणं मायकालो णोमायकालो मिस्सयकालो च । लोभोवजुत्ताणं लोभकालो णोलोभकालो मिस्सयकालो चेदि । एवमेदाणि चउण्हं कसायाणं तिण्णि तिण्णि पदाणि घेत्तूण बारस सत्थाणपदाणि होंति त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसंगहो ।

§ २२१. संपहि एदेसिं थोवबहुत्तणिहालणट्ठमुवरिमो सुत्तपबंधो—

* एदेसिं बारसण्हं पदाणमप्पाबहुअं ।

§ २२२. एदेसिं सत्थाणपडिबद्धाणं बारसण्हं पदाणं एत्तो अप्पाबहुअं वत्तइस्सामो त्ति पइण्णावक्कमेदं— 727|

---

§ २१९. वर्तमान समयमें क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंके भी ये तीन ही स्वस्थान पद ग्रहण करने चाहिए, क्योंकि परस्थानविषयक शेष आठ पदोंका इनमें ग्रहण नहीं होता ।

* इसी प्रकार मायाकषाय और लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंके तीन-तीन स्वस्थान पद ग्रहण करने चाहिए ।

§ २२०. मायाकषाय और लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंके भी इसी प्रकार तीन-तीन स्वस्थान पद ग्रहण करने चाहिए । यथा—मायाकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका मायाकाल, नोमायाकाल और मिश्रकाल तथा लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका लोभकाल, नोलोभकाल और मिश्रकाल । इस प्रकार चार कषायोंके ये तीन-तीन पदोंको ग्रहणकर बारह स्वस्थान पद होते हैं यह प्रकृतमे विवक्षित सूत्रोंका समुच्चय अर्थ है ।

विशेषार्थ—यहाँ कतिपय सूत्रों द्वारा स्वस्थानपदोंका निर्णय करते हुए जो बतलाया गया है उसका आशय यह है कि वर्तमानमें जितने जीव जिस कषायमें उपयुक्त होते हैं और उसके पूर्व भी यदि वे ही जीव उसी कषायमें उपयुक्त रहे हैं तो उन जीवोंके विवक्षित कषायविषयक उपयोगकालकी वही संज्ञा हो जाती है । जैसे पूर्वमे तथा वर्तमानमे मानमे उपयुक्त हुए जीवोके कालकी मानकाल संज्ञा तथा क्रोधमें उपयुक्त हुए जीवोंके कालकी क्रोध-काल संज्ञा आदि । तथा पूर्वमें क्रोध, माया और लोभ कषायमें उपयुक्त रहे हैं और वर्तमानमें मानकषायमें उपयुक्त है तो उनके उस कालकी नोमानकाल संज्ञा है । इसी प्रकार अन्य कषायोंके अनुसार यथायोग्य घटित कर लेना चाहिए । तथा पूर्वमें मानकषायके साथ अन्य कषायमे उपयुक्त रहे है तथा वर्तमानमें मानकषायमें उपयुक्त हैं तो उनके उस कालकी मिश्र-काल संज्ञा है । यहाँ भी अन्य कषायोंकी अपेक्षा इसी प्रकार स्वस्थान पदोंका निर्णय कर लेना चाहिए ।

§ २२१. अब इन पदोंके अल्पबहुत्वका निर्णय करनेके लिए आगेका सूत्र प्रबन्ध है—

* इन बारह पदोंका अल्पबहुत्व कहते हैं ।

§ २२२. आगे स्वस्थान सम्बन्धी इन बारह पदोंका अल्पबहुत्व बतलावेंगे इस प्रकार

---

१ ता० प्रती पदाण इति पाठ ।

* तं जहा।

§ २२३. सुगममेदं । एत्थ पयदप्पाबहुअविसए अव्वुप्पण्णसोदाराणं सुहावगमसमुप्पायणट्ठमेदेसिं बारसण्हं सत्थाणपदाणमेसा संदिट्ठी—

वट्टमाणकाले माणोवजुत्तरासिपमाणं १६, वट्टमाणकाले कोहोवजुत्तरासिपमाणं २०, वट्टमाणकाले मायोवजुत्तरासिपमाणं २५, वट्टमाणकाले लोभोवजुत्तरासिपमाणं ३१। तेसिं चेव जीवाणमदीदकाले माणोवजुत्तकालो एसो ३६, तेसिं चेव जीवाणमदीदकाले कोहोवजुत्तकालो एसो १२, तेसिं चेव जीवाणमदीदकाले मायोवजुत्तकालो एसो ४, तेसिं चेव जीवाण मदीदकाले लोभोवजुत्तकालो एसो २, तेसिं चेव जीवाणमदीदकाले णोमाणकालो एसो २९१६, तेसिं चेव जीवाणमदीदकाले णोकोहकालो एसो ९७२, तेसिं चेव जीवाणमदीदकाले णोमायकालो एसो ३२४, तेसिं चेव जीवाणमदीदकाले णोलोभकालो एसो १०८, तेसिं चेव जीवाणमदीदकाले माणमिस्सयकालो एसो ८७४८, तेसिं चेव जीवाणमदीदकाले कोहमिस्सयकालो एसो १०७१६, तेसिं चेव जीवाणमदीदकाले मायमिस्सयकालो एसो ११३७२, तेसिं चेव जीवाणमदीदकाले लोभमिस्सयकालो एसो ११५९०। एवमेदीए संदिट्ठीए जणिदसंसकाराणं सिस्साणमिदाणिं पयदप्पाबहुअमोदारइस्सामो—

* लोभोवजुत्ताणं लोभकालो थोवो।

---

यह प्रतिज्ञावाक्य है।

* वह जैसे।

§ २२३. यह सूत्र सुगम है। यहाँपर प्रकृत अल्पबहुत्वके विषयमें अजानकार श्रोताओंको सुखपूर्वक ज्ञान उत्पन्न करनेके लिए इन बारह स्वस्थान पदोंकी यह संदृष्टि है— वर्तमानकालमें मानमें उपयुक्त हुई जीवराशिका प्रमाण १६, वर्तमान कालमें क्रोधमें उपयुक्त हुई जीवराशिका प्रमाण २०, वर्तमान कालमें मायामें उपयुक्त हुई जीवराशिका प्रमाण २५ तथा वर्तमान कालमें लोभमें उपयुक्त हुई जीवराशिका प्रमाण ३१। उन्हीं जीवोंका अतीत कालमें मानोपयुक्त काल यह है—३६। उन्हीं जीवोंका अतीत कालमें क्रोधोपयुक्त काल यह है—१२। उन्हीं जीवोंका अतीत कालमें मायोपयुक्त काल यह है—४। उन्हीं जीवोंका अतीत कालमें लोभोपयुक्त काल यह है—२। उन्हीं जीवोंका अतीत कालमें नोमानकाल यह है—२९१६। उन्हीं जीवोंका अतीत कालमें नोक्रोधकाल यह है ९७२। उन्हीं जीवोंका अतीत कालमें नोमायाकाल यह है—३२४। उन्हीं जीवोंका अतीत कालमें नोलोभकाल यह है—१०८। उन्हीं जीवोंका अतीत कालमें मानमिश्रकाल यह है—८७४८। उन्हीं जीवोंका अतीत कालमें क्रोधमिश्रकाल यह है—१०७१६। उन्हीं जीवोंका अतीत कालमें मायामिश्रकाल यह है—११३७२। उन्हीं जीवोंका अतीत कालमें लोभमिश्रकाल यह है—११५९०। इस प्रकार इस संदृष्टि द्वारा संस्कार प्राप्त शिष्योंके निमित्त इस समय प्रकृत अल्पबहुत्वका अवतार करेंगे—

* लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका लोभकाल सबसे थोड़ा है।

§ २२४. किं कारणं ? वट्टमाणसमयम्मि लोभोवजुत्तजीवरासी सेसकसायोवजुत्तजीवे अवेक्खिय बहुओ होदूण पुणो अदीदकालम्मि एक्कदो कादुमदीव दुल्लहो होइ, तेणेसो कालो अदीदकालमाहप्पेणाणंतो होदूण सव्वत्थोवो जादो। तस्स पमाणमेदं २।

* मायोवजुत्ताणं मायकालो अणंतगुणो।

§ २२५. किं कारणं ? वट्टमाणसमयलोभोवजुत्तजीवरासीदो वट्टमाणसमयमायोवजुत्तजीवरासी विसेसहीणो होइ। थोवो च जीवरासी लहुमेव तत्थ परिणमदि त्ति एदेण कारणेणेसो कालो अणंतो होदूण पुव्विल्लकालादो अणंतगुणो त्ति सिद्धं ४।

* कोहोवजुत्ताणं कोहकालो अणंतगुणो।

§ २२६. १२, कारणं पुव्व व वत्तव्वं।

* माणोवजुत्ताणं माणकालो अणंतगुणो।

§ २२७. ३६, एत्थ वि कारणमणंतरपरूविदमेव।

* लोभोवजुत्ताणं णोलोभकालो अणंतगुणो।

§ २२८. किं कारणं ? वट्टमाणसमयलोभोवजुत्तजीवरासिस्स अदीदकालम्मि

---

§ २२४. क्योंकि वर्तमान समयमें लोभकषायमें उपयुक्त हुई जीवराशि शेष कषायोंमें उपयुक्त जीवराशिकी अपेक्षा बहुत है। फिर भी उसे अतीत कालमें एकत्र करना अति दुर्लभ है, इसलिए यह काल अतीत कालके माहात्म्यवश अनन्त होकर भी सबसे थोड़ा है। उसका प्रमाण यह है—२।

* उससे मायाकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका मायाकाल अनन्तगुणा है।

§ २२५ क्योंकि वर्तमान समयमे लोभकषायमें उपयुक्त हुई जीवराशिसे वर्तमान समयमें मायाकषायमें उपयुक्त हुई जीवराशि विशेष हीन है। और थोड़ी जीवराशि शीघ्र ही उस रूप परिणम जाती है, इस प्रकार इस कारणसे यह काल अनन्त होकर भी पूर्वराशिके कालसे अनन्तगुणा है यह सिद्ध हुआ। उसका प्रमाण ४ है।

विशेषार्थ—यहाँ अनन्तका प्रमाण २, लोभकाल २; २×२=४ मायाकाल।

* उससे क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका क्रोधकाल अनन्तगुणा है।

§ २२६. क्रोधकाल १२। कारणका कथन पहलेके समान करना चाहिए।

विशेषार्थ—लोभकाल २, मायाकाल ४, दोनोंका योग ६; ६×२=१२ क्रोधकाल।

* उससे मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका मानकाल अनन्तगुणा है।

§ २२७. ३६, यहाँ भी पूर्वमें कहा गया ही कारण जानना चाहिए।

विशेषार्थ—लोभ-माया काल ६, क्रोधकाल १२, दोनोंका योग १८, १८×२=३६ मानकाल।

* उससे लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका नोलोभकाल अनन्तगुणा है।

§ २२८ क्योंकि वर्तमान समयमे लोभकषायमें उपयुक्त जीवराशिका अतीत कालमें

लोभगमणेण विणा सेसकसाएसु थोवावट्ठाणकालो पुव्विल्लकालादो बहुओ होइ, विसयबहुत्तेण तहाविहसंपत्तीए सुलहत्तदंसणादो। तदो माणोवजुत्ताणं माणकालादो एसो कालो अणंतगुणो त्ति सिद्धं १०८।

*** मायोवजुत्ताणं णोमायकालो अणंतगुणो।**

§ २२९. ३२४, वट्टमाणसमयमायोवजुत्ताणमदीदकालम्मि मायमगंतूण सेसकसाएसु चेवावट्ठाणकालो। एसो पुव्विल्लणोलोभकालं पेक्खियूणाणंतगुणो। कधमेदं परिच्छिज्जदे ? पुव्विल्लविसयादो एदस्स विसयबहुत्तोवलंभादो। तं कधं ? पुव्विल्लविसयो णाम कोह-माण-मायासु अच्छणकालो। एसो पुण कोह-माण-लोभेसु अवट्ठाणकालो त्ति तेणाणंतगुणो जादो। रासीणं थोवबहुत्तं च एत्थ कारणं वत्तव्वं।

*** कोहोवजुत्ताणं णोकोहकालो अणंतगुणो।**

§ २३०. ९७२। एत्थ वि कारणमणंतरपरूविदमेव दट्ठव्वं।

---

लोभकषायमें जानेके विना शेष कषायोंमें थोड़ा अवस्थान काल पूर्वके कालसे बहुत है, क्योंकि विषयका बाहुल्य होनेसे उस प्रकारसे कालकी प्राप्ति सुलभ देखी जाती है। इसलिए मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंके मानकालसे यह काल अनन्तगुणा है यह सिद्ध हुआ। उसका प्रमाण १०८ है।

**विशेषार्थ**—लोभ-माया-क्रोधकाल १८, मानकाल ३६, दोनोंका योग ५४, ५४×२ = १०८ नोलोभकाल।

*** उससे मायाकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका नोमायाकाल अनन्तगुणा है।**

§ २२९. नोमायाकाल ३२४। वर्तमान समयमें मायामें उपयुक्त हुए जीवोंका अतीत कालमें माया कषायरूप न परिणम कर शेष कषायोंमें ही जो अवस्थान काल है उसे नोमायाकाल कहते हैं। यह पूर्वके नोलोभकालको देखते हुए अनन्तगुणा है।

**शंका**—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

**समाधान**—पूर्वके विषयसे इसका विषय बहुत उपलब्ध होता है, इससे जाना जाता है कि नोलोभकालसे नोमायाकाल अनन्तगुणा है।

**शंका**—वह कैसे ?

**समाधान**—क्योंकि क्रोध, मान और मायामें रहनेके कालको पूर्वका विषय कहते हैं, परन्तु यह क्रोध, मान और लोभमें रहनेका काल है, इसलिए उससे यह अनन्तगुणा हो गया है। तथा राशियोंके अल्पबहुत्वको इसमें कारण कहना चाहिए।

**विशेषार्थ**—लोभ-माया-क्रोध-मानकाल ५४, नोलोभकाल १०८, दोनोंका योग १६२, १६२×२ = ३२४ नोमायाकाल।

*** उससे क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका नोक्रोधकाल अनन्तगुणा है।**

§ २३०. नोक्रोधकाल ९७२। कारणका कथन पहले कर आये हैं। उसे ही यहाँपर जानना चाहिए।

* माणोवजुत्ताणं णोमाणकालो अणंतगुणो ।

§ २३१. २९१६ । एत्थ वि कारणमणंतरणिद्दिट्ठमेव ।

* माणोवजुत्ताणं मिस्सयकालो अणंतगुणो ।

§ २३२. ८७४८ । किं कारणं णोमाणकालो णाम माणवदिरित्तसेसकसाएसु णिरुद्धजीवाणमवट्ठाणकालो । तदो तिण्हमद्धाणं समासादो जेण चउण्हमद्धाणं समूहो बहुओ तेण मिस्सयकालो पुव्विल्लकालादो अणंतगुणो त्ति गहेयव्वं । अण्णं च माणोवजुत्तवट्टमाणजीवरासिस्स अब्भतरादो जइ वि एगो जीवो णिप्पिडियूणण्णकसाये पविसइ तो वि माणस्स मिस्सयकालो णाम वुच्चइ । एवं जइ वि दो जीवा अण्णकसाएसु पविसंति तो वि माणमिस्सयकालो भवइ । एदेण विहिणा संखेज्जासंखेज्जाणंतवियप्पेहि माणस्स मिस्सयकालो लब्भइ । जदो एवमणंतवियप्पेहिं पयदकालोवलंभसंभवो तदो अणंतगुणो त्ति सिद्धं ।

* कोहोवजुत्ताणं मिस्सयकालो विसेसाहिओ ।

---

विशेषार्थ—लोभ-माया-क्रोध-मानकाल ५४, नोलोभकाल १०८, नोमायाकाल ३२४, तीनों कालोंका योग ४८६, ४८६ × २ = ९७२ नोक्रोधकाल ।

* उससे मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका नोमानकाल अनन्तगुणा है ।

§ २३१ नोमानकाल २९१६ । कारणका कथन पहले कर आये हैं । वसे ही यहाँपर जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—लोभ-माया-क्रोध-मानकाल ५४, नोलोभकाल १०८, नोमायाकाल ३२४, नोक्रोधकाल ९७२, चारों कालोंका योग १४५८ । १४५८ × २ = २९१६ नोमानकाल ।

* उससे मानमें उपयुक्त हुए जीवोंका मिश्रकाल अनन्तगुणा है ।

§ २३२. मानकषायसम्बन्धी मिश्रकाल ८७४८, क्योंकि मानकषायके सिवाय शेष कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंके अवस्थान कालकी नोमानकाल संज्ञा है । इसलिए तीन कालोंके योगसे चार कालोंका योग बहुत होता है, अत पूर्वके कालसे मिश्रकाल अनन्तगुणा है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए । दूसरी बात यह है कि मानकषायमें उपयुक्त हुई वर्तमान जीवराशिमेंसे यद्यपि एक जीव निकल कर अन्य कषायरूप परिणम जाता है तो भी मानकषायका मिश्रकाल कहा जाता है । इसी प्रकार यद्यपि दो जीव अन्य कषायरूप परिणम जाते हैं तो भी मानकषायका मिश्रकाल होता है । इस विधिसे संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रकारसे मानकषायका मिश्रकाल प्राप्त होता है । यतः इस प्रकार अनन्त प्रकारसे प्रकृत कालकी प्राप्ति सम्भव है, अतः यह काल अनन्तगुणा है यह सिद्ध हुआ ।

विशेषार्थ—लोभ-माया-क्रोध-मानकाल ५४, नोलोभकाल १०८, नोमायाकाल ३२४, नोक्रोधकाल ९७२, नोमानकाल २९१६, इन सब कालोंका योग ४३७४ । ४३७४ × २ = ८७४८ मानमिश्रकाल ।

* उससे क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका मिश्रकाल विशेष अधिक है ।

§ २३३. केत्तियमेत्तो विसेसो ? कोह-णोकोहकालेहिं परिहीणमाण-णोमाणकालमेत्तो । तं कधं ? अदीदकालसव्वपिंडादो माण-णोमाणकालेसु सोहिदेसु सुद्धसेसमेत्तो माणस्स मिस्सयकालो होइ । सो च संदिट्ठीए एत्तियो ८७४८, अदीदकालसव्वसमासो संदिट्ठीए ११७०० एत्तियमेत्तो त्ति गहणादो । पुणो एत्थेव कोह-णोकोहकालेसु माण-णोमाणकालेहिंतो अणंतगुणहीणेसु सोहिदेसु सुद्धसेसमेत्तो कोहमिस्सयकालो संदिट्ठीए एत्तियमेत्तो होइ १०७१६ । एसो च माणमिस्सयकालादो माण-णोमाणकालाणमणंतभागमेत्तेण विसेसाहिओ त्ति णत्थि संदेहो । संदिट्ठी विसेसपमाणमेदं १९६८ ।

* मायोवजुत्ताणं मिस्सयकालो विसेसाहियो ।

§ २३४. ११३७२ । केत्तियमेत्तो विसेसो ? माय-णोमायकालेहिं परिहीणकोह-णोकोहकालमेत्तो । सो च संदिट्ठीए एसो ६५६ । सेसं सुगमं, अणंतरादीदसुत्त-

§ २३३. विशेषका प्रमाण क्या है ?

समाधान—मान और नोमानके कालोंमेंसे क्रोध और नोक्रोधके कालोंको कम कर देने पर जो शेष रहे उतना विशेषका प्रमाण है ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—अतीत कालसम्बन्धी सब कालोंके योगमेंसे मान और नोमानकालके कम कर देनेपर जो शेष रहे वह मानकषायका मिश्रकाल होता है और वह अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा ८७४८ इतना है, क्योंकि अतीत कालसम्बन्धी सब कालोंका योग अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा ११७०० इतना ग्रहण किया गया है । पुनः इसीमेंसे मान और नोमानकालसे अनन्तगुणे हीन क्रोध और नोक्रोधकालके घटा देनेपर जो काल शेष रहता है वह क्रोधमिश्रकाल है, जो कि अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा इतना है—१०७१६ । और यह मानके मिश्रकालसे मान-नोमानकालके अनन्तवें भागमात्र अधिक है इसमें सन्देह नहीं है । संदृष्टिकी अपेक्षा विशेषका प्रमाण यह है—१९६८ ।

विशेषार्थ—(१) मानकाल ३६, नोमानकाल २९१६; दोनोंका योग २९५२ । क्रोधकाल १२, नोक्रोधकाल ९७२; दोनोंका योग ९८४ । २९५२ − ९८४ = १९६८ विशेषका प्रमाण । मानमिश्रकाल ८७४८ + १९६८ = १०७१६ क्रोधमिश्रकाल ।

(२) मान-नोमानकाल २९५२, २९५२ ÷ ३ (अनन्त) = ९८४ मान-नोमानके कालसे अनन्तगुणा हीन क्रोध-नोक्रोधका काल । ११७०० अतीतसम्बन्धी सब कालोंका योग । ११७०० − ९८४ = १०७१६ क्रोधमिश्रकाल ।

* उससे मायाकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका मिश्रकाल विशेष अधिक है ।

§ २३४. मायाकषायका मिश्रकाल—११३७२ ।

शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—क्रोध और नोक्रोधके कालोंमेंसे माया और नोमायाके कालोंको कम करनेपर जो शेष रहे उतना है । संदृष्टिकी अपेक्षा उसका प्रमाण इतना है—६५६ । शेष कथन

परूवणाए चेव गयत्थत्तादो ।

*** लोभोवजुत्ताणं मिस्सयकालो विसेसाहियो ।**

§ २३५. ११५९० । केत्तियमेत्तो विसेसो? माय-णोमायकालेहिंतो लोभ-णोलोभकालेसु सोहिदेसु सुद्धसेसमेत्तो । तं च सुद्धसेसपमाणमेत्थ संदिट्ठीए एत्तियमेत्त-मिदि घेत्तव्वं २१८ ।

§ २३६. सव्वत्थ अप्पप्पणो काल-णोकालेसु अदीदकालादो सोहिदेसु सुद्धसेसो मिस्सयकालो होदि त्ति वत्तव्वं । सव्वेसिमदीदकालपमाणसंदिट्ठी एसा ११७०० ।

§ २३७. एवमेदेसिं बारसण्हं सत्थाणपदाणमप्पाबहुअपरूवणा कया । संपहि सेसपरत्थाणपदाणं पि एदेसु बारससु पदेसु पवेसणं कादूण बादालीसपदपडिबद्धं परत्थाण-प्पाबहुअं पि णेदव्वमिदि पदुप्पायणट्ठमिदमाह—

*** एत्तो बादालीसपदप्पाबहुअं कायव्वं ।**

---

सुगम है, क्योंकि इससे पूर्वके सूत्रमें कथनके समय ही उसका व्याख्यान कर आये हैं ।

**विशेषार्थ**—माया नोमायाकाल ३२८, क्रोध-नोक्रोधकाल ९८४ । ९८४ – ३२८ = ६५६ विशेषका प्रमाण । क्रोधमिश्रकाल १०७१६, १०७१६ + ६५६ = ११३७२ माया मिश्रकाल ।

*** उससे लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका मिश्रकाल विशेष अधिक है ।**

§ २३५ लोभमिश्रकाल ११५९० ।

**शंका**—विशेषका प्रमाण कितना है ?

**समाधान**—माय-नोमायासम्बन्धी कालोंमेंसे लोभ-नोलोभसम्बन्धी कालोंको कम कर देने पर जो शेष रहे उतना है । यहाँपर संदृष्टिकी अपेक्षा उस शेषका प्रमाण इतना २१८ ग्रहण करना चाहिए ।

**विशेषार्थ**—माया-नोमायाकाल ३२८, लोभ-नोलोभकाल ११०, ३२८ – ११० = २१८ विशेषका प्रमाण । मायामिश्रकाल ११३७२, ११३७२ + २१८ = ११५९० लोभमिश्रकाल ।

§ २३६ सर्वत्र अतीत कालमेंसे अपने-अपने काल तथा नोकालको कम कर देनेपर जो शेष रहे उतना अपना-अपना मिश्रकाल होता है ऐसा यहाँ कहना चाहिए । सबके अतीत कालके प्रमाणकी अंकसंदृष्टि यह है—११७०० ।

**विशेषार्थ**—अतीत काल ११७००, मान-नोमानकाल २९५२, क्रोध-नोक्रोधकाल ९८४, माया-नोमायाकाल ३२८, लोभ-नोलोभकाल ११० । ११७००–२९५२ = ८७४८ मानमिश्रकाल । ११७०० – ९८४ = १०७१६ क्रोधमिश्रकाल, ११७०० – ३२८ = ११३७२ मायामिश्रकाल, ११७०० – ११० = ११५९० लोभमिश्रकाल ।

§ २३७. इस प्रकार इन बारह स्वस्थान पदोंके अल्पबहुत्वका कथन किया । अब शेष परस्थान पदोंको भी इन बारह पदोंमें प्रविष्ट करके ब्यालीस पदसम्बन्धी परस्थान अल्पबहुत्व भी जानना चाहिए इस तथ्यका कथन करनेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

*** आगे ब्यालीस पदसम्बन्धी अल्पबहुत्व करना चाहिए ।**

§ २३८. एत्तो बादालीसपदणिबद्धं परत्थाणप्पाबहुअं पि चिंतिय णेदव्वमिदि वुत्तं होइ। तं पुण बादालीसपदमप्पाबहुअं संपहियकाले विसिट्ठोवएसाभावादो ण सम्ममवगम्मदि त्ति ण तव्विवरणं कीरदे।

* तदो छट्ठी गाहा समत्ता भवदि।

§ २३९. एवमेदं समाणिय संपहि सत्तमगाहाए जहावसरपत्तमत्थविहासणं कुणमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

* 'उवजोगवग्गणाहि य अविरहिदं काहि विरहियं वा वि' त्ति एदम्मि अद्धे एक्को अत्थो, विदिये अद्धे एक्को अत्थो; एवं दो अत्था।

§ २४०. एदेण सुत्तावयवेण एदिस्से सत्तमीए सुत्तगाहाए दोसु अत्थाहियारेसु पडिबद्धत्तं परूविदं। तत्थ ताव पुव्वद्धे दुविहाओ उवजोगवग्गणाओ अहिकरिय तासु जीवेहिं विरहिदाविरहिदट्ठाणपरूवणा णाम पढमो अत्थो णिबद्धो, उवजोगवग्गणा-सहचरिदाणं जीवाणमुवजोगवग्गणावएसं कादूण तेहिं विरहिदमविरहिदं वा क ट्ठाणं होदि त्ति पुच्छामुहेण सुत्तत्थसंबंधावलंबणादो। एत्थ 'काहिं त्ति' वुत्ते केत्तियमेत्ताहिं उवजोगवग्गणासहचरिदजीववग्गणाहि कं ट्ठाणमविरहिदं होदि त्ति घेत्तव्वं। अहवा उवजोगवग्गणाहिं काल-भावविसयाहिं केत्तियमेत्ताहिं गदाहिं जीवेहिं विरहिदं ट्ठाणं होइ, केत्तियमेत्ताहिं वा णिरंतरसरूवाहिं जीवविरहिदमद्धाणं लब्भइ त्ति पदसंबंधं कादूण

---

§ २३८. अब व्यालीस पदोंमें निबद्ध परस्थान अल्पबहुत्वका भी विचार कर कथन करना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है। किन्तु यह व्यालीस पदविषयक अल्पबहुत्व वर्तमान कालमें विशिष्ट उपदेशका अभाव होनेसे सम्यक् प्रकारसे ज्ञात नहीं है, इसलिए उसका विशेष व्याख्यान नहीं करते हैं।

* इस प्रकार पूर्वोक्त प्रकारसे व्याख्यान करनेपर छठी गाथा समाप्त होती है।

§ २३९. इस प्रकार इस गाथाके व्याख्यानको समाप्तकर अब सातवीं गाथाके अवसर प्राप्त अर्थका विशेष व्याख्यान करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* 'कितनी उपयोगवर्गणाओंसे कौन स्थान अविरहित पाया जाता है और कौन स्थान विरहित पाया जाता है।' इस प्रकार गाथाके इस पूर्वार्धमें एक अर्थ निबद्ध है और गाथाके उत्तरार्धमें एक दूसरा अर्थ निबद्ध है। इस प्रकार इस गाथामें दो अर्थ निबद्ध हैं।

§ २४०. इस सूत्रवचन द्वारा यह सातवीं सूत्रगाथा दो अर्थाधिकारोंमें निबद्ध है यह कहा गया है। उनमेंसे सर्वप्रथम गाथाके पूर्वार्धमें दो प्रकारकी उपयोगवर्गणाओंको अधिकृत कर उनमें जीवोंसे रहित और सहित स्थानप्ररूपणा नामक प्रथम अर्थाधिकार निबद्ध है, क्योंकि उपयोग वर्गणाओंसे युक्त जीवोंकी उपयोगवर्गणा संज्ञा करके उनसे रहित या सहित कौन स्थान है इस प्रकारकी पृच्छाद्वारा सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्धका अवलम्बन लिया गया है। इस गाथामें 'काहिं' ऐसा कहनेपर कितनी उपयोगवर्गणाओंसे युक्त जीववर्गणाओंसे कौन स्थान युक्त है यह अर्थ ग्रहण करना चाहिए। अथवा काल और भावविषयक कितनी उपयोगवर्गणाओंके जानेके बाद जीवोंसे रहित स्थान होता है, अथवा निरन्तरस्वरूप कितनी

सुत्तत्थसमत्थणा कायव्वा। तदो गाहापुव्वद्धे एवंविहो एक्को अत्थो पडिबद्धो त्ति सम्ममवहारिदं। पच्छद्धे वि कसायोवजुत्तजीवाणं गदीयो अस्सियूण तिविहाए सेढीए अप्पाबहुअपरूवणं णाम विदियो अत्थो पडिबद्धो। एवमेदेसु दोसु अत्थविसेसेसु पडिबद्धत्तमेदस्स गाहासुत्तस्स णिरूविय संपहि 'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति णायावलंबणेण पुव्वद्धस्स ताव विहासणं कुणमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

*** पुरिमद्धस्स विहासा।**

§ २४१. गाहासुत्तपुरिमद्धस्स ताव विहासा कीरदि त्ति भणिदं होइ।

*** एत्थ दुविहाओ उवजोगवग्गणाओ—कसायउदयट्ठाणाणि च उवजोगद्धट्ठाणाणि च।**

§ २४२. एत्थ पुरिमद्धविहासणावसरे दुविहाओ उवजोगवग्गणाओ होंति। काओ ताओ त्ति पुच्छिदे कसायुदयट्ठाणाणि च उवजोगद्धट्ठाणाणि चेदि भणिदं। तत्थ कसायोदयट्ठाणाणि णाम कोहादिकसायाणमुदयवियप्पा पादेक्कमसंखेज्जलोयभेयभिण्णा। उवजोगद्धट्ठाणाणि त्ति वुत्ते कोहादिकसायाणं जहण्णोवजोगकालप्पहुडि जावुक्कस्सतकालो त्ति एदेसिं वियप्पाणं संगहो कायव्वो। एदाणि च उवजोगद्धट्ठाणाणि अंतोमुहुत्तमेत्ताणि, जहण्णकालमुक्कस्सकालादो सोहिय सुद्धसेसम्मि एयरूवपक्खेवे कदे

---

उपयोगवर्गणाओंके द्वारा जीवोंसे रहित स्थान प्राप्त होता है इस प्रकार पदसम्बन्ध करके सूत्रके अर्थका समर्थन करना चाहिए। इस प्रकार गाथाके पूर्वार्धमें इस प्रकारका एक अर्थ प्रतिबद्ध है इसका सम्यक् प्रकारसे निश्चय किया। गाथाके उत्तरार्धमें भी कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंके गतियोंके आश्रयसे तीन प्रकारकी श्रेणियोंद्वारा अल्पबहुत्वका कथन नामक दूसरा अर्थ प्रतिबद्ध है। इस प्रकार इन दो अर्थविशेषोंमें निबद्ध इस गाथासूत्रका निरूपण करके अब 'उद्देश्यके अनुसार निर्देश किया जाता है' इस न्यायका अवलम्बन लेकर सर्वप्रथम पूर्वार्धका विशेष व्याख्यान करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

*** अब पूर्वार्धका विशेष व्याख्यान करते हैं।**

§ ३४१. सर्वप्रथम गाथासूत्रके पूर्वार्धका विशेष व्याख्यान करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

*** प्रकृतमें उपयोग वर्गणाएं दो प्रकारकी हैं—कषाय-उदयस्थान और उपयोग-अद्धास्थान।**

§ २४२. प्रकृतमें पूर्वार्धके विशेष व्याख्यानके अवसरपर उपयोगवर्गणाएँ दो प्रकारकी होती हैं। वे कौनसी हैं ऐसा पूछनेपर कषाय-उदयस्थान और उपयोग-अद्धास्थान ऐसा कहा है। उनमेंसे जो क्रोधादि कषायोंके उदय विकल्प प्रत्येक असंख्यात लोकप्रमाण भेदोंको लिये हुए हैं वे सब कषाय-उदयस्थान कहलाते हैं। उपयोग-अद्धास्थान ऐसा कहनेपर क्रोधादि कषायोंके जघन्य उपयोगकालसे लेकर उत्कृष्ट उपयोगकाल तक इन भेदोंका संग्रह करना चाहिए। ये उपयोग-अद्धास्थान अन्तर्मुहूर्तप्रमाण हैं, क्योंकि उत्कृष्ट कालमेंसे जघन्य कालको

तव्वियप्पुप्पत्तिदंसणादो। एवमेदाणि दुविहाणि वि ट्ठाणाणि उवजोगसंबंधित्तादो उवजोगवग्गणाओ त्ति एत्थ विवक्खियाणि। संपहि एदस्सेवत्थस्स णिग्गमणट्ठमुवरिमं सुत्तमाह—

* एदाणि दुविहाणि वि ट्ठाणाणि उवजोगवग्गणाओ त्ति वुच्चंति।

§ २४३. सुगममेदं। तत्थ ताव उवजोगद्धट्ठाणेसु जीवेहिं विरहिदाविरहिदट्ठाण-परूवणट्ठमुवरिमो सुत्तपबंधो—

* उवजोगद्धट्ठाणेहिं ताव केत्तिएहिं विरहिदं केहिं कम्हि अविरहिदं?

§ २४४. केत्तिएहिं उवजोगद्धट्ठाणेहिं णिरंतरसरूवेण गदेहिं जीवविरहिदं ठाणमुव-लब्भइ, केहि वा जीवेहिं कम्हि गदिविसेसे अविरहियमसुण्णं होदूण कं ठाणमुवलब्भदि त्ति एत्थ पदसंबंधो कायव्वो। एवं पुच्छाणिद्देसं कादूण तदो एसा मग्गणा एत्थ कायव्वा त्ति पदुप्पायणट्ठमिदमाह—

* एत्थ मग्गणा।

§ २४५. एदम्मि अत्थविसेसे एसा मग्गणा णिरयादिगदीओ अस्सियूण कायव्वा त्ति भणिदं होइ। तत्थ ताव णिरयगदीए पयदमग्गणट्ठमुवरिमपबंधमाह—

घटाकर जो शेष रहे उसमें एक अंकके मिला देनेपर उनके भेदोंकी उत्पत्ति देखी जाती है। इस प्रकार ये दोनों ही स्थान उपयोगसम्बन्धी होनेसे उपयोगवर्गणाएं हैं ऐसा यहाँ विवक्षित किया गया है। अब इसी अर्थका विशेष ज्ञान करानेके लिए आगेके सूत्रको कहते हैं—

* ये दोनों ही प्रकारके स्थान उपयोगवर्गणा इस नामसे कहे जाते हैं।

§ २४३. यह सूत्र सुगम है। सर्वप्रथम उनमेंसे उपयोग-अद्धास्थानोंमे जीवोंसे रहित और सहित स्थानोंका कथन करनेके लिए आगेका सूत्रप्रवन्ध आया है—

* कितने उपयोग-अद्धास्थानोंके जानेके बाद कौन स्थान रहित पाया जाता है और किन जीवोंसे किस गतिविशेषमें कौन स्थान सहित पाया जाता है।

§ २४४ कितने उपयोग-अद्धास्थानोंके द्वारा निरन्तररूपसे जानेके बाद कौन स्थान जीवोंसे रहित उपलब्ध होता है और किन जीवोंसे किस गतिविशेषमें कौन स्थान सहित अर्थात् अशून्य उपलब्ध होता है इस प्रकार यहाँपर पदसम्बन्ध करना चाहिए। इस प्रकार पृच्छानिर्देश करके उसके बाद यह मार्गणा यहाँपर करनी चाहिए इस बातका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

* अब प्रकृतमें उक्त विषयकी मार्गणा करते हैं।

§ २४५. इस अर्थविशेषको ध्यानमें रखकर नरकादि गतियोंके आश्रयसे यह मार्गणा करनी चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है। उसमें सर्वप्रथम नरकगतिमें प्रकृत मार्गणाके लिए आगेके प्रवन्धको कहते हैं—

१ ता०प्रतौ उवजोगवग्गणाणि इति पाठ।

* णिरयगदीए एगस्स जीवस्स कोहोवजोगद्धट्ठाणेसु णाणाजीवाणं जवमज्झं ।

§ २४६. एत्थ णिरयगइणिद्देसो सेसगईणं पडिसेहट्ठो, सव्वासिमक्कमेण परूवणोवायाभावादो । तत्थ वि कोहादिकसायाणं चउण्हमक्कमेण परूवणोवायाभावादो कोहकसायविसयमेव ताव पयदपरूवणं वत्तइस्सामो त्ति जाणावणट्ठमेगजीवस्स कोहोवजोगद्धट्ठाणेसु त्ति णिद्देसो कओ । एत्थेगजीवणिद्देसो कोहोवजोगद्धट्ठाणाणमेगजीवोदाहरणमुहेण सुहाववोहणट्ठमिदि दट्ठव्वं । तदो एगजीवस्स कोहोवजोगद्धट्ठाणाणमंतोमुहुत्तमेत्ताणमेगसेढिआगारेण रचणं कादूण तत्थ णाणाजीवाणमवट्ठाणकमप्पदंसणट्ठमेदं वुच्चदे—णाणाजीवाणं जवमज्झमिदि । तेसु अद्धट्ठाणेसु एयजीवविसयत्तेण णिद्धारिदसरूवेसु णाणाजीवाणं जवमज्झायारेणावट्ठाणं होइ त्ति भणिदं होइ ।

§ २४७. संपहि एदस्सत्थस्स किं चि फुडीकरणं[1] वत्तइस्सामो । तं जहा—जहण्णए उवजोगद्धट्ठाणे जीवा असंखेज्जसेढिमेत्ता होंति । विदिए वि उवजोगद्धट्ठाणे जीवा असंखेज्जसेढिमेत्ता चेव होंति । होंता वि जहण्णट्ठाणजीवे आवलियाए असंखेज्जदिभागेण खंडियूणेयखंडमेत्तेणब्भहिया होंति। पुणो वि एदेण विहिणा ट्ठाणं पडि विसेसाहियसरूवेण गच्छमाणा[2] भागहारमेत्तोवजोगद्धट्ठाणाणि गंतूण तदित्थोव-

* नरकगतिमें एक जीवके क्रोधकषायसम्बन्धी उपयोग-अद्धास्थानोंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा यवमध्य होता है ।

§ २४६ इस चूर्णिसूत्रमें 'नरकगति' पदका निर्देश शेष गतियोंके प्रतिषेधके लिए किया है, क्योंकि सभी गतियोंके एक साथ प्ररूपण करनेका कोई उपाय नहीं है । उसमें भी चारों क्रोधादि कषायोंके एक साथ प्ररूपण करनेका कोई उपाय न होनेसे क्रोधकषायविषयक प्रकृत प्ररूपणाको ही सर्वप्रथम बतलाते हैं इस बातका ज्ञान करानेके लिए 'एक जीवके क्रोधसम्बन्धी उपयोग-अद्धास्थानोंमें' इस पदका निर्देश किया है । यहाँपर 'एक जीव' पदका निर्देश क्रोधसम्बन्धी उपयोग-अद्धास्थानोंका एक जीवके उदाहरण द्वारा सुखपूर्वक ज्ञान करानेके लिए जानना चाहिए । इसलिए एक जीवके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण क्रोधसम्बन्धी उपयोग-अद्धास्थानोंकी श्रेणिरूपसे रचना करके उनमे नाना जीवोंके अवस्थानक्रमको दिखलानेके लिए 'नाना जीवोंका यवमध्य' यह वचन कहा है । एक जीवके विषयरूपसे निर्धारित किये गये उन अद्धास्थानोंमे नाना जीवोंका यवमध्यके आकाररूपसे अवस्थान होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

§ २४७. अब इसी अर्थका कुछ स्पष्टीकरण करके बतलाते हैं । यथा—जघन्य उपयोग-अद्धास्थानमें जीव असंख्यात जगच्छ्रेणिप्रमाण होते हैं । दूसरे भी उपयोग-अद्धास्थानमें जीव असंख्यात जगश्रेणिप्रमाण ही होते हैं । यद्यपि इतने होते हैं तो भी जघन्य स्थानके जीवोंकी संख्यामे आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे उतने अधिक होते हैं । फिर भी इस विधिसे प्रत्येक स्थानके प्रति विशेष अधिकरूपसे जीवोंका प्रमाण लाते हुए भागहारप्रमाण उपयोग-अद्धास्थानोंके जानेपर वहाँके उपयोग-अद्धास्थानोंमें जो जीव

१ ता०प्रतौ फुडीकारण इति पाठ । २ ता० प्रतौ गच्छमाण इति पाठ ।

जोगद्धट्ठाणजीवा पढमट्ठाणजीवेहिंतो दुगुणा भवंति। पुणो एदस्स दुगुणवड्ढिट्ठाणस्सुवरि विसेसाहियसरूवेण तेत्तियमेत्तमद्धाणं गंतूण अण्णेगं दुगुणवड्ढिट्ठाणमुप्पज्जइ। णवरि पुव्विल्लपक्खेवेहिंतो संपहियपक्खेवा दुगुणा होंति त्ति वत्तव्वं। पुणो एदेण विहिणा आवलियाए असंखेज्जदिभागदुगुणमेत्तभागवड्ढीओ अवट्ठिदपक्खेवभागहारपडिबद्धाओ उवरि गंतूण तत्थेगम्मि उवजोगद्धट्ठाणे जवमज्झं होइ, तत्तो उवरिमट्ठाणेसु विसेसहाणिक्कमेण जीवाणमवट्ठाणदंसणादो। णवरि जवमज्झादो हेट्ठिमसयलदुगुणवड्ढिट्ठाणेहिंतो उवरिमदुगुणहाणिट्ठाणंतराणि संखेज्जगुणाणि त्ति घेत्तव्वं, हेट्ठिमद्धाणादो उवरिमद्धाणस्स संखेज्जगुणत्तादो। ण चेदमसिद्धं, उवरिमसुत्तेण तेसिं तहाभावसिद्धीदो। किं तं उवरिमसुत्तमिदि चे तस्सेदाणिमवयारो कीरदे—

* तं जहा—ट्ठाणाणं संखेज्जदिभागे।

§ २४८. एदमणंतरणिद्दिट्ठं जवमज्झट्ठाणं सयलद्धट्ठाणाणमादीदो प्पहुडि संखेज्जदिभागे समुप्पण्णमिदि वुत्तं होइ। तदो ट्ठाणाणं संखेज्जदिभागे चेव जवमज्झट्ठाण होदूण पुणो उवरिमसयलद्धाणम्मि विसेसहाणिसरूवेणावलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तगुणहाणिट्ठाणंतराणि हेट्ठिमगुणवड्ढिट्ठाणेहिंतो संखेज्जगुणाणि समयाविरोहेण णेदव्वाणि त्ति सिद्धं।

प्राप्त होते हैं वे प्रथम स्थानके जीवोंसे दूने होते हैं। पुनः इस द्विगुणवृद्धिस्थानके ऊपर विशेष अधिकरूपसे उतने ही स्थान जाकर एक दूसरा द्विगुणवृद्धिस्थान उत्पन्न होता है। इतनी विशेषता है कि पिछले द्विगुणवृद्धिस्थानोंके प्रक्षेपोंसे वर्तमान द्विगुणवृद्धिस्थानोंके प्रक्षेप दूने होते हैं ऐसा यहाँ कहना चाहिए। पुनः इस विधिसे अवस्थित प्रक्षेप-भागहारसे सम्बन्ध रखनेवाली आवलिके असंख्यातवे भागप्रमाण द्विगुणभागवृद्धियाँ हो जानेपर वहाँपर प्राप्त हुए एक उपयोग-अद्धास्थानमें यवमध्य होता है, क्योंकि उससे आगेके स्थानोंमें विशेष हानिके क्रमसे जीवोंका अवस्थान देखा जाता है। इतनी विशेषता है कि यवमध्यसे पूर्वके समस्त द्विगुणवृद्धिस्थानोंसे आगेके द्विगुणहानिस्थान संख्यातगुणे हैं ऐसा यहाँपर ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि पूर्वके अध्वानसे आगेका अध्वान संख्यातगुणा है। और यह असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि आगेके सूत्रसे उनके उस प्रकारसे होनेकी सिद्धि होती है। वह आगेका सूत्र कौनसा है ऐसी आशंका होनेपर उसका इस समय अवतार करते हैं—

* वह यवमध्यस्थान जितने स्थान हैं उनके संख्यातवें भागमें होता है।

§ २४८ यह पूर्वमें जो यवमध्यस्थान निर्दिष्ट कर आये हैं वह समस्त अद्धास्थानोंके प्रारम्भसे लेकर संख्यातवें भाग जानेपर उत्पन्न होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इसलिए समस्त स्थानोंके संख्यातवें भागप्रमाण स्थान जानेपर ही यवमध्यस्थान होकर पुनः आगेके समस्त अध्वानोंमें विशेष हानिके क्रमसे आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण गुणहानिस्थान पिछले गुणवृद्धिस्थानोंसे समयके अविरोधपूर्वक संख्यातगुणे होते हैं यह सिद्ध हुआ।

**विशेषार्थ**—यहाँपर यवमध्यस्थानके प्राप्त होने तक पूर्वमें कितनी द्विगुणवृद्धियाँ होती

२. ता०प्रतौ उवरिमद्दुगुण– इति पाठः।

§ २४९. संपहि जवमज्झादो हेट्ठा उवरिं च एगगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरमावलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तं चेव होदि त्ति जाणावणट्ठमुवरिमसुत्तमोइण्णं—

* एगगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरमावलियवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागो ।

§ २५०. आवलिया णाम पमाणविसेसो । तिस्से वग्गमूलमिदि वुत्ते तप्पढमवग्गमूलस्स गहणं कायव्वं । तस्स वि असंखेज्जदिभागो जवमज्झादो हेट्ठा उवरिं च एगगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरमवट्ठिदं होइ । णाणागुणहाणिट्ठाणंतरसलागाओ पुण असंखेज्जावलियपढमवग्गमूलमेत्ताओ एदम्हादो चेव साहेयव्वाओ त्ति पुध ण वुत्ताओ । एदं सव्वमदीदकालमस्सियूण परूविदं । संपहि वट्टमाणकालमस्सियूण विसेसपरूवणट्ठमुवरिमं पबंधमाह—

* हेट्ठा जवमज्झस्स सव्वाणि गुणहाणिट्ठाणंतराणि आवुण्णाणि सदा ।

§ २५१. जवमज्झस्स हेट्ठा ताव सव्वाणि गुणहाणिट्ठाणंतराणि सव्वकालमविरहिदसरूवेण जीवेहिं आवुण्णाणि चेव होंति त्ति णिच्छओ कायव्वो, एक्कस्स वि गुणहाणिट्ठाणतरस्स जीवसुण्णस्स तत्थ संभवाणुवलंभादो । संपहि तत्थतणसव्वअद्धट्ठाणाणि

---

हैं और उसके आगे कितनी द्विगुणहानियाँ होती हैं इस प्रमाणका निर्देश करते हुए यह बतलाया गया है कि यवमध्यस्थान जहाँ अवस्थित हैं वहाँ तक जितनी द्विगुणवृद्धियाँ होती हैं उससे आगे द्विगुणहानियाँ संख्यातगुणी होती हैं ।

§ २४९. अब यवमध्यसे पूर्वमें और आगे एक गुणवृद्धिस्थान और एक गुणहानिस्थान आवलिके असंख्यातवे भागप्रमाण ही है इस बातका ज्ञान करानेके लिए आगेका सूत्र आया है—

* एक गुणवृद्धिस्थानान्तर और एक गुणहानिस्थानान्तर आवलिके वर्गमूलके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

§ २५०. आवलि प्रमाणविशेषका नाम है । उसका वर्गमूल ऐसा कहनेपर उसके प्रथम वर्गमूलको ग्रहण करना चाहिए । उसके भी असंख्यातवे भागप्रमाण यवमध्यसे पूर्व एक गुणवृद्धिस्थानान्तर और उसके आगे एक गुणहानिस्थानान्तर अवस्थितस्वरूप है । अर्थात् एक आवलिके प्रथम वर्गमूलके असंख्यातवे भागका जो प्रमाण है उतना प्रकृतमें एक गुणवृद्धिस्थान और एक गुणहानिस्थानका प्रमाण है । नाना गुणहानिस्थानान्तरशलाकाएं तो असंख्यात आवलियोंके प्रथम वर्गमूलप्रमाण हैं यह इसी वचनसे साध लेना चाहिए, इसलिए उनका कथन अलगसे नहीं किया है । यह सब अतीत कालका आश्रय लेकर कहा है । अब वर्तमान कालका आश्रय लेकर विशेषका कथन करनेके लिए आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

* यवमध्यके अधस्तन ( पूर्व ) वर्ती सब गुणहानिस्थानान्तर सर्वदा आपूर्ण हैं अर्थात् जीवोंसे भरे हुए हैं ।

§ २५१ यवमध्यके पूर्ववर्ती तो सर्व गुणहानिस्थानान्तर सर्वदा अन्तरालके विना जीवोंसे आपूर्ण ही होते हैं ऐसा यहाँ निश्चय करना चाहिए, क्योंकि उनमें एक भी गुणहानि-

किं जीवेहिं णिरंतरमावुण्णाणि आहो णेदि एवंविहासंकाए णिरारेगीकरणट्ठमुवरिमं सुत्तमाह—

*** सव्वअद्धट्ठाणाणं पुण असंखेज्जा भागा आवुण्णा ।**

२५२. तत्थतणसव्वअद्धट्ठाणाणमसंखेज्जा चेव भागा जीवेहिं अविरहिदसरूवेणावुण्णा । तदसंखेज्जदिभागो पुण जीवेहिं विरहिदो होदूण लब्भदि त्ति वुत्तं होइ । जइ एवं सव्वाणि गुणहाणिट्ठाणंतराणि आवुण्णाणि त्ति कधं पुवुत्तं घडदि त्ति णासंका कायव्वा, पादेक्कसव्वगुणहाणिट्ठाणंतरेसु केत्तियाणं पि अद्धट्ठाणाणं जीवसुण्णत्ते वि तेसिं गुणहाणिट्ठाणंतराणं समुदायविवक्खाए आवुण्णत्ताविरोहादो । एवं ताव जवमज्झादो हेट्ठा जीवेहिं विरहिदाविरहिदट्ठाणाणं गवेसणं कादूण संपहि तत्तो उवरिमेसु वि ट्ठाणेसु पयदयमग्गणट्ठमुवरिमं पबंधमाह—

*** उवरिमजवमज्झस्स जहण्णेण गुणहाणिट्ठाणंतराणं संखेज्जदिभागो आवुण्णो । उक्कस्सेण सव्वाणि गुणहाणिट्ठाणंतराणि आवुण्णाणि ।**

§ २५३. जहा जवमज्झादो हेट्ठा सव्वाणि गुणहाणिट्ठाणतराणि णियमा आवुण्णाणि ण एवं जवमज्झादो उवरिमगुणहाणिट्ठाणेसु तहाविहणियमसंभवो । किंतु तत्थ जहण्णेण सव्वगुणहाणिट्ठाणंतराणं संखेज्जदिभागो चेव जीवेहिं आवूरिज्जदि, सेसाणं संखेज्जा-

स्थानान्तर जीवोंसे रहित नहीं पाया जाता। अब वहाँके सब अद्धास्थान क्या जीवोंसे निरन्तर आपूर्ण हैं या नहीं इस प्रकारकी आशंका होनेपर निशंक करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** किन्तु सर्व अद्धास्थानोंका असंख्यात बहुभाग ही आपूर्ण है ।**

§ २५२ वहाँके सर्व अद्धास्थानोंका असंख्यात बहुभाग ही जीवोंसे निरन्तररूपसे आपूर्ण है। उनका असंख्यातवाँ भाग तो जीवोंसे रहित पाया जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका—यदि ऐसा है तो सब गुणहानिस्थानान्तर आपूर्ण हैं यह पूर्वोक्त कथन कैसे घटित होता है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि पृथक्-पृथक् सब गुणहानिस्थानान्तरोंमेंसे कितने ही अद्धास्थान जीवोंसे रहित होनेपर भी समुदायकी विवक्षामें उन गुणहानिस्थानान्तरोंके आपूर्णपनेके होनेमें कोई विरोध नहीं आता।

इस प्रकार सर्व प्रथम यवमध्यसे पूर्वके जीवोंसे रहित और सहित स्थानोंका विचार करके अब उससे उपरिम स्थानोंमें भी प्रकृत विषयका विचार करनेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

*** यवमध्यसे आगेके गुणहानिस्थानान्तरोंका जघन्यरूपसे संख्यातवाँ भाग जीवोंसे आपूर्ण है तथा उत्कृष्टरूपसे सब गुणहानिस्थानान्तर जीवोंसे आपूर्ण हैं ।**

§ २५३. जिस प्रकार यवमध्यसे पूर्वके सब गुणहानिस्थानान्तर नियमसे जीवोंसे आपूर्ण है उस प्रकार यवमध्यसे आगेके गुणहानिस्थानोंमें उस प्रकारका नियम नहीं देखा जाता। किन्तु उनमें जघन्यरूपसे सब गुणहानिस्थानान्तरोंका संख्यातवाँ भाग ही जीवोंद्वारा

भागमेत्तगुणहाणिट्ठाणंतराणं जीवसुण्णाणं कदाइं संभवोवलंभादो। उक्कस्सेण पुण सव्वाणि गुणहाणिट्ठाणंतराणि आवुण्णाणि लब्भंति, कदाइं सव्वाणि वि गुणहाणिट्ठाणंतराणि णिरुंभियूण णेरइयाणमवट्ठाणदंसणादो त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसब्भावो। जवमज्झादो हेट्ठा पुण ण एवंविहो जहण्णुक्कस्सपविभागो अत्थि, तत्थ सव्वकालं जहण्णदो उक्कस्सदो वि पुव्वपरूविदेण कमेण जीवाणमवट्ठाणणियमदंसणादो। तदो ण तत्थ जहण्णुक्कसभेदं कादूण तण्णिद्देसो कओ त्ति दट्ठव्वं। संपहि जवमज्झादो उवरिम-अद्धट्ठाणाणं पि जहण्णुक्कस्सभेदेण जीवेहिं सुण्णासुण्णभावगवेसणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

*** जहण्णेण अद्धट्ठाणाणं संखेज्जदिभागो आवुण्णो। उक्कस्सेण अद्धट्ठाणाणमसंखेज्जा भागा आवुण्णा।**

§ २५४. जहण्णेण ताव अद्धट्ठाणाणं संखेज्जदिभागो चेव जीवेहिं आउण्णो होइ। किं कारणं? जवमज्झादो उवरिमगुणहाणिट्ठाणंतराणं संखेज्जदिभागमेत्तगुणहाणिट्ठाणंतरेसु जहण्णेणावुण्णेसु तदवयवभूदाणमद्धट्ठाणाणं पि सव्वअद्धट्ठाणाणं संखेज्जदिभागमेत्ताणमावूरणे विरोहाभावादो। उक्कस्सेण पुण णिरुद्धविसयसयलद्धट्ठाणाणमसखेज्जा भागा जीवेहिं आवुण्णा होंति, सव्वेसु गुणहाणिट्ठाणंतरेसु उक्कस्सपक्खेवेणावूरिदेसु वि तदवयवभूदाणमद्धट्ठाणाणं सगसव्वअद्धट्ठाणाणमसंखेज्जदिभागमेत्ताणं

---

भरा जाता है, क्योंकि शेष संख्यात बहुभागप्रमाण गुणहानिस्थानान्तर कदाचित् जीवोंसे रहित पाये जाते हैं। परन्तु उत्कृष्टरूपसे सब गुणहानिस्थानान्तर जीवोंसे आपूर्ण प्राप्त होते हैं, क्योंकि कदाचित् सभी गुणहानिस्थानान्तरोंको व्याप्तकर नारकियोंका अवस्थान देखा जाता है यह प्रकृतमें सूत्रार्थका तात्पर्य है। परन्तु यवमध्यके पूर्व इस प्रकारका जघन्य और उत्कृष्टरूप विभाग नहीं है, क्योंकि वहाँ सर्वदा जघन्यरूपसे और उत्कृष्टरूपसे भी पूर्वमें कहे गये क्रमके अनुसार ही जीवोंके अवस्थानका नियम देखा जाता है। इसलिये वहाँ जघन्य और उत्कृष्टका भेद करके उक्त विषयका निर्देश नहीं किया है ऐसा यहाँ समझना चाहिए। अब यवमध्यसे आगेके अद्धास्थानोंमें भी जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे जीवोंसे रहित और सहितपनेकी गवेषणा करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

*** जघन्यरूपसे अद्धास्थानोंका संख्यातवाँ भाग जीवोंसे आपूर्ण है तथा उत्कृष्टरूपसे अद्धास्थानोंका असंख्यात बहुभाग जीवोंसे आपूर्ण है।**

§ २५४. जघन्यरूपसे तो अद्धास्थानोंका संख्यातवाँ भाग ही जीवोंसे आपूर्ण होता है, क्योंकि यवमध्यसे आगेके गुणहानिस्थानान्तरोंके संख्यातवें भागमात्र गुणहानिस्थानान्तरोंके जघन्यरूपसे जीवोंसे आपूर्ण होनेपर उनके अवयवभूत अद्धास्थानोंके भी, जो कि सब अद्धास्थानोंके संख्यातवें भागमात्र हैं, जीवोंसे परिपूर्ण होनेमें कोई विरोध नहीं आता। परन्तु उत्कृष्टरूपसे तो विवक्षित विषयसम्बन्धी सब अद्धास्थानोंके असंख्यात बहुभागस्थान जीवोंसे आपूर्ण होते हैं, क्योंकि सब गुणहानिस्थानान्तरोंके उत्कृष्ट प्रक्षेपसे आपूरित होनेपर भी उनके अवयवभूत अद्धास्थनोंमेंसे अपने सब अद्धास्थानोंके असंख्यातवें भागमात्र स्थानोंके

[illegible] ! एवं ताव [illegible] [illegible] हेट्ठा [illegible] च [illegible] च [illegible] [illegible] होइ [illegible] च [illegible] [illegible] होइ त्ति [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—

* एसो उवएसो पवाइज्जइ।

§ २९४. जो एसो अणंतरपरूविदो उवएसो सो पवाइज्जंतो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] त्ति वुत्तं होइ। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होदि त्ति [illegible] [illegible] [illegible]—

* अण्णो उवदेसो सव्वाणि गुणट्ठाणिट्ठाणंतराणि अविरहियाणि जीवेहिं, उवजोगद्धट्ठाणंतराणि भागा अविरहिदो।

§ २९५. पवाइज्जंतो अण्णो जो उवएसो अपवाइज्जंतो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हेट्ठा उवरिं [illegible] [illegible] होदि त्ति वुत्तं होइ। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

__________

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] इस प्रकार [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] होते हैं और [illegible] [illegible] होते हैं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कहते हैं—

* यह उपदेश प्रवाह्यमान है।

§ २९४. जो यह [illegible] [illegible] उपदेश है वह [illegible] है, [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] करते हैं वह [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुआ है—

* अन्य उपदेश है कि सब गुणस्थानस्थानान्तर जीवोंसे युक्त हैं तथा उपयोग अद्धास्थानोंका अन्तःस्थान [illegible] जीवोंसे युक्त है।

§ २९५. [illegible] अन्य जो उपदेश है वह अप्रवाह्यमान उपदेश है। [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं वह [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।

१ ताप्रतौ [illegible] इति [illegible] ।

२ ताप्रतौ [illegible] [illegible] इति [illegible] [illegible] ।

§ २५७. संपहि एदेणत्थपदेणेत्थ जवमज्झपरूवणाए तत्थेमाणि छ अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति—परूवणा जाव अप्पाबहुए त्ति। परूवणदाए जहण्णए उवजोगद्धट्ठाणे अत्थि जीवा, विदिये उवजोगद्धट्ठाणे अत्थि जीवा। एवं जाव उक्कस्सए उवजोगद्धट्ठाणे अत्थि जीवा। पमाणं—जहण्णए उवजोगद्धट्ठाणे जीवा केत्तिया? असंखेज्जसेढिमेत्तिया भवंति। विदिए वि उवजोगद्धट्ठाणे जीवा असंखेज्जसेढिमेत्ता। एवं जाव उक्कस्सद्धाणे त्ति।

§ २५८. सेढिपरूवणा दुविहा—अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा च। अणंतरोवणिधाए जहण्णए उवजोगद्धट्ठाणे जीवा थोवा। विदिये उवजोगद्धट्ठाणे जीवा विसेसाहिया आवलियाए असंखेज्जदिभागपडिभागेण। एवं विसेसाहिया विसेसाहिया जाव जवमज्झे त्ति। तेण परं विसेसहीणा विसेसहीणा जाव उक्कस्सद्धाणे त्ति। परंपरोवणिधाए जहण्णुवजोगद्धट्ठाणजीवेहिंतो आवलियाए असंखेज्जदिभागं गंतूण दुगुणवड्ढिदा, एवं दुगुणवड्ढिदा जाव जवमज्झे त्ति। तेण परं दुगुणहीणा दुगुणहीणा जाव उक्कस्सद्धाणे त्ति।

§ २५९. एत्थ तिण्णि अणियोगद्दारेहिं परूवणा पमाणमप्पाबहुअं च। तत्थ परूवणाए अत्थि णाणादुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरसलागाओ एगदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरं च। पमाणमेगदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरमावलियपढमवग्गमूलस्सासंखेज्जदिभागो। णाणादुगुण-

---

§ २५७. अब इस अर्थपदके अनुसार यहाँ यवमध्यकी प्ररूपणा करनेपर उस विषयमें प्ररूपणासे लेकर अल्पबहुत्व तकके ये छह अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं। प्ररूपणाके अनुसार कथन करनेपर जघन्य उपयोगाद्धास्थानमे जीव है, दूसरे उपयोग अद्धास्थानमे जीव है। इसी प्रकार यावत् उत्कृष्ट उपयोग अद्धास्थानमें जीव है। प्रमाण अनुयोगद्वारके अनुसार कथन करनेपर जघन्य उपयोग अद्धास्थानमें जीव कितने हैं? असंख्यात जगश्रेणिप्रमाण हैं। दूसरे भी उपयोग अद्धास्थानमें जीव असंख्यात जगश्रेणिप्रमाण हैं। इसी प्रकार उत्कृष्ट उपयोग अद्धास्थान तक जानना चाहिये।

§ २५८. श्रेणिप्ररूपणा दो प्रकारकी है—अनन्तरोपनिधा और परंपरोपनिधा। अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा जघन्य उपयोग अद्धास्थानमें जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे दूसरे उपयोग अद्धास्थानमें विशेष अधिक है। विशेषका प्रमाण आवलिके असंख्यातवे भागका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना है। इस प्रकार यवमध्यके प्राप्त होने तक विशेष अधिक विशेष अधिक जानना चाहिए। उसके बाद उत्कृष्ट स्थानके प्राप्त होने तक विशेष हीन, विशेष हीन जानने चाहिए। परम्परोपनिधाकी अपेक्षा विचार करनेपर जघन्य उपयोग अद्धास्थानके जीवोंसे आवलिके असंख्यातवे भागप्रमाण स्थान जाकर वे द्विगुणवृद्धिरूप हो जाते हैं। इसी प्रकार यवमध्यके प्राप्त होने तक द्विगुणवृद्धिरूप, द्विगुणवृद्धिरूप जानने चाहिए। उसके बाद उत्कृष्ट स्थानके प्राप्त होने तक द्विगुणहीन, द्विगुणहीन जानने चाहिए।

§ २५९ यहाँ प्रकृतमे तीन अनुयोगद्वार हैं—प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व। उनमेसे प्ररूपणाकी अपेक्षा नाना द्विगुणवृद्धिस्थानान्तर और द्विगुणहानिस्थानान्तर शलाकाएँ हैं तथा एक द्विगुणवृद्धिस्थानान्तर और एक द्विगुणहानिस्थानान्तर शलाका है। प्रमाण—एक

वड्ढि-हाणिट्ठाणंतरसलागाओ असंखेज्जाणि आवलियपढमवग्गमूलाणि। अप्पाबहुअं—एयदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरं थोवं। णाणादुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरसलागाओ असंखेज्ज-गुणाओ।

§ २६०. संपहि अवहारो वुच्चदे—जहण्णउवजोगद्धट्ठाणजीवपमाणेण सव्व-उवजोगद्धट्ठाणजीवा केवचिरेण कालेण अवहिरिज्जंति? असंखेज्जेण कालेण अवहिरिज्जंति। अथवा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेण कालेण अवहिरिज्जंति। एत्तो भागहारं विसेसहीणं काढूण णेदव्वं जाव जवमज्झे त्ति। पुणो जवमज्झजीवपमाणेण तिण्णि-गुणहाणिट्ठाणंतरेण कालेण अवहिरिज्जंति। एत्तो उवरि भागहारो विसेसाहियसरूवेण णेदव्वो जाव उक्कस्सट्ठाणे त्ति। पुणो उक्कस्सट्ठाणजीवपमाणेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागेण कालेण अवहिरिज्जंति। भागाभागो जाणिय णेदव्वो।

§ २६१. अप्पाबहुअं—सव्वत्थोवा उक्कस्सए उवजोगद्धट्ठाणे जीवा। जहण्णए उवजोगट्ठाणे जीवा असंखेज्जगुणा। को गुणगारो? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। जवमज्झजीवा असंखेज्जगुणा। को गुणगारो? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। जव-मज्झस्स हेट्ठिमजीवा असंखेज्जगुणा। को गुणगारो? आवलियाए असंखेज्जदिभागो।

---

द्विगुणवृद्धिस्थानान्तर तथा एक द्विगुणहानिस्थानान्तर आवलिके प्रथम वर्गमूलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। नाना द्विगुणवृद्धिस्थानान्तरशलाकाएँ और नाना द्विगुणहानिस्थानान्तर शलाकाएँ आवलिके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण हैं। अल्पबहुत्व—एक द्विगुणवृद्धि-स्थानान्तर और एक द्विगुणहानिस्थानान्तर सबसे स्तोक है। उससे नाना द्विगुणवृद्धि-स्थानान्तरशलाकाएँ और नाना द्विगुणहानिस्थानान्तरशलाकाएँ असंख्यातगुणी हैं।

§ २६०. अब अवहारका कथन करते हैं—जघन्य उपयोग अद्धास्थानके जीवोंके प्रमाणसे सब उपयोग अद्धास्थानोंके जीव कितने कालके द्वारा अपहृत होते हैं? असंख्यात कालके द्वारा अपहृत होते हैं। अथवा पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा अपहृत होते हैं। इससे आगे यवमध्यके प्राप्त होने तक भागहारको विशेष हीन करके ले जाना चाहिए। पुनः यवमध्यके जीवोंके प्रमाणसे तीन गुणहानिस्थानान्तरप्रमाण काल द्वारा अपहृत होते हैं। इससे आगे उत्कृष्ट स्थानके प्राप्त होने तक भागहारको विशेष अधिक करके ले जाना चाहिए। पुनः उत्कृष्ट स्थानके जीवोंके प्रमाणसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण कालद्वारा अपहृत होते हैं। यहाँ प्रत्येक स्थानपर विवक्षित कालको भागहार बनाकर सब उपयोग अद्धास्थानोंके जीवोंके प्रमाणको उससे भाजित कर विवक्षित स्थानकी संख्या प्राप्त की गई है। भागहारका उल्लेख मूलमें किया ही है। भागाभागका जानकर कथन करना चाहिए।

§ २६१. अल्पबहुत्व—उत्कृष्ट उपयोग अद्धास्थानमें जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे जघन्य उपयोग अद्धास्थानमें जीव असंख्यातगुणे हैं। गुणकार क्या है? पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण गुणकार है। उनसे यवमध्यके जीव असंख्यातगुणे हैं। गुणकार क्या है? पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण गुणकार है। उनसे यवमध्यसे पूर्ववर्ती स्थानोंके जीव असंख्यातगुणे हैं। गुणकार क्या है? आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण गुणकार है।

जवमज्झादो उवरिमजीवा विसेसाहिया। सव्वेसु ट्ठाणेसु जीवा विसेसाहिया। एसा णिरयगदीए कोहकसायस्स णिरुंभणं कादूण परूवणा कया। एवं सेसकसायाणं सेसगदीणं च पादेक्कं णिरुंभणं कादूण पयदपरूवणा णिरवसेसमणुगंतव्वा। तदो उवजोगद्धट्ठाणपरूवणा समत्ता।

§ २६२. संपहि कसायुदयट्ठाणेसु पयदपरूवणट्ठमुवरिमो सुत्तपबंधो—

*** एदेहिं दोहिं उवदेसेहिं कसायउदयट्ठाणाणि णेदव्वाणि तसाणं।**

§ २६३. एदेहिं उवजोगद्धट्ठाणाणमणंतरपरूविदेहिं दोहि उवदेसेहिं पवाइज्जंता-पवाइज्जंतसरूवेहिं कसायुदयट्ठाणाणि णेदव्वाणि त्ति वुत्तं होइ। दोण्हं पि उवदेसाणमेत्थ परूवणाभेदो णत्थि। तेण दोहिं मि सरिसेहिं भावोवजोणवग्गणाओ अणुमग्गियव्वाओ त्ति भावत्थो। कुदो एवं परिच्छिज्जदे? सुत्ते तदुभयविसयविसेसणिद्देसादंसणादो। केसिं पुण जीवाणं कसायुदयट्ठाणाणि णेदव्वाणि त्ति आसंकाए तसाणमिदि णिद्देसो कओ। तसजीवे अहिकरिय एसा परूवणा कायव्वा, तदण्णेसिं जीवाणमणंतसंखावच्छिण्णाणमसंखेज्जलोगमेत्तेसु थावरपाओग्गकसायुदयट्ठाणेसु सव्वकालं णिरंतरसरूवेण समयाविरोहेणावट्ठाणसिद्धीए अणुत्तसिद्धत्तेण तव्विसयपरूवणाए अणहियारादो।

---

उनसे यवमध्यसे उपरिम स्थानोंके जीव विशेष अधिक हैं। उनसे सब स्थानोंके जीव विशेष अधिक हैं। नरकगतिमें क्रोधकषायकी मुख्यतासे यह प्ररूपणा की गई है। इसी प्रकार शेष कषायों और शेष गतियोंमेंसे प्रत्येकको मुख्यकर समस्त प्रकृत प्ररूपणा जाननी चाहिए। इसके बाद उपयोग अद्धास्थान प्ररूपणा समाप्त हुई।

§ २६२. अब कषाय उदयस्थानोंमें प्रकृत प्ररूपणा करनेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं।

*** इन दोनों उपदेशोंके आश्रयसे त्रसजीवोंके कषाय उदयस्थान जानने चाहिये।**

§ २६३. उपयोग अद्धास्थानोंके विषयमें अनन्तर कहे गये इन दोनों प्रवाह्यमान और अप्रवाह्यमान उपदेशोंके आश्रयसे कषायउदयस्थान जानने चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इन दोनों ही उपदेशोंकी अपेक्षा प्रकृतमें प्ररूपणाभेद नहीं है, इसलिए सदृश इन दोनों उपदेशोंके अनुसार भावोपयोगवर्गणाओंकी मार्गणा कर लेनी चाहिए यह उक्त कथनका भावार्थ है।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान—क्योंकि सूत्रमें इन दोनों उपदेशोंके अनुसार पृथक् पृथक् विशेष निर्देश नहीं देखा जाता।

किन जीवोंके कषाय उदयस्थान ले जाने चाहिए ऐसी आशंका होनेपर 'तसाणं' पदका निर्देश किया है। त्रसजीवोंको अधिकृतकर यह प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि उनसे अन्य स्थावर जीवोंकी संख्या अनन्त है। उनका स्थावरप्रायोग्य असंख्यात लोकप्रमाण कषाय उदयस्थानोंमे निरन्तररूपसे सर्वदा आगमानुसार पाया जाना सिद्ध है, इस प्रकार अनुक्त सिद्ध होनेसे तद्विषयक प्ररूपणाका यहाँ अधिकार नहीं है। इसलिए त्रसोंकी ओघसे प्ररूपणा

तदो तसाणमोघपरूवणट्ठमुवरिमो परूवणापबंधो—

* तं जहा ।

§ २६४. सुगममेदं पुच्छावक्कं । संपहि एवं पुच्छाविसईकयत्थस्स परूवणं कुणमाणो तत्थ ताव कसायुदयट्ठाणाणमियत्तावहारणट्ठमुवरिमं सुत्तमाह—

* कसायुदयट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा ।

§ २६५. असंखेज्जाणं लोगाणं जत्तिया आगासपदेसा अत्थि तत्तियमेत्ताणि चेव कसायुदयट्ठाणाणि होंति त्ति भणिदं होइ । ताणि च कसायुदयट्ठाणाणि जहण्णट्ठाणप्पहुडि जावुक्कस्सट्ठाणे त्ति छवड्ढिकमेणावट्ठिदाणि त्ति घेतव्वं । तत्थ ताव वट्टमाणसमयम्मि तसजीवेहिं केत्तियाणि ट्ठाणाणि आवूरिदाणि केत्तियाणि च सुण्णट्ठाणाणि त्ति एदस्स णिद्धारणट्ठमुवरिमसुत्तमोइण्णं—

* तेसु जत्तिया तसा तत्तियमेत्ताणि आवुण्णाणि ।

§ २६६. तेसु असंखेज्जलोगमेत्तेसु कसायुदयट्ठाणेसु तसपाओग्गेसु वट्टमाणसमयम्मि केत्तियाणि ट्ठाणाणि तसजीवेहिं अवुण्णाणि त्ति णिहालिज्जमाणे जत्तिया तसा अत्थि तत्तियमेत्ताणि चेव कसायुदयट्ठाणाणि जीवेहिं अवुण्णाणि लब्भंति, एक्केकम्मि कसायुदयट्ठाणे एक्केक्कस्स चेव तसजीवस्स कदाइमवट्ठाणसंभवादो । णवरि तेत्तियमेत्ताणि कसायुदयट्ठाणाणि एगेगजीवाहेट्ठियाणि णिरंतरसरूवेण ण लब्भंति, आवलियाए

---

करनेके लिये आगेका प्ररूपणाप्रबन्ध है—

* वह कैसे ?

§ २६४. यह पृच्छावाक्य सुगम है । अब इस प्रकार पृच्छाके विषयभूत अर्थका कथन करते हुए वहाँपर सर्वप्रथम कषाय उदयस्थानोंके परिमाणका निश्चय करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* कषाय-उदयस्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं ।

§ २६५. असंख्यात लोकोंके जितने आकाशप्रदेश हैं उतने ही कषायउदयस्थान हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । वे कषाय उदयस्थान जघन्य स्थानसे लेकर उत्कृष्ट स्थान तक छह वृद्धियोंके क्रमसे अवस्थित हैं ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए । उनमेंसे सर्वप्रथम वर्तमान समयमें त्रस जीवोंके द्वारा कितने उदयस्थान आपूर्ण हैं और कितने शून्यस्थान हैं इस प्रकार इस विषयका निश्चय करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

* उनमेंसे जितने त्रसजीव हैं उतने स्थान त्रसजीवोंसे आपूर्ण हैं ।

§ २६६. उन असंख्यात लोकप्रमाण त्रसप्रायोग्य उदयस्थनोंमेंसे वर्तमान समयमें कितने ही स्थान त्रसजीवोंसे आपूर्ण हैं इस विषयका विचार करनेपर जितने त्रसजीव हैं उतने ही कषाय उदयस्थान त्रसजीवोंसे आपूर्ण प्राप्त होते हैं, क्योंकि एक एक कषाय उदयस्थानमें एक एक ही त्रसजीवका कदाचित् अवस्थान सम्भव है । इतनी विशेषता है कि उतने सब उदयस्थान एक-एक जीवके द्वारा निरन्तररूपसे, अधिष्ठित होकर नहीं प्राप्त होते । किन्तु उत्कृष्टरूपसे

असंखेज्जदिभागमेत्ताणं चेव जीवसहिदाणमुक्कस्सपक्खेण णिरंतरट्ठाणाणमुवएसादो। तदो सांतर-णिरंतरक्कमेण तसजीवमेत्ताणि चेव कसायुदयट्ठाणाणि जीवेहिं आवुण्णाणि त्ति घेत्तव्वं। एवं ताव वट्टमाणकालविसये तसजीवमेत्ताणं ट्ठाणाणं जीवेहिं आवुण्णत्तं णिरूविय संपहि अदीदकालमस्सियूण सव्वेसु कसायुदयट्ठाणेसु तसजीवाणमवट्ठाण-क्कमप्पदसणट्ठमुवरिमं पबंधमाह—

* कसायुदयट्ठाणेसु जवमज्झेण जीवा रांति[1]।

§ २६७. असंखेज्जलोगमेत्तेसु कसायुदयट्ठाणेसु अदीदकालविसये तसजीवाण-मवट्ठाणक्कमो केरिसो त्ति पुच्छिदे जवमज्झेण जीवा रांति[2] त्ति णिद्दिट्ठं। एवं च कसायुदयट्ठाणेसु जवमज्झसरूवेण जीवाणमवट्ठाणं होदि त्ति पइण्णाय संपहि जवमज्झ-परूवणाए कीरमाणाए तत्थ इमाणि छ अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति—परूवणा जाव अप्पाबहुए त्ति। तत्थ परूवणाए जहण्णए कसायुदयट्ठाणे अत्थि जीवा। एवं जावुक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे अत्थि जीवा त्ति। पमाणं—जहण्णए कसायुदयट्ठाणे जीवा जहण्णेणेक्को वा दो वा जावुक्कस्सेणावलियाए असंखेज्जदिभागो। विदियट्ठाणे वि तत्तिया चेव। एवं णेदव्वं जावुक्कस्सट्ठाणे वि जीवा आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता त्ति। एवमेदाणि दो वि सुगमाणि त्ति सुत्ते ण परूविदाणि। संपहि सेढिपरूवणट्ठमुवरिमं पबंधमाह—

---

आवलिके असंख्यातवे भागप्रमाण ही जीव सहित निरन्तर स्थान पाये जानेका उपदेश है। इसलिए सान्तर-निरन्तरक्रमसे त्रसजीवोंकी संख्याप्रमाण ही कषाय-उदयस्थान त्रसजीवोंसे आपूर्ण हैं ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार सर्व प्रथम वर्तमान कालकी अपेक्षा त्रसजीवप्रमाण स्थान जीवोंसे आपूर्ण है इस बातका कथनकर अब अतीत कालकी अपेक्षा सब कषाय उदयस्थानोंमें अवस्थानक्रमको दिखलानेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

* कषाय-उदयस्थानोंमें जीव यवमध्यके आकारसे रहते हैं।

§ २६७ असंख्यात लोकप्रमाण कषाय-उदयस्थानोंमें अतीत कालकी अपेक्षा त्रस-जीवोंका अवस्थानक्रम कैसा है ऐसा पूछनेपर यवमध्यरूपसे जीव रहते हैं ऐसा निर्देश किया है। और इसप्रकार कषाय-उदयस्थानोंमें यवमध्यरूपसे जीवोंका अवस्थान है ऐसी प्रतिज्ञा करके अब यवमध्यकी प्ररूपणा करनेपर वहाँ ये छह अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं—प्ररूपणासे लेकर अल्पबहुत्व तक। उनमेंसे प्ररूपणाकी अपेक्षा जघन्य कषाय उदयस्थानमें जीव हैं। इसी प्रकार उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थान तक प्रत्येक कषाय उदय-स्थानमें जीव हैं। प्रमाण—जघन्य कषाय-उदयस्थानमें जीव जघन्यसे एक या दो से लेकर उत्कृष्टरूपसे आवलिके असंख्यातवे भागप्रमाण है। द्वितीय स्थानमें भी जीव उतने ही हैं। इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थानमें भी जीव आवलिके असंख्यातवे भागप्रमाण हैं इस स्थानके प्राप्त होने तक कथन करना चाहिए। इस प्रकार ये दोनों ही अनुयोगद्वार सुगम हैं, इसलिए इनका सूत्रमें कथन नहीं किया। अब श्रेणिका कथन करनेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

---

१. ता० प्रतौ एति इति पाठ। २ ता० प्रतौ एति इति पाठ।

* जहण्णए कसायुदयट्ठाणे तसा थोवा ।

§ २६८. कुदो ? सव्वजहण्णसंकिलेसेण परिणममाणजीवाणं बहूणमणुवलंभादो । किंपमाणा एदे ? आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता । कुदो एदं परिच्छिज्जदे ? परमगुरूवएसादो । जइ एसा जवमज्झपरूवणा अदीदकालविसया तो जहण्णए कसायुदयट्ठाणे अणंतेहि तसजीवेहिं होदव्वमिदि णासंकणिज्जं, अदीदकाले एगसमयम्मि उक्कस्सेणावलियाए असंखेज्जदिभागादो अहियाणं तसजीवाणं तत्थ परिणदाणमणुवलंभादो। तदो अदीदकालविसयमेगसमयुक्कस्ससंचयं घेत्तूणेसा परूवणा पयट्टा त्ति ण किंचि विरुद्धं ।

* विदिये वि तत्तिया चेव ।

§ २६९. ण केवलमेक्कम्मि चेव जहण्णए कसायुदयट्ठाणे तसा थोवा, किंतु तत्तो विदिये वि कसायुदयट्ठाणे तेत्तिया चेव तसा होंति, ण ऊणा ण वड्ढिमा त्ति वुत्तं होइ । कुदो एस णियमो ? सहावदो चेय ।

---

* जघन्य कषाय-उदयस्थानमें त्रसजीव सबसे स्तोक हैं ।

§ २६८. क्योंकि सबसे जघन्य संक्लेशरूपसे परिणमन करनेवाले बहुत जीव नहीं पाये जाते ।

शंका—इनका प्रमाण कितना है ?

समाधान—ये आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—यह परम गुरुके उपदेशसे जाना जाता है ।

शंका—यदि यह यवमध्यप्ररूपणा अतीत कालविषयक है तो जघन्य कषाय-उदयस्थानमें अनन्त त्रसजीव होने चाहिए ।

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि अतीत कालविषयक एक समयमें उत्कृष्टरूपसे आवलिके असंख्यातवें भागसे अधिक त्रसजीव उक्त स्थानमें परिणमन करते हुए नहीं पाये जाते, इसलिए अतीत कालविषयक एक समयके उत्कृष्ट संचयको ग्रहणकर यह प्ररूपणा प्रवृत्त हुई है, इसलिए कुछ भी विरुद्ध नहीं है ।

* द्वितीय कषाय उदयस्थानमें भी उतने ही जीव रहते हैं ।

§ २६९. न केवल एक ही जघन्य कषाय-उदयस्थानमें त्रसजीव सबसे थोड़े रहते हैं। किन्तु उससे दूसरे भी कषाय-उदयस्थानमें उतने ही त्रसजीव होते हैं, न कम और न अधिक यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—यह नियम किस कारणसे है ?

समाधान—स्वभावसे ही यह नियम है ।

* एवमसंखेज्जेसु लोगट्ठाणेसु तत्तिया चेव ।

§ २७०. एवमेदेण कमेण णिरतरमसंखेज्जलोगमेत्तेसु कसायुदयट्ठाणेसु जहण्णट्ठाण-जीवेहिं सरिसा चेव जीवा होंति त्ति भणिदं होइ । जइ एवं कसायुदयट्ठाणेसु जवमज्झेण जीवा होंति तो एदिस्से पइण्णाए विघातो ढुक्कदि त्ति णासंकणिज्जं, सव्वट्ठाणेसु णिरंतरवड्ढीए असंभवे पि तत्थ जवमज्झाकारोवदेसस्स विरोहाभावादो ।

* तदो पुणो अण्णम्हि ट्ठाणे एक्को जीवो अब्भहिओ ।

§ २७१. असंखेज्जलोगमेत्तेसु कसायुदयट्ठाणेसु जहण्णट्ठाणेण सरिसपमाणजीवेहिं अहिट्ठिएसु गदेसु तदो पच्छा अण्णम्हि तदित्थकसायुदयट्ठाणम्मि एक्को चेव जीवो अहिओ जायदे, सहावदो चेव तत्थ तहाविहवड्ढीए जीवाणमवट्ठाणणियमदंसणादो । एवमेक्केक्कम्मि ट्ठाणम्मि एगजीववड्ढी होदूण पुणो तत्तो उवरि वड्ढि-हाणीहिं विणा असंखेज्जलोगमेत्तेसु कसायुदयट्ठाणेसु तेत्तियमेत्ता चेव जीवा होंति त्ति पदुप्पायणट्ठ-मिदमाह—

* तदो पुण असंखेज्जेसु लोगेसु ट्ठाणेसु तत्तिया चेव ।

§ २७२. सुगममेदं । एवमेत्तियमेत्तेसु कसायुदयट्ठाणेसु अवट्ठिदपमाणा जीवा

* इस प्रकार असंख्यात लोकप्रमाण स्थानोंमें उतने ही जीव रहते हैं ।

§ २७०. इस प्रकार इस क्रमसे निरन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कषाय-उदयस्थानोंमें जघन्य स्थानके जीवोंके सदृश ही जीव होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—यदि ऐसा है तो 'कषाय-उदयस्थानोंमें यवमध्यरूपसे जीव रहते हैं' इस प्रतिज्ञाका विघात प्राप्त होता है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि सब स्थानोंमें निरन्तर वृद्धिके असंभव होनेपर भी वहाँ यवमध्याकारके उपदेशमें कोई विरोध नहीं आता ।

* तदनन्तर पुनः अन्य स्थानमें एक जीव अधिक रहता है ।

§ २७१. जघन्य स्थानके सदृश प्रमाणको लिए हुए जीवोंसे युक्त असंख्यात लोकप्रमाण कषाय-उदयस्थानोंके जानेपर उसके पश्चात् वहाँके अन्य कषाय-उदयस्थानमें एक ही जीव अधिक रहता है, क्योंकि स्वभावसे ही वहाँ उस प्रकारकी वृद्धिके साथ जीवोंके अवस्थानका नियम देखा जाता है । इस प्रकार एक-एक स्थानमें एक जीवकी वृद्धि होकर पुनः उसके आगे वृद्धि और हानिके विना असंख्यात लोकप्रमाण कषाय-उदयस्थानोंमें उतने ही जीव होते हैं इस बातका कथन करनेके लिये कहते हैं—

* तदनन्तर पुनः असंख्यात लोकप्रमाण स्थानोंमें उतने ही जीव रहते हैं ।

§ २७२. यह सूत्र सुगम है । इस प्रकार इतने कषाय-उदयस्थानोंमें अवस्थित प्रमाण-

१. ता० प्रतौ एंति ते इति पाठः ।

होदूण तदो अण्णम्मि तदित्थट्ठाणविसेसे एगजीवड्ढी पुव्वं व होदि त्ति जाणावणट्ठमुवरिमसुत्तमोइण्णं—

* तदो अण्णम्हि ट्ठाणे एक्को जीवो अब्भहिओ।

§ २७३. कुदो एवं चेव ? सहावदो। एत्तो पुण असंखेज्जलोगमेत्तेसु कसायुदयट्ठाणेसु तत्तियमेत्ता चेव जीवा होदूण तदो अण्णम्मि ट्ठाणम्मि तदिओ जीवो वड्ढावेयव्वो। एवं पुणो पुणो असंखेज्जलोगमेत्तद्धाणं गंतूणेगेगजीव वड्ढाविय णेदव्वं जावुक्कस्सेणावलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तजीवा जहण्णट्ठाणजीवेहिंतो संखेज्जगुणा समुप्पण्णा त्ति। पुणो तम्मि उद्देसे असंखेज्जलोगमेत्तेसु ट्ठाणेसु तत्तियमेत्ता चेव जीवा होदूण जवमज्झमुप्पज्जदि त्ति एदस्स अत्थविसेसस्स जाणावणट्ठमुवरिमं पबंधमाह—

* एवं गंतूण उक्कस्सेण जीवा एक्कम्हि ट्ठाणे आवलियाए असंखेज्जदिभागो।

२७४. एवमणंतरपरूविदेणेव कमेण गंतूण एकम्मि ट्ठाणविसेसे आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता जीवा जहण्णट्ठाणजीवेहिंतो संखेज्जगुणमेत्ता उक्कस्सेण वड्ढिदा, तत्तो परं वड्ढीए असंभवादो। एवं वड्ढिदे जवमज्झट्ठाणमेत्थंतरे समुप्पज्जदि त्ति भणिदं होदि। समुप्पज्जमाणं किमेकम्मि चेव ट्ठाणे समुप्पज्जइ, आहो संखेज्जेसु

---

वाले जीव होकर उसके बाद अन्य वहाँके स्थानविशेषमें पहलेके समान एक जीवकी वृद्धि होती है इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र आया है—

* तदनन्तर अन्य स्थानमें एक जीव अधिक रहता है।

§ २७३. शंका—ऐसा ही किस कारणसे है ?

समाधान—स्वभावसे ही ऐसा है।

तदनन्तर पुनः असंख्यात लोकप्रमाण कषाय-उदयस्थानोंमें उतने ही जीव होकर उसके बाद अन्य स्थानमें तीसरा जीव बढ़ाना चाहिए। इस प्रकार पुनः पुनः असंख्यात लोकप्रमाण स्थान जाकर एक-एक जीवको बढ़ाते हुए उत्कृष्टरूपसे आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण जीवोंके प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए, जो जीव जघन्य स्थानके जीवोंसे संख्यातगुणे हैं। पुनः वहाँपर असंख्यात लोकप्रमाण स्थानोंमें उतने ही जीव होकर यवमध्य उत्पन्न होता है इस प्रकार इस अर्थ विशेषका ज्ञान करानेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

* इस प्रकार जाकर एक स्थानमें उत्कृष्ट रूपसे जीव आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं।

§ २७४. इस प्रकार अनन्तर ही कहे गये क्रमसे जाकर एक स्थानविशेषमें आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण जीव, जो कि जघन्य स्थानके जीवोंसे संख्यातगुणे हैं, उत्कृष्टरूपसे वृद्धिंगत हो जाते हैं, क्योंकि इससे और अधिक वृद्धि होना असम्भव है। इस प्रकार वृद्धि होनेपर इस बीच यवमध्यस्थान उत्पन्न होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यवमध्य उत्पन्न

असंखेज्जेसु वा त्ति एदस्स णिण्णयकरणट्ठमुवरिमसुत्तमोइण्णं—

* जत्तिया एक्कम्हि ट्ठाणे उक्कस्सेण जीवा तत्तिया चेव अण्णम्हि ट्ठाणे। एवमसंखेज्जलोगट्ठाणाणि। एदेसु असंखेज्जेसु लोगेसु ट्ठाणेसु जवमज्झं।

§ २७५. सुगममेदं, उक्कस्सेणावलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तेसु जीवेसु एकम्मि ट्ठाणे वड्ढिदेसु तत्तो प्पहुडि असंखेज्जलोगमेत्तेसु कसायुदयट्ठाणेसु तत्तियमेत्ता चेव जीवा होदूण तेसु ट्ठाणेसु जवमज्झसमुप्पत्ती होदि त्ति णिण्णयकरणफलत्तादो। संपहि जवमज्झादो उवरिमेसु ट्ठाणेसु जीवाणमवट्ठाणक्कमप्पदंसणट्ठमुवरिमं पबंधमणुसरामो—

* तदो अण्णं ट्ठाणमेक्केण जीवेण हीणं।

§ २७६. तदो जवमज्झादो अण्णं ट्ठाणमणंतरोवरिममेक्केण जीवेण हीणं होदि।

* एवमसंखेज्जलोगट्ठाणाणि तुल्लजीवाणि।

§ २७७. एदेणाणंतरणिद्दिट्ठेण ट्ठाणेण समाणजीवाणि असंखेज्जलोगमेत्ताणि ट्ठाणाणि णिरंतरमत्थि त्ति वुत्तं होइ।

* एवं सेसेसु वि ट्ठाणेसु जीवा णेदव्वा।

---

होता हुआ क्या एक ही स्थानमें उत्पन्न होता है या संख्यात या असंख्यात स्थानोंमें उत्पन्न होता है इस प्रकार इस बातका निर्णय करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

* जितने एक स्थानमें उत्कृष्टरूपसे जीव हैं उतने ही अन्य स्थानमें पाये जाते हैं। इस प्रकार असंख्यात लोकप्रमाण स्थानोंमें जानना चाहिए। इन असंख्यात लोकप्रमाण स्थानोंमें यवमध्य है।

§ २७५. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि उत्कृष्टरूपसे आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण जीवोंके एक स्थानमें वृद्धिगत होनेपर वहाँसे लेकर असंख्यात लोकप्रमाण कषाय-उदयस्थानोंमें उतने ही जीव होकर उन स्थानोंमें यवमध्यकी उत्पत्ति होती है इस बातका निर्णय करना इसका फल है। अब यवमध्यसे आगेके स्थानोंमें जीवोंके अवस्थानक्रमके दिखलानेके लिए आगेके प्रबन्धका अनुसरण करते हैं—

* तदनन्तर अन्य स्थान एक जीवसे हीन होता है।

§ २७६. तदनन्तर यवमध्यसे समनन्तर आगेका अन्य स्थान एक जीवसे हीन होता है।

* इस प्रकार असंख्यात लोकप्रमाण स्थान तुल्य जीवोंसे युक्त हैं।

§ २७७ इस अनन्तर पूर्व कहे हुए स्थानके समान जीवोंसे युक्त आगेके असंख्यात लोकप्रमाण स्थान निरन्तर हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* इसी प्रकार शेष स्थानोंमें भी जीव उक्त क्रमके अनुसार ले जाने चाहिए।

§ २७८. एत्तो उवरिमेसु सेसेसु वि ट्ठाणेसु उक्कस्सट्ठाणपज्जंतेसु जीवा समयाविरोहेण णेदव्वा त्ति वुत्तं होइ। जहा जवमज्झादो हेट्ठा वड्ढी तहा तत्तो उवरि हाणी वि जहाकमं कायव्वा त्ति एसो एदस्स भावत्थो। णवरि हेट्ठिमद्धाणादो उवरिमद्धाणमसंखेज्जगुणं, हेट्ठिमगुणवड्ढिट्ठाणेहिंतो उवरिमगुणहाणिट्ठाणाणमसंखेज्जगुणत्तोवएसादो। अदो चेव जहण्णट्ठाणजीवेहिंतो उक्कस्सट्ठाणजीवा असंखेज्जगुणहीणा त्ति एदस्सत्थविसेसस्स संदिट्ठिमुहेण पदुप्पायणट्ठमुवरिमसुत्तमोइण्णं—

* जहण्णए कसायुदयट्ठाणे चत्तारि जीवा, उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे दो जीवा।

§ २७९. जइ वि जहण्णए कसायुदयट्ठाणे आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता जीवा होंति तो वि य संदिट्ठीए तेसिं पमाणं चत्तारिरूवमेत्तमिदि घेत्तव्वं। उक्कस्सए वि कसायुदयट्ठाणे दो जीवा त्ति संदिट्ठीए गहेयव्वा। ण संदिट्ठिपरूवणमेदमत्थो चेव एरिसो त्ति किण्ण वक्खाणिज्जदे? ण, तहा वक्खाणे कीरमाणे उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे गुणिदकम्मंसिया वि जीवा आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता होंति त्ति एदेण सह विरोहप्पसंगादो, जवमज्झच्छेदणयाणमसंखेज्जदिभागमेत्तीओ हेट्ठा णाणागुणहाणिसलागाओ तेसिमसंखेज्जा भागा उवरिमणाणागुणहाणिसलागाओ त्ति एत्थेव पुरदो भणिस्समाण-

---

§ २७८ जो पूर्वमें स्थान कह आये हैं उनसे आगेके उत्कृष्ट स्थान पर्यन्त शेष स्थानोंमें भी आगमानुसार जीव ले जाने चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है। जिस प्रकार यवमध्यसे पूर्वके स्थानोंमें वृद्धि बतलाई उसी प्रकार उससे आगेके स्थानोंमें क्रमसे हानि भी करनी चाहिए यह इस सूत्रका भावार्थ है। इतनी विशेषता है कि यवमध्यसे पूर्वके अध्वानसे आगेका अध्वान असंख्यातगुणा है, क्योंकि अधस्तन गुणवृद्धिस्थानोंसे उपरिम गुणहानिस्थान असंख्यातगुणे होते हैं ऐसा उपदेश पाया जाता है। और इसीलिये जघन्य स्थानके जीवोंसे उत्कृष्ट स्थानके जीव असंख्यातगुणे हीन होते हैं इस प्रकार इस अर्थविशेषका संदृष्टिद्वारा कथन करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

* जघन्य कषाय-उदयस्थानमें चार जीव हैं और उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें दो जीव हैं।

§ २७९. यद्यपि जघन्य कषाय-उदयस्थानमें आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण जीव होते हैं तो भी संदृष्टिमें उनका प्रमाण चार संख्यामात्र ग्रहण करना चाहिए। उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थानमें भी दो जीव हैं इस प्रकार संदृष्टिमें ग्रहण करना चाहिए।

शंका—यह संदृष्टिरूपसे कथन न होकर वास्तवमें इसी प्रकार है अर्थात् उक्त स्थानोंमें वास्तवमें इतने ही जीव हैं ऐसा व्याख्यान क्यों नहीं करते?

समाधान—नहीं, क्योंकि उस प्रकारसे व्याख्यान करनेपर उत्कृष्ट कषाय-उदयस्थान में गुणितकर्मांशिक जीव भी आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं इस प्रकार उक्त कथनके साथ इस कथनका विरोध प्राप्त होता है। दूसरे यवमध्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागप्रमाण अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाएँ होती हैं और उनके असंख्यात बहुभागप्रमाण उपरिम नाना गुणहानिशलाकाएँ होती हैं इस प्रकार इसी प्रकरणमें आगे कहे जानेवाले

परंपरोवणिधासुत्तेण वाहिज्जमाणत्तादो च। तदो जहण्णट्ठाणे उक्कस्सट्ठाणे च जीवा अत्थदो आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता होदूण पुणो संदिट्ठीए चत्तारि दोण्णि चेदि गहेयव्वा त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थपरमत्थो।

§ २८०. एवमेदेसु जहण्णुक्कस्सकसायुदयट्ठाणजीवेसु आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तेण सिद्धेसु जवमज्झजीवा आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता त्ति सिद्धमेवेदं, ण तत्थ संदेहो कायव्वो त्ति पदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

* जवमज्झजीवा आवलियाए असंखेज्जदिभागो[1]।

§ २८१. हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागाणमण्णोण्णब्भत्थरासिणा जहण्णट्ठाणजीवेसु गुणिदेसु जवमज्झजीवा समुप्पज्जंति उवरिमणाणागुणहाणिसलागाणमण्णोण्णब्भत्थरासिणा[2] उक्कस्सट्ठाणजीवेसु च गुणिदेसु जवमज्झजीवा समुप्पज्जंति। तदो जवमज्झजीवा आवलियाए असंखेज्जदिभागो त्ति एसो एत्थ सुत्तस्स भावत्थो। एवं अणंतरोवणिधा गदा।

§ २८२. संपहि एदेणेव सुत्तेण सूचिदा परंपरोवणिधा वुच्चदे। तं जहा—जहण्णकसायुदयट्ठाणजीवेहिंतो असंखेज्जलोगमेत्तकसायुदयट्ठाणाणि गंतूण दुगुणवड्ढिदा। एवं दुगुणवड्ढिदा दुगुणवड्ढिदा जाव जवमज्झे त्ति। तेण परमसंखेज्ज-

---

परम्परोपनिधासूत्रके साथ उक्त कथन बाधा जाता है, इसलिए जघन्य स्थानमें और उत्कृष्ट स्थानमें जीव वास्तवमें आवलिके असंख्यातवे भागप्रमाण होकर पुनः संदृष्टिमें क्रमसे चार और दो ग्रहण करने चाहिए यह प्रकृतमें इस सूत्रका वास्तविक अर्थ है।

§ २८०. इस प्रकार जघन्य उदयस्थान और उत्कृष्ट उदयस्थानके ये जीव आवलिके असंख्यातवे भागप्रमाण हैं यह सिद्ध होनेपर यवमध्यके जीव आवलिके असंख्यातवे भागप्रमाण ही हैं यह सिद्ध ही है, उसमें सन्देह नहीं करना चाहिए इस प्रकार कथन करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

* यवमध्यके जीव आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

§ २८१. अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाओंकी अन्योन्याभ्यस्तराशिसे जघन्य स्थानके जीवोंके गुणित करनेपर यवमध्यके जीव उत्पन्न होते हैं। तथा उपरिम नाना गुणहानिशलाकाओंकी अन्योन्याभ्यस्तराशिसे उत्कृष्ट स्थानके जीवोंके गुणित करनेपर यवमध्यके जीव उत्पन्न होते है। इसलिये यवमध्यके जीव आवलिके असंख्यातवे भागप्रमाण हैं इस प्रकार यह यहाँ सूत्रका भावार्थ है। इसप्रकार अनन्तरोपनिधा समाप्त हुई।

§ २८२. अब इसी सूत्रद्वारा सूचित हुई परम्परोपनिधाका कथन करते हैं। यथा—जघन्य कषाय-उदयस्थानके जीवोंसे असंख्यात लोकप्रमाण कषाय-उदयस्थान जाकर जीव दूने हो जाते हैं। इस प्रकार यवमध्य तक जीव दूने दूने होते जाते हैं। उसके बाद असंख्यात

---

१ ता० प्रतौ असखेज्जदिभागा इति पाठ। २. ता० प्रतौ उपरिमेण इति पाठ।

लोगमेत्तद्धाणं गंतूण दुगुणहीणा । एवं दुगुणहीणा दुगुणहीणा जाव उक्कस्सट्ठाणे त्ति ।

§ २८३. संपहि एत्थ गुणहाणिं पडि असंखेज्जलोगमेत्तट्ठाणमवट्ठिदसरूवेण गंतूण तदो एगो जीवो अहिओ होइ । गुणहाणिअद्धाणं च सव्वत्थ सरिसं णाणागुणहाणिसलाओ आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ जवमज्झहेट्ठिमणाणागुणवड्ढिसलागाहिंतो उवरिमणाणागुणहाणिसलागाओ असंखेज्जगुणाओ एगेगट्ठाणजीवपमाणमावलियाए असंखेज्जदिभागो अवहारकालो च अवट्ठिदो होदि त्ति एवमेदेसिमत्थाणं मग्गणं कस्सामो । तं जहा—आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तजहण्णट्ठाणजीवपमाणं विरलिय पुणो तं चेव जहण्णट्ठाणजीवपमाणं समखंडं काढूण दिण्णे तत्थ विरलणरूवं पडि एगेगजीवपमाणं पावइ । संपहि एत्थ जहण्णट्ठाणप्पहुडि असंखेज्जलोगमेत्तेसु ट्ठाणेसु अवट्ठिदपमाणा जीवा होदूण तदो एगट्ठाणम्मि एगो जीवो अहिओ होदि त्ति तत्थ विरलणाए पढमरूवधरिदेगजीवपमाणं वड्ढावेयव्वं । एवमेदेण कमेण गंतूण विरलणारूवमेत्तसव्वजीवेसु पविट्ठेसु पढमदुगुणवड्ढिट्ठाणमुप्पज्जदि ।

§ २८४. पुणो इमं दुगुणवड्ढिट्ठाणं पुव्विल्लअवट्ठिदविरलणाए उवरि समखंडं काढूण दिण्णे एक्केक्कस्स रूवस्स दो दो जीवपमाणं पावदि । पुणो एत्थेगरूवधरिददोजीवा पुव्विल्लमेत्तद्धाणं गंतूण जइ वड्ढाविज्जंति तो पढमगुणवड्ढिअद्धाणेण

---

लोकप्रमाण स्थान जाकर वे आधे रह जाते हैं । इस प्रकार उत्कृष्ट स्थानके प्राप्त होने तक वे उत्तरोत्तर आधे-आधे होते जाते हैं ।

§ २८३. अब यहाँपर प्रत्येक गुणहानिके प्रति असंख्यात लोकप्रमाण कषाय-उदयस्थान अवस्थितरूपसे जाकर उसके बाद एक जीव अधिक होता है. गुणहानिका आयाम सर्वत्र सदृश है, नाना गुणहानिशलाकाएँ आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, यवमध्यसे अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाओंसे उपरिम नाना गुणहानिशलाकाएँ असंख्यातगुणी हैं, एक-एक स्थानके जीवोंका प्रमाण आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है तथा अवहारकाल अवस्थितस्वरूप है इस प्रकार इन अर्थोंका विचार करेंगे । यथा—जघन्य स्थानसम्बन्धी आवलिके असंख्यातवें भागमात्र जीवोंके प्रमाणका विरलनकर पुनः जघन्य स्थानके जीवोंके उसी प्रमाणको समान खण्डकर देयरूपसे देनेपर वहाँ विरलनके प्रत्येक अंकके प्रति जीवोंका एक-एक प्रमाण प्राप्त होता है । अब यहाँपर जघन्य स्थानसे लेकर असंख्यात लोकप्रमाण स्थानोंमें अवस्थित प्रमाणवाले जीव होकर उसके बाद एक स्थानमें एक जीव अधिक होता है, इसलिए वहाँपर विरलनके प्रथम अंकके प्रति स्थापित संख्यामें एक जीवका प्रमाण बढ़ा देना चाहिए । इस प्रकार इस क्रमसे जाकर विरलनके अंकप्रमाण सब जीवोंके प्रविष्ट होनेपर प्रथम द्विगुणवृद्धिस्थान उत्पन्न होता है ।

§ २८४. इस द्विगुण वृद्धिस्थानको पहलेके अवस्थित विरलनके ऊपर समखण्ड करके देनेपर एक-एक विरलन अंकके प्रति दो-दो जीवोंका प्रमाण प्राप्त होता है । पुनः यहाँपर विरलनके एक अंकके प्रति स्थापित दो जीव पहलेके जितने स्थान हैं मात्र उतने स्थान जाकर

---

१ ता० प्रतौ एत्थेगेगरूव- इति पाठः ।

विदियगुणवड्ढिअद्धाणं सरिसं होइ। णवरि एवमेत्थ वड्ढावेदुं ण सक्किज्जदे, एक्केको चेव जीवो वड्ढदि त्ति चुण्णिसुत्ते मुत्तकंठमुवइट्ठत्तादो। तदो एगेगो चेव जीवो वड्ढावेयव्वो। तहा वड्ढाविज्जमाणे वि गुणहाणिअद्धाणमणवट्ठिदं होइ, पढमगुणवड्ढिअद्धाणादो दुगुणमद्धाणं गंतूण विदियदुगुणवड्ढिसमुप्पत्तिदंसणादो। एवं सेसगुणवड्ढीणं पि अणंतराणंतरादो दुगुण-दुगुणमद्धाणं गंतूण समुप्पत्ती वत्तव्वा। ण चेदमिच्छिज्जदे, जवमज्झादो हेट्ठा उवरिं च गुणवड्ढि-हाणिअद्धाणाणं सरिसत्तब्भुवगमेण सह विरोहादो। तदो पयारंतरमस्सियूण एगेगजीववड्ढीए वि जहा गुणवड्ढिअद्धाणाणमवट्ठिदत्तं ण विरुज्झदे तहा वत्तइस्सामो। तं जहा—

§ २८५. जहण्णट्ठाणजीवपमाणविरलणाए पढमदुगुणवड्ढिट्ठाणजीवे समखंडं करिय दिण्णे विरलणरूवं पडि दो दो जीवा पावंति त्ति तत्थ पढमरूवोवरि ट्ठिददोजीवेसु एगो जीवो पढमगुणहाणिम्हि एगजीववड्ढिअद्धाणस्स अद्धं गंतूण वड्ढावेयव्वो। पुणो विदियजीवो वि एत्तियमेत्तमद्धाणमुवरि गंतूण वड्ढावेयव्वो। एवं पुणो पुणो कीरमाणे विरलणरूवमेत्तसव्वरूवधरिदेसु परिवाडीए पविट्ठेसु तदो विदियदुगुणवड्ढिट्ठाणं पढमदुगुणवड्ढिट्ठाणेण समाणमद्धाणं होदूण समुप्पज्जइ। पुणो एदं दुगुणवड्ढिट्ठाणमवट्ठिदविरलणाए समखंडं कादूण दिण्णे एक्केक्कस्स रूवस्स चत्तारि चत्तारि जीवा होदूण

---

यदि बढाते है तो द्वितीय गुणवृद्धिस्थान प्रथम गुणवृद्धिस्थानके समान होता है। इस प्रकार यहाँपर बढाना शक्य नहीं है, क्योंकि एक-एक ही जीव बढता है ऐसा चूर्णिसूत्रमें मुक्तकण्ठ उपदेश दिया गया है। इसलिये एक-एक जीव ही बढाना चाहिए। किन्तु इस प्रकार बढानेपर भी गुणहानिअध्वान अनवस्थित हो जाता है, क्योंकि प्रथम गुणवृद्धिस्थानसे द्विगुण अध्वान जाकर द्वितीय गुणवृद्धिकी उत्पत्ति देखी जाती है। इसीप्रकार शेष गुणवृद्धियोंकी भी समनन्तर पूर्व समनन्तर पूर्व द्विगुणवृद्धिसे द्विगुण द्विगुण अध्वान जाकर उत्पत्ति कहनी चाहिए। परन्तु यह इष्ट नहीं है, क्योंकि यवमध्यसे पूर्वके और आगेके गुणवृद्धि और गुणहानि स्थानोंको सदृश स्वीकार करनेसे उक्त कथनका इस कथनके साथ विरोध आता है। इसलिये दूसरे प्रकारका अवलम्बन लेकर एक-एक जीवकी वृद्धि करते हुए भी जिस प्रकार गुणवृद्धिस्थानोंका अवस्थितपना विरोधको प्राप्त नहीं होता है उस प्रकारसे बतलाते हैं। यथा—

§ २८५ जघन्य स्थानके जीवोंके प्रमाणका विरलन करनेपर प्रत्येक विरलनके प्रति द्विगुणवृद्धिस्थानके जीवोंके समान खण्ड करके देयरूपसे देनेपर प्रत्येक विरलनके प्रति दो-दो जीव प्राप्त होते हैं, इसलिये वहाँ प्रथम अंकके ऊपर स्थित दो जीवोंमेंसे एक जीवको प्रथम गुणहानिमें एक जीवसम्बन्धी वृद्धिका जो अध्वान है उसका अर्धभाग जानेपर बढाना चाहिए। पुनः दूसरे जीवको भी इतना अध्वान आगे जानेपर बढाना चाहिए। इस प्रकार पुनः पुनः करनेपर विरलन अंकप्रमाण सब अंकोंपर स्थापित जीवोंके क्रमसे प्रविष्ट होनेपर द्वितीय द्विगुणवृद्धिस्थान प्रथम द्विगुणवृद्धिस्थानके समान आयामवाला होकर उत्पन्न होता है। पुनः इस द्विगुणवृद्धिस्थानको अवस्थित विरलनके ऊपर समान खण्ड करके देयरूपसे देनेपर एक-एक अंकके प्रति चार-चार जीव होकर प्राप्त होते हैं। पुनः इनके बढानेपर प्रथम

पावंति । पुणो एदेसु वड्ढाविज्जमाणेसु पढमदुगुणवड्ढिअद्धाणम्मि एगेगजीववड्ढिविसयस्स चउब्भागमेत्तद्धाणं गंतूणेगो जीवो वड्ढदि त्ति वत्तव्वं । एवमुवरि वि जाणियूण भण्णमाणे अणंतरहेट्ठिमगुणहाणिम्हि वड्ढिदेगजीवद्धाणादो उवरिमाणंतरगुणहाणीए वड्ढाविज्जमाणेगजीवद्धाणमद्धद्धं होदूण गच्छइ जाव तप्पाओग्गपमाणाओ दुगुणवड्ढीओ उवरि गंतूण जवमज्झट्ठाणं समुप्पण्णमिदि ।

§ २८६. पुणो इमं जवमज्झट्ठाणजीवपमाणं घेत्तूण पुव्विल्लमवट्ठिदविरलण दुगुणिय विरलेयूण समखंडं करिय दिण्णे विरलणरूवं पडि जवमज्झादो हेट्ठिमाणंतरगुणहाणिम्मि एगेगरूवं पडि संपत्तजीवपमाणं होदूण पावइ । पुणो एत्थेगरूवधरिदमणंतरहेट्ठिम-गुणहाणीए वड्ढाविदविहाणेणासंखेज्जलोगमेत्तद्धाणं गंतूणेगेगजीवहाणिक्कमेण परिहायदि। पुणो वि एवं चेव परिहाणिं कादूण णेदव्व जाव संपहियविरलणाए अद्धमेत्तरूवधरिदेसु सव्वेसु जहाकमं परिहीणेसु जवमज्झादो उवरि पढमं दुगुणहाणिट्ठाणमुप्पण्णं ति । एवमेदेण विहाणेण णेदव्वं जाव तप्पाओग्गेसु गुणहाणिट्ठाणेसु गदेसु जहण्णट्ठाण-जीवपमाणमवट्ठिदं ति । णवरि हेट्ठिमगुणहाणीए एगजीवपरिहाणिअद्धाणादो उवरिम-गुणहाणीए एगजीवपरिहीणद्धाणं दुगुण-दुगुणकमेण सव्वत्थ गच्छदि त्ति वत्तव्वं ।

§ २८७. एत्तो इमं जहण्णट्ठाणजीवपमाणं पुव्विल्लमवट्ठिदभागहारं विरलिय

---

द्विगुणवृद्धिसम्बन्धी आयाममेंसे एक-एक जीवकी वृद्धिसम्बन्धी आयामका चौथा भागमात्र आयाम जाकर एक जीव बढ़ता है ऐसा कहना चाहिए । इसीप्रकार आगे भी जानकर कथन करनेपर अनन्तर अधस्तन गुणहानिमें वृद्धिको प्राप्त हुए एक जीवसम्बन्धी आयामसे, तत्प्रायोग्य प्रमाणवाली द्विगुणवृद्धियाँ ऊपर जाकर यवमध्यस्थानके उत्पन्न होने तक, उपरिम अनन्तर गुणहानिमें वृद्धिको प्राप्त होनेवाले एक जीवसम्बन्धी आयामसे आधा-आधा होकर प्राप्त होता है ।

§ २८६ पुनः यवमध्यस्थानके जीवोंके इस प्रमाणको ग्रहणकर पिछले अवस्थित विरलनके दूनेको विरलितकर और उसपर समान खण्डकर देयरूपसे देनेपर प्रत्येक विरलन अंकके प्रति यवमध्यसे अधस्तन ( पूर्वकी ) अनन्तर गुणहानिमें एक-एक अंकके प्रति प्राप्त जीवोंका जितना प्रमाण है उतना होकर प्राप्त होता है । पुनः यहाँ एक अंकके प्रति प्राप्त जीवों-का प्रमाण अनन्तर अधस्तन गुणहानिमें जिस विधिसे जीवोंका प्रमाण बढाया गया उसके अनुसार असंख्यात लोकप्रमाण स्थान जाकर एक-एक जीवकी हानिके क्रमसे घटता जाता है । फिर भी इसीप्रकार तबतक हानि करते हुए ले जाना चाहिए जबतक साम्प्रतिक विरलनके अंकोंपर प्राप्त अर्धभागप्रमाण सब जीवोंके क्रमसे कम होनेपर यवमध्यके ऊपर प्रथम द्विगुणहानिस्थान उत्पन्न होता है । इस प्रकार इस विधिसे तत्प्रायोग्य गुणहानिस्थानोंके जानेपर जघन्य स्थानके जीवोंके प्रमाणके अवस्थित होने तक ले जाना चाहिए । इतनी विशे-षता है कि अधस्तन गुणहानिमें एक जीवके परिहानिसम्बन्धी अध्वानसे उपरिम गुणहानिमें एक जीवसम्बन्धी परिहानिका अध्वान सर्वत्र द्विगुण-द्विगुण क्रमसे जाता है ऐसा कहना चाहिए ।

§ २८७. आगे जघन्य स्थानके जीवोंके इस प्रमाणको पहलेके अवस्थित भागहारका

समखंडं कादूण जोइज्जइ तो एगेगरूवस्स एगजीवद्धपमाणं होदूण पावइ । ण चेद-मिच्छिज्जदे, तहाविहवड्डीए अच्चंतासंभवेण पडिसिद्धत्तादो । एव तरिहि एदं चेव उक्कस्सट्ठाणजीवपमाणमिदि गेण्हामो त्ति भणिदे ण एवं पि घेत्तुं सक्किज्जदे, जवमज्झस्स हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागाहिंतो उवरिमणाणागुणहाणिसलागाणमसंखेज्जगुणत्तोवएसस्स उवरिमसुत्तसिद्धस्स एत्थाणुववत्तीदो हेट्ठिमोवरिमणाणागुणहाणिसलागाणमेदम्मि पक्खे सरिसत्तदंसणादो त्ति ।

§ २८८. पुणो संपहियविरलणाए अद्धं विरलेयूण जहण्णट्ठाणजीवपमाणं समखंडं कादूण दिण्णे तत्थ विरलणरूवं पडि एगेगजीवपमाणं पावइ । पुणो एदिस्से विरलणाए अद्धमेत्तजीवेसु समयाविरोहेण परिहाविदेसु तत्तो अण्णं दुगुणहाणिट्ठाण-मुप्पज्जइ । पुणो इमं विरलणमद्धं करिय जहण्णट्ठाणजीवेहिंतो अद्धमेत्तणिरुद्धट्ठाण-जीवेसु समखंडं करिय दिण्णेसु विरलणरूवं पडि एगेगजीवपमाणं पावइ । एत्थ वि समयाविरोहेण असंखेज्जलोगमेत्तद्धाणं गंतूणेगेगजीवपरिहाणिं कादूण आणिज्जमाणे संपहियविरलणाए अद्धमेत्तजीवेसु परिहीणेसु अण्णं दुगुणहाणिट्ठाणमुप्पज्जइ । एवमेदीए दिसाए गुणहाणिं पडि विरलणमद्धं कादूण णेदव्वं जाव जवमज्झछेदणयाणमसंखेज्ज-भागमेत्तगुणहाणीओ उवरि गंतूणुक्कस्सट्ठाणजीवपमाणमवट्ठिदं त्ति । णवरि उक्कस्सट्ठाणे वि आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता जीवा जहा होंति तहा कायव्व, अण्णहा

विरलनकर और विरलित राशिके प्रत्येक एकपर समान खण्ड करके देयरूपसे देकर यदि देखते हैं तो एक-एकका एक जीवसम्बन्धी कालका प्रमाण होकर प्राप्त होता है। किन्तु यह प्रकृतमें विवक्षित नहीं है, क्योंकि उस प्रकारकी वृद्धि अत्यन्त असम्भव होनेसे प्रतिषिद्ध है। यदि ऐसा है तो उत्कृष्ट स्थानके जीवोंके इस प्रमाणको ही ग्रहण करते हैं ऐसा कथन करनेपर ऐसा ग्रहण करना भी शक्य नहीं है, क्योंकि यवमध्यकी अधस्तन ( पूर्ववर्ती ) नाना गुणहानि-शलाकाओंसे उपरिम नाना गुणहानिशलाकाओंके असंख्यातगुणेरूप उपदेशकी यहाँ अनुवृत्ति है, जो उपदेश आगे कहे जानेवाले सूत्रसे सिद्ध है तथा अधस्तन और उपरिम नाना गुणहानि-शलाकाएं इस पक्षमें सदृश देखी जाती हैं।

§ २८८. पुनः साम्प्रतिक विरलनसे आधेका विरलनकर विरलित राशिके प्रत्येक एक-पर जघन्य स्थानके जीवोंके प्रमाणको समान खण्ड करके देयरूपसे देनेपर वहाँ प्रत्येक विर-लनके प्रति एक-एक जीवका प्रमाण प्राप्त होता है। पुनः इस विरलनके अर्धभाणप्रमाण जीवोंके आगमके अनुसार घटानेपर वहाँसे अन्य द्विगुणहानिस्थान उत्पन्न होता है। पुनः इस विरलनको आधा करके जघन्य स्थानके जीवोंसे अर्धभागमात्र रुके हुए स्थानके जीवोंको समखण्ड करके देनेपर प्रत्येक विरलनके प्रति एक-एक जीवका प्रमाण प्राप्त होता है। यहाँपर भी आगमानुसार असंख्यात लोकप्रमाण अध्वान जाकर एक-एक जीवकी परिहानि करके लानेपर साम्प्रतिक विरलनसे अर्धमात्र जीवोंके हीन होनेपर अन्य द्विगुणवृद्धिस्थान उत्पन्न होता है। इस प्रकार इस विधिसे प्रत्येक गुणहानिके प्रति विरलनको आधा करके यवमध्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यात वहुभागप्रमाण गुणहानि ऊपर जाकर उत्कृष्ट स्थानके जीवोंका प्रमाण अवस्थित होनेतक ले जाना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट स्थानमें भी जिस प्रकार

पुव्वाइरियसंपदायविरोहप्पसंगादो। एवं संजादे एगो चेव जीवो सव्वत्थ अहिओ ऊणो वा होइ, हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागाहिंतो उवरिमणाणागुणहाणिसलागाओ च असंखेज्जगुणाओ भवंति। गुणहाणिअद्धाणं पि सव्वत्थ सरिसमेव संजाद, गुणहाणिसलागाओ च सव्वसमासेणावलियासंखेज्जदिभागमेत्ताओ जादाओ। सव्वेसु ट्ठाणेसु जीवा पादेक्कमावलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता च जादा त्ति सव्वमेदं घडदे। एत्तियं पुण ण संजादं सव्वत्थावट्ठिदो भागहारो होदि त्ति जहण्णट्ठाणसरिसजीवपमाणादो उवरिमभागहारस्स अद्धद्धकमेण परिहाणिदंसणादो होदु णामेदमणवट्ठिदभागहारत्तं, इच्छिज्जमाणत्तादो च। ण च सव्वत्थावट्ठिदो चेव भागहारो त्ति संपदायो अत्थि, तहाणुवलंभादो। तदो जवमज्झादो हेट्ठा सव्वत्थ जहण्णट्ठाणजीवपमाणो अवट्ठिदभागहारो जवमज्झादो उवरि वि जाव जहण्णट्ठाणजीवपमाणं पावइ ताव जहण्णट्ठाणजीवपमाणादो दुगुणमेत्तो अवट्ठिदभागहारो। तत्तो परमणवट्ठिदो भागहारो अद्धद्धकमेण हीयमाणो गच्छइ त्ति एसो एत्थ परमत्थो।

§ २८९. अथवा जवमज्झादो हेट्ठा उवरि वि सव्वत्थ उक्कस्सट्ठाणजीवमेत्तो अवट्ठिदभागहारो त्ति घेत्तूण परंपरोवणिधा जाणिय णेदव्वा, तहा परूवणे कीरमाणे गुणवड्ढि-हाणिअद्धाणाणं हेट्ठिमोवरिमाणमवट्ठिदभावसिद्धीए णिव्वाहमुवलंभादो सव्वत्थावट्ठिदभागहारब्भुवगमस्स वि एदम्मि पक्खे अविसंवाददंसणादो। संपहि जवमज्झादो

---

आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण जीव होते हैं उस प्रकार करना चाहिए, अन्यथा पूर्वाचार्योंका जो सम्प्रदाय चला आ रहा है उसके साथ विरोध होनेका प्रसंग प्राप्त होता है। ऐसा होनेपर सर्वत्र एक ही जीव अधिक या कम होता है और अधस्तन गुणहानिशलाकाओंकी अपेक्षा उपरिम गुणहानिशलाकाएँ असंख्यातगुणी बन जाती है, सर्वत्र गुणहानिअध्वान भी सदृश ही प्राप्त होता है, गुणहानिशलाकाएँ सब मिलाकर आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण हो जाती है तथा सब स्थानोंमेंसे प्रत्येक स्थानमें जीव आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण हो जाते है। इस प्रकार यह सब विधि बन जाती है। किन्तु सर्वत्र अवस्थित भागहार ही होता है यह बात नहीं बनती, क्योंकि जघन्य स्थानके सदृश जीवोंके प्रमाणसे उपरिम भागहारकी अर्ध-अर्ध भागके क्रमसे हानि देखी जाती है तथा यह अनवस्थित भागहार होओ, क्योंकि यह इष्ट है। तथा सर्वत्र अवस्थित ही भागहार है ऐसा सम्प्रदाय नहीं है, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता। इसलिए यवमध्यसे पूर्व सर्वत्र जघन्य स्थानके जीवोंके प्रमाणवाला अवस्थित भागहार है तथा यवमध्यके ऊपर भी जघन्य स्थानके जीवोंके प्रमाणके प्राप्त होने तक जघन्य स्थानके जीवोंके प्रमाणसे दूना अवस्थित भागहार है। इसके आगे अनवस्थित भागहार आधे-आधेके क्रमसे हीन होता जाता है इस प्रकार यहाँपर परमार्थ है।

§ २८९. अथवा यवमध्यसे पहले और आगे भी सर्वत्र उत्कृष्ट स्थानके जीवोंके प्रमाणवाला अवस्थित भागहार है ऐसा ग्रहण करके परंपरोपनिधाको जानकर ले जाना चाहिए, क्योंकि उस प्रकार प्ररूपणा करनेपर अधस्तन और उपरिम गुणवृद्धिअध्वान और गुणहानि अध्वानकी अवस्थितरूपसे सिद्धि निर्बाधरूपसे पाई जाती है तथा इस पक्षके स्वीकार करनेपर सर्वत्र अवस्थित भागहारका स्वीकार अविसंवादरूपसे देखा जाता है। अब यवमध्यसे

हेट्ठिमोवरिमणाणागुणहाणिसलागाणमियत्तावहारणट्ठं सुत्तमुत्तरमोइण्णं—

*** जवमज्झजीवाणं जत्तियाणि अद्धच्छेदणाणि तेसिमसंखेज्जदिभागो हेट्ठा जवमज्झस्स गुणहाणिट्ठाणंतराणि। तेसिमसंखेज्जभागमेत्ताणि उवरि जवमज्झस्स गुणहाणिट्ठाणंतराणि।**

§ २९०. एदेण सुत्तेण हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागाहिंतो उवरिमणाणागुण-हाणिसलागाणमसंखेज्जगुणत्तं सूचिदं। संपहि एत्थ जवमज्झच्छेदणएसु अणवगएसु तेहिंतो जवमज्झादो हेट्ठिमोवरिमणाणागुणहाणिसलागाणं पमाणावहारणं कादुं ण सक्किज्जइ त्ति जवमज्झच्छेदणयाणमेव पमाणणिण्णयं ताव कस्सामो। तं जहा— जवमज्झजीवपमाणमुक्कस्सेणावलियाए असंखेज्जदिभागो त्ति सुत्ते णिद्दिट्ठं, सो पुण आवलियाए असंखेज्जदिभागो जइ वि जिणदिट्ठभावेण घेत्तव्वो, तो वि जहण्णपरित्ता-संखेज्जेणावलियाए ओवट्टिदाए तत्थ भागलद्धमेत्ता जवमज्झजीवा होंति त्ति सव्वुक्कस्स-मावलियाए असंखेज्जदिभागं घेत्तूण तच्छेदणएहिंतो जवमज्झहेट्ठिमोवरिमणाणागुण-हाणिसलागाणं पमाणसाहणमेवमणुगंतव्वं। तं कथं? जहण्णपरित्तासंखेज्जयं विरले-यूणावलियाए समखंडं कादूण दिण्णाए रूवं पडि जहण्णपरित्तासंखेज्जपमाणं पावइ।

अधस्तन और उपरिम नाना गुणहानिशलाकाओंके प्रमाणको निश्चित करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

*** यवमध्यवर्ती जीवोंके जितने अर्धच्छेद होते हैं उनके असंख्यातवें भाग-प्रमाण यवमध्यके अधस्तन ( पूर्ववर्ती ) गुणहानिस्थानान्तर होते हैं तथा उनके ( अर्धच्छेदोंके ) असंख्यात बहुभागप्रमाण यवमध्यके उपरितन गुणहानिस्थानान्तर होते हैं।**

§ २९० इस सूत्रद्वारा अधस्तन गुणहानिशलाकाओंसे उपरिम नाना गुणहानि-शलाकाएँ असंख्यातगुणी सूचित की गई हैं। अब यहाँपर यवमध्यके अर्धच्छेदोंके अवगत न होनेपर उनसे यवमध्यसे अधस्तन और उपरिम नाना गुणहानिशलाकाओंका प्रमाण निश्चित करना शक्य नहीं है, इसलिए यवमध्यके अर्धच्छेदोंके ही प्रमाणका निर्णय सर्वप्रथम करेंगे। यथा—यवमध्यके जीवोंका प्रमाण उत्कृष्टरूपसे आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है इस प्रकार सूत्रमें निर्देश किया है। परन्तु उस आवलिके असंख्यातवें भागको यद्यपि जैसा जिनदेवने देखा हो वैसा लेना चाहिए तो भी जघन्य परीतासंख्यातसे आवलिके भाजित करनेपर वहाँ जो भाग लब्ध आवे उतने यवमध्यके जीव होते हैं, इसलिए आवलिके सबसे उत्कृष्ट असंख्यातवें भागको ग्रहणकर उनके अर्धच्छेदोंके द्वारा यवमध्यके अधस्तन और उपरितन गुणहानिशलाकाओंके प्रमाणकी सिद्धि होती है ऐसा जान लेना चाहिए।

शंका—वह कैसे?

समाधान—जघन्य परीतासंख्यातका विरलनकर उस विरलित राशिपर आवलिके असंख्यातवें भागको समान खण्ड करके देयरूपसे देनेपर प्रत्येक एक विरलनके प्रति जघन्य परीतासंख्यातका प्रमाण प्राप्त होता है।

कुदो एदं णव्वदे ? जहण्णपरित्तासंखेज्जयं विरलेदूण रूवं पडि तमेव दादूण वग्गिद-संवग्गिदकदे आवलिया समुप्पज्जदि त्ति परियम्मवयणादो। पुणो एत्थेगरूवधरिदं मोत्तूण सेससव्वरूवधरिदजहण्णपरित्तासंखेज्जेसु अण्णोण्णब्भत्थेसु जवमज्झजीवपमाणं होइ। एवं होदि त्ति कादूण एदस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागस्स छेदणयाणि उक्कस्ससंखेज्जविरलणमेत्तजहण्णपरित्तासंखेज्जच्छेदणएसु समुदिदेसु भवंति। जहण्ण-परित्तासंखेज्जच्छेदणएहिं परिहीणावलियच्छेदणेसु गहिदेसु जवमज्झच्छेदणयाणि समुप्पज्जंति त्ति भणिदं होइ।

§ २९१. संपहि एत्थेव एगरूवधरिदजहण्णपरित्तासंखेज्जच्छेदणयमेत्तीओ हेट्ठिम-णाणागुणहाणिसलागाओ त्ति घेत्तव्वं। सेसरूवूणुक्कस्ससंखेज्जविरलणमेत्तरूवोवरि ट्ठिदजहण्णपरित्तासंखेज्जछेदणयाणि च घेत्तूणुवरिमणाणागुणहाणिसलागाओ होंति त्ति गहेयव्वं। एवं च घेप्पमाणे हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागाहिंतो उवरिमणाणागुणहाणि-सलागाओ संखेज्जगुणाओ चेव जादाओ, णासंखेज्जगुणाओ। ण चेदमिच्छिज्जदे, हेट्ठिम-णाणागुणहाणिसलागाहिंतो उवरिमणाणागुणहाणिसलागाओ असंखेज्जगुणाओ त्ति पदुप्पायणपरेणेदेण सुत्तेण सह विरोहादो। तदो णेदं घडदि त्ति ? सच्चमेवेदं, जहण्ण-परित्तासंखेज्जच्छेदणयमेत्तीसु हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागासु घेप्पमाणीसु उवरिमणाणा-

---

**शंका**—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

**समाधान**—क्योंकि जघन्य परीतासंख्यातका विरलनकर विरलित राशिके प्रत्येक एकपर उसी राशिको देकर वर्गित-संवर्गित करनेपर आवलि उत्पन्न होती है इस परिकर्मके वचनसे जाना जाता है।

पुनः यहाँ एक अंकके प्रति प्राप्त राशिको छोड़कर शेष सब अंकोंके प्रति प्राप्त जघन्य परीतासंख्यातोंके परस्पर गुणित करनेपर यवमध्यके जीवोंका प्रमाण प्राप्त होता है। इस प्रकार होता है ऐसा समझकर आवलिके इस असंख्यातवे भागके अर्धच्छेद उत्कृष्ट संख्यातके विरलनप्रमाण जघन्य परीतासंख्यातके अर्धच्छेदोंमें मिलानेपर होते हैं। जघन्य परीता-संख्यातके अर्धच्छेदोंसे हीन आवलिके अर्धच्छेदोंके ग्रहण करनेपर यवमध्यके अर्धच्छेद उत्पन्न होते है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

§ २९१. अब इन्हींमेंसे एक अंकके प्रति प्राप्त जघन्य परीतासंख्यातके अर्धच्छेदप्रमाण अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाऐं होती है ऐसा ग्रहण करना चाहिए तथा एक अंक कम करके शेष उत्कृष्ट संख्यातप्रमाण विरलनोंके प्रति प्राप्त जघन्य परीतासंख्यातोंके अर्धच्छेदोंको ग्रहण कर उपरिम नाना गुणहानिशलाकायें होती है ऐसा ग्रहण करना चाहिए। और इस प्रकार ग्रहण करनेपर अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाओंसे उपरिम नाना गुणहानिशलाकाएँ संख्यातगुणी ही होती है, असंख्यातगुणी नहीं।

**शंका**—परन्तु यह इष्ट नहीं है, क्योंकि ऐसा स्वीकार करनेपर इस कथनका अधस्तन नाना गुणहानिशलाओंसे उपरिम नाना गुणहानिशलाकाऐं असंख्यातगुणी होती हैं इस प्रकार कथन करवाले इस सूत्रके साथ विरोध आता है, इसलिए यह घटित नहीं होता ?

**समाधान**—यह कहना सत्य है, क्योंकि जघन्य परीतासंख्यातके अर्धच्छेदप्रमाण

गुणहाणिसलागाणं तत्तो संखेज्जगुणत्तं मोत्तूण णासंखेज्जगुणत्तसंभवो त्ति। किंतु रूवूणजहण्णपरित्तासंखेज्जच्छेदणयमेत्तीओ हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागाओ त्ति घेत्तूण पयदत्थसमत्थणा कायव्वा, तहा घेप्पमाणे उवरिमणाणागुणहाणिसलागाणमसंखेज्ज-गुणत्तसंभवदंसणादो। तं कधं? उक्कस्ससंखेज्जयं विरलेयूण पुव्वुत्तपमाणजवमज्झच्छेदणएसु समखंड कादूण दिण्णेसु रूवं पडि जहण्णपरित्तासंखेज्जच्छेदणयपमाणं होदूण पावइ। पुणो एत्थ सव्वरूवधरिदेसु एगेगरूवमवणिय पुध ट्ठवेयव्वं। एवं ठविदे विरलणरूवं पडि अवणिदसेसाणि रूवूणजहण्णपरित्तासंखेज्जच्छेदणयमेत्तरूवाणि जादाणि। सव्वरूवधरिदेसु अवणिदरूवाणि वि एक्कदो मेलाविदाणि उक्कस्ससंखेज्जमेत्ताणि जादाणि। पुणो एदाणि रूवूणजहण्णपरित्तासंखेज्जछेदणएहिं भागं घेत्तूण भागलद्ध-संखेज्जरूवाणि पुव्विल्लुक्कस्ससंखेज्जविरलणाए पासे विरलिय तेसु रूवेसु समखंडं करिय दिण्णेसु संपहियविरलणए वि रूवं पडि रूवूणजहण्णपरित्तासंखेज्जछेदणयमेत्ताणि रूवाणि लद्धाणि। संपहि एत्थेगरूवधरिदरूवूणजहण्णपरित्तासंखेज्जछेदणयमेत्तीओ हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागाओ संपहियरूवधरिदमेत्तीओ दुरूवूणादिविरलणरूवधरिद-मेत्तीओ च उवरिमणाणागुणहाणिसलागाओ त्ति गहेयव्वं। एवं गहिदे हेट्ठिमणाणा-गुणहाणिसलागाहिंतो उवरिमणाणागुणहाणिसलागाओ णिस्संसयमसंखेज्जगुणाओ

---

अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाओंके ग्रहण करनेपर उपरिम नाना गुणहानिशलाकाएं उनसे संख्यातगुणी होती हैं इसे छोड़कर उनका असंख्यातगुणा होना सम्भव नहीं है। किन्तु एक कम जघन्य परीतासंख्यातके अर्धच्छेदप्रमाण अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाओंको ग्रहणकर प्रकृत अर्थका समर्थन करना चाहिए, क्योंकि इस प्रकारसे ग्रहण करनेपर उपरिम नाना गुणहानिशलाकाओंका असंख्यातगुणा होना सम्भव देखा जाता है।

**शंका**—वह कैसे?

**समाधान**—क्योंकि उत्कृष्ट संख्यातका विरलनकर पूर्वोक्त प्रमाण यवमध्यके अर्धच्छेदोंको समान खण्डकर देयरूपसे देनेपर प्रत्येक एकके प्रति जघन्य परीतासंख्यात अर्धच्छेदोंका प्रमाण प्राप्त होता है। पुन: यहाँपर सब अंकोंके प्रति प्राप्त राशिमेंसे एक-एक अंकको निकालकर पृथक् स्थापित करना चाहिए। इस प्रकार स्थापित करनेपर प्रत्येक विरलनके प्रति निकालनेके बाद शेष संख्या एक कम जघन्य परीतासंख्यात अर्धच्छेदप्रमाण अंकवाली हो जाती है। सब अंकोंके प्रति प्राप्त निकाले गये अंक भी एकत्र मिलानेपर उत्कृष्ट संख्यातप्रमाण हो जाते हैं। पुनः इन्हें एक कम जघन्य परीतासंख्यातके अर्धच्छेदोंसे भाजितकर भाग करनेसे जो संख्यात अंक लब्ध आवे उनको पहलेके उत्कृष्ट संख्यातसम्बन्धी विरलनके पास विरलितकर उन अंकोंके समान खण्डकर देयरूपसे देनेपर साम्प्रतिक विरलनके प्रत्येक एकके प्रति एक कम जघन्य परीतासंख्यातके अर्धच्छेदप्रमाण अंक प्राप्त होते हैं। अब यहाँ एक अंकके प्रति प्राप्त एक कम जघन्य परीतासंख्यातके अर्धच्छेदप्रमाण अधस्तन नानागुणहानिशलाकाएँ होती हैं और साम्प्रतिक अंकोके प्रति रखी गई संख्याप्रमाण और दो अंक कम आदि विरलनके अंकोके प्रति प्राप्त संख्याप्रमाण उपरिम नाना गुणहानिशलाकाएँ होती है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। ऐसा ग्रहण करनेपर अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाओंसे

जादाओ। किं कारणं ? संखेज्जरूवब्भहियजहण्णपरित्तासंखेज्जमेत्तरूवाणमेत्थ गुणगारसरूवेण पउत्तिदंसणादो। एवमेदीए दिसाए जहण्णपरित्तासंखेज्जच्छेदणयाणि दुरूवूणतिरूवूणादिकमेण परिहाविय हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागाणं पमाणाणुगमो समयाविरोहेण कायव्वो जाव तप्पाओग्गसंखेज्जरूवमेत्ताओ जादाओ त्ति। तदो हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागाओ संखेज्जाओ होदूण उवरिमणाणागुणहाणिसलागाहिंतो असंखेज्जगुणहीणाओ त्ति सिद्धं।

§ २९२. एवं ताव जवमज्झच्छेदणयाणमसंखेज्जदिभागमेत्ताओ हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागाओ तेसिमसंखेज्जदिभागमेत्ताओ च उवरिमणाणागुणहाणिसलागाओ त्ति एदमत्थं परूविय संपहि एवंविहणाणागुणहाणिसलागाओ धरेदूण जहण्णुक्कस्सट्ठाणजीवपमाणणिण्णयं कस्सामो। तं जहा—जवमज्झादो हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागाओ विरलिय विगं करिय अण्णोण्णब्भत्थे कदे जहण्णपरित्तासंखेज्जस्स अद्धमुप्पज्जइ। पुणो एदेणण्णोण्णब्भत्थरासिणा जवमज्झजीवे ओवट्टिदेसु रूवूणुक्कस्ससंखेज्जमेत्तजहण्णपरित्तासंखेज्जयाणि अण्णोण्णब्भत्थाणि कादूण दुगुणमेत्तं लद्धपमाणं होदि। एदं चेव जहण्णट्ठाणजीवपमाणमिदि घेत्तव्वं।

§ २९३. संपहि उक्कस्सट्ठाणजीवपमाणे आणिज्जमाणे तत्थ ता वपुव्वुत्तविरलणाए दोरूवधरिदछेदणएहिं परिहीणजवमज्झच्छेदणयमेत्ताओ उवरिमणाणागुणहाणिसलागाओ

---

उपरिम नाना गुणहानिशलाकाएँ निःशंसय असंख्यातगुणी हो जाती हैं, क्योंकि संख्यात अंक अधिक जघन्य परीतासंख्यातप्रमाण अकोंकी यहाँपर गुणकाररूपसे प्रवृत्ति देखी जाती है। इस प्रकार इस पद्धतिसे जघन्य परीतासंख्यातके अर्धच्छेदोंको दो अंक कम, तीन अंक कम आदिके क्रमसे घटाकर अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाओंके प्रमाणका अनुगम तत्प्रायोग्य संख्यातप्रमाण संख्याके प्राप्त होने तक आगमानुसार करना चाहिए। अतः अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाएँ संख्यात होकर वे उपरिम नाना गुणहानिशलाकाओंसे असंख्यातगुणी हीन होती हैं यह सिद्ध हुआ।

§ २९२. इस प्रकार सर्वप्रथम यवमध्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागप्रमाण अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाएँ और उन्हीं अर्धच्छेदोंके असंख्यात बहुभागप्रमाण उपरिम नाना गुणहानिशलाकाएँ होती हैं इस प्रकार इस अर्थका कथनकर अब इस प्रकारसे नाना गुणहानिशलाकाओंको ग्रहणकर जघन्य और उत्कृष्ट स्थानके जीवोंके प्रमाणका निर्णय करते हैं। यथा—यवमध्यसे अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाओंका विरलनकर और विरलित राशिके प्रत्येक एकको दूनाकर परस्पर गुणा करनेपर जघन्य परीतासंख्यातका अर्धभाग उत्पन्न होता है। पुनः इस अन्योन्य अभ्यस्त राशिद्वारा यवमध्यके जीवोंके भाजित करनेपर जो लब्ध आता है वह एक कम उत्कृष्ट संख्यातप्रमाण जघन्य परीतासंख्यातको परस्पर गुणितकर जो लब्ध आवे उससे दूना होता है। यही जघन्य स्थानके जीवोंका प्रमाण है ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

§ २९३. अब उत्कृष्ट स्थानके जीवोंके प्रमाणको लानेपर वहाँ सर्व प्रथम पूर्वोक्त विरलनके दो अंकोंके प्रति प्राप्त अर्धच्छेदोंसे हीन यवमध्यके अर्धच्छेदप्रमाण उपरिम नाना

त्ति घेत्तूण तासिमण्णोण्णब्भत्थरासिणा जवमज्झजीवेसु पुव्वुत्तपमाणेसु ओवट्टिदेसु जहण्णपरित्तासंखेज्जवग्गस्स चउब्भागमेत्तमुक्कस्सट्ठाणजीवपमाणमागच्छइ। अह जइ तिरूवूणविरलणरूवधरिदमेत्ताओ उवरिमणाणागुणहाणिसलागाओ त्ति घेप्पंति तो तासिमण्णोण्णब्भत्थरासिणा जवमज्झट्ठाणजीवेसु भाजिदेसु जहण्णपरित्तासंखेज्जघणस्स अट्ठमभागमेत्तमुक्कस्सट्ठाणजीवपमाणमागच्छइ। एवं णेदव्वं जाव तप्पाओग्गसंखेज्ज-रूवधरिदच्छेदणएहिं परिहीणजवमज्झच्छेदणयमेत्ताओ उवरिमणाणागुणहाणिसलागाओ जादाओ त्ति एवमेदेसु वियप्पेसु जिणदिट्ठभावेणुक्कस्सट्ठाणजीवपमाणमावलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तं गहेयव्वं। अदो चेय उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे दो जीवा त्ति एदं पि सुत्तं संदिट्ठिपमाणं कादूण वक्खाणिदमिदि ण किंचि विरुज्झदे। तदो जवमज्झ-जीवाणं जत्तियाणि अद्धच्छेदणयाणि तेसिमसंखेज्जदिभागो हेट्ठा जवमज्झस्स गुणहाणि-ट्ठाणतराणि तेसिमसंखेज्जाभागमेत्ताणि च उवरि जवमज्झस्स गुणहाणिट्ठाणंतराणि त्ति सिद्धं।

§ २९४. एत्थ परूवणा पमाणमप्पाबहुअं चेदि तीहिं अणियोगद्दारेहिं णाणेग-गुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरसलागाणमणुगमो कायव्वो। तत्थ परूवणदाए अत्थि एगजीव-दुगुणहाणिट्ठाणंतरं णाणाजीवदुगुणहाणिट्ठाणंतरसलागाओ च पमाणमेगगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जा लोगा, णाणागुणहाणिट्ठाणंतरसलागाओ आवलियाए असंखेज्जदि-

गुणहानिशलाकाओंको ग्रहणकर उनकी अन्योन्याभ्यस्तराशिसे पूर्वोक्त प्रमाण यवमध्य-सम्बन्धी जीवोंके भाजित करनेपर जघन्य परीतासंख्यातके वर्गके चौथे भागप्रमाण उत्कृष्ट स्थानसम्बन्धी जीवोंका प्रमाण आता है। और यदि तीन अंक कम विरलनकी जितनी संख्या है तत्प्रमाण उपरिम नाना गुणहानिशलाकाएँ हैं ऐसा ग्रहण करते हैं तो उनकी अन्योन्या-भ्यस्त राशिद्वारा यवमध्यके जीवोंके भाजित करनेपर जघन्य परीतासंख्यातके घनके आठवें भागप्रमाण उत्कृष्ट स्थानसम्बन्धी जीवोंका प्रमाण प्राप्त होता है। इस प्रकार विरलनके तत्प्रायोग्य संख्यात अंकोंके प्रति प्राप्त अर्धच्छेदोंसे हीन यवमध्यके अर्धच्छेदप्रमाण उपरिम नाना गुणहानिशलाकाओंके होने तक ले जाना चाहिए। इस प्रकार इन विकल्पोंमें जिनेन्द्र देवने जैसा देखा हो उसके अनुसार उत्कृष्ट स्थानके जीवोंका प्रमाण आवलिके असंख्यातवे भागप्रमाण ग्रहण करना चाहिए। और इसीलिए उत्कृष्ट कषाय उदयस्थानमें दो जीव हैं इस प्रकार इस सूत्रका भी संदृष्टिका प्रमाण करके व्याख्यान किया है, इसलिए कुछ भी विरुद्ध नहीं है। अतः यवमध्यके जीवोंके जितने अर्धच्छेद होते हैं उनके असंख्यातवे भागप्रमाण यवमध्यके अधस्तन गुणहानिस्थानान्तर होते हैं और उनके असंख्यात बहुभागप्रमाण यवमध्यके उपरिम गुणहानिस्थानान्तर होते है यह सिद्ध हुआ।

§ २९४. यहाँपर प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व इन तीन अनुयोगद्वारोंके आलम्बन-द्वारा नाना और एक गुणवृद्धिशलाकाओं और गुणहानिशलाकाओंका अनुगम करना चाहिए। उनमेंसे प्ररूपणाकी अपेक्षा एक जीवद्विगुणहानिस्थानान्तर और नाना जीवद्विगुणहानि-स्थानान्तर शलाकाएँ हैं। प्रमाण—एक गुणवृद्धि और गुणहानिस्थानान्तर असंख्यात लोकप्रमाण हैं तथा नाना गुणहानिस्थानान्तरशलाकाएँ आवलिके असंख्यातवे भागप्रमाण हैं। अल्प-

भागो। अप्पाबहुअं सव्वत्थोवा णाणागुणहाणिट्ठाणंतरसलागाओ। एयदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं। को गुणगारो? असंखेज्जा लोगा। एवं परंपरोवणिधा-संबंधेण जवमज्झादो हेट्ठिमोवरिमणाणागुणहाणिसलागाणमियत्तावहारणं कादूण संपहि तसजीवविसयमेदं जवमज्झं पदुप्पाइदमिदि णिगमणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

* एवं पदुप्पण्णं तसाणं जवमज्झं।

§ २९५. जमेदमणंतरपरूविदं जवमज्झं तं तसाणं पदुप्पण्णं तसजीवे अहिकरिय परूविदमिदि वुत्तं होइ। एइंदिएसु एसा जवमज्झपरूवणा किण्ण होइ? ण, तत्थ थावरपाओग्गकसायुदयट्ठाणेसु एक्केक्कम्मि कसायुदयट्ठाणे तेसिमणंतसंखावच्छिण्णाण-मण्णारिसेण जवमज्झसण्णिवेसेणावट्ठाणदंसणादो। तदो जत्थ विरहिदाविरहिदट्ठाणसंभवो तत्थेव तसजीवविसये जवमज्झमेदं पदुप्पण्णमिदि सुसंबद्धमभिहिदं। अथवा पुव्वसुत्तेण जवमज्झादो हेट्ठिमोवरिमणाणागुणहाणिसलागाणं पमाणपरिच्छेददुवारेण जहण्णुक्कस्स-ट्ठाणजीवाणं पमाणं परूविदं।

§ २९६. संपहि जहण्णुक्कस्सट्ठाणजीवेहिंतो जवमज्झजीवपमाणसाहणट्ठमिदं सुत्तमोइण्णमिदि वक्खाणेयव्वं। तं जहा—एदमणंतरपरूविदजहण्णुक्कस्सट्ठाण-जीवपमाणं जहाकमं हेट्ठिमोवरिमणाणागुणहाणिसलागाणमण्णोण्णब्भत्थरासिणा

-बहुत्व—नाना गुणहानिस्थानान्तरशलाकाएँ सबसे थोड़ी हैं। उनसे एक द्विगुणवृद्धि और द्विगुणहानिस्थानान्तरशलाका असंख्यातगुणी है। गुणकार क्या है? असंख्यात लोक गुणकार है। इस प्रकार परंपरोपनिधाके सम्बन्धसे यवमध्यसे अधस्तन और उपरिम नाना गुणहानि-शलाकाओंकी संख्याका अवधारणकर अब यह यवमध्य त्रसजीवविषयक कहा गया है इस बातका ज्ञान करानेके लिए आगेके सूत्रको कहते हैं—

* इस प्रकार त्रसजीवोंके कषाय-उदयस्थान-सम्बन्धी यवमध्य उत्पन्न हो जाता है।

§ २९५ जिस यवमध्यका पहले कथन कर आये हैं उसका त्रसजीवोंको अधिकृतकर 'पदुप्पण्णं' अर्थात् कथन किया यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है।

शंका—एकेन्द्रिय जीवोंमें यह यवमध्यप्ररूपणा क्यों नहीं होती?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहाँ स्थावरोंके योग्य कषाय उदयस्थानोंमेंसे एक-एक कषाय-उदयस्थानमें उनकी संख्या अनन्त होती है, इसलिए उनके यवमध्यकी रचनाका अवस्थान विसदृशरूपसे देखा जाता है, इसलिए जहाँपर जीवोंसे रहित और जीवोंसे युक्त स्थान सम्भव हैं वहीं त्रसजीवविषयक यह यवमध्य उत्पन्न हुआ है यह सुसम्बद्ध कहा है। अथवा पूर्व सूत्रद्वारा यवमध्यसे अधस्तन और उपरिम नाना गुणहानिशलाकाओंके प्रमाणका निर्णय करके उस द्वारा जघन्य और उत्कृष्ट स्थानके जीवोंका प्रमाण कहा गया है।

§ २९६. अब जघन्य और उत्कृष्ट स्थानके जीवोंसे यवमध्यके जीवोंके प्रमाणको सिद्ध करनेके लिये यह सूत्र आया है ऐसा व्याख्यान करना चाहिए। यथा—यह अनन्तर कहा गया जघन्य और उत्कृष्ट स्थानके जीवोंका प्रमाण क्रमसे अधस्तन और उपरिम नाना गुणहानि-शलाकाओंकी अन्योन्याभ्यस्तराशिसे 'पदुप्पण्णं' अर्थात् गुणित होकर त्रसजीवोंका यवमध्य

पदुप्पण्णं गुणिदं संतं तत्ताणं जवमज्झं होइ। जहण्णुक्कस्सट्ठाणजीवपमाणं जहाकमं दोसु उद्देसेसु ट्ठविय तत्थ जहण्णट्ठाणजीवपमाणे हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागमेत्तवारं दुगुणगुणगारेण गुणिदे उवरिमणाणागुणहाणिसलागमेत्तवारं च उक्कस्सट्ठाणजीवपमाणे दुगुणगुणगारेण गुणिदे जवमज्झट्ठाणजीवपमाणमुप्पज्जदि त्ति वुत्तं होइ। अहवा एदं जवमज्झछेदणयपमाणमणूणाहियं घेत्तूण विरलिय विगं कादूण अण्णोण्णब्भत्थे कदे जवमज्झट्ठाणजीवपमाणमुप्पज्जदि त्ति एदस्स सुत्तस्सत्थो परूवेयव्वो, पदुप्पण्णसद्दस्स गुणगारपज्जायत्तेण रूढस्स इह ग्गहणादो। एवमणंतर-परंपरोवणिधाभेयभिण्णसेढि-परूवणा समत्ता।

§ २९७. संपहि एदेणेव सुत्तपबंधेण सूचिदो अवहारो भागाभागो च जाणिय णेदव्वो। तदो अप्पाबहुअं—सव्वत्थोवा उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे जीवा। जहण्णए कसायुदयट्ठाणे जीवा असंखेज्जगुणा। को गुणगारो? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागाहिं परिहीणुवरिमणाणागुणहाणिसलागाणमण्णोण्णब्भत्थ-रासिगुणगारो त्ति जमुत्तं होइ। जवमज्झजीवा संखेज्जगुणा। को गुणगारो? जहण्णपरित्तासंखेज्जयस्स अद्धमेत्तो चउब्भागमेत्तो अट्ठभागमेत्तो तप्पाओग्गसंखेज्ज-रूवमेत्तो वा। कुदो एदं णव्वदे? जहण्णट्ठाणादो उवरि रूवूणजहण्णपरित्तासंखेज्ज-

होता है। जघन्य और उत्कृष्ट स्थानके जीवोंके प्रमाणको क्रमसे दो स्थानोंमें स्थापितकर वहाँ जघन्य स्थानके जीवोंके प्रमाणको अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाओंका जो प्रमाण है उतनी वार द्विगुण गुणकारसे गुणित करनेपर तथा उपरिम नाना गुणहानिशलाकाओंका जो प्रमाण है उतनी वार उत्कृष्ट स्थानके जीवोंके प्रमाणको द्विगुणगुणकारसे गुणित करनेपर यवमध्यके जीवोंका प्रमाण उत्पन्न होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अथवा यवमध्यके अर्धच्छेदोंके इस प्रमाणको न्यूनाधिकतासे रहितरूपसे ग्रहणकर और उसका विरलनकर तथा विरलनके प्रत्येक एकको दूनाकर परस्पर गुणा करनेपर यवमध्यस्थानके जीवोंका प्रमाण उत्पन्न होता है इस प्रकार इस सूत्रके अर्थका कथन करना चाहिए, क्योंकि 'पदुप्पण्ण' शब्दको 'गुणकार' अर्थमें रूढरूपसे यहाँ ग्रहण किया है। इस प्रकार अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधाके भेदरूप श्रेणिप्ररूपणा समाप्त हुई।

§ २९७. अब इसी सूत्र प्रबन्धद्वारा सूचित हुए अवहार और भागाभागका जानकर कथन करना चाहिए। उसके बाद अल्पबहुत्व है—उत्कृष्ट कषाय उदयस्थानमें जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे जघन्य कषाय उदयस्थानमें जीव असंख्यातगुणे हैं। गुणकार क्या है? आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण गुणकार है। अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाओंसे हीन उपरिम नाना गुणहानिशलाकाओंकी अन्योन्याभ्यस्त राशि गुणकार है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। उनसे यवमध्यके जीव संख्यातगुणे हैं। गुणकार क्या है? जघन्य परीतासंख्यातका अर्धभागप्रमाण, चतुर्थभागप्रमाण, अष्टम भागप्रमाण अथवा तत्प्रायोग्य संख्यात अंकप्रमाण है।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान—जघन्य स्थानसे ऊपर एक कम जघन्य परीतासंख्यातके अर्धच्छेदोंसे लेकर

छेदणयमादिं कादूण जाव तप्पाओग्गसंखेज्जरूवमेत्ताओ जवमज्झादो हेट्ठिमणाणागुणहाणिसलागाओ जिणदिट्ठभावेण घेत्तव्वाओ त्ति परमगुरूवएसादो। जवमज्झादो हेट्ठिमजीवा असंखेज्जगुणा। को गुणगारो? आवलियाए असंखेज्जदिभागो, किंचूणदिवड्ढगुणहाणिट्ठाणंतरमिदि वुत्तं होइ। जवमज्झादो उवरिमजीवा विसेसाहिया। सुगममेत्थ कारणं। सव्वेसु ट्ठाणेसु जीवा विसेसाहिया, हेट्ठिमट्ठाणजीवाणमेत्थ पवेसदंसणादो। एवमप्पाबहुए परूविदे कसायुदयट्ठाणेसु तसाणमोघेण विरहिदाविरहिदट्ठाणपरूवणाणुगया जवमज्झपरूवणा समत्ता भवदि। एत्तो णिरयादिगदीणं पादेक्कं णिरुंभणं कादूण तसाणमादेसपरूवणा च जहागममणुगंतव्वा।

* एसा सुत्तविहासा।

§ २९८. सत्तमीए गाहाए पुरिमद्धसुत्तस्स एसा अत्थविहासा कया त्ति वुत्तं होइ।

*** सत्तमीए गाहाए पढमस्स अद्धस्स अत्थविहासा समत्ता भवदि।**

§ २९९. सुगमं।

*** एत्तो विदियद्धस्स अत्थविहासा कायव्वा।**

§ ३००. सुगममेदं पइण्णावक्कं।

---

तत्प्रायोग्य संख्यात अंकप्रमाण यवमध्यसे अधस्तन नाना गुणहानिशलाकाएँ जितनी जिनेन्द्रदेवने देखी हों उस रूपसे ग्रहण करनी चाहिए ऐसा परमगुरुका उपदेश है।

उनसे यवमध्यके जीव असंख्यातगुणे हैं। गुणकार क्या है? आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण गुणकार है। कुछ कम डेढ़ गुणहानिस्थानान्तरप्रमाण गुणकार है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। उनसे यवमध्यसे उपरिम जीव विशेष अधिक हैं। यहाँपर कारणका कथन सुगम है। उनसे सब स्थानोंमें जीव विशेष अधिक हैं, क्योंकि इनमें अधस्तन स्थानोंके जीवोंका प्रवेश देखा जाता है। इस प्रकार अल्पबहुत्वका कथन करनेपर कषाय उदयस्थानोंमें ओघसे त्रसजीवोंसे रहित और सहित स्थानोंकी प्ररूपणासे अनुगत यवमध्यप्ररूपणा समाप्त होती है। आगे नरकादि गतियोंमेंसे प्रत्येक गतिको विवक्षित कर त्रसजीवोंकी आदेशप्ररूपणा भी आगमानुसार जान लेनी चाहिए।

* यह गाथासूत्रकी अर्थविभाषा है।

§ २९८. सातवीं गाथासूत्रके पूर्वार्धकी यह अर्थविभाषा की यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

*** इस प्रकार सातवीं गाथाके प्रथम अर्धभागकी अर्थविभाषा समाप्त होती है।**

§ २९९. यह सुगम है।

*** अब आगे दूसरे अर्धभागकी अर्थविभाषा करनी चाहिए।**

§ ३००. यह प्रतिज्ञावाक्य सुगम है।

* तं जहा ।

§ ३०१. एदं पि सुगमं ।

*** पढमसमयोवजुत्तेहिं चरिमसमए च बोद्धव्वा त्ति एत्थ तिण्णि सेढीओ ।**

§ ३०२ एदस्स गाहापच्छद्धस्स अत्थविहासणट्ठमेत्थ तिण्णि सेढीओ अप्पाबहुअसंबंधिणीओ णादव्वाओ त्ति भणिदं होइ । कधं पुण गाहापच्छद्धमेदं तिविहाए सेढीए अप्पाबहुअपरूवणम्मि पडिबद्धमिदि चे ? वुच्चदे, तं जहा—एत्थतणसमयसद्दो ण कालवाचओ, किंतु ववत्थावाचओ घेत्तव्वो । तेण पढमसमयोवजुत्तेहिं त्ति वुत्ते पढमादियाए सेढीए गहणं कायव्वं, पढमकसायादियाए ववत्थाए परिणदेहिं जीवेहिं एया अप्पाबहुअसेढी णायव्वा त्ति सुत्तत्थावलंबणादो । एवं चरिमसमये च बोद्धव्वा त्ति एदेण वि चरिमादियाए सेढीए संगहो कायव्वो, चरिमकसायादियाए ववत्थाए अण्णा अप्पाबहुअसेढी बोद्धव्वा त्ति तदत्थावलंबणादो । जेणेदाओ दो वि सेढीओ देसामासयभावेण पयट्टाओ तेण विदियादिया[1] वि सेढी एत्थेवंतब्भूदा त्ति गहेयव्वा । अथवा सम्यगीयते प्राप्यते इति समयः संपरायः कसायं[2] इत्येकोऽर्थः । प्रथमश्चासौ समयश्च

---

* वह जैसे ।

§ ३०१. यह सूत्रवचन भी सुगम है ।

*** प्रथमादिका श्रेणि या प्रथम आदि कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंके द्वारा और अन्तिमादिका श्रेणि या अन्तिमादि कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंकेद्वारा अल्पबहुत्व जानना चाहिए । इस प्रकार प्रकृतमें तीन श्रेणियाँ कही गई हैं ।**

§ ३०२. गाथाके इस उत्तरार्धके अर्थका विशेष व्याख्यान करनेके लिये यहाँपर अल्पबहुत्वसे सम्बन्ध रखनेवाली तीन श्रेणियाँ जानना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—गाथाका यह उत्तरार्ध तीन प्रकारकी श्रेणियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले अल्पबहुत्वके कथनमें कैसे प्रतिबद्ध है ?

समाधान—कहते हैं, यथा—इसमें आया हुआ 'समय' शब्द कालवाचक नहीं है, किन्तु व्यवस्थावाचक ग्रहण करना चाहिए । इसलिये 'पढमसमयोवजुत्तेहिं' ऐसा कहनेपर प्रथमादिका श्रेणिका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि प्रथम कषाय आदिरूप व्यवस्थासे परिणत हुए जीवोंके द्वारा एक अल्पबहुत्व श्रेणि जाननी चाहिए, इस प्रकार प्रकृतमें सूत्रार्थका अवलम्बन लिया है । इसी प्रकार 'चरिमसमए च बोद्धव्वा' इस प्रकार इस वचनद्वारा भी चरमादिका श्रेणिका संग्रह करना चाहिए, क्योंकि अन्तिम कषाय आदिरूप व्यवस्थामें अन्य अल्पबहुत्व श्रेणि जाननी चाहिए इस प्रकार उक्त वचनके अर्थका अवलम्बन लिया है । यतः ये दोनों ही श्रेणियाँ देशामर्षकभावसे प्रवृत्त हुई हैं, इसलिए द्वितीयादिका श्रेणि भी यहाँपर अन्तर्भूत है, अतः उसे भी ग्रहण करना चाहिए । अथवा जो 'सं' सम्यक्रूपसे 'ईयते' अर्थात्

---

१. ता० प्रतौ तेण वि विदियादिया इति पाठ । २. ता०प्रतौ संपराय कषाय इति पाठ. ।

प्रथमसमयः प्रथमकषाय इत्यर्थः । एवं चरिमसमय इत्यत्रापि बोद्धव्यं । शेषं पूर्ववद्व्याख्येयं । तदो कसायोवजुत्ताणं तीहिं सेढीहिं अप्पावहुअपरूवणट्ठमेदं गाहापच्छद्धमोइण्णमिदि सिद्धं । एवमेदस्स गाहापच्छद्धस्स पडिबद्धत्थपरूवणं कादूण संपहि ताओ काओ तिण्णि सेढीओ त्ति आसंकाए पुच्छासुत्तमुत्तरं भणइ—

* तं जहा ।

§ ३०३. सुगमं ।

* विदियादिया पढमादिया चरिमादिया ३ ।

§ ३०४. एवमेदाओ तिण्णि सेढीओ त्ति भणिदं होइ । का सेढी णाम ? सेढी पंती अप्पाबहुअपरिवाडि त्ति एयत्थो । तत्थ जम्मि अप्पाबहुअपरिवाडिम्मि माणसण्णिदविदियकसायोवजुत्ते आदिं कादूण थोवबहुत्तपरिक्खा कीरदे सा विदियादिया णाम । सा पुण तिरिक्ख-मणुसेसु होइ, तत्थ माणोवजुत्ताणं थोवभावेण सव्वहेट्ठिमत्तदंसणादो । तहा जम्हि अप्पाबहुअपरिवाडिम्मि कोहसण्णिदपढमकसायोवजुत्ताणं थोवभावेण पढमणिद्देसेण पढमादिया णाम । सा पुण देवगदीए होइ, तत्थ कोहोवजुत्ताणं सव्वहेट्ठिमत्तदंसणादो । तहा जम्हि थोवबहुत्तपरिवाडीए लोभसण्णिदचरिमकसायोव-

---

प्राप्त होता है वह समय अर्थात् सम्पराय-कषाय कहलाता है इस प्रकार समय शब्दका यह एक अर्थ है । तथा प्रथम जो समय वह प्रथम समय है । प्रथम कषाय यह उसका अर्थ है । इसी प्रकार 'चरिमसमय' इस पदमें भी जानना चाहिए । शेष व्याख्यान पहलेके समान करना चाहिए । इसलिए कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंका तीन श्रेणियोंद्वारा अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिये गाथाका उत्तरार्ध आया है यह सिद्ध हुआ । इस प्रकार गाथाके इस उत्तरार्धसे सम्बन्ध रखनेवाले अर्थका कथनकर अब वे तीन श्रेणियाँ कौनसी हैं ऐसी आशंका होनेपर आगेके पृच्छासूत्रको कहते हैं—

* वह जैसे ।

§ ३०३. यह सूत्रवचन सुगम है ।

* द्वितीयादिका श्रेणि, प्रथमादिका श्रेणि और चरमादिका श्रेणि ३ ।

§ ३०४. इस प्रकार ये तीन श्रेणियाँ हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—श्रेणि किसे कहते हैं ?

समाधान—श्रेणि, पंक्ति और अल्पबहुत्वपरिपाटी ये तीनों पद एकार्थक हैं ।

उनमेंसे मानसंज्ञावाली दूसरी कषायसे उपयुक्त जिस अल्पबहुत्व परिपाटीसे लेकर अल्पबहुत्वकी परीक्षा की जाती है वह द्वितीयादिका परिपाटी कहलाती है । परन्तु वह तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें होती है, क्योंकि उनमें मानकषायसे उपयुक्त हुए जीवोंका स्तोकभावसे सबसे अधस्तनपना देखा जाता है । तथा जिस अल्पबहुत्वपरिपाटीमें क्रोध संज्ञावाली प्रथम कषायसे उपयुक्त हुए जीवोंका स्तोकपनेकी अपेक्षा प्रथम पदका निर्देश किया गया है वह प्रथमादिका परिपाटी कहलाती है । परन्तु वह देवगतिमें होती है । तथा जिस अल्पबहुत्वपरिपाटीमें लोभसंज्ञावाली अन्तिम कषायसे उपयुक्त हुए जीवोंका सबसे स्तोकपना है वह

जुत्ताणं सव्वत्थोवभावो सा चरिमादिया णाम। चरिमो कसायो आदी जिस्से अप्पा-बहुअसेढीए सा चरिमादिया त्ति समासावलंबणादो। सा पुण णेरइएसु होइ, तत्थ लोभोवजुत्ताणं सव्वत्थोवभावे पवुत्तिदंसणादो। एवमेदाओ तिण्णि चेव अप्पाबहुअ-सेढीओ पयदविसये संभवंति, पयारंतरस्स तत्थाणुवलंभादो। एत्थ ताव विदियाए सेढीए साहणट्ठमेसा संदिट्ठी—

oooooooooooo माणोवजुत्तद्धा।

oooooooooooooooo कोहोवजुत्तद्धा।

oooooooooooooooooooo मायोवजुत्तद्धा।

oooooooooooooooooooooooo लोभोवजुत्तद्धा।

संपहि एदीए संदिट्ठीए पयदत्थसाहणट्ठमुवरिमं चुण्णिसुत्तपबंधमणुसरामो—

*** विदियादियाए साहणं।**

§ ३०५. तत्थ ताव विदियादियाए सेढीए जीवप्पाबहुअपरूवणस्स साहणं तप्पवेसणकालपडिबद्धमप्पाबहुअं कस्सामो त्ति वुत्तं होइ।

*** माणोवजुत्ताणं पवेसणयं थोवं।**

§ ३०६. तिरिक्ख-मणुस्सेसु माणोवजुत्ताणं पवेसणकालो उवरिमपदाविवक्खिओ

---

चरमादिका परिपाटी कहलाती है। चरम कषाय है आदिमें जिस अल्पबहुत्वश्रेणिके वह चरमादिका इस प्रकार प्रकृतमें समासका अवलम्बन लिया है। परन्तु वह नारकियोंमें होती है, क्योंकि उनमें लोभसे उपयुक्त हुए जीवोंकी सबसे स्तोकरूपसे प्रवृत्ति देखी जाती है। इस प्रकार प्रकृत विषयमें ये तीन ही अल्पबहुत्वश्रेणियाँ सम्भव हैं, क्योंकि प्रकृतमें इनके सिवाय दूसरा प्रकार नहीं उपलब्ध होता है। यहाँपर सर्वप्रथम द्वितीयादिका श्रेणिके साधन करनेके लिये यह संदृष्टि है—

oooooooooooo मानोपयोगकाल।

oooooooooooooooo क्रोधोपयोगकाल।

oooooooooooooooooooo मायोपयोगकाल।

oooooooooooooooooooooooo लोभोपयोगकाल।

अब इस संदृष्टिद्वारा प्रकृत अर्थका साधन करनेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धका अनुसरण करते हैं—

* अब द्वितीयादिका श्रेणिकी अपेक्षा साधन करते हैं।

§ ३०५ वहाँ सर्वप्रथम द्वितीयादिका श्रेणिकी अपेक्षा जीव अल्पबहुत्वके कथनका साधन करेंगे अर्थात् जीवोंके प्रवेशकालसे सम्बन्ध रखनेवाले अल्पबहुत्वको कहेंगे यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका प्रवेशकाल सबसे थोड़ा है।

§ ३०६. तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका प्रवेशकाल उपरिम

थोवो त्ति भणिदं होदि। कथं पुनः प्रवेशनशब्देन प्रवेशकालो गृहीतुं शक्यत इति नाशंकनीयम्, प्रविशन्त्यस्मिन् काले इति प्रवेशनशब्दस्य व्युत्पादनात्।

* कोहोवजुत्ताणं पवेसणगं विसेसाहियं।

§ ३०७. केत्तियमेत्तो विसेसो? आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो। एवं माया-लोभोवजुत्ताणं एत्तो जहाकमेण पवेसणकालाणं विसेसाहियत्तमणुगंतव्वं, सुत्तस्सेदस्स देसामासयभावेण पयट्टत्तादो। जदो एवं पवेसणकालाणं माणादिपरिवाडीए विसेसाहिय-भावो तिरिक्ख-मणुसेसु तदो तक्कालसंचिदमाणादिकसायोवजुत्ताणं पि तहाभावसिद्धि त्ति परिप्फुडमेवेदं विदियादियाए साहणमिदि सिद्धं, पवेसणकालाणुसारेण संचयसिद्धीए णाइयत्तादो। एदम्मि पुण पक्खे अवलंबिज्जमाणे 'एसो विसेसो एक्केण उवदेसेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपडिभागो' त्ति उवरिमाणंतरसुत्तं ण घडदे, पवेसण-कालम्मि पलिदोवमासंखेज्जदिभागपडिभागियस्स विसेसस्स सव्वप्पणा संभवाणुव-लंभादो। तदो णेदं पवेसणकालाणमप्पाबहुअपरूवयं सुत्तं किंतु कसायोवजोगद्धासु समयं पडि ढुक्कमाणजीवाणं पवेसणस्स थोवबहुत्तपरिक्खणट्ठमेदं सुत्तमोइण्णं इदि घेत्तव्वं।

§ ३०८. तं जहा—माणोवजुत्ताणं पवेसणयं थोवं, कोहोवजुत्ताणं पवेसणयं

---

पदोंको देखते हुए सबसे थोड़ा है।

शंका—प्रवेशन शब्दसे प्रवेशकालका ग्रहण कैसे शक्य है?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि जिस कालमें जीव प्रवेश करते हैं इस प्रकार प्रवेशन शब्द प्रवेशकालके अर्थमें व्युत्पादित किया गया है।

* उससे क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका प्रवेशकाल विशेष अधिक है।

§ ३०७. विशेषका प्रमाण कितना है? आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार आगे मायाकषाय और लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका प्रवेशकाल विशेष अधिक जान लेना चाहिए, क्योंकि यह सूत्र देशामर्षकभावसे प्रवृत्त हुआ है। यतः इस प्रकार मान-कषायसे लेकर परिपाटी क्रमसे तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें प्रवेशकालका विशेष अधिकपना है, इसलिये उस कालमें संचित हुए मानादि कषायोंमें उपयुक्त हुए जीवोंके भी विशेष अधिकपने-की सिद्धि स्पष्टरूपसे बन जाती है यह 'विदियादियाए साहणं' इस सूत्रसे स्पष्टरूपसे सिद्ध है, क्योंकि प्रवेशकालके अनुसार संचयकी सिद्धि न्यायप्राप्त है। परन्तु इस पक्षके अवलम्बन करनेपर 'यह विशेष एक उपदेशके अनुसार पल्योपमके असंख्यातवें भागके प्रतिभागस्वरूप है' इस प्रकार यह उपरिम अनन्तर सूत्र नहीं बनता है, क्योंकि प्रवेशकालमें पल्योपमके असंख्यातवें भागके प्रतिभागस्वरूप विशेष सब प्रकारसे उत्पत्ति नहीं बन सकती। इसलिए यह प्रवेशकालोंके अल्पबहुत्वका कथन करनेवाला सूत्र नहीं है, किन्तु कषायोंके उपयोगकालों-के भीतर प्रत्येक समयमें प्राप्त होनेवाले जीवोंके प्रवेशके अल्पबहुत्वको रक्षा करनेके लिये यह सूत्र आया है ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

§ ३०८. यथा—मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका प्रवेश सबसे थोड़ा है। उससे

विसेसाहियमिदि वुत्ते पढमसमये माणोवजुत्तो होदूण पविसमाणजीवरासीदो तम्मि चेव पढमसमये कोहोवजुत्तो होदूण पविसमाणजीवरासी विसेसाहिओ होदि त्ति अत्थो घेत्तव्वो। एवं विदियादिसमएसु वि दोण्हं कसायोवजुत्तरासीणं सण्णियासं कादूण णेदव्वं जाव चरिमसमयोवजुत्ता त्ति। णवरि माणोवजुत्ताणं चरिमसमयादो उवरि विसेसाहियमद्धाणं गंतूण कोहोवजुत्ताणं चरिमसमयो होदि त्ति वत्तव्वं। एवं माया-लोभाणं पि वत्तव्वं। जेणेवं समयं पडि ढुक्कमाणमाणोवजुत्तरासीदो पडिसमय-मुवक्कममाणकोहोवजुत्तरासी विसेसाहिओ अद्धाणविसेसो च जेण अत्थि तेण कारणेण तदत्थासंगलिदजीवरासिसंचओ वि तदणुसारिओ चेव होदि त्ति सुव्वत्तमेवेदं विदियादिए साहणं। एदं वक्खाणमेत्थ पहाणभावेणावलंबेयव्वं, अविरुद्धसरूवत्तादो।

*** एसो विसेसो एक्केण उवदेसेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभाग-पडिभागो।**

§ ३०९. जो एसो अणंतरपरूविदो विसेसो माणोवजुत्ताणं पवेसणादो कोहोव-जुत्ताणं पवेसणयं विसेसाहियमिदि सो किं हेट्ठिमरासिस्स संखेज्जदिभागमेत्तो असंखेज्जदि-भागमेत्तो वा अणंतभागमेत्तो वा? असंखेज्जदिभागमेत्तो वि होंतो किमावलियाए

---

क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका प्रवेशकाल विशेष अधिक है ऐसा कहनेपर प्रथम समयमें मानकषायमें उपयुक्त होकर प्रवेश करनेवाली जीवराशिसे उसी समयमें क्रोधकषायमें उपयुक्त होकर प्रवेश करनेवाली जीवराशि विशेष अधिक होती है यह अर्थ प्रकृतमें ग्रहण करना चाहिए। इसी प्रकार द्वितीयादि समयोंमें भी दोनों कषायोंमें उपयुक्त हुई जीवराशिका सन्निकर्ष करके अन्तिम समयमें उपयुक्त हुई जीवराशिके प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंके अन्तिम समयसे ऊपर विशेष अधिक काल जाकर क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका अन्तिम समय होता है ऐसा कहना चाहिए। इसी प्रकार मायाकषाय और लोभकषायकी अपेक्षा भी कथन करना चाहिए। यतः इस प्रकार प्रत्येक समयमें प्राप्त होनेवाली मानकषायमें उपयुक्त हुई जीवराशिसे प्रत्येक समयमें प्राप्त होनेवाली क्रोधकषायमें उपयुक्त हुई जीवराशि विशेष अधिक होती है और यतः अध्वान विशेष होता है इस कारणसे वहाँपर संकलित जीवराशिका संचय भी उसीके अनुसार ही होता है इस प्रकार यह द्वितीयादिका श्रेणिका साधन सुव्यक्त ही है। इस व्याख्यानका यहाँपर प्रधानरूपसे अवलम्बन करना चाहिए, क्योंकि यह व्याख्यान अविरुद्धस्वरूप है।

* यह विशेष एक उपदेशके अनुसार पल्योपमके असंख्यातवें भागके प्रतिभाग-स्वरूप है।

§ ३०९. मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंके प्रवेशसे क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका प्रवेश विशेष अधिक है इस बातको बतलानेवाला जो यह अनन्तर कहा गया विशेष है वह क्या अधस्तन राशिके संख्यातवें भागप्रमाण है या असंख्यातवे भागप्रमाण है या अनन्तवे भाग-प्रमाण है? असंख्यातवे भागप्रमाण होता हुआ भी क्या आवलिके असंख्यातवे भागके

असंखेज्जदिभागपडिभागिओ आहो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपडिभागिओ, किं वा अण्णपडिभागिओ त्ति संपहारणाए तव्विसयणिण्णयजणणट्ठमेदं सुत्तमोइण्णं।

§ ३१०. तं जहा—एत्थ वे उवएसा—पवाइज्जंतओ अपवाइज्जंतओ चेदि। तत्थ ताव एक्केण अपवाइज्जंतएण उवदेसेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपडिभागिओ एसो विसेसो घेत्तव्वो, समयं पडि माणोवजुत्ताणं पवेसणरासिं जहावुत्तेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपडिभागेण खंडेयूणेयखंडमेत्तेण कोहोवजुत्ताणं पवेसणस्स तत्तो विसेसाहियत्तब्भुवगमादो संचयस्स वि एसो चेव पडिभागो एदम्मि उवएसे वत्तव्वो, संचयस्स सव्वत्थ पवेसाणुसारित्तदंसणादो अद्धा विसेसस्स एदम्मि पक्खे अविवक्खियत्तादो। अथवा संचयस्स एसो पडिभागो ण जोजेयव्वो, अद्धाविसेसस्सेव तत्थ पहाणत्तोवलंभादो।

*** पवाइज्जंतेण उवदेसेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो।**

§ ३११. विसेसो त्ति पुव्वसुत्तादो अणुवट्टदे, पडिभागो त्ति च, तेणेवमहिसंबंधो कायव्वो—माणोवजुत्ताणं पवेसणरासिमावलियाए असंखेज्जदिभागपडिभागेण भागं घेत्तूण तत्थ भागलद्धमेत्तेण कोहोवजुत्ताणं पवेसणरासी तत्तो विसेसाहिओ त्ति एसो चेव उवएसो एत्थ पहाणभावेणावलंबेयव्वो, पवाइज्जमाणत्तादो।

---

प्रतिभागस्वरूप है या पल्योपमके असंख्यातवें भागके प्रतिभागस्वरूप है या क्या अन्य प्रतिभागस्वरूप है ऐसी आशंका होनेपर उस विषयका निर्णय करनेके लिए यह सूत्र आया है।

§ ३१० यथा—इस विषयमें दो उपदेश पाये जाते हैं—प्रवाह्यमान उपदेश और अप्रवाह्यमान उपदेश। उनमेंसे सर्वप्रथम एक अप्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार पल्योपमके असंख्यातवें भागके प्रतिभागस्वरूप इस विशेषको ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक समयमें मानकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंकी प्रवेशराशिको पूर्वोक्त पल्योपमके असंख्यातवें भागरूप प्रतिभागसे भाजितकर जो एक भाग प्राप्त हो उतना क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंका प्रवेश मानकषायमें प्रवेश करनेवाली जीवराशिसे विशेष अधिक स्वीकार किया गया है तथा संचयका भी यही प्रतिभाग इस उपदेशके अनुसार कहना चाहिए, क्योंकि सर्वत्र संचय प्रवेशके अनुसार देखा जाता है तथा इस पक्षमें कालविशेषकी विवक्षा नहीं की गई है। अथवा संचयका यह प्रतिभाग नहीं लेना चाहिए, क्योंकि कालविशेषकी ही वहाँ प्रधानता पाई जाती है।

*** प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार विशेष आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है।**

§ ३११ विशेष इस पदकी पूर्व सूत्रसे अनुवृत्ति होती है और प्रतिभाग पदकी भी, इसलिए ऐसा सम्बन्ध करना चाहिए कि मानकषायमें प्रवेश करनेवाली राशिको आवलिके असंख्यातवें भागरूप प्रतिभागसे भाजितकर वहाँ जो भाग लब्ध आवे उतनी क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीवोंकी प्रवेशराशि उससे विशेष अधिक होती है इस प्रकार यही उपदेश यहाँपर प्रधानभावसे लेना चाहिए, क्योंकि यह प्रवाह्यमान उपदेश है।

§ ३१२. संपहि एदेण पवेसणप्पाबहुएण साहिदसंचयप्पाबहुअमोघेण तिरिक्ख-मणुसगईसु च एवमणुगंतव्वं—सव्वत्थोवा माणोवजुत्ता। कोहोवजुत्ता विसेसाहिया। मायोवजुत्ता विसेसाहिया। लोभोवजुत्ता विसेसाहिया। सव्वत्थ विसेसपमाणमणंतर-परूविदत्तादो सुगमं। एवं विदियादिया सेढी समत्ता।

§ ३१३. संपहि एदेण देसामसयसुत्तेण सूचिदपढम-चरिमादियाणं पि साहणं कादूण तदो संचयप्पाबहुअं कायव्वं। तं जहा—देवगदीए कोहोवजुत्ता थोवा। माणोवजुत्ता संखेज्जगुणा। मायोवजुत्ता संखेज्जगुणा। लोभोवजुत्ता संखेज्जगुणा, तदद्धाणं तप्पवेसणस्स च तहाभावेणावट्ठाणादो। एसा पढमादिया सेढी। एवं चरमादिया वि णेदव्वा। णवरि णिरयगइसंबंधेण देवगइविवज्जासेण तदुच्चारणं कायव्वं। जइ वि एदं जीवविसयमप्पाबहुअं पुव्वमट्ठसु अणिओगद्दारेसु परूविज्जमाणेसु विहासिदं चेव तो वि पवेसणसंबंधेण विसेसपमाणावहारणमुहेण च विसेसयूणेत्थ परूवणादो ण पुणरुत्तदोसावयारो। एवमप्पाबहुए समत्ते सत्तमीए सुत्तगाहाए पच्छद्धस्स अत्थविहासा समत्ता। संपहि एवमेदेसु सत्तसु गाहासुत्तेसु विहासिय समत्तेसु एत्थेवुवजोगाणिओगद्दारपरिसमत्ती जायदि त्ति जाणावणट्ठमुत्तरमुवसंहारवक्कं—

एवमुवजोगो त्ति समत्तमणिओगद्दारं।

§ ३१२. अब इस प्रवेशसम्बन्धी अल्पबहुत्वसे साधा गया संचयसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघसे तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिमें इस प्रकार जानना चाहिए—मानकषायमें उपयुक्त हुए जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीव विशेष अधिक है। उनसे माया-कषायमें उपयुक्त हुए जीव विशेष अधिक हैं तथा उनसे लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीव विशेष अधिक हैं। सर्वत्र विशेषका प्रमाण अनन्तर कहा गया होनेसे सुगम है। इस प्रकार द्वितीया-दिका श्रेणि समाप्त हुई।

§ ३१३ अब इस देशामर्षक सूत्रसे सूचित हुई प्रथमादिका और चरमादिका श्रेणियों-का भी साधनकर उसके बाद संचयसम्बन्धी अल्पबहुत्व कर लेना चाहिए। यथा—देवगतिमें क्रोधकषायमें उपयुक्त हुए जीव सबसे थोड़े है, उनसे मानकषायमें उपयुक्त हुए जीव संख्यात-गुणे है, उनसे मायाकषायमें उपयुक्त हुए जीव संख्यातगुणे हैं तथा उनसे लोभकषायमें उपयुक्त हुए जीव संख्यातगुणे हैं, क्योंकि उनका काल और उनका प्रत्येक समयमें प्रवेश उसी प्रकार देखा जाता है। यह प्रथमादिका श्रेणि है। इसी प्रकार चरमादिका श्रेणि भी जाननी चाहिए। इतनी विशेषता है नरकगतिके सम्बन्धसे उसका कथन देवगतिके विपरीतरूपसे करना चाहिए। यद्यपि यह जीवविषयक अल्पबहुत्व पहले आठ अनुयोगद्वारोंके कथनके समय कह आये हैं तो भी प्रवेशके सम्बन्धसे विशेष प्रमाणके अवधारणद्वारा विशेषरूपसे यहाँपर कथन करनेसे पुनरुक्त दोषका अवतार नहीं होता है। इस प्रकार अल्पबहुत्वके समाप्त होनेपर सातवीं सूत्रगाथाके उत्तरार्धके अर्थका विशेष व्याख्यान समाप्त हुआ। अब इस प्रकार इन सात गाथासूत्रोंका व्याख्यान समाप्त होनेपर यहींपर उपयोग अनुयोगद्वारकी समाप्ति हो जाती है इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेका उपसंहार वाक्य है—

इस प्रकार उपयोगसंज्ञक सातवाँ अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

सिरि-जइवसहाइरियविरइय-चुण्णिसुत्तसमण्णिदं

सिरि-भगवंतगुणहरभडारश्रोवइट्ठं

# कसायपाहुडं

तस्स

## सिरि-वीरसेणाइरियविरइया टीका

# जयधवला

तत्थ

## चउट्ठाणमिदि अट्ठमो अत्थाहियारो

णमो अरहंताणं०

णिट्ठवियचउट्ठाणं पणट्ठकम्मट्ठदुट्ठरिवुचेट्ठं ।
वोच्छामि चउट्ठाणं जिणपरमेट्ठिं पणमियूण ॥ १ ॥

---

जिसने अनुभागसम्बन्धी चार स्थानोंको निष्ठापितकर लिया है और जिसने आठ कर्मरूपी दुष्ट शत्रुकी चेष्टाको नष्ट कर दिया है ऐसे श्री जिन परमेष्ठीको प्रणामकर चतुःस्थान अनुयोगद्वारका कथन करता हूँ ॥ १ ॥

§ १. उवजोगपरूवणाणंतरं किमट्ठमेदं चउट्ठाणसण्णिदमणिओगद्दारमोइण्णमिदि चे ? वुच्चदे—कोहादिकसायाणमुवजोगो एयवियप्पो ण होइ, किंतु एग-वि-ति-चउट्ठाणभेयभिण्णकसायाणुभागोदयजणिदत्तादो पादेक्कं चउप्पयारो होदि त्ति एवंविहस्स अत्थविसेसस्स णिदरिसणोवणयमुहेण पदुप्पायणट्ठमेदमणियोगद्दारमोइण्णं, तहाभूदत्थविसेसपदुप्पायणम्मि गाहासुत्ताणमुवरिमाणं पडिबद्धत्तदंसणादो। अदो चेव चउट्ठाणसण्णा एदस्स सुसंबद्धा। लदासमाणादिभेयभिण्णाणं चदुण्हं ट्ठाणाणं समाहारो चउट्ठाणं तप्परूवयमणियोगद्दारं पि चउट्ठाणमिदि, गोण्णपदणामावलंवणादो। एवमेदेण संबंधेणागदस्सेदस्स अणियोगद्दारस्स विहासणट्ठमेत्थ गाहासुत्तावयारो कीरदे—

* चउट्ठाणे त्ति अणियोगद्दारे पुव्वं गमणिज्जं सुत्तं।

२. चउट्ठाणे त्ति जमणिओगद्दारं कसायपाहुडस्स पण्हारसण्हमत्थाहियाराणं मज्झे अट्ठमं तस्सेदाणिमत्थविहासणमहिकीरदे। तत्थ य पुव्वं पढममेव ताव गमणिज्जमणुगंतव्वं, सुत्तं गुणहराइरियमुहकमलविणिग्गयमणंतत्थगब्भं गाहासुत्तमिदि वुत्तं होइ। जइ वि एत्थ सोलस सुत्तगाहाओ उवरि भणिस्समाणाओ तो वि सुत्तत्थजाइदुवारेण तासिमेयत्तमत्थि त्ति एयवयणणिद्देसो ण विरुज्झदे।

---

§ १. शंका—उपयोग अनुयोगद्वारके कथन करनेके बाद चतुःस्थान संज्ञावाला यह अनुयोगद्वार किसलिये आया है ?

समाधान—कहते हैं, क्रोधादि कषायोंका उपयोग एक प्रकारका नहीं होता, किन्तु कषायोंका अनुभाग एक, दो, तीन और चार प्रकारके भेदोंमें विभक्त है, अतः उसके उदयसे उत्पन्न होनेके कारण कषायोंका उपयोग प्रत्येक चार प्रकारका है इसप्रकार इसप्रकारके अर्थविशेषका दृष्टान्तोंद्वारा कथन करनेके लिये यह अनुयोगद्वार आया है, क्योंकि आगेके गाथासूत्रोंका उस प्रकारके अर्थविशेषके कथनके रूपमें सम्बन्ध देखा जाता है और इसीलिये इस अनुयोगद्वारकी चतुःस्थान संज्ञा सुसम्बद्ध है।

लतासमान आदि भेदोंमें विभक्त चार स्थानोंका समाहार चतुःस्थान है और उसका कथन करनेवाला अनुयोगद्वार भी चतुःस्थान है, क्योंकि इस संज्ञाके करनेमें गौण्यपदका अवलम्बन लिया है। इस प्रकार इस सम्बन्धसे प्राप्त हुए इस अनुयोगद्वारका कथन करनेके लिये यहाँ गाथासूत्रोंका अवतार करते हैं—

* चतुःस्थान नामक अनुयोगद्वारमें सर्वप्रथम गाथासूत्र जानना चाहिए।

§ २. कषायप्राभृतके पन्द्रह अर्थाधिकारोंमेंसे चतुःस्थान नामका जो आठवाँ अनुयोगद्वार है, उसका इस समय अर्थ सहित व्याख्यान करते हैं। उसमें 'पुव्वं' अर्थात् प्रथम ही गाथासूत्र 'गमणिज्जं' अर्थात् जानना चाहिए। यहाँपर सूत्रपदसे तात्पर्य गुणधर आचार्यके मुख-कमलसे निकला हुआ अनन्त अर्थ गर्भित गाथासूत्र है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यद्यपि यहाँपर आगे १६ सोलह सूत्रगाथाएँ कही जायगीं तो भी सूत्ररूप अर्थकी एक जाति है इस अपेक्षा उनमें एकपना है, इसलिये एकवचन निर्देश विरोधको प्राप्त नहीं होता।

* तं जहा।

§ ३. सुगममेदं पुच्छावक्कं। एवं पुच्छाविसईकयाणं गाहासुत्ताणं जहाकममेसो सरूवणिद्देसो—

(१७) कोहो चउव्विहो वुत्तो माणो वि चउव्विहो भवे।
माया चउव्विहा वुत्ता लोहो वि य चउव्विहो ॥१-७०॥

§ ४. एसा ताव पढमा सुत्तगाहा। एदीए कोह-माण-माया-लोहाणं पादेक्कं चउव्विहत्तमेत्तं पइण्णादं। एत्थ कोहो चउव्विहो त्ति वुत्ते किमणंताणुबंधि-पच्चक्खाणापच्चक्खाण-संजलणभेएण कोहस्स चउव्विहत्तमहिप्पेदं, आहो पयारंतरेणे त्ति? ण ताव अणंताणुबंधिकोहादिभेएण चउविहत्तमेत्थ विवक्खियं, तहाविहस्स भेद-णिद्देसस्स पयडिविहत्तिआदिसु पुव्वमेव सुणिण्णीदत्तादो उवरिमपरूवणाए तप्पडिबद्धत्त-दंसणादो च। किंतु एग-वि-ति-चउट्ठाणभेयभिण्ण-कसायाणुभागोदयजणिदणग-पुढवि-वालुगोदयराियसरिसपरिणामभेदेण कोहस्स चउप्पयारत्तमेत्थ विवक्खियं, तहाविहभेद-परूवणाए चेव उवरिमाणं गाहासुत्ताणं पडिबद्धत्तदंसणादो। एवं माण-माया-लोभाणं पि अपयदभेदचउक्कणिवारणमुहेण पयदचउब्भेदपरूवणं कायव्व।

---

* वे जैसे।

§ ३. यह पृच्छावाक्य सुगम है। इसप्रकार पृच्छाके विषयको प्राप्त हुई गाथासूत्रोंका यह क्रमसे स्वरूपनिर्देश है—

*** क्रोध चार प्रकारका कहा गया है, मान भी चार प्रकारका है, माया चार प्रकारकी कही गई है और लोभ भी चार प्रकारका है ॥१-७०॥**

§ ४ सर्वप्रथम यह पहली सूत्रगाथा है। इस द्वारा क्रोध, मान, माया और लोभ इनमेंसे प्रत्येककी चार प्रकारके होनेकी प्रतिज्ञा की गई है।

शंका—यहाँपर क्रोध चार प्रकारका है ऐसा कहनेपर क्या अनन्तानुबन्धी, प्रत्याख्यान, अप्रत्याख्यान और संज्वलनके भेदसे चार प्रकारका क्रोध अभिप्रेत है या प्रकारान्तरसे वह चार प्रकारका अभिप्रेत है?

समाधान—यहाँ अनन्तानुबन्धी क्रोध आदिके भेदसे वह चार प्रकारका विवक्षित नहीं है, क्योंकि उस प्रकारके भेदोंका निर्देश प्रकृतिविभक्ति आदिमें पहले ही अच्छी तरहसे निर्णीत कर आये हैं तथा आगेकी प्ररूपणामें उनका सम्बन्ध देखा जाता है। किन्तु कषायोंका अनुभाग एक, दो, तीन और चार स्थानोंके भेदसे विभक्त है, अतः उसके उदयसे नगराजि, पृथिवीराजि, वालुकाराजि, उदकराजिके समान परिणामोंके भेदसे क्रोधके चार प्रकार यहाँ विवक्षित हैं, क्योंकि उस प्रकारके भेदोंके कथनमें ही उपरिम गाथासूत्रोंका सम्बन्ध देखा जाता है। इसी प्रकार मान, माया और लोभके भी अप्रकृत भेदचतुष्कके निवारणद्वारा प्रकृत भेदचतुष्कका कथन करना चाहिए।

§ ५. एत्थ कोहो दुविहो—सामण्णकोहो विसेसकोहो चेदि। तत्थाणंताणुबंधि-आदिविसेसविवक्खाए विणा जं सव्वविसेससाहारणं कोहसामण्णं तं सामण्णकोहो णाम, तव्विवरीदसरूवो विसेसकोहो त्ति[1] भण्णदे, अणंताणुबंधिआदिविसेसविवक्खा-णिबंधत्तादो। एत्थ पुण सामण्णकोहावेक्खाए चउव्विहत्तमेदं परूविदं, अणंताणुबंधि-आदिविसेसप्पणाए पादेक्कं तेसिं चउव्विहत्ताणुवलंभादो। किं कारणं? अणंताणुबंधि-पच्चक्खाणापच्चक्खाणकोहाणमेगट्ठाणपरिहारेण बि-ति-चउट्ठाणाणं चेव संभवदंसणादो। ततः संगृहीताशेषविशेषलक्षणं क्रोधसामान्यमाश्रित्य चातुर्विध्यमेतद्व्यवस्थितमिति सूक्तं। एवं मानादीनामपि वाच्यम्।

(१८) णग-पुढवि-वालुगोदयराईसरिसो चउव्विहो कोहो।
सेलघण-अट्ठि-दारुअ-लदासमाणो हवदि माणो ॥२-७१॥

§ ६. एसा विदियगाहा। एदीए कोह-माणकसायाणं णिदरिसणोवणयणमुहेण[2] पादेक्कं चउण्हं भेदाणं णामणिद्देसो कओ। तं जहा—'णग-पुढवि०' एवं भणिदे राइसद्दस्स सरिससद्दस्स च पादेक्कमहिसंबंधं कादूण णगराइसरिसो पुढविराइसरिसो वालुअराइसरिसो उदयराइसरिसो चेदि कोहो चउव्विहो होदि त्ति सुत्तत्थसमत्थणा

§ ५ यहाँपर क्रोध दो प्रकारका है—सामान्य क्रोध और विशेष क्रोध। उनमेंसे अनन्तानुबन्धी आदि विशेषकी विवक्षा विना जो सब विशेषोंमें साधारण क्रोध सामान्य है वह क्रोध सामान्य कहलाता है और उससे विपरीत स्वरूपवाला विशेष क्रोध कहा जाता है, क्योंकि यह संज्ञा अनन्तानुबन्धी आदि विशेषकी विवक्षानिमित्तक है, परन्तु यहाँपर सामान्य क्रोधकी अपेक्षासे यह चार प्रकारका कहा है, क्योंकि अनन्तानुबन्धी आदि विशेषकी मुख्यतासे प्रत्येक उनकी चार प्रकारसे उपलब्धि नहीं होती, क्योंकि अनन्तानुबन्धी, प्रत्याख्यान और अप्रत्याख्यान क्रोधोंके एक स्थानका परिहारकर द्विस्थान, त्रिस्थान और चतुःस्थानरूप अनुभागकी ही उत्पत्ति देखी जाती है। इसलिये जिसने अपने समस्त विशेषोंका संग्रह किया है ऐसे लक्षणवाले क्रोधसामान्यका आश्रयकर क्रोधकी चतुर्विधता व्यवस्थित है यह ठीक ही कहा है। इसी प्रकार मानादिकके विषयमें भी कथन करना चाहिए।

* क्रोध चार प्रकारका है—नगराजिसदृश, पृथिवीराजिसदृश, वालुकाराजि-सदृश और उदकराजिसदृश। मान भी चार प्रकारका है—शैलघनसमान, अस्थिसमान, दारुसमान और लतासमान ॥२-७१॥

§ ६. यह दूसरी गाथा है। इसमें क्रोधकषाय और मानकषायके उदाहरणद्वारा प्रत्येकके चार भेदोंका नामनिर्देश किया गया है। यथा—'णग-पुढवि०' ऐसा कहनेपर 'राजि' शब्दका और 'सदृश' शब्दका प्रत्येकके साथ सम्बन्ध करके नगराजिसदृश, पृथिवीराजिसदृश, वालुकाराजिसदृश और उदकराजिसदृश क्रोध चार प्रकारका है इस प्रकार सूत्रके अर्थका समर्थन

१. ता०प्रतौ सेसो कोहो [ दि ] त्ति इति पाठ। २. ता०प्रतौ णिदरिसणोवमुहेण इति पाठः।

कायव्वा। तत्थ णगराइसरिसो त्ति वुत्ते पव्वदसिलाभेदसरिसो कोहपरिणामो घेत्तव्वो। एदं सव्वकालमविणाससाधम्मं पेक्खियूण णिदरिसणं भणिदं। जहा पव्वदसिलाभेदो केण वि कारणंतरेण समुब्भूदसरूवो पुणो ण कदाइं पयोगंतरेण संधाणमागच्छइ, तदवत्थो चेव चिट्ठदि। एवं जो कोहपरिणामो कस्स वि जीवस्स कम्हि वि पुरिसविसेसे समुप्पण्णो ण केण वि पयोगंतरेणुवसमं गच्छइ, णिप्पडिकारो होदूण तम्मि भवे तहा चेवावचिट्ठदे, जम्मंतरं पि तज्जणिदसंसकारो अणुवंधदि, सो तारिसो तिव्वयरो कोहपरिणामो णगराइसरिसो त्ति भण्णदे।

§ ७. एवं पुढविराइसरिसो वि वत्तव्वो। णवरि पुव्विल्लादो एसो मंदाणुभागो, चिरकालमवट्ठिदस्स वि एदस्स पुणो पयोगंतरेण संधाणुवलंभादो[1]। तं जहा— गिम्हकाले पुढविभेदो पुढवीए रसक्खयेण फुट्टंतीए पयट्टो। पुणो पाउसकाले जलप्पवाहेणावूरिज्जमाणो तक्खणमेव संधाणमागच्छइ। एवं जो कोहपरिणामो चिरकालमवट्ठिदो वि संतो पुणो वि कारणंतरेण गुरूवदेसादिणा उवसमभावं पडिवज्जदि सो तारिसो तिव्वपरिणामभेदो पुढविराइसरिसो त्ति विण्णायदे। एत्थ उभयत्थ वि राइसद्दो अवयवविसरणप्पयभेदपज्जायवाचओ घेत्तव्वो।

§ ८. तहा वालुगराइसरिसो त्ति वुत्ते णदीपुलिणादिसु वालुगरासिमज्झ-

करना चाहिये। उनमेंसे नागराजिसदृश ऐसा कहनेपर पर्वतशिलाभेदसदृश क्रोध परिणाम लेना चाहिए। सर्व कालोंमें अविनाशरूप साधर्म्यको देखकर यह उदाहरण कहा है। जैसे पर्वतशिलाभेद किसी भी दूसरे कारणसे उत्पन्न होकर पुनः कभी भी दूसरे उपायद्वारा सन्धानको प्राप्त नहीं होता, तदवस्थ ही बना रहता है। इसी प्रकार जो क्रोध परिणाम किसी भी जीवके किसी भी पुरुषविशेषमें उत्पन्न होकर किसी भी दूसरे उपायसे उपशमको नहीं प्राप्त होता है, प्रतीकार रहित होकर उस भवमें उसी प्रकार बना रहता है, जन्मान्तरमें भी उससे उत्पन्न हुआ संस्कार बना रहता है, वह उस प्रकारका तीव्रतर क्रोधपरिणाम नगराजिसदृश कहा जाता है।

§ ७. इसीप्रकार पृथिवीराजिसदृश क्रोधका भी व्याख्यान करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पूर्वके क्रोधसे यह मन्द अनुभागवाला है, क्योंकि चिरकाल तक अवस्थित होने पर भी इसका पुनः दूसरे उपायसे सन्धान हो जाता है। यथा—ग्रीष्मकालमें पृथिवीका भेद हुआ अर्थात् पृथिवीके रसका क्षय होनेसे वह भेदरूपसे परिणत हो गई। पुनः वर्षाकालमें जलके प्रवाहसे वह दरार भरकर उसी समय संधानको प्राप्त हो गई। इसीप्रकार जो क्रोधपरिणाम चिरकाल तक अवस्थित रहकर भी पुनः दूसरे कारणसे तथा गुरुके उपदेश आदिसे उपशमभावको प्राप्त होता है वह उस प्रकारका तीव्र परिणामभेद पृथिवीराजिसदृश जाना जाता है। यहाँ दोनों स्थलोंपर भी 'राजि' शब्द अवयवके विच्छिन्न होनेरूप भेद पर्यायका वाचक लेना चाहिए।

§ ८ उसीप्रकार 'वालुकाराजिसदृश' ऐसा कहनेपर नदीके पुलिन आदिमें वालुका-

1 ता०प्रतौ स [ व ] धाणुवलंभादो इति पाठः।

समुट्ठिदरेहासमाणो कोहो त्ति घेत्तव्वो। एदमप्पयरकालावट्ठाणं पेक्खियूण भणिदं। तं जहा—णदीपुलिणादिसु वालुअरासिमज्झे पुरिसप्पयोगेणण्णदरेण वा केणचि कारणजादेण समुट्ठिदा रेहा जहा पवणाभिघादादिणा कारणंतरेण लहुमेव पुणो[1] समभावं गच्छदि एवं कोहपरिणामो वि मंदुत्थाणो गुरूवएसपवणपेल्लिदो संतो सव्वलहुमेवोवसमं गच्छमाणो वालुगराइसरिसो त्ति भण्णदे।

§ ९. एवमुदयराइसरिसो वि कोहो अणुगंतव्वो। णवरि एदम्हादो वि मंदयराणुभागो थोवयरकालावट्ठाणो च सो गहेयव्वो, पाणीयमज्झसमुट्ठिदाए रेहाए पयोगंतरेण विणा तक्खणमेव विणासदंसणादो। एत्थ उहयत्थ वि राइसद्दो रेहापज्जायवाचओ घेत्तव्वो। एवं कोहस्स चउण्हं ट्ठाणाणमवट्ठाणकालस्स थोवबहुत्तमस्सियूण णिदरिसणोवणयणं कदं। एवं माणस्स वि चउण्हं ठाणाणं गाहापच्छद्धाणुसारेणाणुगमो कायव्वो। णवरि 'सेलघण' एवं भणिदे सिलाथंभसमाणो माणो त्ति घेत्तव्वो, समाणसद्दस्स पादेक्कमभिसंबंधावलंबणादो। अतिस्तब्धभावापेक्षया चैवत् प्रतिपादितम्। एवमस्थि-दारु-लतासमानानामप्यर्थो वाच्यः। सर्वत्र च स्तब्धतालक्षणस्य भावस्य प्रकर्षाप्रकर्षभावापेक्षया निदर्शनोपनयः कृत इति प्रतिपत्तव्यम्।

---

राशिके मध्य उत्पन्न हुई रेखाके समान क्रोध ऐसा ग्रहण करना चाहिए। यह अल्पतर काल तक रहता है इसे देखकर कहा है। यथा—नदीके पुलिन आदिमें वालुकाराशिके मध्य पुरुषके प्रयोगसे या अन्य किसी कारणसे उत्पन्न हुई रेखा जैसे हवाके अभिघात आदि दूसरे कारणद्वारा शीघ्र ही पुनः समान हो जाती है अर्थात् रेखा मिट जाती है। इसीप्रकार क्रोधपरिणाम भी मन्दरूपसे उत्पन्न होकर गुरुके उपदेशरूपी पवनसे प्रेरित होता हुआ अतिशीघ्र उपशमको प्राप्त हो जाता है। वह क्रोध वालुकाराजिके समान कहा जाता है।

§ ९. इसी प्रकार उदकराजिके सदृश भी क्रोध जान लेना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इससे भी मन्दतर अनुभागवाला और स्तोकतर काल तक रहनेवाला वह जानना चाहिए, क्योंकि पानीके भीतर उत्पन्न हुई रेखाका बिना दूसरे उपायके उसी समय ही विनाश देखा जाता है। यहाँ उभयत्र 'राजि' शब्द रेखाका पर्यायवाची लेना चाहिए। इस प्रकार क्रोधके चारों स्थानोंके अवस्थानकालके अल्पबहुत्वका आश्रयकर उदाहरणका उपनयन किया। इसी प्रकार मानके भी चारों स्थानोंका गाथाके उत्तरार्धके अनुसार अनुगम करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि 'सेलघण' ऐसा कहनेपर शिला स्तम्भके समान मान लेना चाहिए, क्योंकि समान शब्दका प्रत्येकके साथ सम्बन्ध करनेका अवलम्बन लिया है। अतिस्तब्धभावकी अपेक्षा यह उदाहरण कहा गया है। इसी प्रकार अस्थि, दारु और लताके समान मानकषायका भी अर्थ कहना चाहिए। सर्वत्र स्तब्धतालक्षणभावके प्रकर्ष-अप्रकर्षपनेकी अपेक्षा उदाहरणोंका उपनय किया है ऐसा जानना चाहिए।

---

१. ता०प्रतौ पुणो व इति पाठः।

(१९) वंसीजण्हुगसरिसी मेंढविसाणसरिसी य गोमुत्ती।
अवलेहणीसमाणा माया वि चउव्विहा भणिदा ॥३-७२॥

§ १०. एसा तदियगाहा मायासंबंधीणं चउण्हं ठाणाणं णिदरिसणोवणयदुवारेण पदुप्पायणट्ठमागया। तं जहा—'वंसीजण्हुगसरिसि' त्ति वुत्ते वेलुवमूल-जरढवंकंकुरगंठि-सरिसी पढमा माया त्ति घेत्तव्व। एदं च वंकभावस्स णिप्पडियारत्तमस्सियूण परूविदं। यथैव हि वेणुमूलग्रन्थिर्मृत्वा शीर्त्वापि नर्जुकर्तुं पार्यते एवं मायापरिणामोऽप्यतितीव्र-वक्रभावपरिणतो निरुपक्रम इति। तहा 'मेंढविसाणसरिसि' त्ति विदिया मायावत्था। एसा पुव्विल्लादो मंदाणुभागा, मेषविषाणस्यातिवलितवक्रतराकारेण परिणतस्याप्यग्नि-तापादिभिरुपायान्तरैः प्रगुणीकर्तुं शक्यत्वात्। तथा गोमूत्रसदृशी अवलेहनीसमाना च माया यथाक्रमं वक्रभावस्य हानितारतम्ययोगाद्वक्तव्येति। तत्रावलेहनी नाम दन्त-धावनकाष्ठयष्टिर्जिह्वामलशोधनी वा गृहीतव्या।

(२०) किमिरागरत्तसमगो अक्खमलसमो य पंसुलेवसमो।
हालिद्दवत्थसमगो लोभो वि चउव्विहो भणिदो ॥४-७३॥

§ ११. एसा चउत्थगाहा लोभस्स चउण्हं ठाणाणं[1] णिदरिसणपरूवणट्ठमागया।

---

* माया भी चार प्रकारकी कही गई है—बाँसकी जड़के सदृश, मेढ़ेके सींगके सदृश, गोमूत्रके सदृश और अवलेखनीके सदृश ॥३-७२॥

§ १०. यह तीसरी गाथा मायासम्बन्धी चार स्थानोंके उदाहरणके निर्देश द्वारा कथन करनेके लिये आई है। यथा—'वंसीजण्हुगसरिसी' ऐसा कहनेपर बाँसकी जड़की पुरानी कठोर टेढी-मेढी अंकुरयुक्त गाँठके सदृश पहली माया होती है ऐसा ग्रहण करना चाहिए। इसके टेढापनके निष्प्रतीकारपनेका आश्रयकर उक्त उदाहरण दिया है। जैसे बाँसके जड़की गाँठ नष्ट होकर तथा शीर्ण होकर भी सरल नहीं की जा सकती है इसी प्रकार अति तीव्र वक्रभावसे परिणत मायापरिणाम भी निरुपक्रम होता है। उसी प्रकार 'मेंढविसाणसरिसी' अर्थात् मेढ़ेके सींगके सदृश मायाकी दूसरी अवस्था है। यह पूर्वकी मायासे मन्द अनुभागवाली होती है, क्योंकि अतिवलित वक्रतररूपसे परिणत हुए भी मेढ़ेके सींगको अग्निके ताप आदि दूसरे उपायोंद्वारा सरल करना शक्य है। तथा गोमूत्रसदृश और अवलेखनीसदृश मायाका क्रमसे वक्रभावके हानिके तारतम्यके सम्बन्धसे कथन करना चाहिए। यहाँपर अवलेखनी पदसे दाँतोंको साफ करनेवाला लकडीका टुकड़ा विशेष अर्थात् दातुन या जीभके मलका शोधन करनेवाली जीभी लेना चाहिए।

* लोभ भी चार प्रकारका कहा गया है—कृमिरागके सदृश, अक्षमलके सदृश, पांशुलेपके सदृश और हारिद्रवस्त्रके सदृश ॥४-७३॥

§ ११. यह चौथी गाथा लोभके चार स्थानोंके उदाहरणोंके कथन करनेके लिये आई

---

1 ता०प्रतौ चउट्ठाणाणं इति पाठः।

तं यथा—कृमिरागो नाम कीटविशेषः। स किल यद्वर्णमाहारविशेषमभ्यवहरति तद्वर्णमेव सूक्ष्मतिरश्चीनतन्तुजालमात्मनो मलोत्सर्गद्वारेणोत्सृजति, तत्स्वाभाव्यात्। तेन च सूत्रेण वस्त्रान्तराण्यनेकवर्णानि महार्घाणि च तन्तुवायैः क्रियन्ते। तेषां स वर्णो यद्यपि जलकलशसहस्रेणाप्यनवच्छिन्नधारेण प्रक्षाल्यते, नानाविधक्षारोदकैर्धाव्यते तथापि न शक्यते विश्लेषयितुं मनागपि, अतिचिक्कणस्वरूपत्वात्। किं बहुना, अग्निना दह्यमानस्यापि तद्वस्त्रखण्डस्य वस्त्रस्य भस्मभावमापन्नस्य स वर्णोऽविच्छेदेनैवावतिष्ठते। एवं लोभपरिणामोऽपि यस्तीव्रतमो जीवस्य हृदयवर्ती न शक्यते प्रच्यावयितुं स उच्यते कृमिरागकम्बलसदृश इति।

§ १२. तथान्यो लोभपर्यायोऽत्यन्तनिकृष्टदीर्घस्तीव्रावस्थायी पूर्वतोऽनन्तगुणहीनो वक्तव्यः...... रथचक्रस्य शकटतुम्बस्य वा धारणं काष्ठमक्षमित्युच्यते। तस्य मलमक्षमलं। अभ्यंजनस्नेहार्द्रितपांशुमलं इति यावत्। तद्यथैवातिचिक्कणत्वान्न शक्यते सुखेन विश्लेषयितुं तथैवायमपि लोभपरिणामो निधत्तरूपेण जीवहृदयमवगाढो न विश्लेषयितुं शक्य इति।

§ १३. तृतीयो लोभप्रकारः पांसुलेपसम इत्यभिधीयते। यथैव पांसुलेपः पादलग्नः सुखेनापनीयते सलिलप्रक्षालनादिभिर्न चिरमवतिष्ठते तद्वदयमपि लोभभेदो

---

है। यथा—कृमिराग कीटविशेषको कहते हैं। वह नियमसे जिस वर्णके आहारको ग्रहण करता है वह उसी वर्णके अति चिक्कण डोरेको अपने मलके त्यागनेके द्वारा निकालता है, क्योंकि उसका वैसा ही स्वभाव है। और उस सूतद्वारा जुलाहे अति कीमती अनेक वर्णके नाना वस्त्र बनाते हैं। उनके उस वर्णके रंगको यद्यपि हजार कलशोंकी अटूट धारा द्वारा प्रक्षालित किया जाता है, नाना प्रकारके क्षारयुक्त जलों द्वारा धोया जाता है तो भी उसे थोड़ा भी दूर करना शक्य नहीं है, क्योंकि वह अति चिक्कणस्वरूप होता है। बहुत कहनेसे क्या, अग्निसे जलाये जानेपर भी भस्मपनेको प्राप्त हुए उस कृमिरागसे रंगे हुए वस्त्रके उस वर्णका रंग कभी भी छूटने योग्य न होनेसे वैसा ही बना रहता है। इसी प्रकार जीवके हृदयमें स्थित अतितीव्र जो लोभपरिणाम भी दूर नहीं किया जा सकता वह कृमिरागके रंगके सदृश कहा जाता है।

§ १२. तथा अन्य लोभ निकृष्ट दीर्घकाल और तीव्र अवस्थानरूप होता है, वह अक्षमलके सदृश कहा जाता है।......रथके पहिये या गाड़ीके तुम्बको धारण करनेवाली लकड़ी अक्ष कहलाती है और उसका मल अक्षमल है। अभ्यंजनके स्नेहसे गीला हुआ धूलिमय यह उक्त अक्षमलका तात्पर्य है। जैसे वह अति चिक्कण होनेसे सुखपूर्वक दूर करना शक्य नहीं है उसी प्रकार यह भी लोभपरिणाम निधत्तरूप होनेसे जीवके हृदयमें अवगाढ़ होता है, इसलिए उसे दूर करना शक्य नहीं है।

§ १३. तीसरा लोभका प्रकार धूलके लेपके सदृश कहा जाता है। जिस प्रकार पैरमें लगा हुआ धूलिका लेप पानीके द्वारा धोने आदि उपायोंद्वारा सुखपूर्वक दूर कर दिया जाता

---

१. [illegible]—तुम्बस्य धारणं इति पाठः।

मन्दायमानस्वभावो न चिरतरकालमवतिष्ठते। पूर्वस्मादनन्तगुणहीनसामर्थ्यः सन् कियन्मात्रादपि कालादल्पेनापि यत्नेनापैतीति।

§ १४. मन्दतरस्तु लोभस्य तुरीयोऽवस्थाविशेषो हारिद्रवस्त्रसमक इति व्यपदिश्यते। हरिद्रया रक्तं वस्त्रं हारिद्रं, तेन समो हारिद्रवस्त्रसमकः। यथैव हरिद्राद्रवरंजितस्य वस्त्रस्य स वर्णरागो न चिरं तत्रावतिष्ठते, वातातपादिभिरभिहन्यमानमात्र एवोड्डीयते। एवमयं लोभप्रकारो मन्दतमानुभागपरिणतत्वान्न चिरमात्मन्यवतिष्ठते, क्षणमात्रादेव विश्लेषमियर्तीति। तदेवं प्रकर्षाप्रकर्षवत्तीव्र-मन्दावस्थाभेदभिन्नत्वाल्लोभोऽपि चतुर्विधो भणित इति गाथार्थः।

**(२१) एदेसिं ट्ठाणाणं चदुसु कसाएसु सोलसण्हं पि।**
**कं केण होइ अहियं ट्ठिदि-अणुभागे पदेसग्गे ॥५-७४॥**

§ १५. समनंतरनिर्दिष्टानामेषां स्थानानां षोडशभेदभिन्नानां स्थित्यनुभवप्रदेशैरल्पबहुत्वनिर्धारणार्थमिदं सूत्रमारभ्यते। तद्यथा—'एदेसिं ट्ठाणाणं' एतेषामनन्तरनिर्दिष्टानां स्थानानामित्यर्थः। 'चदुसु कसाएसु' चतुर्षु कषायेषु प्रत्येकं चतुर्भेदभिन्नत्वात् षोडशसंख्यावच्छिन्नानामित्यर्थः। 'कं केण होइ अहियं' कं ट्ठाणं केण ट्ठाणेण सह सण्णियासिज्जमाणं ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसेहि हीणमहियं वा होदि त्ति पुच्छा-

---

है, वह चिरकाल तक नहीं ठहरता है, उसीके समान उत्तरोत्तर मन्दस्वभाववाला यह लोभका भेद भी चिरकाल तक नहीं ठहरता है। पिछले लोभसे अनन्तगुणी हीन सामर्थ्यवाला होता हुआ कुछ ही कालमें थोड़ेसे भी यत्नसे दूर हो जाता है।

§ १४ तथा लोभकी मन्दतर चौथी अवस्थाविशेष है। वह हरिद्रावस्त्रके समान कहा गया है। हलिद्रीसे रंगा गया वस्त्र हारिद्र कहलाता है। उसके समान हारिद्रवस्त्रसदृश कहलाता है। जैसे हलिद्रीके द्रवसे रंगे गये वस्त्रका वह वर्णरंग चिरकाल तक नहीं ठहरता, वायु और आतप आदिके निमित्तसे ही उड जाता है। इसी प्रकार यह लोभका भेद मन्दतम अनुभागसे परिणत होनेके कारण चिरकाल तक आत्मामें नहीं ठहरता, क्षणमात्रमें ही दूर हो जाता है। इस प्रकार प्रकर्ष और अप्रकर्षवाले तीव्र और मन्द अवस्थाके भेदसे विभक्त होनेके कारण लोभ भी चार प्रकारका कहा गया है यह इस गाथाका अर्थ है।

*** चारों कषायोंके इन सोलह स्थानोंमें स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंकी अपेक्षा कौन स्थान किस स्थानसे अधिक होता है और कौन स्थान हीन होता है ॥५-७४॥**

§ १५. समनन्तर कहे गये सोलह स्थानोंमें विभक्त इन स्थानोंके स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिए इस सूत्रका आरम्भ करते हैं। यथा—'एदेसिं ट्ठाणाणं' इन समनन्तर पूर्व कहे हुए स्थानोंके यह उक्त कथनका तात्पर्य है। 'चदुसु कसाएसु' चार कषायोंमेंसे प्रत्येकके चार भेदोंमें विभक्त होनेके कारण सोलह संख्यारूप यह उक्त कथनका तात्पर्य है। 'कं केण होइ अहियं' कौन स्थान किस स्थानके साथ सन्निकर्षको प्राप्त होता हुआ 'स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंकी अपेक्षा हीन होता है या अधिक होता

णिद्देसो कदो होइ । तत्थ ट्ठिदिं पडुच्च सव्वेसिं ट्ठाणाणं हीणाहियभावगवेसणा णत्थि । किं कारणं ? सव्वेसु ट्ठिदिविसेसेसु अप्पप्पणो चउण्हं ट्ठाणाणमविसेसेण समुवलंभादो[1] । तं जहा—चालीससागरोवमकोडाकोडिमेत्तकसायुक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणस्स चरिमट्ठिदि-एग-वि-ति-चउट्ठाणविसेसिददेससव्वघादिपरमाणू सव्वे चेव लब्भंति, आवाहा-बाहिराणंतरजहण्णट्ठिदीए वि तेसिमविसेसेण संभवो । एदेण कारणेण सुत्ते ट्ठिदिमस्सियूण पयदत्थपरिमग्गणा ण कया । एगट्ठाणाणुभागो उक्कस्सट्ठिदीए वि लब्भइ, चउट्ठाणाणुभागो जहण्णट्ठिदीए वि लब्भइ त्ति एसो तहा ण परूवेंतस्स सुत्तयारस्साहिप्पायो त्ति भणिदं होइ । संपहि अणुभाग-पदेसे समस्सियूण सत्थाण-परत्थाणकमेण पयदट्ठाणाण-मप्पाबहुअपरूवणट्ठं गाहासुत्तपबंधमणुसरामो—

(२२) माणे लदासमाणे उक्कस्सा वग्गणा जहण्णादो ।
हीणा च पदेसग्गे गुणेण णियमा अणंतेण ॥६-७५॥

§ १६. एसा सुत्तगाहा माणस्स लदासमाणट्ठाणं घेत्तूण पदेसग्गेण सत्थाणप्पा-बहुअपरिक्खणट्ठमोइण्णा[2] । तं कथं ? 'माणे' माणकसाए । किंविसे ? 'लदासमाणे'

है' इस प्रकार यहाँ पृच्छाका निर्देश किया गया है । उनमेंसे स्थितिकी अपेक्षा सभी स्थानोंके हीन-अधिकपनेका अनुसन्धान नहीं है, क्योंकि सभी स्थितिविशेषोंमें अपने-अपने चारों स्थान विना विशेषताके पाये जाते हैं । यथा—कषायोंकी चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थितिको बाँधनेवाले जीवके अन्तिम स्थितिमें एकस्थानीय, द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय विशेषताको लिये हुए देशघाति और सर्वघाति सब प्रकारके परमाणु पाये जाते हैं तथा आबाधाके बादकी समनन्तर जघन्य स्थितिमें भी वे अविशेषरूपसे सम्भव हैं । इस कारणसे सूत्रमें स्थितिकी अपेक्षा प्रकृत अर्थकी गवेषणा नहीं की गई है । एकस्थानीय अनुभाग उत्कृष्ट स्थितिमे भी प्राप्त होता है और चतुःस्थानीय अनुभाग जघन्य स्थितिमें भी प्राप्त होता है यह उस प्रकार कथन नहीं करनेवाले सूत्रकारका अभिप्राय है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब अनुभाग और प्रदेशोंका आलम्बनकर स्वस्थान और परस्थानके क्रमसे प्रकृत स्थानोंके अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिये गाथासूत्रके प्रबन्धका अनुसरण करते हैं—

लताके समान मानमें उत्कृष्ट वर्गणा अर्थात् अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणा जघन्य वर्गणासे अर्थात् प्रथम स्पर्धककी आदि वर्गणासे प्रदेशोंकी अपेक्षा नियमसे अनन्तगुणी हीन है । किन्तु अनुभागकी अपेक्षा जघन्य वर्गणासे उत्कृष्ट वर्गणा नियमसे अनन्तगुणी अधिक है ॥६-७५॥

§ १६. यह सूत्रगाथा मानके लतासमान स्थानको ग्रहणकर स्वस्थान अल्पबहुत्वकी परीक्षा करनेके लिए आई है ।

शंका—वह कैसे ?

१. ता०प्रतौ संभवुवलंभादो इति पाठः । २. ता०प्रतौ परिरक्खणट्ठमोइण्णा इति पाठः ।

लदासमाणट्ठाणावट्ठिदे जाव 'उक्कस्सा वग्गणा' चरिमफद्दयचरिमवग्गणा त्ति वुत्तं होइ। 'जहण्णादो हीणा च पदेसग्गे' अणुभागं पेक्खियूण जा जहण्णवग्गणा पढमफद्दयादिवग्गणा तत्तो णिरुद्धुक्कस्सवग्गणा पदेसग्गेण हीणा होदि त्ति वुत्तं होइ। केत्तियमेत्तेण हीणा त्ति वुत्ते 'गुणेण णियमा अणंतेण' णिच्छएणाणंतगुणहीणा होदि त्ति गहेयव्वा। किं कारणं? लदासमाणजहण्णवग्गणादो अभवसिद्धिएहिंतो अणंतगुणं सिद्धाणंतभागमेत्तफद्दयाणि उवरि गंतूण एगं पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमुप्पज्जइ। पुणो अणेण विहिणा अभवसिद्धिएहिंतो अणंतगुणं सिद्धाणमणंतभागमेत्तगुणहीणाओ गंतूण तस्सेवप्पणो उक्कस्सवग्गणा होदि। एवं होदि त्ति कादूणुक्कस्सवग्गणा जहण्णवग्गणादो पदेसग्गं पेक्खियूणाणंतगुणहीणा होदि त्ति णत्थि संदेहो। अणुभागेण पुण पयदजहण्णवग्गणादो उक्कस्सवग्गणा णिच्छएणाणंतगुणा त्ति घेत्तव्वा। कथमेदं सुत्तेणाणुवइट्ठमुवलब्भदे? ण, 'हीणा च पदेसग्गे' त्ति एत्थतण 'च' सद्देण पदेसग्गं पेक्खियूण जहा-उत्तेण गुणगारेण हीणा होदि अहिया च अणुभागेणे त्ति सुत्तत्थसंबंधावलंबणादो। एवं सेसपण्णारसण्हं पि ट्ठाणाणमप्पप्पणो जहण्णुक्कस्सवग्गणाओ घेत्तूण सत्थाणेण सण्णियासो कायव्वो।

समाधान—'माणे' अर्थात् मानकषायमें। किस प्रकारके मानकषायमें? लताके समान स्थानसे युक्त मानकषायमें। 'उक्कस्सा वग्गणा' उत्कृष्ट वर्गणा अर्थात् अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके प्राप्त होने तक यह उक्त कथनका तात्पर्य है। 'जहण्णादो हीणा च पदेसग्गे'—अनुभागकी अपेक्षा जो जघन्य वर्गणा है अर्थात् प्रथम स्पर्धककी आदि वर्गणा है उससे विवक्षित उत्कृष्ट वर्गणा प्रदेशोंकी अपेक्षा हीन होती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। कितने प्रमाणमें हीन होती है ऐसी आशंका होनेपर 'गुणेण णियमा अणंतेण' अर्थात् नियमसे अनन्तगुणी हीन होती है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि लताके समान जघन्य वर्गणासे अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवे भागमात्र स्पर्धक ऊपर जाकर एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर उत्पन्न होता है। पुन इस विधिसे अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवे भागमात्र गुणहीन स्थान जाकर उसीकी अपनी उत्कृष्ट वर्गणा उत्पन्न होती है। इस प्रकार होती है ऐसा समझकर उत्कृष्ट वर्गणा जघन्य वर्गणासे प्रदेशोंकी अपेक्षा अनन्तगुणी हीन होती है इसमें सन्देह नहीं है। अनुभागकी अपेक्षा तो प्रकृत जघन्य वर्गणासे उत्कृष्ट वर्गणा निश्चयसे अनन्तगुणी है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

शंका—सूत्रद्वारा नहीं उपदिष्ट की गई यह बात कैसे उपलब्ध होती है?

समाधान—नहीं, क्योंकि 'हीणा च पदेसग्गे' इस प्रकार यहाँ आये हुए 'च' शब्दसे प्रदेशोंकी अपेक्षा पूर्वोक्त गुणकारके क्रमसे हीन होती है, परन्तु अनुभागकी अपेक्षा उसी गुणकारके क्रमसे अधिक होती है इस प्रकार यहाँ सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्धका अवलम्बन लिया गया है। इसी प्रकार शेष पन्द्रह स्थानोंकी अपनी-अपनी जघन्य और उत्कृष्ट वर्गणाओंको ग्रहणकर स्वस्थानकी अपेक्षा सन्निकर्ष करना चाहिए।

विशेषार्थ—मानकषायमें चार प्रकारका अनुभाग पाया जाता है। उसमेंसे लताके

§ १७. संपहि माणस्स चउण्हं ट्ठाणाणं परत्थाणप्पाबहुअपरूवणट्ठमुवरिमगाहा-सुत्तमोइण्णं—

**(२३) णियमा लदासमादो दारुसमाणो अणंतगुणहीणो।**
**सेसा कमेण हीणा गुणेण णियमा अणंतेण ॥७-७६॥**

§ १८. पुव्वसुत्तादो माणग्गहणमिहाणुवट्टदे, पदेसग्गेणे त्ति च, तेणेवमहिसंबंधो कायव्वो। णियमा णिच्छएण लदासमाणादो माणादो दारुअसमाणो माणो पदेसग्गे-णाणंतगुणहीणो होदि त्ति। एसो पुण एत्थ भावत्थो—लदासमाणसव्वपदेसपिंडादो दारुअसमाणसव्वपदेसपिंडो अणंतगुणहीणो त्ति। किं कारणं? लदासमाणजहण्ण-वग्गणादो दारुअसमाणजहण्णवग्गणा पदेसग्गावेक्खाए अणंतगुणहीणा। पुणो लदा-समाणविदियवग्गणादो दारुअसमाणविदियवग्गणा अणंतगुणहीणा। एवमणेण विधिणा गंतूण लदासमाणुक्कस्सवग्गणादो दारुअसमाणुक्कस्सवग्गणा अणंतगुणहीणा भवदि। एवं होदि त्ति कादूण लदासमाणसव्वपदेसपिंडादो दारुअसमाणसव्वपदेसपिंडो अणंतगुणहीणो त्ति सिद्धं। ण च तत्थतणफद्दयाणं बहुत्तमवलंबिय पयदविवज्जासणं

समान अनुभागमें प्रदेशों और अनुभागकी अपेक्षा स्वस्थान अल्पबहुत्वकी क्या व्यवस्था है इसका यहाँ सूत्र गाथा द्वारा स्पष्ट विवेचन किया गया है। इसी प्रकार मानकषायके शेष तीन प्रकारके अनुभागमें तथा क्रोधकषाय, मायाकषाय और लोभकषायके प्रत्येक चार-चार प्रकारके अनुभागमें इस प्रकार सब मिलाकर पन्द्रह प्रकारके अनुभागमें प्रदेशों और अनुभागकी अपेक्षा स्वस्थान अल्पबहुत्वका कथन करना चाहिए।

§ १७. अब मानकषायके चारों स्थानोंके परस्थान अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिये आगेका गाथासूत्र आया है—

**लता समान मानसे दारु समान मान प्रदेशोंकी अपेक्षा नियमसे अनन्त-गुणा हीन है। शेष मान अर्थात् अस्थिसमान और शैलसमान मान भी क्रमसे अर्थात् पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा आगे-आगेका मान प्रदेशोंकी अपेक्षा नियमसे अनन्तगुणा हीन है ॥७-७६॥**

§ १८ पिछले गाथासूत्रसे प्रकृतमें 'मान' पदकी अनुवृत्ति कर लेनी चाहिए और 'पदेसग्गेण' पदकी भी अनुवृत्ति कर लेनी चाहिए, उसके अनुसार इस प्रकार सम्बन्ध करना चाहिए—'णियमा' अर्थात् निश्चयसे लतासमान मानसे दारुसमान मान प्रदेशोंकी अपेक्षा अनन्त-गुणा हीन होता है। इसका प्रकृतमें यह भावार्थ है कि लताके समान समस्त प्रदेशपिण्डसे दारुके समान समस्त प्रदेशपिण्ड अनन्तगुणा हीन है, क्योंकि लताके समान जघन्य वर्गणासे दारुके समान जघन्य वर्गणा प्रदेशपिण्डकी अपेक्षा अनन्तगुणी हीन होती है। तथा लताके समान दूसरी वर्गणासे दारुके समान दूसरी वर्गणा अनन्तगुणी हीन होती है। इस प्रकार इस विधिसे जाकर लताके समान उत्कृष्ट वर्गणासे दारुके समान उत्कृष्ट वर्गणा अनन्तगुणी हीन होती है। इस प्रकार होनेकी व्यवस्था है, इसलिये लताके समान समस्त प्रदेशपिण्डसे दारुके समान समस्त प्रदेशपिण्ड अनन्तगुणाहीन है यह सिद्ध हुआ। किन्तु वहाँके स्पर्धकोंके बहुतपने-

जुत्तं, दोसु वि ट्ठाणेसु अप्पप्पणो आदिवग्गणपमाणेण दिवड्ढगुणहाणिमेत्तेसु संतेसु तत्थ फद्दयगुणगारस्स पयदविवज्जासणं पडि सामर्थ्याभावादो।

§ १९. संपहि जहा लदासमाणादो दारुअसमाणो अणंतगुणहीणो जादो, एवं दारुअसमाणसव्वपदेसपिंडादो अत्थिसमाणसव्वपदेसपिंडो अणंतगुणहीणो। तत्तो वि सेलसमाणसव्वपदेसपुंजो अणंतगुणहीणो त्ति एदस्सत्थविसेसस्स पदुप्पायणट्ठं गाहा-पच्छद्धणिद्देसो, 'सेसा कमेण हीणा गुणेण णियमा अणंतेणे' त्ति वुत्ते सेसाणमणुभाग-ट्ठाणाणं जहाकमं पदेसग्गेणाणंतगुणहीणत्तसिद्धीए जहावुत्तेण णाएण णिव्वाह-मुवलंभादो।

(२४) णियमा लदासमादो अणुभागग्गेण वग्गणग्गेण।
सेसा कमेण अहिया[2] गुणेण णियमा[3] अणंतेण ॥७७॥

§ २०. एदेण सुत्तेण लदासमाणाणुभागट्ठाणादो सेसट्ठाणाणमणुभागस्स जहा-कमणंतगुणत्तं परूविदं। तं जहा—'णियमा' णिच्छएण 'लदासमादो'[4] लदासमाण-सण्णिदमाणाणुभागट्ठाणादो सेसा दारुअसमाणादयो कमेण जहाकममहिया होंति त्ति सुत्तसंबंधो कायव्वो। केण ते तत्तो अहिया त्ति पुच्छिदे 'अणुभागग्गेण वग्गणग्गेणे'

का अवलम्बन लेकर प्रकृत विषयका विपर्यास करना युक्त नहीं है, क्योंकि दोनों ही स्थानोंमें अपनी-अपनी आदि वर्गणाके प्रमाणसे डेढ गुणहानि मात्र होनेपर वहाँ स्पर्धकरूप गुणकारमें प्रकृत विषयके विपर्यास करनेकी सामर्थ्य नहीं है।

§ १९ अब जैसे लताके समान प्रदेशपिण्डसे दारुके समान प्रदेशपिण्ड अनन्तगुणा हीन है इसी प्रकार दारुके समान समस्त प्रदेशपिण्डसे अस्थिके समान समस्त प्रदेशपिण्ड अनन्त-गुणा हीन है तथा उससे भी शैलके समान समस्त प्रदेशपिण्ड अनन्तगुणा हीन है। इस प्रकार इस अर्थविशेषके कथन करनेके लिये गाथाके उत्तरार्धका निर्देश किया है, क्योंकि 'सेसा कमेण हीणा गुणेण णियमा अणंतेण' ऐसा कहने पर शेष अनुभागस्थानोंके क्रमसे प्रदेशसमूहकी अपेक्षा अनन्तगुणे हीनपनेकी सिद्धि पूर्वोक्त न्यायके अनुसार निर्बाध बन जाती है।

लताके समान मानसे शेष स्थानीय मान अनुभागसमूहकी अपेक्षा और वर्गणा-समूहकी अपेक्षा क्रमशः नियमसे अनन्तगुणित अधिक होते हैं ॥७७॥

§ २०. इस सूत्र द्वारा लताके समान अनुभागस्थानसे शेष स्थानोंका अनुभाग क्रमसे अनन्तगुणा कहा गया है। यथा—'णियमा' अर्थात् निश्चयसे 'लदासमादो' अर्थात् लताके समान संज्ञावाले मानके अनुभागस्थानसे 'सेसा' अर्थात् दारु आदिके समान अनुभागस्थान 'कमेण' यथाक्रम अधिक होते हैं इस प्रकार सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध करना चाहिए। किसकी अपेक्षा वे उससे अधिक होते हैं ऐसा पूछने पर 'अणुभागग्गेण' वग्गणग्गेण' यह

१ ता०प्रतौ वुत्ते इति पाठ.। २. ता०प्रतौ णियमा इति पाठ.। ३. ता०प्रतौ अहिया इति पाठ.। ४. ता०प्रतौ समाणादो इति पाठ।

त्ति वुत्तं । एत्थ अग्गसद्दो समुदायत्थवाचओ, अणुभागसमूहो अणुभागग्गं वग्गणासमूहो वग्गणग्गमिदि । अथवा अणुभागो चेव अणुभागग्गं, वग्गणाओ चेव वग्गणग्गमिदि घेत्तव्वं । तेण लदासमाणमाणस्स सव्वाविभागपलिच्छेदपिंडादो दारुअसमाणसव्वाविभागपलिच्छेदकलावो अहिओ होदि । लदासमाणसव्ववग्गणसमूहादो वि दारुअसमाणसव्ववग्गणसमूहो अहिओ होइ । एवमट्ठि-सेलसमाणाणं पि वत्तव्वमिदि सुत्तत्थसब्भावो । संपहि केत्तिएण ते अहिया, किं गुणेण, आहो विसेसेणे त्ति आसंकाए इदमाह 'गुणेणे त्ति' । एदेण विसेसाहियत्तं पडिसिद्धं दट्ठव्वं । तत्थ किं संखेज्जगुणेण, किमसंखेज्जगुणेण, किं वा अणंतगुणेणे त्ति आसंकाए णिराकरणट्ठमिदं वुत्तं 'णियमा' णिच्छएणाणंतगुणब्भहिया एदे जहाकमं होंति त्ति । एत्थ दोवारं णियमसद्दुच्चारणं किं फलमिदि चे वुच्चदे—लदासमाणट्ठाणादो सेसाणं जहाकममणुभागवग्गणग्गेहिं अहियत्तमेत्तावहारणफलो पढमो णियमसद्दो । विदियो वि तेसिमणंतगुणब्भहियत्तमेव, ण विसेसाहियत्तं, णावि संखेज्जासंखेज्जगुणब्भहियत्तमिदि अवहारणफलो । एवं पुव्विल्लदो-सुत्तेसु उवरिमाणंतरे सुत्ते च णियमसद्दुच्चारणाए सहलत्तं वक्खाणेयव्वं ।

§ २१. अयं पुनरत्र वाक्यार्थः—लदासमाणजहण्णवग्गणाविभागपलिच्छेदेहिंतो दारुअसमाणजहण्णवग्गणाविभागपलिच्छेदा अणंतगुणा । लदासमाणविदियवग्गणा-

कहा है । यहाँपर 'अग्र' शब्द समुदायरूप अर्थका वाचक है । तदनुसार अनुभागसमूहका नाम अनुभागाग्र और वर्गणासमूहका नाम वर्गणाग्र हुआ । अथवा अनुभागका ही नाम अनुभागाग्र है और वर्गणाओंका नाम ही वर्गणाग्र है ऐसा ग्रहण करना चाहिए । तदनुसार लताके समान मानके समस्त अविभागप्रतिच्छेदपिण्डसे दारुके समान सब अविभागप्रतिच्छेदपिण्ड अधिक है । इसीप्रकार लताके समान सब वर्गणासमूहसे भी दारुके समान सब वर्गणासमूह अधिक है । इसी प्रकार अस्थि और शैलसमान अनुभागस्थानो और वर्गणासमूहोंके विषयमें भी कथन करना चाहिये । इस प्रकार यह इस सूत्रका अर्थ है । अब वे अनुभागस्थान कितनी मात्रामे अधिक हैं, क्या गुणकाररूपसे अधिक है या विशेषरूपसे अधिक हैं ऐसी आशंका होनेपर 'गुणेण' यह वचन कहा है । इससे विशेष अधिक है इसका निषेध जानना चाहिए । वहाँ क्या वे संख्यातगुणे अधिक है, क्या असंख्यातगुणे अधिक हैं या क्या अनन्तगुणे अधिक है ऐसी आशंका होनेपर निराकरण करनेके लिए 'णियमा' निश्चयसे ये यथाक्रम अनन्तगुणे अधिक हैं यह कहा है ।

शंका—यहाँपर सूत्रमें दोवार 'नियम' शब्दके उच्चारणका क्या फल है ?

समाधान—कहते हैं—लताके समान स्थानसे शेष दारु आदिके अनुभागसमूह और वर्गणासमूह इन दोनोंकी अपेक्षा यथाक्रम अधिक होते हैं इस बातका अवधारण करना प्रथम नियम शब्दके देनेका फल है । दूसरे भी 'नियम' शब्दका वे स्थान अनन्तगुणे ही हैं, विशेष अधिक नहीं हैं और न संख्यातगुणे या असंख्यातगुणे अधिक हैं इस बातका निश्चय करना फल है । इस प्रकार पिछले दो सूत्रोंमें और आगेके समनन्तर सूत्रमें 'नियम' शब्दके उच्चारणकी सफलताका व्याख्यान करना चाहिए ।

§ २१ यहाँपर पूरे कथनका यह तात्पर्य है—लताके समान जघन्य वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदोंसे दारुके समान जघन्य वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणे हैं । लताके समान

विभागपलिच्छेदेहिंतो दारुअसमाणविदियवग्गणाविभागपलिच्छेदा अणंतगुणा । एवं णेदव्व जाव लदासमाणुक्कस्सवग्गणाविभागपलिच्छेदेहिंतो दारुअसमाणुक्कस्सवग्गणा-विभागपलिच्छेदा अणंतगुणा जादा त्ति । एवं होदि त्ति कादूण लदासमाणसव्वाणुभागावि-भागपलिच्छेदेहिंतो दारुअसमाणसव्वाणुभागाविभागपलिच्छेदा अणतगुणा भवंति। एव दारुअसमाणादो अट्ठिसमाणाणुभागो अणंतगुणो । तत्तो वि सेलसमाणाणुभागो अणंतगुणो ।

§ २२. वग्गणाणं पुण भण्णमाणे लदासमाणाविभागपलिच्छेदुत्तरकमेण वड्ढिदसव्ववग्गणदीहत्तादो दारुअसमाणाविभागपलिच्छेदुत्तरकमेण वड्ढिदसव्ववग्गणा-दीहत्तमणंतगुणं । तत्तो अट्ठिसमाणाणुभागसव्ववग्गण दीहत्तमणंतगुण । तत्तो सेलसमाण-सव्वाणुभागवग्गणदीहत्तमणतगुणं होदि त्ति । एत्थ सव्वत्थाविभागपलिच्छेदगुणगारो सव्वजीवेहिंतो अणंतगुणो । वग्गणागुणगारो च अभवसिद्धिएहिं अणंतगुणो सिद्धाण-मणंतभागमेत्तो । संपहि लदासमाणचरिमसंधीदो दारुअसमाणपढमसंधी अणुभागग्गेण पदेसग्गेण च कधं होदि, एवं सेससंधीओ कधं होंति त्ति एवंविहासंकाणिरायरणट्ठमुत्तरं गाहासुत्तमोइण्णं—

**(२५) संधीदो संधी पुण अहिया णियमा च होइ अणुभागे ।**
**हीणा च पदेसग्गे दो वि य णियमा विसेसेण ॥७८॥**

---

दूसरी वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदोंसे दारुके समान दूसरी वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणे हैं । इस प्रकार लताके समान उत्कृष्ट वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदोंसे दारुके समान उत्कृष्ट वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणे हैं इस स्थानके प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए । इस प्रकार उत्तरोत्तर अनुभागकी व्यवस्थाके अनुसार यह क्रम निश्चित होता है कि लताके समान समस्त अनुभाग-अविभागप्रतिच्छेदोंसे दारुके समान समस्त अनुभागके अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणे हैं । इसीप्रकार दारुके समान अनुभागसे अस्थिके समान अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे भी शैलके समान अनुभाग अनन्तगुणा है ।

§ २२ परन्तु वर्गणाओंकी अपेक्षा कथन करनेपर लताके समान अविभागप्रतिच्छेदोंके उत्तरोत्तर क्रमसे बढ़ी हुई सब वर्गणाओंके आयामसे दारुके समान अविभागप्रतिच्छेदोंके उत्तरोत्तर क्रमसे बढ़ा हुआ सब वर्गणाओंका आयाम अनन्तगुणा है । उससे अस्थिके समान अनुभागसम्बन्धी सब वर्गणाओंका आयाम अनन्तगुणा है । तथा उससे शैलके समान अनु-भागसम्बन्धी समस्त वर्गणाओंका आयाम अनन्तगुणा है । यहाँपर सर्वत्र अविभागप्रतिच्छेदों-का गुणकार सब जीवोंसे अनन्तगुणा है और वर्गणाओंका गुणकार अभव्योंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण है । अब लताके समान अन्तिम सन्धिसे दारुके समान प्रथम सन्धि अनुभागसमूह और प्रदेशसमूहकी अपेक्षा कैसी होती है तथा इसी प्रकार शेष सन्धियाँ कैसी होती हैं इस प्रकार इस तरहकी आशंकाका निराकरण करनेके लिये आगेका गाथासूत्र आया है—

उत्तरोत्तर अन्तिम सन्धिसे आगेकी प्रथम सन्धि अनुभागकी अपेक्षा तो नियमसे विशेष अधिक होती है और प्रदेशोंकी अपेक्षा नियमसे विशेष हीन होती है । इस

§ २३. लदासमाणचरिमवग्गणा दारुअसमाणपढमवग्गणा च दो वि संधि त्ति वुच्चंति। एवं सेससंधीणं पि अत्थो वत्तव्वो। तम्हा विवक्खियचरिमसंधीदो विवक्खिय-पढमसंधी अणुभागावेक्खाए णियमा अहिया होइ, पदेसावेक्खाए च हीणा होइ। होंती वि दो वि य अणुभाग-पदेसे पेक्खियूण णियमा विसेसेण अणंतभागेग हीणा अहिया च होइ त्ति सुत्तत्थसंबंधो। एत्थ 'विसेसेणे' त्ति सामण्णणिद्देसेण संखेज्जासंखेज्जभाग-परिहारेणाणंतभागो चेव घेप्पइ त्ति कधमवगम्मदे ? ण, वक्खाणादो तहाविहविसेस-पडिवत्तीदो। एवं ताव माणसंधीणं चउण्हं ट्ठाणाणमणुभाग-पदेसे अस्सियूण सत्थाण-परत्थाणेहिं थोवबहुत्तमुहेण सण्णियासं कादूण संपहि तेसिं चेव चदुण्ह ट्ठाणाणं ट्ठाण-सण्णाए णिण्णीदसरूवाणं घादिसण्णामुहेण देस-सव्वघाइभावगवेसणट्ठमुवरिमं गाहासुत्तमोइण्णं—

(२६) सव्वावरणीयं पुण उक्कस्सं होइ दारुअसमाणे।
हेट्ठा देसावरणं सव्वावरणं च उवरिल्लं ॥७९॥

§ २४. संपहि एदं सुत्तमस्सियूण माणस्स लदासमाणादिट्ठाणाणं घादिसण्णाए

---

प्रकार सर्वत्र दोनों सन्धियोंमें जानना चाहिए ॥७८॥

§ २३. लताके समान अन्तिम वर्गणा और दारुके समान प्रथम वर्गणा ये दोनों भी सन्धि कहलाती हैं। इसी प्रकार शेष सन्धियोंका भी अर्थ कहना चाहिये। इसलिये विवक्षित अन्तिम सन्धिसे विवक्षित प्रथम सन्धि अनुभागकी अपेक्षा नियमसे अधिक होती है और प्रदेशोंकी अपेक्षा हीन होती है। ऐसी होती हुई भी दोनों ही सन्धियाँ अनुभाग और प्रदेशों की अपेक्षा क्रमशः नियमसे अनन्तवें भाग अधिक और अनन्तवे भाग हीन होती हैं इस प्रकार यहाँ सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध है।

शंका—प्रकृतमें 'विसेसेण' ऐसा सामान्य निर्देश होनेसे संख्यातवें भाग और असंख्यातवे भागके परिहार द्वारा अनन्तवाँ भाग ही ग्रहण किया जाता है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि व्याख्यानसे उस प्रकारके विशेषका ज्ञान होता है। इस प्रकार सर्व प्रथम मानकषायकी सन्धियोंके चारों स्थानोंका अनुभाग और प्रदेशोंकी अपेक्षा स्वस्थान और परस्थान दोनों प्रकारसे अल्पबहुत्वद्वारा सन्निकर्ष करके अब स्थान संज्ञा-रूपसे निर्णीतस्वरूप उन्हीं चारों स्थानोंकी घातिसंज्ञाद्वारा देशघातिपने और सर्वघातिपनेका अनुसन्धान करनेके लिये आगेका गाथासूत्र आया है—

दारुके समान मानमें प्रारम्भके एक भाग अनुभागको छोड़कर शेष सब अनन्त बहुभाग तथा उत्कृष्ट अनुभाग सर्वावरणीय है। उससे पूर्वका लता समान अनुभाग और दारुका अनन्तवें भाग अनुभाग देशावरण है तथा दारुसमान अनुभागसे आगेका सब अनुभाग सर्वावरण है ॥७९॥

§ २४ अब इस सूत्रका आलम्बन लेकर मानकषायके लतासमान आदि स्थानोंकी

अणुगमं कस्सामो । तं जहा—सव्वावरणीयं पुण सव्वावरणीयमेव होइ। किं तमिदि वुत्ते 'उक्कस्सं दारुअसमाणे' जमुक्कस्समणुभागट्ठाणं तं णियमा सव्वघाइ त्ति वुत्तं होइ। ण केवलं दारुअसमाणे उक्कस्साणुभागो चेव सव्वघादी, किंतु दारुअ-समाणस्स हेट्ठिमाणंतिमभागं मोत्तूण सेसाणमणंताणं भागाणं सव्वघादित्तमेदेण सुत्तेण णिद्दिट्ठमिदि घेत्तव्वं, पुण सद्दस्स समुच्चयट्ठे पवुत्तिअवलंबणादो। अथवा दारुअसमाणे उक्कस्सं सव्वावरणमिदि वुत्ते दारुअसमाणस्स अणंता भागा सव्वावरणं होंति त्ति अत्थो घेत्तव्वो, अणंताणं भागाणमुक्कस्सत्तसिद्धीए विरोहाभावादो। तदो दारुअ-समाणस्स अणंता भागा सव्वघादि त्ति सिद्धं। 'हेट्ठा देसावरणं' एदेण वयणेण दारुअ-समाणस्स हेट्ठिमाणंतिमभागो लदासमाणभागो च सव्वो देसघादि त्ति घेत्तव्वो, तस्स सव्वघायणसत्तीए अभावादो। 'सव्वावरणं च उवरिल्लं'। एदेण वि दारुअ-समाणादो उवरिल्लमट्ठिसमाणं सेलसमाणं च सव्वमेव णियमा सव्वघादि त्ति जाणावियं, तिव्व-तिव्वयरभावेणावट्ठिदस्स तदुभयस्स तहाभावविरोहाभावादो।

**(२७) एसो कमो च माणे मायाए णियमसा दु लोभे वि।**
**सव्वं च कोहकम्मं चदुसु ट्ठाणेसु बोद्धव्वं ॥८०॥**

§ २५. जो एसो कमो अणंतरमेव 'माणे लदासमाणे' इच्चेदं गाहासुत्तमादिं

---

घातिसंज्ञाका अनुगम करेंगे। यथा—'सव्वावरणीयं पुण' अर्थात् सर्वावरणीय ही है। वह सर्वावरणीय कौन है ऐसा पूछने पर 'उक्कस्सं दारुसमाणे' अर्थात् दारुके समान मानमें जो उत्कृष्ट अनुभागस्थान है वह नियमसे सर्वघाति है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। केवल दारुके समान मानमें उत्कृष्ट अनुभाग ही सर्वघाति नहीं है, किन्तु दारुके समान मानके सबसे प्रारम्भके अनन्तवें भागप्रमाण अनुभागको छोड़कर शेष अनन्त बहुभागप्रमाण अनुभाग सर्वघाति है यह इस सूत्र द्वारा निर्दिष्ट किया गया है ऐसा प्रकृतमें ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि सूत्रमें आये हुए पुनः शब्दकी समुच्चयरूप अर्थमें प्रवृत्तिका अवलम्बन लिया गया है। अथवा दारुके समान मानमें उत्कृष्ट सर्वावरण ऐसा कहनेपर दारुके समान मानका अनन्त बहुभाग अनुभाग सर्वावरण है यह अर्थ यहाँ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि अनन्त बहुभाग अनुभागके उत्कृष्टपनेकी सिद्धि होनेमें विरोधका अभाव है। इसलिये दारुके समान मानका अनन्त बहुभाग अनुभाग सर्वघाति है यह सिद्ध हुआ। 'हेट्ठा देसावरणं' इस वचनसे दारुके समान मानका अधस्तन अर्थात् सबसे प्रारम्भका अनन्तवाँ भाग अनुभाग और लताके समान अनुभाग सब देशघाति है ऐसा प्रकृतमें ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि उसमें सर्वघाति-पनेरूप शक्तिका अभाव है। 'सव्वावरणं च उवरिल्लं' इस वचनसे भी दारुके समान अनु-भागसे आगेका अस्थिके समान और शैलके समान सब अनुभाग नियमसे सर्वघाति है ऐसा ज्ञान कराया गया है, क्योंकि यह दोनों प्रकारका अनुभाग तीव्र और तीव्रतर भावसे अवस्थित है, इसलिये उसके वैसा होनेमें विरोध नहीं आता।

जो यह क्रम पिछली सूत्र गाथाओंमें कह आये हैं वह सब मान, माया, लोभ तथा क्रोधसम्बन्धी चारों स्थानोंमें निरवशेषरूपसे नियमसे जानना चाहिए ॥८०॥

§ २५. जो यह क्रम अनन्तर पूर्व ही 'माणे लदासमाणे' इत्यादि गाथासूत्रसे लेकर

कादूण जाव 'सव्वावरणीयं पुण' एसा गाहा त्ति माणकसायमहिकिच्च परूविदो सो चेव कमो अपरिसेसो मायाए वि चउण्हं ट्ठाणाणं जहाकमं जोजेयव्वो। ण केवलं मायाए, किंतु णियमसा दु णिच्छएणेव लोभे वि परूवणिज्जो। ण केवलं माया-लोभाणं चेव एसो कमो, किंतु सव्वं पि कोहकम्मं जं चदुसु ट्ठाणेसु णग-पुढवि-समाणादिभेयभिण्णेसु ट्ठिदं तं पि एदेणेव कमेण बोद्धव्वमिदि भणिदं होइ। एवमोघेण चउण्हं कसायाणं पादेक्कं चउब्भेयभिण्णेसु ट्ठाणेसु पयदपरूवणं कादूण संपहि गदियादिमग्गणासु एदेसिं ट्ठाणाणं बंध-संतादिविसेसिदाणं गवेसणट्ठमुवरिमं गाहासुत्त-पबंधमाह—

**(२८) एदेसिं ट्ठाणाणं कदमं ठाणं गदीए कदमिस्से।**
**बद्धं च बज्झमाणं उवसंतं वा उदिण्णं वा ॥८१॥**

§ २६. एदेसिमणंतरणिद्दिट्ठाणं सोलसण्हं ठाणाणमादेसपरूवणाए कीरमाणाए कदमिस्से गदीए कदमं ठाणं होइ। किमविसेसेण सव्वासु गदीसु सव्वेसिं ट्ठाणाणं संभवो आहो अत्थि को विसेसो त्ति पुच्छियं होइ। एदेसिं ट्ठाणाणं बंध-संत-उदयोव-समेहिं विसेसिदाणं पादेक्कं गदीसु अणुगमो कायव्वो त्ति जाणावणट्ठमेदं वुत्तं 'बद्धं च बज्झमाणं' इच्चादि। 'बद्धं च' णिव्वत्तिदबंधं होदूण बंधविदियादिसमएसु संतकम्म-भावेणावट्ठिदं कदमं ट्ठाणं कदमिस्से गदीए होदि ? 'बज्झमाणं' तक्कालियबंधपरिणामेण

'सव्वावरणीयं पुण' इस गाथा पर्यन्तकी गाथासूत्रोंमें मानकषायको अधिकृत कर कह आये हैं वही सब क्रम मायाकषायमें भी चारों स्थानोंमें क्रमसे योजित कर लेना चाहिए। केवल मायामें ही नहीं, किन्तु 'णियमसा' अर्थात् निश्चयसे लोभकषायमें भी कहना चाहिए। केवल लोभ-कषाय और मायाकषायमें ही यह क्रम नहीं है, किन्तु जो समस्त क्रोधकर्म नगसमान और पृथिवीसमान आदि भेदोंमें विभक्त चार स्थानोंमें स्थित है उसे भी इसी क्रमसे जान लेना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस प्रकार ओघसे चारों कषायोंमेंसे प्रत्येक कषायके चार भेदोंमें विभक्त स्थानोंमें प्रकृत कथन करके अब गति आदि मार्गणाओंमें बन्ध और सत्त्व आदिकी अपेक्षा विशेषताको प्राप्त हुए स्थानोंकी गवेषणा करनेके लिये आगेके गाथासूत्र प्रबन्धको कहते हैं—

**इन पूर्वोक्त चारों स्थानोंमेंसे किस गतिमें कौन स्थान बद्ध है, कौन स्थान बध्यमान है, कौन स्थान उपशान्त है और कौन स्थान उदीर्ण है ॥८१॥**

§ २६ अनन्तर पूर्व कहे गये इन सोलह स्थानोंकी आदेश प्ररूपणा करनेपर किस गतिमें कौन स्थान है ? क्या विशेषता किये विना सब गतियोंमे सब स्थान सम्भव हैं या कोई विशेषता है यह इस गाथासूत्रद्वारा पूछा गया है। बन्ध, सत्त्व, उदय और उपशम-भावसे विशेषताको प्राप्त हुए इन स्थानोंमेंसे प्रत्येक स्थानका गतियोंमें अनुगम करना चाहिए इस बातका ज्ञान करानेके लिये यह वचन कहा है—'बद्धं च बज्झमाणं' इत्यादि। 'बद्धं च' अर्थात् निवृत्त बन्ध होकर बन्धके बाद द्वितीयादि समयोंमें सत्त्व कर्मरूपसे अवस्थित कौन स्थान किस गतिमें होता है ? इसी प्रकार 'बज्झमाणं' अर्थात् तत्काल बन्धरूप

विसेसियं होदूण णवकबंधसरूवेणावट्ठिदं वा कदमं ठाणं कदमिस्से गदीए होदि ? 'उवसंतं वा' एत्थाणुदयलक्खणो उवसमो विवक्खिओ, तेणाणुदयसरूवं होदूणुवसंतभावेण ट्ठिदं कदमं ठाणं कम्हि गदीए होइ ? 'उदिण्णं वा' एदेण वि सुत्तावयवेण उदयावत्थाविसेसिदं होदूण कं ठाणं कदमिस्से गदीए होदि त्ति पुच्छाणिद्देसो कदो होदि। तदो एदं सव्वं पुच्छासुत्तमेव। एदिस्से पुच्छाए विसेसणिण्णयमुवरि चरिमगाहासुत्तसंबंधेण कस्सामो—

(२९) सण्णीसु असण्णीसु य पज्जत्ते वा तहा अपज्जत्ते।
सम्मत्ते मिच्छत्ते य मिस्सगे चेय बोद्धव्वा ॥८२॥

§ २७. एत्थ 'सण्णीसु असण्णीसु य' इच्चेदेण सुत्तावयवेण सण्णिमग्गणा पयदपरूवणाविसेसिदा गहिया। 'पज्जत्ते वा तहा अपज्जत्ते। एदेण वि सुत्तावयवेण काइंदियमग्गणाणं संगहो कायव्वो। 'सम्मत्ते मिच्छत्ते' एदेण वि गाहापच्छद्धेण सम्मत्तमग्गणा सूचिदा, तब्भेदाणं मुत्तकंठमिहोवएसादो। तदो एदेसु मग्गणाविसेसेसु कदमं ठाणं बंधोदयादिविसेसिदं होइ त्ति पुच्छाए संबंधो एत्थ वि कायव्वो।

(३०) विरदीय अविरदीए विरदाविरदे तहा अणागारे।
सागारे जोगम्हि य लेस्साए चेव बोद्धव्वा ॥८३॥

---

परिणामसे विशेषताको प्राप्त होकर नवक बन्धस्वरूपसे अवस्थित कौन स्थान किस गतिमें होता है ? 'इसी प्रकार 'उवसंतं वा' इस वचनसे यहाँपर अनुदय लक्षणरूप उपशम विवक्षित है, इसलिये अनुदयस्वरूप होकर उपशान्तभावसे स्थित कौन स्थान किस गतिमें होता है ? तथा इसी प्रकार 'उदिण्णं वा' सूत्रके इस वचन द्वारा भी उदय अवस्थासे विशेषताको प्राप्त होकर कौन स्थान किस गतिमे होता है इस प्रकार पृच्छानिर्देश किया है, इसलिये यह सब पृच्छासूत्र ही है। इस पृच्छाका विशेष निर्णय आगेके अन्तिम गाथासूत्रके सम्बधसे करेंगे—

पूर्वोक्त बद्ध आदि विशेषताओंसे युक्त ये सोलह स्थान यथासम्भव संज्ञियोंमें, असंज्ञियोंमें, पर्याप्तमें, अपर्याप्तमें, सम्यक्त्वमें, मिथ्यात्वमें और मिश्र ( सम्यग्मिथ्यात्व ) में जानना चाहिए ॥८२॥

§ २७ इस गाथासूत्रमें 'सण्णीसु य' इस सूत्र वचन द्वारा प्रकृत प्ररूपणासे विशेषताको प्राप्त हुई संज्ञी मार्गणा ग्रहण की गई है। 'पज्जत्ते वा तहा अपज्जत्ते' इस सूत्रवचन द्वारा भी काय और इन्द्रिय मार्गणाका संग्रह करना चाहिए। 'सम्मत्ते मिच्छत्ते' इत्यादि गाथाके उत्तरार्ध द्वारा भी सम्यक्त्व मार्गणा सूचित की गई है, उसके भेदोंका यहाँ पर मुक्तकण्ठ होकर उपदेश दिया गया है। इसलिये मार्गणाके इन भेदोंमें बन्ध और उदय आदिसे विशेषताको प्राप्त हुआ कौन स्थान होता है इस प्रकार पृच्छाओंका सम्बन्ध यहाँ पर भी करना चाहिए।

पूर्वोक्त बद्ध आदि विशेषताओंसे युक्त वे ही सोलह स्थान विरतिमें, अविरतिमें, विरताविरतमें, अनाकार उपयोगमें, साकार उपयोगमें, योगमें और लेश्यामें तथा गाथासूत्रमें आये हुए 'चेव' पदसे अनुक्त शेष मार्गणाओंमें भी जानना चाहिए ॥८३॥

§ २८. एसा गाहा वुत्तसेसासु संजमादिमग्गणासु पयदट्ठाणाणं मग्गणाए बीजपदभूदा। तं जहा—'विरदीय अविरदीए' इच्चेदेण पढमावयवेण संजममग्गणा णिरवसेसा गहेयव्वा। 'तहा अणागारे' त्ति भणिदे दंसणमग्गणा घेत्तव्वा। 'सागारे' त्ति भणिदे णाणमग्गणा गहेयव्वा। 'जोगम्हि य' एवं भणिदे जोगमग्गणा घेत्तव्वा। 'लेस्साए' त्ति वयणेण लेस्समग्गणाए गहणं कायव्वं। एत्थतण 'चेव' सद्देणावुत्त-समुच्चयट्ठेण वुत्तसेससव्वमग्गणाणं संगहो कायव्वो। तदो एदेसु मग्गणाभेदेसु कदमं ठाणं होइ त्ति पुव्वं व पुच्छाहिसंबंधो एत्थ वि कायव्वो। एदस्स णिण्णयमुवरिं कस्सामो।

**(३१) कं ठाणं वेदंतो कस्स व ट्ठाणस्स बंधगो होइ।**
**कं ठाणमवेदंतो अबंधगो कस्स ट्ठाणस्स ॥८४॥**

§ २९. एदं गाहासुत्तमोघेणादेसेण च चउण्हं कसायाणं सोलसण्हं ट्ठाणाणं बंधोदएहिं सण्णियासपरूवणट्ठमागयं। तं कधं? 'कं ठाणं वेदंतो' एदेसिं सोलसण्हं ट्ठाणाणं मज्झे कदमं ट्ठाणमणुभवंतो 'कस्स ट्ठाणस्स बंधगो होइ', किमविसेसेण सव्वेसि-माहो अत्थि को विसेसो त्ति पुच्छा कदा होइ। 'कं ठाणमवेदंतो' कदमं ठाणमणणुभवंतो कस्स वा ट्ठाणस्स अबंधगो होइ त्ति एसो वि पुच्छाणिद्देसो चेव। एदस्स भावत्थो—

§ २८ यह गाथा पूर्वमें कही गई मार्गणाओंसे शेष रही संयम आदि मार्गणाओंमें प्रकृत स्थानोंकी मार्गणाके लिये बीज पदभूत है। यथा—'विरदीय अविरदीए' इत्यादि प्रथम वचन द्वारा समस्त संयम मार्गणाको ग्रहण करना चाहिए। 'तहा अणागारे' ऐसा कहने पर दर्शनमार्गणाको ग्रहण करना चाहिए। 'सागारे' ऐसा कहने पर ज्ञानमार्गणाको ग्रहण करना चाहिए। 'जोगम्हि य' ऐसा कहने पर योगमार्गणाको ग्रहण करना चाहिए। तथा 'लेस्साए' इस वचनसे लेश्यामार्गणाको ग्रहण करना चाहिए। यहाँ गाथा सूत्रमें आया हुआ 'चेव' शब्द अनुक्त मार्गणाओंका समुच्चय करनेवाला होनेसे कही गई मार्गणाओंके अतिरिक्त शेष सब मार्गणाओंका संग्रह करना चाहिए। इसलिये इन मार्गणाके भेदोंमें कौन स्थान होता है इस प्रकार यहाँ भी पृच्छाका सम्बन्ध कर लेना चाहिए। इस विषयका निर्णय आगे करेंगे।

**किस स्थानका वेदन करनेवाला कौन जीव किस स्थानका बन्धक होता है और किस स्थानका वेदन नहीं करनेवाला कौन जीव किस स्थानका अबन्धक होता है ॥८४॥**

§ २९. यह गाथासूत्र ओघ और आदेशसे चार कषायोंके सोलह स्थानोंसम्बन्धी बन्ध और उदयके सन्निकर्षका कथन करनेके लिए आया है।

शंका—यह कैसे ?

समाधान—'कं ठाणं वेदंतो' इस वचन द्वारा इन सोलह स्थानोंमेंसे किस स्थानका अनुभव करनेवाला जीव किस स्थानका बन्धक होता है, क्या अविशेषरूपसे सब स्थानोंका बन्धक होता है या कोई विशेष है यह पृच्छा की गई है। 'कं ठाणमवेदंतो' अर्थात् किस स्थानका अनुभव नहीं करनेवाला जीव 'कस्स वा ट्ठाणस्स अबंधगो' अर्थात् किस स्थानका

१. ता०प्रतौ णिरुद्धट्ठाणो एदेण इति पाठः।

कोहादिकसायाणं एगट्ठाण-विट्ठाण-तिट्ठाण-चउट्ठाणाणि वेदयमाणो णिरुद्धट्ठाणोदएण काणि ट्ठाणाणि बंधइ, काणि वा ण बंधइ ? अवेदयमाणो वा केसिं ठाणाणमबंधगो होदि त्ति एसो अत्थविसेसो बंधोदयाणं सण्णियाससरूवो एण्हिं परूवेयव्वो त्ति एदस्स विसेसणिण्णयमुवरिमगाहासुत्तसंबंधेण कस्सामो—

**(३२) असण्णी खलु बंधइ लदासमाणं च दारुयसमगं च।**
**सण्णी चदुसु विभज्जो एवं सव्वत्थ कायव्वं ॥(१६)८५॥**

§ ३०. एसा सोलसमी गाहा। संपहि एदं गाहासुत्तमस्सियूण पुव्वणिद्दिट्ठाणं सव्वासिमेव पुच्छाणं णिरारेगीकरणट्ठमत्थमग्गणा कीरदे। तत्थ ताव सण्णिमग्गणाए पयदत्थमग्गणं सुत्ताणुसारेण कस्सामो। तं जहा—'असण्णी खलु बंधइ' एवं भणिदे जो असण्णी जीवो सो बंधइ त्ति पदसंबंधो कायव्वो। किं बंधदि त्ति भणिदे लदासमाणं च दारुसमगं च एदाणि दोसु वि ट्ठाणाणि बंधदि त्ति वुत्तं होइ। एदेण सेसाणं दोण्हं ट्ठाणाणं तत्थ सव्वत्थ बंधाभावो पदुप्पाइदो, तत्थ तब्बंधकारणसव्वसंकिलेसाभावादो। तदभावो वि कुदो ? जादिविसेसादो। तदो लदासमाण-दारुअसमाणसण्णिदाणं दोण्हमेवाणुभाग-

अबन्धक है इस प्रकार यह भी पृच्छा निर्देश है। इसका भावार्थ—क्रोधादि कषायोंके एक स्थानीय, द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय अनुभागका वेदन करनेवाला जीव विवक्षित स्थानके उदयके साथ किन स्थानोंका वन्ध करता है और किन स्थानोंका वन्ध नहीं करता। अथवा किस स्थानको वेदन नहीं करनेवाला जीव किन स्थानोंका वन्ध नहीं करता इस प्रकार वन्ध और उदयके सन्निकर्षस्वरूप इस अर्थ विशेषका यहाँ कथन करना चाहिए इस विशेषका निर्णय आगेके गाथासूत्रके सम्बन्धसे करेंगे—

असंज्ञी जीव नियमसे लतासमान और दारुसमान इन दो अनुभागस्थानोंको बाँधता है। वन्धकी अपेक्षा संज्ञी जीव चारों स्थानोंमें भजनीय है। इसी प्रकार शेष मार्गणाओंमें स्थानोंका अनुगम करना चाहिए ॥(१६)८५॥

§ ३० यह सोलहवीं गाथा है। अब इस गाथासूत्रका अवलम्बन लेकर पूर्वमे निर्दिष्ट की गई सभी पृच्छाओंका निराकरण करनेके लिये अर्थविषयक मार्गणा करते हैं। उसमें सर्वप्रथम संज्ञी मार्गणामे प्रकृत अर्थकी मार्गणा सूत्रके अनुसार करेंगे। यथा—'असण्णी खलु बंधइ' ऐसा कहने पर जो असंज्ञी जीव है वह बाँधता है इन पदोंका परस्पर सम्बन्ध करना चाहिए। 'किं बंधदि' ऐसा कहने पर लतासमान और दारुसमान इन दोनों ही स्थानोंको बाँधता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इससे शेष दो स्थानोंका उन सबमे वन्धका अभाव है यह कहा गया है, क्योंकि उनमे उन दो स्थानोंके वन्धके कारणरूप सब प्रकारके संक्लेशपरिणामोंका अभाव है।

शंका—उनका अभाव किस कारणसे है ?

समाधान—जातिविशेषके कारण उनका अभाव है। अर्थात् असंज्ञी जीवोंके स्वभावसे ही ऐसे संक्लेश परिणाम नहीं होते जिनको निमित्तकर अस्थिसमान और शैलसमान स्थानोंका उनके वन्ध होवे।

ट्ठाणाणमसण्णीसु बंधो होइ, णाण्णेसिमिदि सिद्धं । एदेसिं च दोण्हं ट्ठाणाणमविभत्त-सरूवाणमेवासण्णीसु बंधो होदि त्ति घेत्तव्वं, विभत्तसरूवेण तत्थ तेसिं बंधासंभावादो।

§ ३१. संपहि सण्णीसु कथं होइ त्ति आसंकाए इदमाह—'सण्णी चदुसु विभज्जो' सण्णी खलु चदुसु वि अणुभागट्ठाणेसु बंधेण भयणिज्जो—सिया एगट्ठाणियं, सिया विट्ठाणियं, सिया तिट्ठाणियं, सिया चउट्ठाणियमणुभागं बंधदि त्ति । किं कारणं ? चउण्हं ठाणाणं बंधकारणविसुद्धि-संकिलेसाणं तत्थ संभवं पडि विरोहाभावादो। एदेण बंधमस्सियूण सण्णिमग्गणाविसयपुव्विल्लपुच्छाए अत्थणिण्णओ दरिसिदो। एदीए दिसाए उदयोवसंत-संताणं[1] पि तत्थ णिण्णयो मग्गियव्वो, सुत्तस्सेदस्स देसामासियत्तादो । तं कथं ? असण्णीसु उदयो विट्ठाणं चेव, सेसोदयपरिणामाणमेत्थ अच्चंता-भावेण पडिसिद्धत्तादो । उवसंतं संतं च एगट्ठाण-विट्ठाण-तिट्ठाण-चउट्ठाणं भवदि । णवरि एगट्ठाणस्स सुद्धस्स संभवो णत्थि त्ति पुव्वं व वत्तव्वं । सण्णीणं पुण संतमुवसंत-मुदयो च सव्वाणि चेव ट्ठाणाणि होंति त्ति घेत्तव्वं ।

§ ३२. संपहि 'कं ठाणं वेदंतो कस्स व ट्ठाणस्स बंधगो होदि' त्ति एदिस्से

---

इसलिए लतासमान और दारुसमान संज्ञावाले दोनों ही अनुभागस्थानोंका असंज्ञियोंके बन्ध होता है, अन्य दो स्थानोंका बन्ध नहीं होता यह सिद्ध हुआ । अविभक्तस्वरूप इन दोनों ही स्थानोंका असंज्ञियोंमें बन्ध होता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि विभक्तरूपसे उन स्थानोंका उनमें बन्ध होना असम्भव है ।

§ ३१ अब संज्ञी जीवोंमें किस प्रकारका बन्ध होता है ऐसी आशंका होनेपर यह बचन कहते हैं—'सण्णी चदुसु विभज्जो' संज्ञी जीव चारों ही अनुभागस्थानोंमें नियमसे बन्धकी अपेक्षा भजनीय है—कदाचित् एकस्थानीय, कदाचित् द्विस्थानीय, कदाचित् त्रि-स्थानीय और कदाचित् चतुःस्थानीय अनुभागको बाँधता है, क्योंकि उनमें चारों ही स्थानोंके बन्धके कारण विशुद्धि और संक्लेशरूप परिणाम सम्भव हैं, इसमें कोई विरोध नहीं है। इस प्रकार इस वचन द्वारा बन्धका अवलम्बन लेकर संज्ञीमार्गणाविषयक पिछली पृच्छाके अर्थका निर्णय दिखलाया । इसी दिशाद्वारा उदय, उपशम और सत्त्वका भी संज्ञी मार्गणामें निर्णय कर लेना चाहिए, क्योंकि यह सूत्र देशामर्षक है ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—असंज्ञियोंमें उदय द्विस्थानीय ही होता है, क्योंकि शेष उदयरूप परि-णामोंका उनमें अत्यन्त अभाव होनेसे उनका वहाँ निषेध किया है । असंज्ञियोंमें उपशम और सत्त्व एकस्थानीय, द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय होता है । इतनी विशेषता है कि इनमें शुद्ध एकस्थानीय उपशमस्थान और सत्त्वस्थान नहीं होता यह कथन यहाँ पूर्वके समान करना चाहिए। परन्तु संज्ञियोंमें सत्त्व, उपशम और उदयरूप सभी स्थान होते हैं ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए ।

§ ३२ अब 'कं ठाणं वेदंतो कस्स व ट्ठाणस्स बंधगो होदि' इस प्रकार इस पृच्छाका

---

१. ता०प्रतौ उदयोवसताणं इति पाठः ।

पुच्छाए णिण्णयमेदं चेव देसामासियसुत्तमस्सियूण सण्णिमग्गणाए कस्सामो । तं कथं ? असण्णी विट्ठाणमणुभागं वेदंतो णियमा विट्ठाणमणुभागं बंधइ, तत्थ पयारंतरासंभवादो । सण्णिपंचिंदियो एगट्ठाणमणुभागं वेदंतो णियमा एगट्ठाणमेव बंधइ, ण सेसाणि । विट्ठाण वेदेंतो[1] विट्ठाण-तिट्ठाण-चउट्ठाणाणि बंधइ । तिट्ठाणं वेदेंतो तिट्ठाण-चउट्ठाणाणि बंधइ । चउट्ठाणं वेदेंतो णियमा चउट्ठाणं बंधइ, सेसाणमबंधगो त्ति एदेण 'कं ठाणमवेदेंतो अबंधगो कस्स ट्ठाणस्से' त्ति एदं पि वक्खाणिदं दट्ठव्वं । किं कारणं ? एगट्ठाणमवेदेंतो एगट्ठाणस्स अबंधगो इच्चादिवदिरेगपरूवणाए एदेणेव गयत्थत्तदंसणादो ।

§ ३३. संपहि एदेणेव गयत्थाणं सेसमग्गणाण पि एदीए दिसाए अणुगमो कायव्वो त्ति जाणावणट्ठमुत्तरो सुत्तावयवो 'एवं सव्वत्थ कायव्वं' । जहा सण्णिमग्गणाए ट्ठाणाणमेसा अत्थमग्गणा कया, तहा चेव सेसगदियादितेरसमग्गणासु वि ट्ठाणाणमणुमग्गणा समयाविरोहेण कायव्वा त्ति भणिदं होइ । तं जहा—तिरिक्खगदीए सण्णि-असण्णिभंगं जाणियूण वत्तव्वं । णिरय-मणुस-देवगदीसु वि सण्णिभंगं जाणियूण णेदव्वं । णवरि मणुसगदीदो अण्णत्थ एगट्ठाणस्स बंधोदया सुद्धा ण

निर्णय इसी देशामर्षक सूत्रका अवलम्बन लेकर संज्ञीमार्गणामें करेंगे ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—असंज्ञी जीव द्विस्थानीय अनुभागका वेदन करता हुआ नियमसे द्विस्थानीय अनुभागको बाँधता है, क्योंकि उनमें प्रकारान्तर सम्भव नहीं है । संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव एकस्थानीय अनुभागका वेदन करता हुआ नियमसे एकस्थानीय अनुभागको ही बाँधता है, शेष अनुभागोंको नहीं बाँधता । द्विस्थानीय अनुभागका वेदन करता हुआ द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय अनुभागको बाँधता है । त्रिस्थानीय अनुभागका वेदन करता हुआ त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय अनुभागको बाँधता है । तथा चतुःस्थानीय अनुभागका वेदन करता हुआ नियमसे चतुःस्थानीय अनुभागको बाँधता है । 'वह शेष स्थानोंका अबन्धक होता है ।' यहाँ इस कथन द्वारा 'कं ठाणमवेदंतो अबंधगो कस्स ट्ठाणस्स' इस प्रकार इस वचनका भी व्याख्यान कर दिया ऐसा यहाँ जानना चाहिए, क्योंकि एकस्थानीय अनुभागका वेदन नहीं करनेवाला जीव एकस्थानीय अनुभागका बन्धक नहीं होता इत्यादि व्यतिरेकमुखसे की गई प्ररूपणाका इसी कथनद्वारा ही सम्यक् प्रकारसे अर्थबोध देखा जाता है ।

§ ३३. अब इसी कथन द्वारा ही जिनके अर्थका ज्ञान हो गया है ऐसी शेष मार्गणाओंका भी इसी दिशा द्वारा अनुगम कर लेना चाहिए इस बातका ज्ञान करानेके लिए आगेका यह सूत्रवचन आया है—'एवं सव्वत्थ कायव्वं ।' जिस प्रकार संज्ञीमार्गणामें स्थानोंकी अर्थविषयक मार्गणा की उसी प्रकार शेष गति आदि तेरह मार्गणाओंमें भी स्थानोंकी मार्गणा परमागमके अविरोध पूर्वक करनी चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यथा—तिर्यञ्चगतिमें संज्ञी और असंज्ञीके भंगको जानकर कथन करना चाहिए । नरकगति, मनुष्यगति और देवगतिमें भी संज्ञीमार्गणाके भंगको जानकर कथन करना चाहिए । इतनी विशेषता है कि

१. ता०प्रतौ विट्ठाण वधतो ( वेदंतो ) इति पाठः ।

लब्भंति । एवमिंदियादिमग्गणासु वि जाणियूण पयदपरूवणा कायव्वा। तदो सोलसण्हं गाहासुत्ताणं समुक्कित्तणा समत्ता भवदि ।

* एदं सुत्तं ।

§ ३४. एवमेदं सोलससंखाविसेसिदं गाहासुत्तं समुक्कित्तिदमिदि वुत्तं होइ ।

* एत्थ अत्थविहासा ।

§ ३५. एवं समुक्कित्तिदाणं गाहासुत्ताणमेत्तो अत्थविहासा कीरदि त्ति भणिदं होइ । तत्थ ताव पुव्वमेव चउट्ठाणे त्ति पदस्स णिक्खेवपरूवणट्ठमुवरिमं सुत्तपबंधमाह—

* चउट्ठाणे त्ति एक्कगणिक्खेवो च ट्ठाणणिक्खेवो च ।

§ ३६. 'चउट्ठाणस्से' त्ति पदस्स अत्थविसयणिण्णयजणणट्ठमेत्थ णिक्खेवो कीरदे। सो च णिक्खेवो एदम्मि विसए दुविहो होइ—'णिक्खेवो ट्ठाणणिक्खेवो' इदि । तत्थ एक्कगणिक्खेवो णाम चदुसद्दस्स अत्थभावेण विवक्खियाणं लदासमाणादिट्ठाणाणं कोहादिकसायाणं वा एक्केक्कं घेत्तूण णाम-ट्ठवणादिभेदेण णिक्खेवपरूवणा। ट्ठाण-णिक्खेवो णाम तेसिं अव्वोगाढसरूवेण विविक्खियाणं वाचओ जो ट्ठाणसद्दो तस्स अत्थविसयणिण्णयजणणट्ठं णाम-ट्ठवणादिभेदेण परूवणा । एवमेदेसु दोसु णिक्खेवेसु एक्कगणिक्खेवो पुव्वमेव गयत्थो त्ति जाणावेमाणो इदमाह—

---

मनुष्यगतिके सिवाय अन्य उक्त दो गतियोंमें केवल एकस्थानीय अनुभागका बन्ध और उदय नहीं प्राप्त होता। इसी प्रकार इन्द्रिय आदि मार्गणाओंमें भी जानकर प्रकृत प्ररूपणा करनी चाहिए। इस प्रकार इतने कथनके बाद सोलह गाथासूत्रोंकी समुत्कीर्तना समाप्त होती है।

* यह गाथासूत्र है ।

§ ३४. इस प्रकार सोलह संख्याविशिष्ट इस गाथासूत्रका समुत्कीर्तन किया यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* अब इसकी ( सोलह संख्याविशिष्ट इस गाथासूत्रकी ) अर्थविभाषा करते हैं।

§ ३५ इस प्रकार उल्लिखित किये गये इन गाथासूत्रोंकी आगे अर्थविभाषा करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। उसमें सर्व प्रथम पहले ही 'चतुःस्थान' इस पदविषयक निक्षेप-का कथन करनेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* 'चतुःस्थान' इस पदका एकैकनिक्षेप और स्थाननिक्षेप करना चाहिए।

§ ३६. चतुःस्थान इस पदका अर्थविषयक निर्णय उत्पन्न करनेके लिये यहाँपर निक्षेप करते हैं और वह निक्षेप इस विषयमें दो प्रकारका है—एकैकनिक्षेप और स्थाननिक्षेप। उनमेंसे 'चतुः' शब्दके अर्थरूपसे विवक्षित लतासमान और दारुसमान आदि स्थानोंकी अथवा क्रोधादि कषायोंकी, एक-एकको ग्रहणकर नाम और स्थापना आदिके भेदसे निक्षेपरूप प्ररूपणा करना एकैकनिक्षेप है। तथा परस्पर मिलितरूपसे विवक्षित उन्हींका वाचक जो 'स्थान' शब्द है उसके अर्थविषयक निर्णयका ज्ञान करनेके लिये नाम और स्थापना आदिके भेदसे प्ररूपणा करना स्थाननिक्षेप है। इस प्रकार इन दो निक्षेपोंमेंसे एकैकनिक्षेप पूर्वमें ही गतार्थ है इस बातका ज्ञान कराते हुए इस सूत्रको कहते हैं—

* एक्कगं पुव्वणिक्खित्तं पुव्वपरूविदं च ।

§ ३७. एत्थ एक्कगसद्देण कोहादीणमेक्केक्कस्स कसायस्स वा गहणं लदासमाणादीणं वा ट्ठाणाणमेगेगस्स णिरुद्धट्ठाणस्स गहणमिदि । तत्थ जइ ताव कोहादीणमेगेगस्स कसायस्स गहणमिह विवक्खियं तो एक्कगं पुव्वणिक्खित्तं पुव्वपरूविदं चेदि, णेदाणिं तण्णिक्खेवो परूवणा वा अहिकीरदे । किं कारणं ? गंथस्सादीए कसायणिक्खेवावसरे कोहादिकसायाणं पादेक्कं णाम-ट्ठवणादिभेदेण बहुवित्थरेण णिक्खित्तत्तादो, पेज्जदोसादिअणियोगद्दारेसु तेसिं पबंधेण परूविदत्तादो च । अह जइ लदासमाणादिट्ठाणाणं पादेक्कं गहणं विवक्खियं तो वि एक्कगं पुव्वणिक्खित्तं पुव्वपरूविदं चेव भवदि । तं कधं ? लदासमाणादिभेयभिण्णस्स माणस्स णिक्खेवो कीरमाणो सामण्णमाणणिक्खेवेणेव गयत्थो होइ, सामण्णादो एयंतेण पुधभूदविसेसाणुवलंभादो । एवं कोहादीणं पि णग-पुढविआदीहिं विसेसिदाणमेण्हिं कीरमाणो णिक्खेवो सामण्णकोहादिणिक्खेवेणेव पुव्वपरूविदेण गयत्थो त्ति एवमेक्कगणिक्खेवं पुव्वपरूविदत्तादो समुज्झियूण ट्ठाणणिक्खेवं करेमाणो इदमाह—

* ट्ठाणं णिक्खिविदव्वं ।

§ ३८. ट्ठाणमिदाणिं णिक्खिवियव्वं, पुव्वमपरूवियत्तादो त्ति भणिदं होइ ।

---

* एकैकनिक्षेप पूर्व-निक्षिप्त है और पूर्व-प्ररूपित है ।

§ ३७. प्रकृतमें एकैक शब्दसे क्रोधादिमेंसे एक-एक कषायका ग्रहण किया है अथवा लतासमान आदि स्थानोंमेंसे एक-एक विवक्षित स्थानका ग्रहण किया है । उनमेंसे यदि सर्वप्रथम क्रोधादिमेंसे एक-एक कषायका ग्रहण यहाँपर विवक्षित है तो एक-एक कषाय पूर्व-निक्षिप्त है और पूर्व-प्ररूपित है, इसलिये इस समय उनका निक्षेप और प्ररूपणा अधिकृत नहीं है, क्योंकि ग्रन्थके आदिमें कषायोंके निक्षेपके समय क्रोधादि कषायोंका पृथक्-पृथक् नाम और स्थापना आदिके भेदसे बहुत विस्तारके साथ निक्षेप कर आये हैं तथा पेज्ज-दोस आदि अनुयोगद्वारोंमें उनका प्रबन्धरूपसे कथन कर आये हैं । और यदि लतासमान आदि स्थानोंका पृथक्-पृथक् ग्रहण विवक्षित है तो भी एक-एक स्थान पूर्वनिक्षिप्त है और पूर्व-प्ररूपित ही है ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—लतासमान आदिके भेदसे भेदको प्राप्त हुए मानकषायका निक्षेप करते हुए सामान्य मानके निक्षेपसे ही वह गतार्थ है, क्योंकि सामान्यसे विशेष एकान्तसे पृथक् नहीं उपलब्ध होता । इसी प्रकार नग, पृथिवी आदिकी अपेक्षा विशेषताको प्राप्त हुए क्रोधादिकका भी इस समय किया जानेवाला निक्षेप पूर्वमें कहे गये सामान्य क्रोधादिके निक्षेपसे ही गतार्थ है, इसलिए पूर्वमें कहा गया होनेसे एकैक निक्षेपको छोड़कर स्थानविषयक निक्षेपको करते हुए इस सूत्रको कहते हैं—

* स्थान पदका निक्षेप करना चाहिए ।

§ ३८. इस समय स्थान पदका निक्षेप करना चाहिए, क्योंकि इसका पहले कथन नहीं किया है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

* तं जहा ।

§ ३९. सुगमं ।

*** णामट्ठाणं ट्ठवणट्ठाणं दव्वट्ठाणं खेत्तट्ठाणं अद्धट्ठाणं पलिवीचिट्ठाणं उच्चट्ठाणं संजमट्ठाणं पयोगट्ठाणं भावट्ठाणं च ।**

§ ४०. तत्थ जीवाजीवमिस्समेयभिण्णाणमट्ठभंगाणं णिमित्तंतरणिरवेक्खा ट्ठाणसण्णा णामट्ठाणमिदि भण्णदे । 'निमित्तांतरानपेक्षं संज्ञाकर्म नामेति' वचनात् । सब्भावमसब्भावसरूवेणेद ठाणमिदि ठविज्जमाणं ठवणाट्ठाणं णाम । दव्वट्ठाणमागम-णोआगमभेदेण दुविहं । तत्थागमदव्वट्ठाणं णोआगमजाणुगसरीर-भवियदव्वट्ठाणं च सुगमं । तव्वदिरित्तणोआगमदव्वट्ठाणं हिरण्ण-सुवण्णादिदव्वाणं भूमियादिसु ठविज्ज-माणाणं अवट्ठाणं । खेत्तट्ठाणं णाम उड्ढ-मज्झ-तिरियलोगाणमप्पप्पणो संठाणविसेसेणा-किट्टिमसरूवेणावट्ठाणं । अद्धट्ठाणं णाम समयावलिय-खण-लव-मुहुत्तादिकालवियप्पा । पलिवीचिट्ठाणं णाम ट्ठिदिबंधवीचारट्ठाणाणि सोवाणट्ठाणाणि वा भण्णंति । उच्चट्ठाणं णाम पव्वदादयमुच्चपदेसो । एत्थेव णीचट्ठाणस्स वि अंतब्भावो वत्तव्वो । मान्यस्थानं वोच्चस्थानमिति व्याख्येयं । संजमट्ठाणमिदि वुत्ते सामाइयच्छेदोवट्ठावणादिसंजम-लद्धिट्ठाणाणि पडिवादादिभेयभिण्णाणि घेत्तव्वाणि । संजमविसेसिदपमत्तादिगुणट्ठाणाणि

---

* वह जैसे ।

§ ३९. सुगम है ।

*** नामस्थान, स्थापनास्थान, द्रव्यस्थान, क्षेत्रस्थान, अद्धास्थान, पलिवीचि-स्थान, उच्चस्थान, संयमस्थान, प्रयोगस्थान और भावस्थान ।**

§ ४०. उनमेंसे जीव, अजीव और मिश्रके भेदसे भेदको प्राप्त हुए आठ भंगोंकी अन्य निमित्तकी अपेक्षा किये विना स्थान संज्ञा रखना नामस्थान ऐसा कहा जाता है, क्योंकि 'दूसरे निमित्तकी अपेक्षा किये विना संज्ञाकर्मको नाम कहते हैं' ऐसा वचन है। 'यह स्थान है' इस प्रकार सद्भाव और असद्भावरूपसे स्थापना करनेको स्थापनास्थान कहते हैं। आगम और नोआगमके भेदसे द्रव्यस्थान दो प्रकारका है। उनमेंसे आगमद्रव्यस्थान सुगम है तथा नोआगम द्रव्यस्थानके ज्ञायकशरीर और भावी ये भेद सुगम हैं। तथा भूमि आदिमें रखे जानेवाले चाँदी-सोना आदिके अवस्थानको तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यस्थान कहते हैं। ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और तिर्यग्लोकका अपने-अपने अकृत्रिमस्वरूप संस्थान विशेषरूपसे अवस्थानका नाम क्षेत्रस्थान है। समय, आवलि, क्षण, लव और मुहूर्त आदि कालके भेदोंका नाम अद्धास्थान है। स्थितिबन्धसम्बन्धी वीचारस्थानोंको अथवा सोपानस्थानोंको पलिवीचिस्थान कहते है। पर्वत आदि उच्चप्रदेशका नाम उच्चस्थान है। यहींपर नीचस्थानका भी अन्तर्भाव कहना चाहिए। अथवा मान्यस्थानका नाम उच्चस्थान है ऐसा व्याख्यान करना चाहिए। संयम-स्थान ऐसा कहनेपर प्रतिपातादि भेदसे अनेक प्रकारके सामायिक और छेदोपस्थापना आदि संयमलब्धिस्थानोंको ग्रहण करना चाहिए। अथवा संयमकी अपेक्षा विशेषताको प्राप्त हुए प्रमत्त आदि गुणस्थानोंको ग्रहण करना चाहिए। मन, वचन और कायका प्रयोगलक्षण योग-

वा । पयोगट्ठाणं णाम मण-वचि-कायपयोगलक्खणजोगट्ठाणमिदि घेत्तव्व । भावट्ठाण दुविहं आगम-णोआगमभेदेण । आगमदो भावट्ठाणं सुगमं । णोआगमभावट्ठाणं णाम असंखेज्जलोगमेत्तकसायुदयट्ठाणाणि ओदइयादिभाववियप्पा वा । एवं णिक्खेव-परूवणं कादूण संपहि एदेसिं णिक्खेवाणं णयविभागपरूवणट्ठमुवरिमपबंधमाह—

*** णेगमो सव्वाणि ट्ठाणाणि इच्छइ ।**

§ ४१. किं कारणं ? तव्विसए सामण्ण-विसेसप्पये वत्थुम्मि सव्वेसिं णिक्खेवाणं संभवं पडि विरोहाभावादो ।

*** संगह-ववहारा पलिवीचिट्ठाणं उच्चट्ठाणं च अवणेंति ।**

§ ४२. संगहो ताव संक्खित्तत्थग्गहणलक्खणो[1] पलिवीचिट्ठाणमद्धट्ठाणे पविसदि त्ति पुध तं णेच्छदि । किं कारणं ? ट्ठिदिबंधवीचारट्ठाणाणमद्धाविसेसत्तादो । सोवाणट्ठाणेसु वि घेप्पमाणेसु तेसिं खेत्तट्ठाणे पवेसदंसणादो । तथा उच्चट्ठाण पि खेत्तट्ठाणे पविसदि त्ति पुध णेच्छदि, तस्स खेत्तभेदत्तादो । एवं ववहारो वि, तस्स एदम्मि विसए संगहेण समाणाहिप्पायत्तादो ।

*** उजुसुदो एदाणि च ठवणं च अद्धट्ठाणं च अवणेइ ।**

स्थानका नाम प्रयोगस्थान है ऐसा ग्रहण करना चाहिए। आगम और नोआगमके भेदसे भावस्थान दो प्रकारका है। आगमकी अपेक्षा भावस्थान सुगम है। असंख्यात लोकप्रमाण कषाय-उदयस्थानों अथवा औदयिक आदि भावोंके भेदोंका नाम भावस्थान है। इसप्रकार निक्षेपका कथन कर अब इन निक्षेपोंका नयविभागसे कथन करनेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

*** नैगमनय सब स्थानोंको स्वीकार करता है।**

§ ४१. क्योंकि उसके विषयरूप सामान्य-विशेषात्मक वस्तुमें सभी निक्षेपोंके सम्भव होनेके प्रति विरोधका अभाव है।

*** सग्रहनय और व्यवहारनय पलिवीचिस्थान और उच्चस्थानका अपनयन करते हैं।**

§ ४२ संग्रहनय संग्रहरूप अर्थका ग्रहण लक्षणवाला है। इस नयकी अपेक्षा पलिवीचि-स्थानका अद्धास्थानमे अन्तर्भाव हो जाता है, इसलिये उसे पृथक्से नहीं स्वीकारता, क्योंकि स्थितिबन्धसम्बन्धी वीचारस्थान अद्धाविशेषरूप हैं। सोपानस्थानरूप भी ग्रहण करनेपर उनका क्षेत्रस्थानमें प्रवेश देखा जाता है। तथा उच्चस्थानका भी क्षेत्रस्थानमें प्रवेश हो जाता है, इसलिए उसे पृथक् स्वीकार नहीं करता, क्योंकि वह क्षेत्रका एक भेद है। इसी प्रकार व्यवहारनयकी अपेक्षासे भी जानना चाहिए, क्योंकि उसका इस विषयमें संग्रहनयके समान अभिप्राय है।

*** ऋजुसूत्रनय उक्त दोनोंका तथा स्थापनास्थान और अद्धास्थानका अपनयन**

१. ता०प्रतौ संकित्तत्थ- इति पाठ.।

§ ४३. किं कारणं ? वट्टमाणसमयमेत्तविसयत्तादो । ण च वट्टमाणसमयप्पणाए ट्ठवणद्धट्ठाणाणं संभवो अत्थि, कालभेदेण विणा तेसिमसंभवादो । तदो वट्टमाणमेत्तुज्जु-वत्थग्गाहिणो एदस्स विसये ट्ठवणट्ठाणमद्धट्ठाणं पुव्वुत्तण्णाएण पलिवीचि-उच्चट्ठाणाणि च ण संभवंति सिद्धं ।

* सद्दणयो णामट्ठाणं संजमट्ठाणं खेत्तट्ठाणं भावट्ठाणं च इच्छदि ।

§ ४४. होउ णाम पलिवीचि-उच्चट्ठाणाणमेत्थासंभवो, संगह-ववहारेहिं चेव तेसिमोसारियत्तादो । तहा अद्धट्ठाण-ट्ठवणट्ठाणाणं पि असंभवो, उजुसुदविसए चेव तेसि-मवत्थुत्तमुवगयाणमेत्थ संभवविरोहादो । कथं पुण दव्व-पयोगट्ठाणाणमुजुसुदे संभवंताण-मेत्थावत्थुत्तमिदि ? वुच्चदे—ण ताव दव्वट्ठाणस्सेत्थ संभवो, सुद्धपज्जवट्ठिये एदम्मि णये पडिसमयविणासिपज्जायं मोत्तूण दव्वस्स सभावाणब्भुवगमादो । ण उजुसुदेण वियहिचारो, एदम्हादो तस्स थूलविसयत्तब्भुवगमादो । तहा पयोगट्ठाणं पि एत्थ ण संभवइ । किं कारणं ? पयोगो हि णाम मण-वचि-कायाणं परिप्फंदलक्खणो किरिया-भेदो । ण च सो एत्थ संभवइ, खणक्खयिणो भावस्स समयमणवट्ठिदस्स किरियापज्जाय-

---

करता है ।

§ ४३ क्योंकि ऋजुसूत्रका विषय वर्तमान समयमात्र है । और वर्तमान समयकी विवक्षामें स्थापनास्थान और अद्धास्थान सम्भव नहीं हैं, क्योंकि कालभेदको स्वीकार किये विना उनको स्वीकार करना असम्भव है । इसलिये वर्तमानमात्र ऋजु अर्थको ग्रहण करनेवाले इस नयके विषयमें स्थापनास्थान और अद्धास्थान तथा पूर्वोक्त न्यायसे पलिवीचिस्थान और उच्चस्थान सम्भव नहीं हैं यह सिद्ध हुआ ।

* शब्दनय नामस्थान, संयमस्थान, क्षेत्रस्थान और भावस्थानको स्वीकार करता है ।

§ ४४. शंका—इस नयके विषयरूपसे पलिवीचिस्थान और उच्चस्थान सम्भव मत होओ, क्योंकि संग्रहनय और व्यवहारनयके द्वारा ही उनका अपसरण कर दिया गया है । तथा अद्धास्थान और स्थापनास्थान भी सम्भव मत होओ, क्योंकि ऋजुसूत्रके विषयरूपसे ही अवस्तुपनेको प्राप्त हुए उनका इस नयके विषयरूपसे सम्भव होनेमें विरोध है । परन्तु ऋजु-सूत्रनयमें द्रव्यस्थान और प्रयोगस्थान सम्भव हैं, उनका इस नयमें अवस्तुपना कैसे वनता है ?

समाधान—द्रव्यस्थान तो इस नयमें सम्भव नहीं है, क्योंकि शुद्ध पर्यायार्थिकरूप इस नयमें प्रति समय विनाशको प्राप्त होनेवाली पर्यायको छोड़कर द्रव्य इस नयके विषयरूपसे नहीं स्वीकार किया गया है ।

ऋजुसूत्रके साथ व्यभिचार नहीं आता, क्योंकि इसकी अपेक्षा उसका स्थूल विषय स्वीकार किया गया है । उसी प्रकार प्रयोगस्थान भी इस नयमें सम्भव नहीं है, क्योंकि मन, वचन और कायके परिस्पन्दलक्षण क्रियाभेदका नाम प्रयोग है, परन्तु वह इस नयमें सम्भव नहीं है, क्योंकि क्षणक्षयी और एक समयके बाद अनवस्थित रहनेवाले भावमें क्रियापर्यायरूप

परिणामाणुववत्तीदो। तथा चोक्तं—

क्षणिकाः सर्वसंस्काराः अस्थितानां कुतः क्रिया।
भूतिर्येषां क्रिया सैव कारकं चैव सोच्यते ॥ इति॥

तम्हा एदेण सुद्धपज्जवणयाहिप्पाएण पयोगट्ठाणस्स वि एत्थासंभवो चेवे त्ति। एवमेदेसिं पि परिहारेण णाम-संजम-खेत्त-भावट्ठाणाणि चेव एसो इच्छदि त्ति सुत्ते वुत्तं। तं कधं? णामट्ठाणमेसो ताव पडिवज्जइ, बज्झत्थणिरवेक्खट्ठाणसण्णामेत्तस्स तव्विसए पच्चक्खमुवलंभादो। संजमट्ठाणं वि इमो इच्छदि, तस्स भावसरूवत्तादो। खेत्त-भावट्ठाणाणि पुण एसो पडिवज्जइ चेव, ण तत्थ विसंवादो अत्थि, वट्टमाणोगाहणलक्खणस्स खेत्तस्स कसायोदयसरूवभावस्स च तव्विसए परिप्फुडमुवलंभादो। तदो सिद्धमेदेसिं णिक्खेवाणमेत्थ संभवो त्ति। एवं एदेसु णिक्खेवेसु केणेत्थ पयदमिच्चासंकाए इदमाह—

* एत्थ भावट्ठाणे पयदं।

§ ४५. एदेसु णिक्खेवेसु अणंतरमेव पवंचिदेसु णोआगमदो भावणिक्खेवेण पयदं, लदासमाणादिट्ठाणाणं णिक्खेवंतरपरिहारेण तत्थेयावट्ठाणदंसणादो। एवं ताव

---

परिणामकी उत्पत्ति नहीं बनती। कहा भी है—

सब संस्कार क्षणिक हैं, अस्थित उनमें क्रिया कैसे बन सकती है? जिनकी उत्पत्ति है वही क्रिया है और वही कारक कहा जाता है॥ १॥

इसलिये इस शुद्ध पर्यायार्थिक नयके अभिप्रायसे प्रयोगस्थान भी इसमें असम्भव ही है। इस प्रकार इन स्थानोंके परिहारद्वारा यह नय नामस्थान, संयमस्थान, क्षेत्रस्थान और भावस्थान इनको ही स्वीकार करता है ऐसा सूत्रमें कहा है।

शंका—वह कैसे?

समाधान—नामस्थानको तो यह स्वीकार करता है, क्योंकि बाह्य अर्थकी अपेक्षा किये बिना स्थानसंज्ञामात्र उसके विषयरूपसे प्रत्यक्ष उपलब्ध होती है। संयमस्थानको भी यह स्वीकार करता है, क्योंकि वह (संयमस्थान) भावस्वरूप है। क्षेत्रस्थान और भावस्थानको तो यह स्वीकार करता ही है, उसमें विसंवाद नहीं है, क्योंकि वर्तमान अवगाहनालक्षण क्षेत्रकी और कषायके उदयस्वरूप भावकी उसके विषयरूपसे स्पष्ट उपलब्धि होती है। इसलिए इन निक्षेपोंका इसमें सम्भव है यह सिद्ध हुआ।

इस प्रकार इन निक्षेपोंमेंसे किस निक्षेपसे यहाँ (इस अनुयोगद्वारमें) प्रयोजन है इस प्रकारकी आशंका होनेपर इस सूत्रको कहते हैं—

* प्रकृतमें भावस्थानसे प्रयोजन है।

§ ४५. अनन्तर पूर्व कहे गये इन निक्षेपोंमेंसे नोआगमभावनिक्षेपसे प्रयोजन है, क्योंकि लतासमान आदि स्थानोंका दूसरे निक्षेपोंके परिहारद्वारा नोआगम भावनिक्षेपमें

सुत्तविहासावसरे चेय ट्ठाणणिक्खेवं णयपरूवणाणुगयं कादूण संपहि गाहासुत्ताणमत्थ-विहासणं कुणमाणो चुण्णिसुत्तयारो इदमाह—

*** एत्तो सुत्तविहासा।**

§ ४६. पुव्वं सुत्तविहासं पइण्णाय तमपरूविय णिक्खेवो काउमाढत्तो[1]। तदो तेणंतरिदाये तिस्से पुणो वि अणुसंधाणं कादूण तप्परूवणट्ठमिदं सुत्तमारद्धं।

*** तं जहा।**

§ ४७. सुगमं।

*** आदीदो चत्तारि सुत्तगाहाओ एदेसिं सोलसण्हं ट्ठाणाणं णिदरिसणउवणये।**

§ ४८. तत्थ ताव आदीदो प्पहुडि चत्तारि सुत्तगाहाओ विहासिज्जंते। ताओ पुण कम्हि अत्थविसेसे पडिबद्धाओ त्ति आसंकाए इदमुत्तरं 'एदेसिं सोलसण्हं ट्ठाणाणं णिदरिसणोवणए पडिबद्धाओ त्ति' पढमगाहाए[2] कयभेदणिद्देसाण सोलसण्हं ट्ठाणाणं सेसगाहाहिं तीहिं णिदरिसणोवणयस्स परिप्फुडमुवलंभादो। जइ एवं चत्तारि सुत्त-गाहाओ णिदरिसणोवणए पडिबद्धाओ त्ति कथमिदं घडदे, तिण्हमेव सुत्तगाहाणं तत्थ

---

अवस्थान देखा जाता है। इस प्रकार सर्वप्रथम गाथासूत्रोंके विशेष व्याख्यानके अवसरपर ही नयप्ररूपणासे अनुगत स्थानविषयक निक्षेपप्ररूपणा करके अब गाथासूत्रोंका विशेष व्याख्यान करते हुए चूर्णिसूत्रकार इस सूत्रको कहते हैं—

*** इससे आगे गाथासूत्रोंकी विभाषा करते हैं।**

§ ४६. पूर्वमें गाथासूत्रोंके विशेष व्याख्यानकी प्रतिज्ञा करके उसकी प्ररूपणा किये विना निक्षेप करनेके लिये आरम्भ किया। इसलिये उसके बाद उसका फिर भी अनुसन्धान करके उसका कथन करनेके लिये इस सूत्रका आरम्भ किया है।

*** वह जैसे ?**

§ ४७ यह सूत्र सुगम है।

*** आदिसे लेकर चार सूत्र गाथाएँ इन सोलह स्थानोंके उदाहरणपूर्वक अर्थ साधन करनेमें आई हैं।**

§ ४८ उनमेसे सर्वप्रथम आदिसे लेकर चार सूत्रगाथाओंका विशेष व्याख्यान करते हैं। परन्तु वे चारों सूत्रगाथाएँ किस अर्थमें प्रतिबद्ध हैं ऐसी आशंका होनेपर यह उत्तर दिया है—इन सोलह स्थानोंके उदाहरणपूर्वक अर्थसाधनमें प्रतिबद्ध है, क्योंकि प्रथम गाथाद्वारा जिन भेदोंका निर्देश किया गया है ऐसे सोलह स्थानोंका शेष तीन गाथाओंद्वारा उदाहरण-पूर्वक अर्थसाधन स्पष्टरूपसे उपलब्ध होता है।

शंका—यदि ऐसा है तो चार सूत्रगाथाएँ उदाहरणपूर्वक अर्थसाधनमें प्रतिबद्ध हैं

---

१. ता०प्रती काल (किमट्ठ) माढत्तो इति पाठः। २. ता०प्रती त्ति पढमगाहा पढमगाहाए इति पाठः।

पडिवद्धत्तदंसणादो त्ति णासंकणिज्जं, णिदरिसणोवणयट्ठं कीरमाणभेदणिद्देसस्स वि तव्विसयत्तेण तहाभावोवयारादो। को णिदरिसणोवणयो णाम? णिदरिसणं दिट्ठंतो उदाहरणमिदि एयट्ठो। णिदरिसणस्स उवणओ णिदरिसणोवणओ, दिट्ठंतमुहेणत्थ साधणमिदि भणिदं होइ। तत्थ ताव कदमेण साधम्मेण केसिं ट्ठाणाणं णिदरिसणोवणओ एत्थ विवक्खिओ त्ति एदस्स जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तद्दयमोइण्णं—

* कोहट्ठाणं चउण्हं पि कालेण णिदरिसणउवणओ कओ।

§ ४९. कोहकसायस्स ताव चउण्हं पि ट्ठाणाणं णग-पुढविसमाणादिभेदेण जो णिदरिसणोवणओ कओ सो कालेण कालसाहम्ममासेज्ज कओ त्ति वुत्तं होइ, चिराचिर-तदवट्ठाणकालसाहम्मावेक्खाए तत्थ तहाभूदणिदरिसणस्स उवणीदत्तादो। एदस्स पुण णिण्णयमुवरिमचुण्णिसुत्तसंबंधेण कस्सामो।

* सेसाणं कसायाणं बारसण्हं ट्ठाणाणं भावदो णिदरिसणउवणओ कओ।

---

यह कैसे बन सकता है, क्योंकि तीन सूत्रगाथाएं ही उक्त अर्थमें प्रतिबद्ध देखी जाती है?

**समाधान**—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उदाहरणोंद्वारा साधन करनेके लिये जो भेदोंका निर्देश किया गया है वह भी प्रकृत अर्थको विषय करता है, इसलिये उस प्रकारके भावका उपचार किया गया है।

**शंका**—निदर्शनोपनय किसे कहते है?

**समाधान**—निदर्शन, दृष्टान्त और उदाहरण ये एकार्थवाची शब्द हैं। निदर्शनके उपनयको निदर्शनोपनय कहते है, अर्थात् दृष्टान्तोंद्वारा अर्थका साधन करना यह उक्त कथन-का तात्पर्य है।

उनमेंसे सर्वप्रथम किस साधर्म्यद्वारा किन स्थानोंका उदाहरणपूर्वक अर्थसाधन यहाँ किया गया है, इस प्रकार इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेके दो सूत्र अवतीर्ण हुए हैं—

* चारों ही क्रोध-स्थानोंका कालकी मुख्यतासे उदाहरणपूर्वक अर्थसाधन किया गया है।

§ ४९ क्रोधकषायके तो चारों ही स्थानोंका नगसमान और पृथिवीसमान आदि भेदरूपसे जो उदाहरणपूर्वक अर्थसाधन किया गया है वह 'कालेण' अर्थात् कालविषयक साधर्म्यका आश्रय लेकर किया गया है यह उक्त कथनका तात्पर्य है, क्योंकि चिरकाल और अचिरकाल तक जो क्रोधका अवस्थान होता है उसका इस प्रकारके कालके साथ साधर्म्य बन जानेसे इस अपेक्षासे क्रोधकषायके भेदोंमें उस प्रकारके उदाहरण संग्रह किये गये है। परन्तु इसका निर्णय आगे आनेवाले चूर्णिसूत्रोंके सम्बन्धसे करेंगे।

* शेष कषायोंके बारह स्थानोंका भावकी मुख्यतासे उदाहरणपूर्वक अर्थ-साधन किया गया है।

§ ५०. सेसाणं माणादीणं तिण्हं कसायाणं जाणि ट्ठाणाणि लदासमाणादिभेदेण बारससंखावच्छिण्णाणि तेसिं भावदो भावमासेज्ज णिदरिसणोवणओ कदो। तं जहा—माणस्स भावो थद्धत्तं[1], तस्स सेलघणादिणिदरिसणभेदेण पयरिसापयरिसजुत्तस्स तहा चेय ट्ठाणसण्णा अणुमग्गिया। मायाए भावो वक्कंतमणुज्जुगदा, तस्स वि वंसिजण्हु-आदिणिदरिसणोवणयमुहेण तब्भावस्स तारतम्मसंभवो णिदरिसिदो। लोभभावो असंतोसजणिदा संकिलिट्ठदा, तस्स वि किमिरागरत्तादिणिदरिसणोवण्णासमुहेण जहा-भावमेव समत्थणा कया त्ति। संपहि कोहट्ठाणाणं चउण्हं पि कालेण णिदरिसणो-वणओ[2] कओ त्ति जं पुव्वसुत्ते पइण्णादं तस्स वित्थारत्थपरूवणट्ठमुवरिमं पबंधमाह—

*** जो अंतोमुहुत्तिगं णिधाय कोहं वेदयदि सो उदयराइसमाणं कोहं वेदयदि।**

§ ५१. जो जीवो अंतोमुहुत्तियं भावं णिधाय धरेयूण कोधं वेदयदि सो उदय-राइसमाणं चेव कोहं वेदयदि। किं कारणं? उदयराईए व्व तस्स चिरतरकालावट्ठाणेण विणा तक्कालमेव विलयदंसणादो। एसो च कोहकसायवेदो वेदिज्जमाणो जीवस्स ण किंचि संजमघादं कुणइ, मंदाणुभागत्तादो। किन्तु संजमस्स अच्चंतसुद्धिं पडिबंधइ, तत्थ पमादादिमलुप्पायणे वावदत्तादो।

§ ५० शेष मानादि तीन कषायोंके लतासमान आदि भेदसे बारह संख्यारूप जो स्थान हैं उनका 'भावदो' भावका आश्रय लेकर उदाहरण पूर्वक अर्थसाधन किया गया है। यथा—मानका भाव स्तब्धता है। शैलघन आदि जितने उदाहरणभेद हैं उनके समान प्रकर्ष और अप्रकर्षयुक्त उस मानकी उसी प्रकार स्थानसंज्ञा योजित की गई है। मायाका भाव अनर्जुगत वक्रता है, इसलिये वांसकी जड आदि उदाहरणोंके ग्रहणद्वारा मायाके भी उस भावका तारतम्य बन जाता है यह दिखलाया गया है। लोभभाव असन्तोषजनित संक्लेशपना है, अतः कृमिराग आदि उदाहरणोंके उपन्यासद्वारा लोभका भी जैसा भाव है उसका समर्थन किया गया है। अब क्रोधके चारों ही स्थानोंका कालकी मुख्यतासे उदाहरणपूर्वक अर्थसाधन किया गया है ऐसा जो पूर्वसूत्रमें प्रतिज्ञा कर आये हैं उसके अर्थका विस्तारपूर्वक कथन करनेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

*** जो अन्तर्मुहूर्त काल तक क्रोधभावको धारण कर उसका वेदन करता है वह उदकराजिके समान क्रोधका वेदन करता है।**

§ ५१. जो जीव अन्तर्मुहूर्त तक होनेवाले भावको धारण कर क्रोधका वेदन करता है वह उदकराजिके समान ही क्रोधका वेदन करता है, क्योंकि उदकराजिके समान उसका चिरकाल तक अवस्थानके विना उसी समय विलय देखा जाता है। वेदनमें आता हुआ यह क्रोधकषायरूप वेद जीवके कुछ भी संयमघातको नहीं करता, क्योंकि यह मन्द अनुभाग-स्वरूप होता है। किन्तु संयमकी अत्यन्त शुद्धिका प्रतिबन्ध करता है, क्योंकि उसका प्रमादादि-रूप मलके उत्पन्न करने में व्यापार होता है।

---

१ ता०प्रतौ तद्धत्तं इति पाठः। २. ता०प्रतौ णिदरिसणेवणओ इति पाठः।

* जो अंतोमुहुत्तादीदमंतो अद्धमासस्स कोधं वेदयदि सो वालुवराइसमाणं कोहं वेदयदि।

§ ५२. जो पुण अंतोमुहुत्तकालमुल्लंघिय अंतो अद्धमासस्स कोहं वेदयदि सो णियमा वालुवराइसमाणं कोहमणुहवदि त्ति घेत्तव्वं। कुदो? वालुअराईए व्व तस्स कोहपरिमाणस्स अंतोमुहुत्तमुल्लंघिय अद्धमासस्स अंतो अवट्ठाणदंसणादो। एदं च कसायोदयजणिदकलुसपरिणामस्स सल्लभावेण परिणदस्स तेत्तियमेत्तकालावट्ठाणं पेक्खियूण भणिदं, अण्णहा कोहोवजोगावट्ठाणकालस्स उक्कस्सेण वि अंतोमुहुत्तमेत्तपमाणपरूवयसुत्तेण सह विरोहप्पसंगादो। एसो च कोहपरिणामभेदो वेदिज्जमाणो जीवस्स संजमघादं करिय संजमासजमे जीवं ठवेइ त्ति णिच्छओ कायव्वो।

* जो अद्धमासादीदमंतो छण्हं मासाणं कोधं वेययदि सो पुढविराइसमाणं कोहं वेदयदि।

§ ५३. जो खलु जीवो अद्धमासं वोलिय छण्हं मासाणमंतो कोहं वेदयदि सो पुढविराइससाणं तदियं कोधं वेदयदि, तज्जणिदसंसकारस्स पुढविभेदस्सेव अंतो छण्हं

विशेषार्थ—यहाँ यह बतलाया है कि जो उदकराजिके समान मन्द अनुभागस्वरूप क्रोधका वेदन करता है उसका अनुभवमें आनेवाला वह क्रोध परिणाम संयमका घात करनेमें तो समर्थ नहीं है, किन्तु संयमकी अत्यन्त शुद्धिका प्रतिबन्ध कर मलको उत्पन्न करता है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि बुद्धिपूर्वक मात्र संज्वलनकषायका सद्भाव जहाँ तक सम्भव है जीवके वहीं तक प्रमाद दशा होती है। सातवें आदि चार गुणस्थानोंमें सञ्ज्वलन कषाय है पर अबुद्धिपूर्वक है, इसलिये इनमें अप्रमाद दशा कही गई है। अन्यत्र (श्रीधवलामें) जो पाँच महाव्रत आदिरूप परिणामोंको भी अप्रमाद कहा है उसका भी आशय यही है।

* जो अन्तर्मुहूर्तके बाद अर्धमासके भीतर तक क्रोधका वेदन करता है वह वालुकाराजिके समान क्रोधका वेदन करता है।

§ ५२. परन्तु जो जीव अन्तर्मुहूर्त कालको उल्लंघन कर अर्धमासके भीतर तक क्रोधका वेदन करता है वह नियमसे वालुकाराजिके समान क्रोधका अनुभव करता है ऐसा यहाँ पर ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि वालुकाराजिके समान उस क्रोधपरिणामका अन्तर्मुहूर्तको उल्लंघन कर अर्धमासके भीतर तक अवस्थान देखा जाता है। और यह, कषायके उदयसे उत्पन्न हुए शल्यरूपसे परिणत कलुषपरिणामके उतने काल तक अवस्थानको देखकर, कहा है। अन्यथा क्रोधोपयोगके अवस्थान कालके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कथन करनेवाले सूत्रके साथ विरोधका प्रसंग आता है। यह क्रोध परिणामका भेद अनुभवमें आता हुआ संयमका घात करके जीवको संयमासंयममें स्थापित करता है ऐसा निश्चय करना चाहिए।

* जो अर्धमासके बाद छहमाहके भीतर तक क्रोधका वेदन करता है वह पृथिवीराजिके समान क्रोधका वेदन करता है।

§ ५३ जो जीव नियमसे अर्धमासको बिताकर छह माहके भीतर तक क्रोधका वेदन करता है वह पृथिवीराजिके समान तृतीय क्रोधका वेदन करता है क्योंकि उससे उत्पन्न हुआ संस्कार

भासाणमवट्ठाणदंसणादो। एत्थ वि पुव्वं व कसायपरिणामस्स सल्लीभूदस्स एत्तिय-मेत्तकालावट्ठाणं समत्थेयव्वं, अण्णहा सुत्तविरोहादो। एसो च कोहपरिणामो वेदिज्ज-माणो जीवस्स संजमासंजमं घादिय सम्मत्तमेत्ते जीवं ठवेदि त्ति। एसो तदिओ कोहभेदो पुव्विल्लादो तिव्वाणुभागो दट्ठव्वो।

*** जो सव्वेसिं भवेहिं उवसमं ण गच्छइ सो पव्वदराइसमाणं कोहं वेदयदि।**

§ ५४. तं जहा—एक्कस्स जीवस्स कम्हि वि जीवे समुप्पण्णो कोहो सल्लीभूदो होदूण हियये ट्ठिदो, पुणो संखेज्जासंखेज्जाणंतेहि भवेहिं तं चेव जीवं दट्ठूण पकोधं[५] गच्छइ, तज्जणिदसंसकारस्स णिकाचिदभावेण तेत्तियमेत्तकालावट्ठाणे विरोहाभावादो। सो तारिसो कोहपरिणामो पव्वयराइसमाणो त्ति भण्णदे, पव्वयसिलाभेदस्सेव तस्सा-णंतेण वि कालेण पुणो संधाणाणुवलंभादो। एसो पुण कोहपरिणामो वेदिज्जमाणो जीवस्स सम्मत्तं पि घादिय मिच्छत्तभावे ठवेइ त्ति। सव्वतिव्वाणुभागो एसो चउत्थो कोहभेदो त्ति जाणावणट्ठमेत्थ सुत्तपरिसमत्तीए चउण्हमंकविण्णासो कओ। एवं ताव कोहस्स चउण्हं ठाणाणं कालेण णिदरिसणोवणयं कादूण संपहि एदीए दिसाए सेसाणं कसायाणं ठाणभेदेसु भावदो णिदरिसणोवणओ गाहासुत्ताणुसारेण अणुगंतव्वो त्ति

पृथिवीभेदके समान छह माहके भीतर तक अवस्थित देखा जाता है। यहाँपर भी कषाय-परिणाम शल्यरूपसे मात्र इतने काल तक अवस्थित रहता है इसका पहलेके समान समर्थन करना चाहिए। अन्यथा सूत्रके साथ विरोध आता है। और यह क्रोध परिणाम अनुभवमें आता हुआ जीवमें संयमासंयमका घात कर जीवको सम्यक्त्वमें स्थापित करता है। यह तीसरा क्रोधभेद पूर्वके क्रोधसे तीव्र अनुभागवाला जानना चाहिए।

*** जो सब भवोंके द्वारा उपशमको नहीं प्राप्त होता है वह पर्वतराजिके समान क्रोधका वेदन करता है।**

§ ५४ यथा—एक जीवके किसी भी जीवमें उत्पन्न हुआ क्रोध शल्य होकर हृदयमें स्थित हुआ, पुनः संख्यात, असंख्यात और अनन्त भवोंके द्वारा उसी जीवको देखकर प्रकृष्ट क्रोधको प्राप्त होता है, क्योंकि उससे उत्पन्न हुए संस्कारके निकाचितरूपसे उतने कालतक अवस्थित रहनेमें विरोधका अभाव है। वह उक्त प्रकारका क्रोधपरिणाम पर्वतराजिके समान कहा जाता है, क्योंकि पर्वत-शिलाभेदके समान उसका अनन्त कालके द्वारा भी पुनः सन्धान नहीं उपलब्ध होता। वेदनमें आता हुआ यह क्रोधपरिणाम जीवके सम्यक्त्वका भी घात कर उसे मिथ्यात्वभावमें स्थापित करता है। सबसे तीव्र अनुभागवाला यह चौथा क्रोधभेद है इस बातका ज्ञान करानेके लिये यहाँ सूत्रके अन्तमें चार अंकका विन्यास किया है। इस प्रकार सर्वप्रथम क्रोधके चारों स्थानोंका कालकी मुख्यतासे उदाहरणद्वारा अर्थसाधन करके अब इसी दिशाद्वारा शेष कषायोंके स्थानभेदोंमें भावकी मुख्यतासे उदाहरणद्वारा अर्थसाधन

५ ता०प्रती [ प ] कोधं इति पाठ।

जाणावणट्ठमुवरिमं सुत्तमाह—

*** एदाणुमाणियं सेसाणं पि कसायाणं कायव्वं ।**

§ ५५. एदीए दिसाए सेसकसायाणं पि भावेण णिदरिसणोवणओ गाहासुत्ताणुसारेण णेदव्वो त्ति भणिदं होइ । एवं चउण्हं सुत्तगाहाणमत्थविहासणं कादूण पयदत्थमुवसंहरेमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

*** एवं चत्तारि सुत्तगाहाओ विहासिदाओ भवंति ।**

§ ५६. एवं ताव आदीदो प्पहुडि चत्तारि सुत्तगाहाओ सोलसण्हं ट्ठाणाणं काल-भावेहिं णिदरिसणोवणए पडिबद्धाओ विहासियाओ । एदीए दिसाए सेसबारस-गाहाओ वि जाणियूण विहासियव्वाओ त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो ।

**एवं चउट्ठाणे त्ति समत्तमणिओगद्दारं ।**

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलांछनम् ।
जीयात्त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

---

गाथासूत्रोंके अनुसार जानना चाहिए इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** इस प्रकार उदाहरणों द्वारा अनुमान करके शेष कषायोंका भी अर्थसाधन करना चाहिए ।**

§ ५५. इस दिशाद्वारा शेष कषायोंका भी भावकी मुख्यतासे उदाहरणद्वारा अर्थसाधन गाथासूत्रोंके अनुसार कर लेना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इस प्रकार चार सूत्र-गाथाओंके अर्थका विशेष व्याख्यान करके अब प्रकृत अर्थका उपसंहार करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** इस प्रकार चार सूत्रगाथाओंका विशेष व्याख्यान किया ।**

§ ५६ इस प्रकार सर्वप्रथम आदिसे लेकर जो चार सूत्रगाथाएं सोलह स्थानोंके काल और भावकी मुख्यतासे उदाहरणद्वारा अर्थसाधनमें प्रतिबद्ध हैं उनका विशेष व्याख्यान किया । इसी पद्धतिसे शेष बारह गाथाओंका भी जानकर विशेष व्याख्यान करना चाहिए यह इस सूत्रका भावार्थ है ।

इस प्रकार चतुःस्थान अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

सिरि-जइवसहाइरियविरइय-चुण्णिसुत्तसमण्णिदं

सिरि-भगवंतगुणहरभडारओवइट्ठं

# कसायपाहुडं

तस्स

## सिरि-वीरसेणाइरियविरइया टीका

# जयधवला

तत्थ

### वंजणे त्ति अणियोगद्दारं

—✻—

**णमो अरहंताणं**

वंजण-लक्खणभूसियमणंजणं तं जिणं णमंसित्ता ।
वंजणसुत्तत्थमहं समासदो वण्णइस्सामि[1] ॥

✻ वंजणे त्ति अणिओगद्दारस्स सुत्तं ।

जो व्यञ्जन और लक्षण चिन्होंसे विभूपित हैं और जो विगत अञ्जन है अर्थात् द्रव्यमल और भावमलसे रहित हैं उन जिनदेवको नमस्कारकर मै व्यञ्जनसूत्रोंके अर्थका संक्षेपमें वर्णन करूँगा ॥ १ ॥

✻ अब व्यञ्जन अनुयोद्वारके गाथासूत्रोंका विशेष व्याख्यान करते हैं ।

१ ता०प्रती वण्णइस्सामो (मि) इति पाठ ।

§ १. चउण्हं कसायाणमेयट्ठपरूवणट्ठमोइण्णस्स[1] वंजणे त्ति अणिओगद्दारस्स विहासणट्ठं गाहासुत्तसमुक्कित्तणं कस्सामो त्ति भणिदं होइ। णवरि एदम्मि अणियोगद्दारे पंचसुत्तगाहाओ पडिबद्धाओ 'वियंजणे पंच गाहाओ' त्ति भणिदत्तादो। तासिं जाइदुवारेणेयवयणणिद्देसो एत्थ कओ त्ति दट्ठव्वो। एवं गाहासुत्तसमुक्कित्तणं पइण्णाय तण्णिद्देसं कुणमाणो पुच्छावक्कमिदमाह—

* तं जहा।

§ २. सुगममेदं पुच्छावक्कं। एवं पुच्छाविसईकयाणं गाहासुत्ताणं पयदत्थाहियारपडिबद्धाणं जहाकममेसो सरूवणिद्देसो—

(३३) कोहो य कोव[2] रोसो य अक्खम संजलण कलह वड्ढी य।
झंझा दोस विवादो दस कोहेयट्ठिया होंति ॥१-८६॥

§ ३. एसा पढमसुत्तगाहा कोहकसायस्स एगट्ठपरूवणट्ठमागया। तं जहा— क्रोधः कोपो रोषः अक्षमा संज्वलनः कलहो वृद्धिः झंझा द्वेषो विवाद इत्येते दश क्रोधपर्यायशब्दाः एकार्थाः प्रतिपत्तव्याः। तत्र क्रोध-कोप-रोषाः धात्वर्थसिद्धत्वात्

---

§ १. चारों कषायोंके पर्यायवाची नामोंका कथन करनेके लिये उपस्थित हुए व्यञ्जन इस अनुयोगद्वारका विशेष व्याख्यान करनेके लिये गाथासूत्रोंका समुत्कीर्तन करेंगे यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इतनी विशेषता है कि इस अनुयोगद्वारमें पाँच सूत्रगाथाएँ प्रतिबद्ध हैं, क्योंकि पहले 'वियंजणे पंच गाहाओ' इस प्रकारका वचन कह आये हैं। उनका जातिद्वारा यहाँ एकवचन निर्देश किया है ऐसा जानना चाहिए। इस प्रकार गाथासूत्रोंके उल्लेखकी प्रतिज्ञा करके उनका निर्देश करते हुए इस पृच्छासूत्रको कहते हैं—

* वह जैसे।

§ २. यह पृच्छावाक्य सुगम है। इस प्रकार पृच्छाके विषय किये गये तथा प्रकृत अर्थाधिकारमें प्रतिबद्ध गाथासूत्रोंका यथाक्रम यह स्वरूपनिर्देश है—

* क्रोध, कोप, रोष, अक्षमा, संज्वलन, कलह, वृद्धि, झंझा, द्वेष और विवाद क्रोधके ये दश एकार्थक नाम हैं ॥१-८६॥

§ ३. यह प्रथम सूत्रगाथा क्रोधकषायके एकार्थक नामोंके कथन करनेके लिये आई है। यथा—क्रोध, कोप, रोष, अक्षमा, संज्वलन, कलह, वृद्धि, झंझा, द्वेष और विवाद ये दश क्रोधके पर्यायवाची शब्द एकार्थक जानने चाहिए। उनमेंसे क्रोध, कोप और रोष शब्द धात्वर्थनिष्पन्न होनेसे सुबोध हैं। अर्थात् उक्त तीनों शब्द क्रमसे क्रुध्, कुप् और रुष् धातुओंसे बने हैं, अतः जिस-जिस अर्थमें ये धातुएँ प्रसिद्ध हैं वही इन शब्दोंका अर्थ है ऐसा यहाँ समझना चाहिए। क्षमारूप परिणामका न होना अक्षमा है। इसीका दूसरा नाम

---

१ ता०प्रतौ -मेयट्ठाणपरूवणट्ठमोइण्णस्स इति पाठः। २. ता०प्रतौ क्रोध (व) इति पाठः।

सुबोधाः। न क्षमा अक्षमा अमर्ष इत्यर्थः। सम्यक् ज्वलतीति संज्वलनः स्व-परोपतापित्वमेतेन क्रोधाग्नेः प्रतिपादितम्। कलहः प्रतीत एव। वर्धन्ते अस्मात् पापायशः-कलह-वैरादय[1] इति वृद्धिः क्रोधकषायः, सर्वेषामनर्थानां तन्मूलत्वात्। झंझा नाम तीव्रतरसंक्लेशपरिणामः, तद्धेतुत्वात् क्रोधकषायोऽपि तथा व्यपदिश्यते। द्वेषः अप्रीतिरन्तःकालुष्यमित्यर्थः। विरुद्धो वादः विवादः स्पर्द्धः संघर्ष इत्यनर्थान्तरम्। एवमेते दश पर्यायशब्दाः क्रोधकषायस्य भवन्तीति गाथार्थः।

क्रोध. कोपो रोष. संज्वलनमथाक्षमा तथा कलह ।
झंझा-द्वेष-विवादो वृद्धिरिति क्रोधपर्याया ॥ १ ॥

**(३४) माण मद दप्प थंभो उक्कास पगास तध समुक्कस्सो।**
**अत्तुक्करिसो परिभव उस्सिद दसलक्खणो माणो ॥२-८७॥**

§ ४. एषा द्वितीयगाथा क्रोधानन्तरनिर्देशार्हस्य मानकषायस्यैकार्थनिरूपणार्थमागता। तद्यथा—मानो मदो दर्प्पः स्तम्भः उत्कर्षः प्रकर्षः समुत्कर्षः आत्मोत्कर्षः परिभव उत्सिक्त इत्येवं दशलक्षणो मानः प्रत्येतव्यः, दशास्य पर्यायशब्दा इत्युक्तं भवति। तत्र जात्यादिभिरात्मानं आधिक्येन मननं मानः। तैरेवाविष्टस्य सुरापीतस्येव

अमर्ष है यह इसका तात्पर्य है। जो भले प्रकार जलता है, इसलिये क्रोधका एक नाम संज्वलन है, क्योंकि यह स्व और परको संतप्त करनेवाला है। इससे क्रोध एक प्रकारकी अग्नि है यह कहा गया है। कलहका अर्थ प्रतीत ही है। इससे पाप, अयश, कलह और वैर आदि वृद्धिको प्राप्त होते हैं, इसलिए क्रोधकषायका एक नाम वृद्धि है, क्योंकि सभी अनर्थोंकी जड क्रोध है। तीव्रतर संक्लेश परिणामका नाम झंझा है, उसका हेतु होनेसे क्रोधकषाय भी उस नामसे व्यपदिष्ट की जाती है। द्वेषका अर्थ अप्रीति है, आन्तरिक कलुषता यह इसका तात्पर्य है। विरुद्ध वादका नाम विवाद है। स्पर्धा और संघर्ष ये इसके नामान्तर हैं। इस प्रकार ये दश क्रोधकषायके पर्यायवाची शब्द हैं यह इस गाथाका अर्थ है।

क्रोध, कोप, रोष, संज्वलन, अक्षमा, कलह, झंझा, द्वेष, विवाद और वृद्धि ये क्रोधके पर्यायवाची शब्द हैं॥ १॥

*** मान, मद, दर्प, स्तम्भ, उत्कर्ष, प्रकर्ष, समुत्कर्ष, आत्मोत्कर्ष, परिभव और उत्सिक्त इन दश लक्षणवाला मान है ॥२-८७॥**

§ ४ यह दूसरी गाथा क्रोधके बाद निर्देशके योग्य मानकषायके एकार्थवाची शब्दोंके कथन करनेके लिये आई है। यथा—मान, मद, दर्प्प, स्तम्भ, उत्कर्ष, प्रकर्ष, समुत्कर्ष आत्मोत्कर्ष, परिभव और उत्सिक्त इस प्रकार दश लक्षणवाला मान जानना चाहिए। मानके ये दश पर्यायवाची शब्द हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। उनमेंसे जाति आदिके द्वारा अपनेको

१ ता०प्रतौ पापायय. कलहवैरादय इति पाठः।

मदनं मदः। तदुद्बृंहिताहंकारस्य दर्प्पणं दर्पः। तदुत्थापितगर्वस्खलद्गद्गदालापस्य सन्निपातावस्थस्येव स्तब्धीभवतः स्तम्भनं स्तम्भः। तथोत्कर्ष-प्रकर्ष-समुत्कर्षाः विज्ञेयाः, तेषामप्यभिमानपर्यायत्वेन रूढत्वात्। आत्मन उत्कर्षः आत्मोत्कर्षः। आत्मोत्कर्षः अहमेव जात्यादिभिरुत्कृष्टो न मत्तः परतरोऽन्योस्तीत्यध्यवसायः। परिभवनं परिभवः परावमान इत्यर्थः। आत्मोत्कर्ष-परपरिभवाभ्यामुद्गत सन्नुत्सिचति गर्वितो भवतीत्युत्सिक्तः। एवमेते दश मानकषायस्य पर्यायशब्दाः।

स्तम्भ-मद-मान-दर्प्प-समुत्कर्ष-प्रकर्षाश्च।
आत्मोत्कर्ष-परिभवा उत्सिक्तश्चेति मानपर्याया॰ ॥ २ ॥

**(३५) माया य सादिजोगो णियदी वि य वंचणा अणुज्जुगदा।**
**गहणं मणुण्णमग्गण कक्क कुहक गूहण च्छण्णो ॥३-८८॥**

§ ५. माया सातिप्रयोगो निकृतिर्वंचना अनृजुता ग्रहणं मनोज्ञमार्गणं कल्कः कुहकं निगूहनं छन्नमित्येते मायापर्यायाः। एतैः शब्दैर्वाच्यो योऽर्थः स मायाकषाय इत्युक्तं भवति। तत्र माया कपटप्रयोगः। सातियोगः कूटव्यवहारित्वं। निकृतिर्वंचना-

---

अधिक मानना मान है। उन्हीं जाति आदिके द्वारा आविष्ट हुए जीवका मदिरा पान किये हुए जीवके समान उन्मत्त होना मद है। उससे अर्थात् मदसे बढ़े हुए अहंकारका दर्प्प होना दर्प्प है। सन्निपात अवस्थामें जिस प्रकार मनुष्य स्खलितरूपसे यद्वा-तद्वा बोलता है उसी प्रकार मदवश उत्पन्न हुए दर्पसे स्खलित यद्वा-तद्वा बोलते हुए स्तब्ध हो जाना स्तम्भ है। उसी प्रकार उत्कर्ष, प्रकर्ष और समुत्कर्ष ये तीनों मानके पर्यायवाची नाम घटित कर लेने चाहिए, क्योंकि ये तीनों शब्द भी अभिमानके पर्यायवाचीरूपसे रूढ़ हैं। अपने उत्कर्षका नाम आत्मोत्कर्ष है। मैं ही जाति आदिरूपसे उत्कृष्ट हूँ, मुझसे अन्य कोई दूसरा उत्कृष्ट नहीं है इस प्रकारके अध्यवसायका नाम आत्मोकर्ष है। दूसरेको परिभवनं अर्थात् नीचा दिखाना परिभव है, दूसरेका अपमान करना यह इसका तात्पर्य है। अपने उत्कर्ष और दूसरेके परिभवके द्वारा उद्गत ( उद्धत ) होता हुआ उत्सिचति अर्थात् गर्वित होना उत्सिक्त कहलाता है। इस प्रकार ये दश मानकषायके पर्यायवाची नाम हैं।

स्तम्भ, मद, मान, दर्प्प, समुत्कर्ष, उत्कर्ष, प्रकर्ष, आत्मोकर्ष, परिभव और उत्सिक्त ये मानके पर्यायवाची शब्द हैं ॥ २ ॥

*** माया, सातियोग, निकृति, वञ्चना, अनृजुता, ग्रहण, मनोज्ञमार्गण, कल्क, कुहक, गूहन और छन्न ये ग्यारह मायाकषायके पर्यायवाची नाम हैं ॥३-८॥**

§ ५ माया, सातिप्रयोग, निकृति, वञ्चना, अनृजुता, ग्रहण, मनोज्ञमार्गण, कल्क, कुहक, निगूहन और छन्न ये मायाके पर्याय हैं। इन शब्दोंके द्वारा जो अर्थ कहा जाता है वह मायाकषाय है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। उनमेंसे कपटप्रयोगका नाम माया है। कुटिल व्यवहारका नाम सातियोग है। वञ्चना-ठगनेके अभिप्रायका नाम निकृति है।

भिप्रायः। वंचना विप्रलम्भनं। अनृजुता योगवक्रता। ग्रहणं मनोज्ञार्थं परकीयमुपादाय निन्हवनं। गहनं चान्तर्गतवंचनाभिप्रायस्य निभृताकारेण गूढमंत्रता। मनोज्ञमार्गणं मनोज्ञस्यार्थस्य परतो मिथ्याविनयादिभिरुपचारैः स्वीकरणाभिप्रायः। कल्को दम्भः। कुहकमसद्भूत-मंत्र-तंत्रोपदेशादिभिर्लोकोपजीवनम्। निगूहनं अन्तर्गतदुराशयस्य बहिराकारसंवरणम्। छन्नं छद्मप्रयोगोऽतिसन्धानं[1] विश्रम्भघातादिरित्यर्थः। त एते मायापर्याया एकादश प्रतिपत्तव्याः।

मायाथ सातियोगो निकृतिरथो वंचना तथानृजुता।
ग्रहणं मनोज्ञमार्गण-कल्क-कुहक-गूहनच्छन्नम् ॥ ३ ॥

**(३६) कामो राग णिदाणो छंदो य सुदो य पेज्ज दोसो य।**
**णेहाणुराग आसा इच्छा मुच्छा य गिद्धी य ॥४-८९॥**
**(३७) सासद पत्थण लालस अविरदि तण्हा य विज्ज जिब्भा य।**
**लोभस्स णामधेज्जा वीसं एगट्ठिया भणिदा ॥५-९०॥**

§ ६. काम-राग-निदान-छंद-सुत-प्रेय-दोषप्रभृतयः त एते लोभस्य नामधेयत्वेन रूढा विंशतिरेकार्थाः शब्दाः पूर्वसूरिभिरुपवर्णिताः प्रत्येतव्याः इति संक्षेपतः सूत्रार्थः। तत्र कमनं कामः इष्टदारापत्यादिपरिग्रहाभिलाप इति प्रथमो लोभपर्यायः। रंजनं रागो

---

विप्रलम्भनका नाम वञ्चना है। योगकी कुटिलताका नाम अनृजुता है। दूसरेके मनोज्ञ अर्थको प्राप्त कर उसका अपलाप करनेका नाम ग्रहण है। और इसका अर्थ गहन करने पर उसका तात्पर्य है—भीतरी वञ्चनाके अभिप्रायका निभृताकाररूपसे गूढ मंत्र करना। मिथ्या विनय आदि उपचारों द्वारा दूसरेसे मनोज्ञ अर्थके स्वीकार करनेके अभिप्रायका नाम मनोज्ञमार्गण है। दम्भका नाम कल्क है। झूठे मन्त्र, तन्त्र और उपदेश आदि द्वारा लोकका उपजीवन करना कुहक है। भीतरी दुराशयका बाह्यमें संवरण करना ( छिपाना ) निगूहन है। छद्मप्रयोग करना छन्न है। अतिसन्धान और विश्रम्भघात आदि छन्न कहलाता है यह इसका तात्पर्य है। ये सब ग्यारह शब्द मायाके पर्यायवाची जानने चाहिए।

माया, सातियोग, निकृति, वञ्चना, अनृजुता, ग्रहण, मनोज्ञमार्गण, कल्क, कुहक, गूहन और छन्न ये मायाके पर्यायनाम हैं ॥ ३ ॥

* काम, राग, निदान, छन्द, सुत या स्वत, प्रेय, दोष, स्नेह, अनुराग, आशा, इच्छा, मूर्च्छा, गृद्धि, साशता या शास्वत, प्रार्थना, लालसा, अविरति, तृष्णा, विद्या और जिह्वा ये बीस लोभके एकार्थक नाम कहे गये हैं ॥४, ५—८९, ९१॥

§ ६ काम, राग, निदान, छन्द, सुत, प्रेय और दोष आदि ये सब लोभके नामधेयरूपसे रूढ बीस एकार्थक शब्द पूर्वाचार्योंद्वारा कहे गये जानने चाहिए यह संक्षेपमें गाथासूत्रोंका अर्थ है। उनमेंसे काम शब्दकी व्युत्पत्ति है—कमनं कामः। इष्ट स्त्री और इष्ट पति या पुत्र

---

१ ता०प्रतौ –प्रयोग इति सन्धानं इति पाठ.।

मनोज्ञविषयाभिष्वंग इति द्वितीयः। जन्मान्तरसम्बन्धेण निधीयते संकल्प्यत इति निदानम्। परोपभोगसमृद्धिदर्शनात् संक्लिष्टतरस्यात्मनो जन्मान्तरेऽपि कथं नामैवं भोगसम्पन्नता मे स्यादित्यनागतप्रार्थनायामभिसन्धानमित्यर्थः। छंदनं छंदो मनोऽनुकूलविषयानुबुभूषायां[1] मनःप्रणिधानमिति यावत्। सूयतेऽभिषिच्यते विविधविषयाभिलापकलुषसलिलपरिषेकैरिति सुतो लोभः। अथवा स्वशब्दः आत्मीयपर्यायवाची, स्वस्य भावः स्वता ममता ममकार इत्यर्थः। सास्मिन्नस्तीति स्वतो लोभः। प्रिय व इति प्रेयः। प्रेयश्चासौ दोषश्च प्रेयदोषो[2] लोभः। कथं पुनरस्य प्रेयत्वे सति दोषत्वम्, विप्रतिषेधादिति चेत्, ? न, आह्लादनमात्रहेतुत्वापेक्षया परिग्रहाभिलापस्य प्रेयत्वे सत्यपि संसारप्रवर्धनकारणत्वाद्दोषतोपपत्तेः[3]। स्नेहनं स्नेहः, इष्टे वस्तुनि सानुरागं मनसः प्रणिधानमित्यर्थः। एवमनुरागोऽपि व्याख्येयः। अविद्यमानस्यार्थस्याशासनमाशेत्यपरो लोभपर्यायः। अथवा आश्यति तनूकरोत्यात्मानमित्याशा लोभ इति

आदि परिग्रहकी अभिलाषाका नाम काम है। यह लोभका प्रथम पर्यायनाम है। रागशब्दकी व्युत्पत्ति है—रंजनं रागः। मनोज्ञ विषयके अभिष्वंगका नाम राग है। यह लोभका दूसरा पर्यायनाम है। जन्मान्तरके सम्बन्धसे निधीयते अर्थात् संकल्प करनेका नाम निदान है। दूसरेके उपभोगकी समृद्धिके देखनेसे जो अत्यन्त संक्लेशको प्राप्त होता है तथा ऐसा विचार करता है कि मेरे जन्मान्तरमें भी इस प्रकारकी भोगसम्पन्नता कैसे होगी इस प्रकार अनागत विषयकी प्रार्थनामें अभिसन्धानका होना निदान है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। छन्द शब्दकी व्युत्पत्ति है—छन्दनं छन्दः। मनके अनुकूल विषयके बार-बार भोगनेमें मनके प्रणिधानका नाम छन्द है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। नाना प्रकारके विषयोंके अभिलाषरूप कलुषित जलके सिंचनोंद्वारा सूयते अर्थात् परिसिंचित करना सुत नामका लोभ है। अथवा 'स्व' शब्द आत्मीय पर्यायका वाची है। 'स्व' का जो भाव वह स्वता कहलाता है। इससे ममता या ममकार लिया गया है। वह जिसमें है वह स्वत नामका लोभ है। जो प्रिय के समान है वह प्रेय कहलाता है। प्रेय जो दोष वह प्रेय-दोष नामका लोभ है।

**शंका**—इसके प्रेयरूप होनेपर दोषपना कैसे बन सकता है, क्योंकि दोनोंके एक होनेका निषेध है?

**समाधान**—नहीं, आह्लादन मात्र हेतुपनेकी अपेक्षा परिग्रहकी अभिलाषाके प्रेयरूप होनेपर भी संसारके बढ़ानेका कारणपना होनेसे उसमें दोषपना बन जाता है।

स्नेह शब्दकी व्युत्पत्ति है—स्नेहनं स्नेहः। इष्ट वस्तुमें अनुराग सहित मनका प्रणिधान होना स्नेह है यह इसका तात्पर्य है। इसी प्रकार अनुरागका भी व्याख्यान करना चाहिए। अविद्यमान अर्थकी आकांक्षा करना आशा नामका दूसरा लोभका पर्यायवाची नाम है। अथवा जो आश्यति अर्थात् आत्माको कृश करता है वह आशा नामका लोभ है ऐसा व्याख्यान करना चाहिए। इच्छा पदकी व्युत्पत्ति है—एषणं इच्छा। बाह्य और आभ्यन्तर

१ ता०प्रतौ -यानुभूषाया इति पाठ.। २. ता०प्रतौ प्रेयो दोषो इति पाठ.। ३. ता०प्रतौ -द्दोषोपपत्तेः इति पाठ। ४ ता०प्रतौ तमूत्करोत्या- इति पाठ.।

व्याख्येयम् । एषणमिच्छा, वाह्याभ्यन्तरपरिग्रहाभिलाष इत्यर्थः । मूर्च्छनं मूर्च्छा, तीव्रतरः परिग्रहाभिष्वंग इत्यर्थः । गर्द्धनं गृद्धिः, परिग्रहेषूपात्तानुपात्तेष्वतितृष्णेत्यर्थः ।

§ ७. साम्प्रतं द्वितीयगाथार्थ उच्यते । 'सासण-पत्थण-लालसेत्यादि—सहाशया वर्तत इति शासस्तस्य भावः साशता, सस्पृहता सतृष्णतेत्ययमपरो लोभपर्यायः । अथवा शश्वद्भवः शाश्वतो लोभः । कथं पुनरस्य शाश्वतिकत्वमिति चेदुच्यते—परिग्रहोपादानात्प्राक्पश्चाच्च[1] सर्वकालमनपायात् शाश्वतो लोभः । प्रकर्षेणार्थनं प्रार्थना धनोपलिप्सेत्यर्थः । लालसा गृद्धिरित्यनर्थान्तरम् । विरमणं विरतिः । न विद्यते विरतिरस्येति अविरतिः । अथवा अविरमणमविरतिरसंयम इत्यनर्थभेदः । तद्धेतुत्वाद-विरतिर्लोभपरिणामः, सर्वेषामेव हिंसानामविरमणभेदानां लोभकषायनिबन्धनत्वादिति । तर्पणं तृष्णा विषयपिपासेत्यर्थः । 'विज्ज जिब्भा य' विद्या जिह्वेत्यपि तस्यैव पर्याय-द्वयमवगन्तव्यम् । तद्यथा—वेदनं विद्या लोभ इत्यर्थः, तदधीनजन्मत्वाल्लोभोऽपि तथोपचर्यते, 'लोभो लाभेन वर्धते' इति वचनात् । अथवा[2] विद्येव विद्या । क इहोप-

परिग्रहकी अभिलाषाका नाम इच्छा है यह इसका तात्पर्य है । मूर्च्छा पदकी व्युत्पत्ति है—मूर्च्छनं मूर्च्छा । परिग्रहसम्बन्धी अति तीव्र अभिष्वंगका नाम मूर्च्छा है यह इसका तात्पर्य है । गृद्धि पदकी व्युत्पत्ति है—गर्द्धनं गृद्धिः । उपात्त और अनुपात्त परिग्रहोंमें अत्यधिक तृष्णाका नाम गृद्धि है यह इसका अर्थ है ।

§ ७. अब सासण-पत्थण-लालसा इत्यादि दूसरी गाथाका अर्थ कहते हैं—आशाके साथ जो रहता है वह शास कहलाता है और उसके भावका नाम शासता है । स्पृहा सहितपना और तृष्णा सहितपना इसका तात्पर्य है । यह लोभका दूसरा पर्यायनाम है । अथवा जो शश्वत हो वह शाश्वत कहलाता है । यह भी लोभका एक नाम है ।

शंका—इसका शाश्वतिकपना कैसे बन सकता है ?

समाधान—परिग्रहके ग्रहण करनेके पहले और बादमें सदा बना रहनेके कारण लोभ शाश्वत कहलाता है ।

प्रकृष्टरूपसे अर्थन अर्थात् चाहना प्रार्थना है, प्रकृष्टरूपसे धनकी चाह करना यह इसका अर्थ है । लालसा और गृद्धि ये एकार्थवाची शब्द हैं । विरति शब्दकी व्युत्पत्ति है—विरमणं विरतिः । जिसमें विरति नहीं है उसका नाम अविरति है । अथवा अविरति शब्दकी व्युत्पत्ति है—अविरमणं अविरतिः । अविरति और असंयम इनमें अर्थभेद नहीं है । उसका हेतु होनेसे अविरति लोभपरिणामस्वरूप है, क्योंकि हिंसासम्बन्धी अविरमण अर्थात् अविरतिके सभी भेद लोभकषायनिमित्तक होते हैं । तृष्णा शब्दकी व्युत्पत्ति है—तर्पणं तृष्णा । विषयसम्बन्धी पिपासाका नाम तृष्णा है यह इसका तात्पर्य है । विद्या और जिह्वा ये दोनों भी लोभके ही दो पर्याय नाम जानने चाहिए । यथा—विद्याकी व्युत्पत्ति है—वेदनं विद्या । यहाँ पर विद्या पदसे लोभ लिया गया है यह इसका अर्थ है, क्योंकि इसकी उत्पत्ति वेदनके अधीन है, इसलिये लोभ भी विद्यारूपसे उपचरित किया गया है । लोभ लाभसे बढ़ता है

१. ता०प्रतौ -पादात्प्राक्पश्चाच्च इति पाठः । २. ता०प्रतौ अथवा इति पाठो नास्ति ।

मार्थः ? दुराराधत्वम् । एवं जिह्वेव जिह्वेत्यसंतोषसाधर्म्यमाश्रित्य लोभपर्यायत्वं वक्तव्यम्। एवमेते लोभकषायस्य विंशतिरेकार्थाः पर्यायाः शब्दाः व्याख्याताः ।

कामो रागनिदाने छंद सुता प्रेय दोषनामान ।
स्नेहानुराग आशा मूर्च्छेच्छागृद्धिसंज्ञाश्च ॥ ४ ॥
साशता प्रार्थना तृष्णा लालसाविरतिस्तथा ।
विद्या जिह्वा च लोभस्य पर्याया विंशति स्मृता. ॥ ५ ॥

एवं वंजणे त्ति समत्तमणिओगद्दारं ।

---

ऐसा वचन भी है। अथवा विद्याके समान होनेसे लोभका नाम विद्या है।

शंका—प्रकृतमें उपमारूप अर्थ क्या है ?

समाधान—दुराराधपना प्रकृतमें उपमार्थ है। अर्थात् जिस प्रकार विद्याकी आराधना कष्टसाध्य होती है उसी प्रकार लोभका आलम्बनभूत भोगोपभोग कष्टसाध्य होनेसे प्रकृतमें लोभको कष्टसाध्य कहा गया है।

इसी प्रकार लोभ जिह्वाके समान होनेसे जिह्वास्वरूप है, यहाँ असंतोषरूप साधर्म्यका आश्रयकर जिह्वा लोभका पर्यायवाची नाम है ऐसा कहना चाहिए। इस प्रकार लोभके इन एकार्थवाची शब्दोंका व्याख्यान किया।

काम, राग, निदान, छन्द, सुत, प्रेय, दोष, स्नेह, अनुराग, आशा, मूर्च्छा, इच्छा, गृद्धि, साशत, प्रार्थना, तृष्णा, लालसा, अविरति, विद्या और जिह्वा ये बीस लोभके पर्यायवाची नाम स्मृत किये गये हैं।

इस प्रकार व्यंजन नामका अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।



ॐ

सिरि-जइवसहाइरियविरइय-चुण्णिसुत्तसमण्णिदं

सिरि-भगवंतगुणहरभडारओवइट्ठं

# कसायपाहुडं

तस्स

## सिरि-वीरसेणाइरियविरइया टीका

# जयधवला

तत्थ

### सम्मत्तमणिओगद्दारं

—⁘—

**णमो अरहंताणं**

पणमह जिणवरवसहं गणहरवसहं तहेव गुणहरवसहं ।
दुसहपरीसहविसहं जइवसहं धम्मसुत्तपाढरवसहं[1] ॥१॥
इय पणमिय जिणणाहे गणणाहे तह य चेव मुणिणाहे ।
सम्मत्तसुद्धिहेउं वोच्छं सम्मत्तमहियारं ॥२॥

जिनवरवृषभ, गणधरवृषभ, गुणधरवृषभ और दुःसह परीषहोंको जीतनेवाले तथा धर्मसूत्रके पाठकोंमें श्रेष्ठ ऐसे यतिवृषभको तुम सब प्रणाम करो ॥१॥

इस प्रकार जिननाथ, गणनाथ और मुनिनाथको प्रणाम कर सम्यक्त्वशुद्धिके निमित्त-रूप सम्यक्त्व अधिकारका मै कथन करता हूँ ॥ २ ॥

१. ता०प्रतौ पाठरवसह इति पाठ ।

*** कसायपाहुडे सम्मत्ते त्ति अणिओगद्दारे अधापवत्तकरणे इमाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ परूवेयव्वाओ।**

§ १. एदस्स सम्मत्तसण्णिदमहाहियारस्स उवक्कमादिभेयभिण्णचउविहावयार-परूवणट्ठमेदं सुत्तमागयं। तं जहा, चउव्विहो एत्थावयारो—उवक्कमो णिक्खेवो णयो अणुगमो चेदि। तत्थ उवक्कमो पंचविहो—आणुपुव्वी णामं पमाणं वत्तव्वदा अत्था-हियारो चेदि। तत्थाणुपुव्वी तिविहा पुव्वाणुपुव्वीआदिभेदेण। एत्थ पुव्वाणुपुव्वीए दसमो एसो अत्थाहियारो। पच्छाणुपुव्वीए छट्ठो। जत्थ-तत्थाणुपुव्वीए अणिद्धारिद-संखाविसेसो एसो अत्थाहियारो त्ति वत्तव्वं। णामं पमाणं च सुगमं। वत्तव्वदा ससमयो तदुभयं वा, सम्मत्तपरूवणाए तप्पडिवक्खपरूवणाविणाभावित्तादो। अत्था-हियारो दुविहो—दंसणमोहस्सुवसामणा खवणा चेदि, दोण्हमेदेसिं सम्मत्ताहियार-जोणित्तादो। णिक्खेव-णयोवक्कमपरूवणा जाणिय कायव्वा।

§ २. इदाणिमणुगमं वत्तइस्सामो। को अणुगमो णाम? पयदाहियारस्स वित्थारपरूवणट्ठं तदवलंबणीभूदगाहासुत्ताणुसरणमणुगमो त्ति इह विवक्खिओ। यदाह—'अधापवत्तकरणे इमाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ परूवेयव्वाओ' त्ति। एतदुक्तं भवति—सम्मत्ते त्ति अणियोगद्दारस्स अत्थविहासणे कीरमाणे दंसणमोहस्सुवसामणा पुव्वमेव

---

*** कषायप्राभृतके सम्यक्त्व नामक अनुयोगद्वारके अन्तर्गत अधःप्रवृत्तकरण-सम्बन्धी इन चार सूत्रगाथाओंका कथन करना चाहिए।**

§ १. इस सम्यक्त्वसंज्ञक महाधिकारके उपक्रम आदि भेदरूप चार प्रकारके अवतार-का कथन करनेके लिये यह सूत्र आया है। यथा—प्रकृतमें अवतार चार प्रकारका है—उपक्रम, निक्षेप, नय और अनुगम। उनमेंसे उपक्रम पाँच प्रकारका है—आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार। उनमेंसे पूर्वानुपूर्वी आदिके भेदसे आनुपूर्वी तीन प्रकारकी है। प्रकृतमें पूर्वानुपूर्वीकी अपेक्षा यह दसवाँ अर्थाधिकार है, पश्चादानुपूर्वीकी अपेक्षा यह छटा अर्थाधिकार है और यत्र-तत्रानुपूर्वीकी अपेक्षा अनिर्धारित संख्यावाला यह अर्था-धिकार है ऐसा यहाँ कथन करना चाहिए। नाम और प्रमाण ये दोनो सुगम हैं। वक्तव्यता स्वसमयवक्तव्यता और तदुभयवक्तव्यता जानना चाहिए, क्योंकि सम्यक्त्वकी प्ररूपणा उसकी प्रतिपक्ष प्ररूपणाके अविनाभावस्वरूप है। अर्थाधिकार दो प्रकारका है—दर्शन-मोहोपशामना और दर्शनमोहक्षपणा, क्योंकि ये दोनों अर्थाधिकार सम्यक्त्व अधिकारके योनिस्वरूप हैं। निक्षेप, नय और उपक्रमका विशेष कथन जानकर करना चाहिए।

§ २. अब अनुगमको बतलाते हैं।

शंका—अनुगम किसे कहते हैं?

समाधान—प्रकृत अधिकारका विस्तारपूर्वक कथन करनेके लिये उसके अवलम्बन-स्वरूप गाथासूत्रोंके अनुसरण करनेको अनुगम कहते हैं ऐसा अर्थ प्रकृतमें विवक्षित है। जैसा कि कहा है—'अधःप्रवृत्तकरणके विषयमें इन चार सूत्र गाथाओंका कथन करना चाहिए।' इसका यह तात्पर्य है—सम्यक्त्व इस अधिकारके अर्थका विशेष व्याख्यान करने पर दर्शन-

परूवेयव्वा, तत्थेव सम्मत्तुप्पत्तिववहारस्स रूढत्तादो। तत्थ य पण्णारस सुत्तगाहाओ गुणहराइरियमुहकमलविणिग्गयाओ पडिबद्धाओ। तत्थ वि तिण्णि करणाणि अधापवत्तकरणादिभेदेण। तेसिं लक्खणं पुरदो भणिस्सामो।

§ ३. तत्थ ताव अधापवत्तकरणे इमाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ पण्णारस-मूलगाहाबहिब्भूदाओ। तस्सेव दंसणमोहोवसामगस्स तदहिमुहावत्थापरूवणप्पियाओ पुव्वमेत्थ परूवेयव्वाओ, तप्परूवणाए विणा पण्णारसमूलगाहाणमत्थविहासाए अणवयारादो त्ति एत्थ जइ वि सामण्णेण अधापवत्तकरणे इमाओ सुत्तगाहाओ परूवेयव्वाओ त्ति वुत्तं तो वि अधापवत्तकरणपढमसमए इमाओ परूवेयव्वाओ त्ति वक्खाणेयव्वं। कुदो? एदाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ अधापवत्तकरणपढमसमए परूविदाओ त्ति पुरदो भणिस्समाणचुण्णिसुत्तणिबंधोवसंहारवक्कादो तारिसविसेसणिण्णयोवलद्धीए। संपहि काओ ताओ गाहाओ त्ति आसंकाए पुच्छापुव्वमुत्तरं पबंधमाह—

* तं जहा।

§ ४. सुगममेदं गाहासुत्तावयारावेक्खं पुच्छावक्कं। एवं पुच्छाविसईकयाणं गाहासुत्ताणं जहाकममेसो सरूवणिद्देसो—

**(३८) दंसणमोहउवसामगस्स परिणामो केरिसो भवे।**
**जोगे कसायउवजोगे लेस्सा वेदो य को भवे॥९१॥**

---

मोहोपशामनाका सर्वप्रथम कथन करना चाहिए, क्योंकि सम्यक्त्वकी उत्पत्तिरूप व्यवहार उसीमें रूढ है। उसमें गुणधर आचार्यके मुखकमलसे निकली हुई पन्द्रह सूत्रगाथाएं प्रतिबद्ध हैं। उसमें भी अधःप्रवृत्तकरण आदिके भेदसे ये तीन करण होते हैं। उनके लक्षणोंका कथन आगे करेंगे।

§ ३ उनमें सर्वप्रथम अधःप्रवृत्तकरणके विषयमें ये चार सूत्रगाथाएँ है जो पन्द्रह मूल गाथाओंसे बहिर्भूत हैं। वे दर्शनमोहका उपशम करनेवाले उसी जीवके उसके अभिमुख होनेरूप अवस्थाका प्ररूपण करती है, उनका सर्वप्रथम यहाँ प्ररूपण करना चाहिए, क्योंकि उनका प्ररूपण किये विना पन्द्रह मूलगाथाओंके अर्थका विशेष व्याख्यान नही हो सकता। इस प्रकार यहाँपर यद्यपि अधःप्रवृत्तकरणके विषयमें इन सूत्रगाथाओंका कथन करना चाहिए ऐसा सामान्यरूपसे कहा है तो भी अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें इनका कथन करना चाहिए ऐसा व्याख्यान करना चाहिए, क्योंकि ये चार सूत्रगाथाएं अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयके विषयमे कही गई हैं ऐसा आगे कहे जानेवाले चूर्णिसूत्रसम्बन्धी उपसंहार वाक्यसे उक्त प्रकारके विशेष निर्णयकी उपलब्धि होती है। अब वे कौन-सी गाथाएं हैं ऐसी आशंका होनेपर पृच्छापूर्वक उत्तर प्रबन्धको कहते हैं—

* यह जैसे।

§ ४ गाथासूत्रोंके अवतारकी अपेक्षा रखनेवाला यह पृच्छावाक्य सुगम है। इस प्रकार पृच्छाके विषयरूपसे विवक्षित गाथासूत्रोंका क्रमसे यह स्वरूपनिर्देश है।

* दर्शनमोहका उपशम करनेवाले जीवका परिणाम कैसा होता है, किस योग, कषाय और उपयोगमें विद्यमान उसके कौनसी लेश्या और वेद होता है॥९१॥

५. एसा गाहा दंसणमोहउवसामगस्स तदुम्मुहावत्थाए पयट्टमाणस्स परिणाम-विसेसपरूवणट्ठं तस्सेव जोग-कसायोवजोग-लेस्सा-वेदभेदाणं च परूवणट्ठमोइण्णा। तत्थ ताव पुव्वद्धेण[1] 'दंसणमोहउवसामगस्स परिणामो केरिसो भवे', किं विसुद्धो विसुद्धयरो संकिलिट्ठो संकिलिट्ठयरो वा त्ति विसोहि-संकिलेसावेक्खो पुच्छाणिद्देसो कओ दट्ठव्वो। पच्छद्धेण वि 'जोगे कसाय उवजोगे लेस्सा वेदो य को भवे' किमविसेसेण सव्वेसिमेव जोगकसायोवजोगादिभेदाणमेदस्स संभवो, आहो अत्थि को विसेसो त्ति तव्विसयविसेसणिण्णयावेक्खो पुच्छाणिद्देसो कओ होइ। एवं पुच्छिदत्थ-विसयविसेसणिण्णयमुवरि चुण्णिसुत्तसंबंधेण कस्सामो, सुत्तसिद्धस्स अत्थस्स पुध परूवणाए फलविसेसाणुवलंभादो। एवं ताव पढमगाहाए संखेवेणुत्थाणत्थपरूवणं कादूण संपहि विदियगाहाए अवयारं कस्सामो—

(३८) काणि वा पुव्वबद्धाणि के वा अंसे णिबंधदि।
कदि आवलियं पविसंति कदिण्हं वा पवेसगो॥९२॥

§ ६. एसा विदिया गाहा दंसणमोहउवसामगस्स णाणावरणादिकम्माणं संतकम्म-बंधोदयावलियपवेसोदीरणाणं पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसविसयाणं[2] पुच्छामुहेण परूवट्ठं ओइण्णं। तं जहा—'काणि वा पुव्वबद्धाणि' त्ति एसो सुत्तस्स पढमावयवो, सव्वेसिं

§ ५. दर्शनमोहके उपशमके सन्मुख हुई अवस्थामें प्रवृत्त हुए दर्शनमोहके उपशामक जीवके परिणामविशेषका कथन करनेके लिये तथा उसीके योग, कषाय, उपयोग, लेश्या और वेदके भेदोंका कथन करनेके लिये यह गाथा आई है। उनमेंसे सर्व प्रथम पूर्वार्धके 'दर्शनमोहके उपशामकका परिणाम कैसा होता है' इस वचन द्वारा क्या विशुद्ध होता है, या विशुद्धतर होता है, संक्लिष्ट होता है या संक्लिष्टतर होता है ? इस प्रकार विशुद्धि और संक्लेशकी अपेक्षा पृच्छाका निर्देश किया हुआ जानना चाहिए। तथा उत्तरार्धके 'किस योग, कषाय और उपयोगमें विद्यमान उसके लेश्या और वेद कौनसा होता है' इस वचनद्वारा क्या सामान्यसे सभी योग, कषाय, और उपयोगादिके भेद इसके सम्भव हैं या कोई विशेषता है इस प्रकार उक्त पृच्छाविषयक विशेष निर्णयकी अपेक्षा रखनेवाला यह पृच्छाका निर्देश किया है। इस प्रकार पूछे गये अर्थका विशेष निर्णय आगे चूर्णिसूत्रके सम्बन्धसे करेंगे, क्योंकि सूत्रसिद्ध अर्थकी पृथक् प्ररूपणामें फलविशेष नहीं पाया जाता। इस प्रकार सर्व प्रथम प्रथम गाथा द्वारा संक्षेपसे उत्थानिकारूप अर्थका कथन करके अब दूसरी गाथाका अवतार करते हैं—

* दर्शनमोहका उपशम करनेवाले जीवके पूर्वबद्ध कर्म कौन-कौन हैं, वर्तमानमें किन कर्मांशोंको बाँधता है, कितने कर्म उदयावलिमें प्रवेश करते हैं और यह किन कर्मोंका प्रवेशक होता है ॥९२॥

§ ६. यह दूसरी गाथा दर्शनमोहका उपशम करनेवाले जीवके ज्ञानावरणादि कर्म-सम्बन्धी प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशविषयक सत्कर्म, बन्ध, उदयावलिप्रवेश और उदीरणाका पृच्छामुखसे कथन करनेके लिये आई है। यथा—'काणि वा पुव्वबद्धाणि' यह

1 ता०प्रतौ पुव्वद्धेण वि इति पाठ.। २. ता०प्रतौ –विसेसियाणं इति पाठः।

कम्माणं पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेससंतकम्मपरूवणाए पडिबद्धो। कधं पुण 'काणि वा पुव्वबद्धाणि' त्ति सामण्णणिद्देसेण पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसविसेसोवलद्धी होदि त्ति ? णेदमेत्थासंकणिज्जं, सामण्णणिद्देसे सव्वेसिं विसेसाणं संगहे विरोहाभावादो। 'के वा अंसे णिबंधदि' त्ति एसो सुत्तस्स विदियावयवो तेसिं चेव पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेस-विसेसियणवगबंधसरूवणिरूवणट्ठमोइण्णो, अंससद्दस्स पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसविसेस-वाचिणो इह ग्गहणादो। 'कदि आवलियं पविसंति' त्ति एसो सुत्तस्स तदियावयवो सव्वेसिमेव कम्माणं मूलुत्तरपयडिभेयभिण्णाणं ट्ठिदिक्खयजणिदोदयावलियपवेसगवेसणट्ठ-मुवणिबद्धो। उदयाणुदयसरूवेण उदयावलियं पविसमाणपयडिगवेसणे एसो सुत्तावयवो पडिबद्धो त्ति भावत्थो। 'कदिण्हं वा पवेसगो' एसो चउत्थो गाहासुत्तावयवो सव्वेसिं कम्माणमुदीरणामुहेण उदयावलियं पवेसिज्जमाणपयडीणं परूवणाए पडिबद्धो। एदं च सव्वं पुच्छासुत्तं। एदिस्से पुच्छाए णिण्णयमुवरि चुण्णिसुत्तसंबंधेण कस्सामो। संपहि तदियगाहाए अवयारं कस्सामो।

(४०) के अंसे झीयदे पुव्वं बंधेण उदएण वा।
अंतरं वा कहिं किच्चा के के उवसामगो कहिं ॥९३॥

गाथासूत्रका प्रथम अवयव सभी कर्मोके प्रकृतिसत्कर्म, स्थितिसत्कर्म, अनुभागसत्कर्म और प्रदेशसत्कर्मके कथन करनेमे प्रतिबद्ध है।

शंका—'पूर्वबद्ध कर्म कौन हैं' इस प्रकार सामान्य निर्देश द्वारा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशविशेषकी उपलब्धि कैसे होती है ?

समाधान—यहाँ ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, सामान्य निर्देशमें सभी विशेषों-का संग्रह होनेमें कोई विरोध नही आता।

'के वा अंसे णिबंधदि' यह गाथासूत्रका दूसरा अवयव उन्ही कर्मोंके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशविशेषरूप नवकबन्धके स्वरूपके निरूपणके लिये आया है, क्योकि यहाँ पर अंश शब्द प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशविशेषका वाची ग्रहण किया गया है। 'कदि आवलियं पविसंति' यह गाथासूत्रका तीसरा अवयव मूल और उत्तर प्रकृतियोके भेदसे अनेक प्रकारके सभी कर्मोके स्थितिक्षयजन्य उदयावलिप्रवेशके अनुसंधानके लिये निबद्ध किया गया है। उदय और अनुदयरूपसे उदयावलिमे प्रवेश करनेवाली प्रकृतियोंके अनुसंधानमें गाथासूत्रका यह अवयव प्रतिबद्ध है यह इसका भावार्थ है। 'कदिण्हं वा पवेसगो' गाथासूत्र-का यह चौथा अवयव सभी कर्मोंकी उदीरणा द्वारा उदयावलिमें प्रविष्ट कराई जानेवाली प्रकृतियोंकी प्ररूपणामे प्रतिबद्ध है। यह सब पृच्छासूत्र है। इस पृच्छाका निर्णय आगे चूर्णि-सूत्रके सम्बन्धसे करेंगे। अब तीसरी गाथाका अवतार करते हैं—

दर्शनमोहके उपशमके सन्मुख होनेपर पूर्व ही बन्ध और उदयरूपसे कौनसे कर्मांश क्षीण होते हैं ? आगे चलकर अन्तरको कहाँ पर करता है और कहाँ पर किन-किन कर्मोंका

१. ता०प्रतौ –भवेसणो इति पाठ ।

§ ७. एसा तदियसुत्तगाहा पुव्वद्धेण सव्वेसिं कम्माणं पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसविसेसिदबंधोदएहिं झीणाझीणत्तगवेसणट्ठमागया। के कर्मांशाः प्रकृति-स्थित्यनु-भव[1]-प्रदेशविशेषिताः दर्शनमोहोपशमनोन्मुखावस्थायां पूर्वमेव क्षीयन्ते, के वा न क्षीयन्त इति सूत्रे पदसम्बन्धावलंबनात्। तहा पच्छद्धेण वि पुरदो भविस्समाणमंतरं कम्हि उद्देसे होइ, केसिं वा कम्माणं कम्हि उद्देसे एसो उवसामगो होदि त्ति एवंविहस्स अत्थविसेसस्स पुच्छामुहेण परूवणाए पडिबद्धा। एवंविहाणं च पुच्छाणिद्देसाणं णिरारेगीकरणमुवरि चुण्णिसुत्तसंबंधेण कस्सामो। संपहि जहावसरपत्ताए चउत्थगाहाए एसो अवयारो—

(४१) किं ट्ठिदियाणि कम्माणि अणुभागेसु केसु वा।
ओवट्टिदूण सेसाणि कं ट्ठाणं पडिवज्जदि ॥९४॥

§ ८. एदिस्से चउत्थगाहाए पुव्वद्धेण विदियगाहाए परूविदट्ठिदि-अणुभागसंत-कम्माणं पुच्छामुहेणाणुवादं कादूण तदो पच्छद्धेण ट्ठिदि-अणुभागखंडयपरूवणाए बीजपद-मुवइट्ठं। दंसणमोहउवसामगो कम्हि उद्देसे काणि ट्ठिदि-अणुभागविसेसिदाणि कम्माणि ओवट्टेयूण कं ठाणमवसेसं पडिवज्जइ, ट्ठिदीए केत्तिए भागे विणासेयूण कइत्थं भागं

---

उपशामक होता है ? ॥९३॥

§ ७. यह तीसरी गाथा पूर्वार्ध द्वारा सभी कर्मोंके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशविशिष्ट बन्ध और उदयरूपसे क्षीण-अक्षीणपनेके अनुसन्धान करनेके लिए आई है। प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशविशिष्ट कौनसे कर्मांश दर्शनमोहके उपशमके सन्मुख होनेकी अवस्थामें पहले ही क्षीण हो जाते हैं और कौनसे कर्म क्षीण नहीं होते हैं इस प्रकार सूत्रमें पदोंके सम्बन्धका अवलम्बन लिया है। तथा उत्तरार्धद्वारा भी आगे होनेवाला अन्तर किस स्थान पर होता है और किन कर्मोंका किस स्थानपर यह उपशामक होता है इस तरह इस प्रकारका अर्थविशेष पृच्छाद्वारा प्ररूपणामें प्रतिबद्ध है। तथा इस प्रकारके पृच्छानिर्देशोंका खुलासा आगे चूर्णिसूत्रके सम्बन्धसे करेंगे। अब क्रमसे अवसर प्राप्त चौथी गाथाका यह निर्देश है—

* दर्शनमोहका उपशम करनेवाला जीव किस स्थितिवाले कर्मोंका तथा किन अनुभागोंमें स्थित कर्मोंका अपवर्तन करके शेष रहे उनके किस स्थानको प्राप्त होता है ॥९४॥

§ ८. इस चौथी गाथाके पूर्वार्धद्वारा दूसरी गाथामें कहे गये स्थितिसत्कर्मों और अनुभाग सत्कर्मोंका पृच्छाद्वारा अनुवाद करके अनन्तर उत्तरार्ध द्वारा स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डकसम्बन्धी प्ररूपणाके बीजपदका निर्देश किया है। दर्शनमोहका उपशामक जीव किस स्थानपर स्थितिविशेष और अनुभागविशेषसे युक्त किन कर्मोंका अपवर्तन कर अवशिष्ट किस स्थानको प्राप्त होता है, क्योंकि स्थितिके कितने भागोंका विनाश कर कितने

---

१. ता०प्रतौ -स्थित्यनुभाव इति पाठः।

परिसेसेइ, अणुभागस्स वा केत्तिये भागे ओवट्टेदूण केवडियं भागमुवसेसेदि त्ति सुत्तत्थ-संबंधावलंबणादो। एवमेदेसिं गाहासुत्ताणमुत्थाणत्थपरूवणं कादूण संपहि एदेसिं वित्थारत्थपरूवणट्ठमुत्तरं चुण्णिसुत्तपबंधमणुसरामो।

* एदाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ अधापवत्तकरणस्स पढमसमए परूविदव्वाओ।

§ ९. एवं भणंतस्सायमहिप्पाओ—एदाओ सुत्तगाहाओ अधापवत्तकरणपढम-समयादो हेट्ठिमोवरिमावत्थासु पडिबद्धत्थपरूवणाए णिबद्धाओ। तम्हा दोण्हमवट्ठाणं साहारणभावेण मज्झावत्थाए मज्झदीवयसरूवेणेदासिं परूवणं कायव्वमिदि जाणावणट्ठ-मेदाओ गाहाओ अधापवत्तकरणपढमसमए परूवेयव्वाओ त्ति भणिदं होइ। संपहि 'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति णायमवलंबिय पढमं ताव पढमगाहासुत्तत्थं विहासिदु-कामो इदमाह—

* तं जहा।

§ १०. सुगमं।

* 'दंसणमोहउवसामगस्स परिणामो केरिसो भवे' त्ति विहासा।

§ ११. एदस्स ताव पढमगाहापुव्वद्धस्स अत्थविहासा एण्हिमहिकीरदि त्ति वुत्तं होइ।

---

भागको शेष बचाता है तथा अनुभागके कितने भागोंका अपवर्तन कर कितने भागको शेष बचाता है इस प्रकार सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्धका अवलम्बन लिया गया है। इस प्रकार इन गाथासूत्रोंके उत्थानिकारूप अर्थका कथन कर अब इनके विस्तारपूर्वक अर्थका कथन करनेके लिए आगेके चूर्णिसूत्रके प्रबन्धका अनुसरण करते हैं—

* ये चार सूत्रगाथाएँ अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें कहनी चाहिए।

§ ९ ऐसा कहनेका यह अभिप्राय है—ये सूत्रगाथाऐ अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे पूर्वकी और बादकी अवस्थाओंमें प्रतिबद्ध अर्थकी प्ररूपणा करनेमें निबद्ध हैं, इसलिये दोनों अवस्थाओंके लिये साधारण ऐसी मध्यकी अवस्थामें मध्यदीपकरूपसे इनका कथन करना चाहिए इस बातका ज्ञान करानेके लिये ये गाथाऐं अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें कथन योग्य हैं यह कहा है। अब 'उद्देश्यके अनुसार निर्देश किया जाता है' इस न्यायका अवलम्बन लेकर सर्वप्रथम प्रथम गाथासूत्रके अर्थका विशेष व्याख्यान करनेकी इच्छासे इसे कहते हैं—

* वह जैसे।

§ १० यह सूत्र सुगम है।

* 'दर्शनमोहके उपशामकका परिणाम कैसा होता है ?' इसकी विभाषा।

§ ११ सर्वप्रथम प्रथम गाथाके इस पूर्वार्धके अर्थका विशेष व्याख्यान इस समय अधिकृत करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* तं जहा ।

§ १२. सुगमोऽयं यथाप्रतिज्ञातार्थविषयः प्रश्नोपन्यासः ।

* परिणामो विसुद्धो ।

§ १३. दंसणमोहउवसामगस्स परिणामो विसुद्धो चेव होइ, णाविसुद्धो त्ति सुत्तत्थसंबंधो । विशुद्धतरोऽस्य परिणाम इत्युक्तं भवति । अधःप्रवृत्तकरणप्रथमसमयमधिकृत्यैतत्प्रतिपादितं भवति । न केवलमधःप्रवृत्तकरणप्रारंभसमय एवास्य परिणामो विशुद्धिकोटिमवगाढः, अपि तु प्रागप्यन्तर्मुहूर्तात्प्रभृति विशुध्यन्नेवायमागत इति प्रदर्शनार्थमुत्तरसूत्रमासूत्रयत् सूत्रकारः—

* पुव्वं पि अंतोमुहुत्तप्पहुडि अणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झमाणो आगदो ।

§ १४. कुत एवमिति चेत् ? मिथ्यात्वगर्तादतिदुस्तरादात्मानमुद्धर्तुमनसोऽस्य सम्यक्त्वरत्नमलब्धपूर्वमासिसादयिषोः प्रतिक्षणं क्षयोपशमोपदेशलब्ध्यादिभिरुपबृंहितसामर्थ्यस्य संवेग-निर्वेदाभ्यामुपर्युपरि उपचीयमानहर्षस्य समयं प्रत्यनन्तगुणविशुद्धिप्रतिपत्तेरविप्रतिषेधात् ।

---

* वह जैसे ।

§ १२. यथा प्रतिज्ञात अर्थको विषय करनेवाला यह प्रश्नका उपन्यास सुगम है ।

* परिणाम विशुद्ध होता है ।

§ १३. दर्शनमोहके उपशामकका परिणाम विशुद्ध ही होता है, अविशुद्ध नहीं होता इस प्रकार सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध है । इसका परिणाम विशुद्धतर होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयको अधिकृत कर यह कहा है । केवल अधःप्रवृत्तकरणके प्रारम्भके समयमें ही इसका परिणाम विशुद्धिरूप कोटिको स्पर्श नहीं करता, किन्तु इसके पूर्व ही अन्तर्मुहूर्तसे लेकर विशुद्ध होता हुआ वह आया है इस बातको बतलानेके लिये सूत्रकारने इस सूत्रकी रचना की है—

* अधःप्रवृत्तकरणके पूर्व ही अन्तर्मुहूर्तसे लेकर अनन्तगुणी विशुद्धिसे विशुद्ध होता हुआ वह आया है ।

§ १४. शंका—ऐसा किस कारणसे है ?

समाधान—क्योंकि जो अति दुस्तर मिथ्यात्वरूपी गर्तसे उद्धार पानेके मनवाला है, जो अलब्धपूर्व सम्यक्त्वरूपी रत्नको प्राप्त करनेकी तीव्र इच्छावाला है, जो प्रति समय क्षयोपशमलब्धि और देशनालब्धि आदिके बलसे वृद्धिंगत सामर्थ्यवाला है और जिसके संवेग और निर्वेदके द्वारा उत्तरोत्तर हर्षमें वृद्धि हो रही है उसके प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धिकी प्राप्ति होनेका निषेध नहीं है ।

विशेषार्थ—संसारी जीवके मिथ्यात्वकी भूमिकामें सम्यग्दर्शनको प्राप्त करनेके सन्मुख होनेकी पूर्व तैयारी किस प्रकारकी होती है यह यहाँ स्पष्टरूपसे बतलाया गया है । संसार

§ १५. एवं ताव गाहापुव्वद्धमस्सियूण परिणामस्स विसुद्धभावं पदुप्पाइय संपहि गाहापच्छद्धावलंबणेण जोगादिविसेसपरूवणट्ठं सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

* जोगे त्ति विहासा ।

§ १६. जोगे त्ति' पदस्स एण्हिं अत्थविहासा कीरदि त्ति भणिदं होइ ।

* अण्णदरमणजोगो वा अण्णदरवचिजोगो वा ओरालियकायजोगो वा वेउव्वियकायजोगो वा ।

---

और संसारके कारणोंके प्रति जिसके चित्तमें उदासीनता आई है वही जीव सम्यग्दर्शनका प्राप्त करनेका अधिकारी है। इसी तथ्यको स्पष्ट करते हुए यहाँ सर्व प्रथम यह बतलाया गया है कि जो अति दुस्तर मिथ्यात्वरूपी गर्तमेंसे निकलना चाहता है। किन्तु इतना विचार करने-मात्रसे कि संसार और संसारके कारण हितकर नहीं, इस जीवको संसारसे छुटकारा नहीं मिल सकता। इसके लिये उसके चित्तमें निरन्तर मोक्ष और मोक्षके कारणोंके प्रति उत्तरोत्तर भीतरसे आदरभाव होना चाहिए। यह तभी सम्भव है, जब कि यह जीव मिथ्यात्वसेवनके कारणरूप बाह्य साधन कुदेव, कुगुरु और कुशास्त्रोंकी सेवा-अध्ययन आदि छोड़कर परमार्थ-स्वरूप देव, गुरु और परमागमकी सेवा-स्वाध्याय आदिमें सावधान बने। जब भीतरसे यह जीव हर्षातिरेकसे आपूरित होकर परमार्थस्वरूप देव और गुरुकी उपासना तथा परमागमके श्रवण-मननमें निरन्तर सावधान रहता है तब उसके उत्तरोत्तर परिणामोंमें विशुद्धि होकर भीतर क्रिया-परिणाम द्वारा जो बाह्य लाभ होता है उस लाभको ही परमागममें चार लब्धियों-की प्राप्ति कहा है। वे चार लब्धियाँ ये हैं—क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि और प्रायोग्यलब्धि। उनका स्वरूप इस प्रकार है—परिणामोंकी विशुद्धिवश पूर्वमें संचित हुए कर्मोंके अनुभागस्पर्धकोंके प्रति समय अनन्तगुणे हीन होकर उदीरित होनेका नाम क्षयोप-शमलब्धि है। प्रतिसमय अनन्तगुणे हीन होकर उदीरणाको प्राप्त हुए अनुभाग स्पर्धकोंके निमित्तसे ऐसे परिणामोंका होना जो साता आदि प्रशस्त प्रकृतियोंके बन्धके निमित्त हैं और असाता आदि अशुभ कर्मोंके बन्धके विरुद्ध हैं, विशुद्धिलब्धि है। छह द्रव्य और नौ पदार्थोंके उपदेशका नाम देशना है। उस देशनासे परिणत आचार्य आदिकी उपलब्धि तथा उपदिष्ट अर्थके ग्रहण, धारण और विचार करनेरूप शक्तिकी प्राप्तिका नाम देशनालब्धि है। तथा सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट अनुभागका घात कर उन्हें क्रमसे अन्तःकोडाकोडी सागरोपमप्रमाण स्थितिके भीतर और द्विस्थानीय अनुभागमें स्थापित करना प्रायोग्यलब्धि है। जो जीव उक्त चार लब्धियोंके सद्भावमें अन्तस्तत्त्वके मननपूर्वक उत्तरोत्तर परिणामोंकी विशुद्धिद्वारा सम्यक्त्व ग्रहणके सन्मुख हो वह अधःकरण परिणामोंको प्राप्त होता है, उसके इन चार लब्धियोंका सद्भाव नियमसे होता है यह समग्र कथनका तात्पर्य है।

§ १५ इस प्रकार सर्व प्रथम गाथाके पूर्वार्धका आश्रय कर परिणामकी विशुद्धिका कथन कर अब गाथाके उत्तरार्धके अवलम्बन द्वारा योग आदि विशेषोंका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* 'योग' इस पदकी विभाषा।

§ १६ इस समय 'योग' इस पदका विशेष व्याख्यान करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* अन्यतर मनोयोग, अन्यतर वचनयोग, औदारिक काययोग या वैक्रियिक काययोगहोता है।

§ १७. जोगो णाम जीवपदेसाणं कम्मादाणणिबंधणो परिप्फंदपज्जाओ। सो च तिविहो—मणजोगो वचिजोगो कायजोगो चेदि। तत्थ मणजोगो चउव्विहो सच्च-मोस-सच्चमोसासच्चमोसभेदेण। एवं वचिजोगो वि चउव्विहो वत्तव्वो। कायजोगो वि सत्तविहो होइ। एवमेदेसु जोगभेदेसु दंसणमोहोवसामगस्स कदमो जोगो होदि त्ति भणिदे मणजोगभेदेसु ताव अण्णदरो मणजोगो होइ, चउण्ह[1] पि तेसिमेत्थ संभवे विरोहाणुवलंभादो। एवं वचिजोगभेदाणं पि वत्तव्वं। कायजोगो पुण ओरालियकाय-जोगो वेउव्वियकायजोगो वा होइ, अण्णेसिमिहासंभवादो। एदेसिं दसण्हं पज्जत्त-जोगाणमण्णदरेण जोगेण परिणदो पढमसम्मत्तुप्पायणस्स जोग्गो होइ, ण सेसजोग-परिणदो त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थणिण्णओ।

* कसाये त्ति विहासा।

§ १८. सुगमं।

* अण्णदरो कसायो।

§ १९. दंसणमोहोवसामगस्स कोहादीणं चउण्हं कसायाणं मज्झे अण्णदरो

---

§ १७. जीवप्रदेशोंकी कर्मोंके ग्रहणमे कारणभूत परिस्पन्दरूप पर्यायका नाम योग है। वह योग तीन प्रकारका है—मनोयोग, वचनयोग और काययोग। उनमेंसे सत्यमनोयोग, मृषामनोयोग, सत्य-मृषामनोयोग और असत्य-मृषामनोयोगके भेदसे मनोयोग चार प्रकारका है। इसी प्रकार वचनयोग भी चार प्रकारका कहना चाहिए। काययोग भी सात प्रकारका है। इस प्रकार योगके इन भेदोंमेंसे दर्शनमोहके उपशामकके कौनसा योग होता है ऐसा कहने पर उसका यह समाधान है कि मनोयोगके भेदोंमेंसे तो अन्यतर मनोयोग होता है, क्योंकि उन चारोंके ही यहाँ प्राप्त होनेमें किसी प्रकारका विरोध नहीं पाया जाता। इसी प्रकार वचनयोगके भेदोंका भी कथन करना चाहिए। परन्तु काययोग औदारिककाययोग या वैक्रियिककाययोग होता है, क्योंकि अन्य काययोगोंका प्राप्त होना असम्भव है। इन दस पर्याप्त योगोंमेंसे अन्यतर योगसे परिणत हुआ जीव प्रथम सम्यक्त्वके प्राप्त करनेके योग्य होता है, शेष योगोंसे परिणत हुआ जीव नहीं इस प्रकार यहाँ पर सूत्रार्थका निर्णय है।

विशेषार्थ—जो जीव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है वह संज्ञी पञ्चेन्द्रिय होनेके साथ पर्याप्त भी होना चाहिए यह इस कथनसे स्पष्ट ज्ञात होता है, क्योंकि उक्त दश प्रकारके योग पर्याप्त अवस्थामें ही पाये जाते हैं।

* 'कषाय' इस पदकी विभाषा।

§ १८. यह सूत्र सुगम है।

* अन्यतर कषाय होती है।

§ १९. दर्शनमोहका उपशम करनेवाले जीवके क्रोधादि चार कषायोंमेंसे अन्यतर

---

१ ता०प्रतौ चउव्विहं इति पाठ।

कसायपरिणामो होदि त्ति भणिदं होइ, तेसिमेक्कस्स वि पयदविसए विरोहाणुवलंभादो। तत्थ किमेसो वड्ढमाणकसायपरिणामो आहो हायमाणकसायपरिणामो त्ति एदिस्से आसंकाए णिरारेगीकरणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

*** किं सो वड्ढमाणो हायमाणो त्ति ? णियमा हायमाणकसायो ।**

§ २०. किं कारणं ? विसुद्धीए वड्ढमाणस्सेदस्स वड्ढमाणकसायत्तेण सह विरोहादो । तदो कोहादिकसायाण विट्ठाणाणुभागोदयजणिदं तप्पाओग्गं मंदयरकसाय-परिणाम मणुभवंतो एसो सम्मत्तमुप्पाएदुमाढवेइ त्ति सिद्धो सुत्तस्स समुदायत्थो ।

*** उवजोगे त्ति विहासा ।**

§ २१. कः पुनरुपयोगो नाम ? उपयुंक्तेऽनेनेत्युपयोगः, आत्मनोऽर्थग्रहण-परिणाम इत्यर्थः । स पुनर्द्वेधा व्यवतिष्ठते साकारेतरभेदात् । तत्र साकारो ज्ञानोपयोगः । अनाकारो दर्शनोपयोगः । तद्भेदाश्च मतिज्ञानादयश्चक्षुर्दर्शनादयश्च । तत्रायं कतरे-णोपयोगेन परिणतः सन् प्रथमसम्यक्त्वमुत्पादयतीत्यत्रोत्तरमाह—

---

कषायपरिणाम होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है, क्योंकि उनमेंसे एकका भी प्रकृत विषयमें विरोध नही पाया जाता। उनमेंसे यह क्या वर्धमान कषाय परिणामवाला होता है या हीयमान कषाय परिणामवाला होता है। इस प्रकार इस आशंकाका निराकरण करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** क्या वह वर्धमान कषायवाला होता है या हीयमान कषायवाला होता है ? नियमसे हीयमान कषायवाला होता है ।**

§ २० क्योंकि विशुद्धिसे वृद्धिको प्राप्त होनेवाले इसके वर्धमान कषायके साथ रहनेका विरोध है, इसलिए क्रोधादि कषायोंके द्विस्थानीय अनुभागके उदयसे उत्पन्न हुए तत्प्रायोग्य मन्दतर कषाय परिणामका अनुभवन करता हुआ सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेके लिये आरम्भ करता है इस प्रकार इस सूत्रका समुदायरूप अर्थ सिद्ध हुआ।

**विशेषार्थ**—पहले क्षयोपशम आदि चार लब्धियोंके स्वरूप निर्देशके प्रसंगसे प्रायोग्य लब्धिका स्वरूप निर्देश कर आये हैं। उसीसे यह स्पष्ट हो जाता है कि जो जीव सम्यक्त्व ग्रहणके सन्मुख होता है उसके अन्य कर्मोंके समान मोहनीय कर्मका अनुभाग विशुद्धिवश द्विस्थानीय हो जाता है। उसमें भी प्रति समय उसमें अनन्तगुणी हानि होती जाती है, इसलिये इस जीवके हीयमान कषायपरिणामका ही उदय रहता है यह सिद्ध होता है।

*** 'उपयोग' इस पदकी विभाषा ।**

§ २१. **शंका**—उपयोग किसका नाम है ?

**समाधान**—जिसके द्वारा उपयुक्त होता है उसका नाम उपयोग है। आत्माके अर्थके ग्रहणरूप परिणामका नाम उपयोग है यह उक्त कथनका अर्थ है।

वह उपयोग साकार और अनाकारके भेदसे दो प्रकारका है। उनमेंसे साकार ज्ञानोयोग है और अनाकार दर्शनोपयोग है। तथा उनके क्रमसे भेद मतिज्ञानादि और चक्षु-दर्शनादिक हैं। उनमेंसे यह दर्शन मोहका उपशामक जीव किस उपयोगसे परिणत होता हुआ प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है ऐसा प्रश्न होनेपर यहाँ उसका उत्तर देते हुए कहते हैं—

* णियमा सागारुपजोगो ।

§ २२. कुतोऽयं नियमश्चेत् ? अनाकारोपयोगेनाविमर्शकेन सामान्यमात्राव-ग्राहिणा विमर्शात्मकतत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणसम्यग्दर्शनप्रतिपत्तिं प्रत्यभिमुखीभावानुपपत्तेः । मदि-सुदअण्णाणेहिं विभंगणाणेण वा परिणदो होदूण एसो पढमसम्मत्तुप्पायणं पडि तेण पयट्टइ त्ति सिद्धं ।

* लेस्सा त्ति विहासा ।

§ २३. सुगमं ।

* तेउ-पम्म-सुक्कलेस्साणं णियमा वड्ढमाणलेस्सा ।

---

* नियमसे साकार उपयोग होता है ।

§ २२. शंका—यह नियम किस कारणसे है ?

समाधान—क्योंकि अविमर्शक और सामान्यमात्रग्राही चेतनाकार उपयोगके द्वारा विमर्शकस्वरूप तत्त्वार्थ श्रद्धान लक्षण सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके प्रति अभिमुखपना नहीं बन सकता । इसलिए मति-श्रुत अज्ञानरूपसे या विभंगज्ञानरूपसे परिणत होकर यह जीव प्रथम-सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेके प्रति उस उपयोगद्वारा प्रवृत्त होता है यह सिद्ध हुआ ।

विशेषार्थ—सर्व प्रथम यहाँ दर्शनके स्वरूपका निर्देश करके यह बतलाया गया है कि सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके प्रति सन्मुखपना ज्ञानोपयोग कालमें ही सम्भव है दर्शनोपयोग कालमें नहीं, क्योंकि जब यह जीव जीवादि नौ पदार्थोंके स्वरूपका निर्णय करनेके साथ अपने साकार उपयोग परिणामके द्वारा ज्ञायकस्वरूप त्रिकाली आत्माके सन्मुख होता है तभी उसके सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिकी सन्मुखता कही जा सकती है । ऐसे जीवके उस समय मति-श्रुताज्ञान होने पर भी वह कारण विपर्यास, भेदाभेदविपर्यास और स्वरूपविपर्यासरूप न होकर आगम, गुरूपदेश और तत्त्वको स्पर्श करनेवाली युक्तिके बलसे यथावस्थित जीवके स्वरूपको अनु-गमन करनेवाला ही होता है । ऐसे जीवके चार लब्धियोंमें देशनालब्धिके स्वीकार करनेका प्रयोजन भी यही है । यहाँ टीकाकारने मति-श्रुत साकार उपयोगके साथ विभंगज्ञानका भी उल्लेख किया है । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि टीकाकार मति-श्रुत साकार उपयोगके समान विभंगज्ञानके द्वारा भी सम्यग्दर्शनके सन्मुख होनेकी पात्रता मानते हैं । किन्तु धवलामें इसी प्रसंगसे 'मदि-सुदसागारुवजुत्तो' पद द्वारा उसे मति-श्रुतसाकार उपयोगवाला ही बतलाया है । मतिज्ञान और श्रुतज्ञान अविनाभावी हैं और नय विकल्प श्रुतज्ञानमें ही सम्भव हैं, इसलिए ऐसे जीवको मति-श्रुत साकार उपयोगवाला कहना तो युक्तियुक्त है, परन्तु विभंग उपयोगवाला क्यों कहा यह विचारणीय है । मालूम पड़ता है कि जो नारकी आदि जीव विभंगज्ञानसे पूर्वभव आदिको जान कर पश्चात् मति-श्रुत साकार उपयोगके बलसे आत्माके सन्मुख होता है उसकी अपेक्षा टीकाकारने यह कथन किया है ।

* लेश्या इस पदकी विभाषा ।

§ २३. यह सूत्र सुगम है ।

* पीत, पद्म और शुक्ल लेश्याओंमेंसे नियमसे कोई एक वर्धमान लेश्या होती है ।

§ २४. तेउ-पम्म-सुक्कलेस्साणमण्णदरा णियमा वड्ढमाणलेस्सा एदस्स होदि, ण हायमाणा त्ति वुत्तं होइ। एदेण किण्ह-णील-काउलेस्साणं हायमाण-तेउ-पम्म-सुक्कलेस्साणं च पडिसेहो कओ दट्ठव्वो। एत्थ चोदगो भणइ—ण एस वड्ढमाणसुहतिलेस्साणियमो एत्थ घडदे, णेरइएसु सम्मत्तुप्पायणे वावदेसु असुहतिलेस्साणं पि संभवोलंभादो? ण एस दोसो, तिरिक्ख-मणुस्से अस्सियूणेदस्स सुत्तस्स पयट्टत्तादो। ण च तिरिक्ख-मणुस्सेसु सम्मत्तं पडिवज्जमाणेसु सुह-तिलेस्साओ मोत्तूणण्णलेस्साणं संभवो अत्थि, सुट्ठु वि मंदविसोहीए सम्मत्तं पडिवज्जमाणस्स तत्थ जहण्णतेउलेस्साणियमदंसणादो। कुदो पुण देव-णेरइयाणमिह विवक्खा ण कया त्ति चे? ण, तेसिमवट्ठिदलेस्सभावपदुप्पायणट्ठमेत्थ परियट्टमाणसव्वलेस्साणं तिरिक्ख-मणुस्साणं चेव पहाणत्तेण विवक्खियत्तादो।

* वेदो य को भवे त्ति विहासा।

---

§ २४ पीत, पद्म और शुक्ल लेश्याओंमेंसे नियमसे कोई एक वर्धमान लेश्या इसके होती है, इनमेंसे कोई भी लेश्या हीयमान नहीं होती यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस वचन द्वारा इस जीवके कृष्ण, नील और कपोत लेश्याका तथा हीयमान पीत, पद्म और शुक्ल लेश्याका प्रतिषेध किया गया जान लेना चाहिए।

शंका—यहाँ पर शंकाकार कहता है कि यह जो वर्धमान शुभ तीन लेश्याओंका नियम यहाँ पर किया है वह नहीं बनता, क्योंकि नारकियोंके सम्यक्त्वकी उत्पत्ति करनेमें व्यापृत होने पर अशुभ तीन लेश्याएं भी सम्भव पाई जाती हैं?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि तिर्यञ्चों और मनुष्योंकी अपेक्षा यह सूत्र प्रवृत्त हुआ है। और तिर्यञ्चों तथा मनुष्योंके सम्यक्त्वको प्राप्त करते समय शुभ तीन लेश्याओंको छोड़कर अन्य लेश्याएँ सम्भव नहीं हैं, क्योंकि अत्यन्त मन्द विशुद्धि द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाले जीवके वहाँ पर जघन्य पीत लेश्याका नियम देखा जाता है।

शंका—परन्तु यहाँपर देव और नारकियोंकी विवक्षा क्यों नहीं की?

समाधान—नहीं, क्योंकि उनके अवस्थित लेश्याभावका कथन करनेके लिये यहाँपर परिवर्तमान सब लेश्यावाले तिर्यञ्चों और मनुष्योंकी ही प्रधानरूपसे विवक्षा की गई है।

विशेषार्थ—चूर्णिसूत्रमें उपशम सम्यक्त्वके सन्मुख हुए जीवके वर्धमान मात्र पीत, पद्म और शुक्ल ये तीन शुभ लेश्याएँ ही क्यों स्वीकार की गई हैं, जब कि नारकियोंके इस अवस्थामें एक भी शुभ लेश्या नहीं होती। यह एक प्रश्न है। समाधान यह है कि नारकियों और देवोंमें जिसके जो लेश्या होती है वह अवस्थितस्वरूप होती है, इसलिये उल्लेख न करनेपर भी उसका ज्ञान हो जाता है। यहाँ प्रश्न तो यह है कि तिर्यञ्च और मनुष्यगतिमें एक ही जीवके परिवर्तनक्रमसे छहों लेश्याएं सम्भव हैं क्या? अतः यहाँ यह बतलाया गया है कि तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें उपशमसम्यक्त्वके सन्मुख होनेपर तीन शुभ लेश्याओंमेंसे कोई एक लेश्या होती है।

* वेद कौन होता है इस पदकी विभाषा।

§ २५. 'वेदो य को भवे' त्ति जं गाहासुत्तस्स चरिमं पदं तस्सेदाणिमत्थविहासा कीरदि त्ति भणिदं होइ।

* अण्णदरो वेदो।

§ २६. तिण्हं वेदाणमण्णदरो वेदपरिणामो सम्मत्तुप्पत्तीए वावदस्स होइ, दव्व-भावेहिं तिण्हं वेदाणमण्णदरपज्जाएण विसेसियस्स तदुप्पायणे विरोहाभावादो। 'दंसण-मोहउवसामगस्स परिणामो केरिसो भवे' त्ति एत्तिएणेव सुत्तेण पज्जत्तं जोग-कसायोव-जोग-लेस्सा-वेदाणं पि परिणामभेदाणं तत्थेवंतब्भावो त्ति णासंकणिज्जं, संकिलेस-विसोहिभेदाणं चेव परिणामग्गहणेण तत्थ विवक्खियत्तादो। एदं च सुत्तं देसामासय, तेण गदि-इंदियादिविसया च विहासा एत्थ कायव्वा। एवमेदीए पढमगाहाए दंसणमोह-उवसामगस्स विसोहिलक्खणो परिणामो जोग-कसायोवजोगादिविसेसा च परूविदा। एदेणेव गाहासुत्तेणेदस्स खओवसम-विसोहि-देसण-पाओग्गसण्णिदाओ चत्तारि लद्धीओ करणलद्धिसव्वपेक्खाओ सूचिदाओ, ताहिं विणा दंसणमोहोवसामणाए पवुत्तिविरोहादो।

---

§ २५. 'वेदो य को भवे' यह जो गाथासूत्रका अन्तिम पद है उसके अर्थका इस समय विशेष व्याख्यान करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* कोई एक वेद होता है।

§ २६. सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें व्यापृत हुए जीवके तीन वेदोंमेंसे कोई एक वेदपरिणाम होता है, क्योंकि द्रव्य और भावकी अपेक्षा तीन वेदोंमेंसे अन्यतर वेदपर्यायसे युक्त जीवके सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें व्यापृत होनेमें विरोधका अभाव है।

शंका—'दर्शनमोहके उपशामकके परिणाम कैसा होता है।' इतना मात्र सूत्र पर्याप्त है, क्योंकि योग, कषाय, उपयोग, लेश्या और वेद ये जितने भी परिणामभेद हैं इनका उसीमें अन्तर्भाव हो जाता है?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उक्त सूत्रमें संक्लेश और विशुद्धिरूप परिणामभेद ही परिणामपदके ग्रहण करनेसे विवक्षित किये गये हैं। यह सूत्र देशामर्षक है, 'इसलिये गति, इन्द्रिय आदि विषयक विशेष व्याख्यान यहाँ पर करना चाहिए।

इस प्रकार इस प्रथम गाथा द्वारा दर्शनमोहके उपशामकके विशुद्धिलक्षण परिणाम तथा योग, कषाय, उपयोग आदि भेदोंका व्याख्यान किया। तथा इसी गाथासूत्रद्वारा इस जीवके करणलब्धि सव्यपेक्ष क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना और प्रायोग्यसंज्ञक चार लब्धियाँ सूचित की गई हैं, क्योंकि उनके विना दर्शनमोहके उपशम करनेरूप क्रियामें प्रवृत्ति नहीं हो सकती।

विशेषार्थ—वेद निरूपणके प्रसंगसे यहाँ पर टीकाकारने द्रव्य और भावरूप दोनों प्रकारके वेदोंका निर्देश किया है। यह ठीक है कि जो द्रव्यसे स्त्री, पुरुष और नपुंसक संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीव है वह भी प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य है और जो भावसे स्त्री, पुरुष और नपुंसक संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीव है वह भी प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य है। परन्तु मूल गाथासूत्रमें और उसका विशेष व्याख्यान करनेवाले चूर्णिसूत्रमें मात्र भाववेदकी अपेक्षा

* काणि वा पुव्वबद्धाणि त्ति विहासा ।

§ २७. 'काणि वा पुव्वबद्धाणि' त्ति जं विदियगाहाए पढमं बीजपदं तस्सेदाणिमत्थविहासा पत्तावसरा त्ति वुत्तं होइ ।

* एत्थ पयडिसंतकम्मं ट्ठिदिसंतकम्ममणुभागसंतकम्मं पदेससंतकम्मं च मग्गियव्वं ।

§ २८. एदम्मि पदे सव्वकम्मविसयाणं पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेससंतकम्माणं मग्गणा कायव्वा त्ति वुत्तं होइ । संपहि एदं बीजपदं णिबंधणं कादूण चउण्हमेदेसिं संतकम्माणं मग्गणं कस्सामो । तं जहा—तत्थ ताव पयडिसंतकम्ममणुमग्गिज्जदे । मूलपयडीणमट्ठण्हं पि संतकम्मसरूवेणेत्थ संभवो अत्थि । उत्तरपयडीणं पि

---

ही कथन किया गया है इतना यहाँ विशेष समझना चाहिए। यहाँ एक यह प्रश्न भी उठाया गया है कि गाथासूत्रके 'परिणामो केरिसो हवे' इस वचनमें जो परिणाम पद आया है उसीसे योग, कषाय, उपयोग, लेश्या और वेदका ग्रहण हो जाता है, ऐसी अवस्थामें इन सब भेदोंका अलगसे उल्लेख करनेकी आवश्यकता नहीं थी। इसका समाधान यहकर किया गया है कि उक्त वचनमें परिणाम पद केवल संक्लेश और विशुद्धिको सूचित करनेके लिये आया है, इसलिये उक्त भेदोंका अलगसे निर्देश किया गया है। इसके बाद टीकामें यह बतलाया गया है कि यह सूत्र देशामर्षक है, इसलिए जो अनुक्त मार्गणाएे यहाँ सम्भव हों उन्हें भी जान लेना चाहिए। यथा—गतिमार्गणाकी अपेक्षा तिर्यञ्च, नारकी, मनुष्य और देव चारों गतियोंमें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति सम्भव है। इन्द्रिय मार्गणाकी अपेक्षा पञ्चेन्द्रिय, कायमार्गणाकी अपेक्षा त्रसकायिक, संयम मार्गणाकी अपेक्षा असंयमी, भव्यमार्गणाकी अपेक्षा भव्य, सम्यक्त्व मार्गणाकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि, सञ्ज्ञीमार्गणाकी अपेक्षा सञ्ज्ञी और आहार मार्गणाकी अपेक्षा आहारक जीव ही प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य है, अन्य नहीं। अन्तमें यह सूचित किया गया है कि जो करणलब्धि द्वारा प्रथम सम्यक्त्वके सन्मुख होता है उसके क्षयोपशम आदि चार लब्धियोंका सद्भाव नियमसे होता है। इसका आशय यह है कि जिसने परमार्थ स्वरूप देव, गुरु और आगमके प्रति श्रद्धावनत हो गुरुमुखसे तत्त्वार्थका उपदेश ग्रहण किया है और जो तत्प्रायोग्य विशुद्धि सम्पन्न हो क्षयोपशम आदि लब्धियोंसे वर्तमानमें युक्त है वही आत्मसन्मुख हो अधःकरण आदि परिणाम प्राप्त करनेका अधिकारी है, अन्य नहीं।

* 'पूर्वमें बंधे हुए कर्म कौन-कौन हैं' इस पदकी विभाषा ।

§ २७ काणि वा पुव्वबद्धाणि' यह जो दूसरी गाथाका प्रथम बीजपद है उसके अर्थका विशेष व्याख्यान इस समय अवसर प्राप्त है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

* यहाँ पर प्रकृतिसत्कर्म, स्थितिसत्कर्म, अनुभागसत्कर्म और प्रदेशसत्कर्मका मार्गण करना चाहिए ।

§ २८ इस पदमें सभी कर्मविषयक प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशसत्कर्मोंका मार्गण करना चाहिए यह कथन किया गया है। अब इस बीजपदको निमित्त कर इन चारों प्रकारके सत्कर्मोंका मार्गण करेंगे। यथा—उनमेंसे सर्वप्रथम प्रकृति सत्कर्मका मार्गण करते हैं। आठों ही मूलप्रकृतियाँ सत्कर्मरूपसे यहाँ पर सम्भव हैं। उत्तर प्रकृतियोंमें भी ज्ञानावरणकी

णाणावरणपंचपयडीओ, दंसणावरणणवपयडीओ, वेदणीयस्स दुवे पयडीओ, मोहणीयस्स मिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोकसाया त्ति छव्वीसं पयडीओ संतकम्मं, अणादियमिच्छादिट्ठिस्स सादिमिच्छादिट्ठिस्स छव्वीससंतकम्मियस्स वा तदुवलंभादो। अहवा सम्मत्तेण विणा मोहणीयस्स सत्तावीसं पयडीओ संतकम्मं होइ, सम्मत्तमुव्वेलिय उवसमसम्मत्ताहिमुहम्मि तदविरोहादो। अथवा सम्मत्तेण सह अट्ठवीससंतकम्मं होइ, वेदगपाओग्गकालं वोलिय सम्मत्तमणिव्वेल्लियूण उवसमसम्मत्ताहिमुहम्मि तहाविहसंभवदंसणादो। आउअस्स एक्का वा दो वा पयडीओ संतकम्मं। तं कधं ? जइ बद्धपरभवियाउओ उवसमसम्मत्तं पडिवज्जइ तदो दो पयडीओ। अध अबद्धपरभवियाउओ तदा एया पयडी अण्णदरा जा भुंजमाणिया त्ति। णामस्स चदुगदि-पंचजादि-ओरालिय-वेउव्विय-तेजाकम्मइयसरीर-तेसिं चेव बंधण-संघाद-छसंठाणाहारवज्ज-दोण्णिअंगोवंग-छसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-चदुआणुपुव्वि-अगुरुअलहुअउवघाद-परघादुस्सास-आदावुज्जोव-दोविहायगइ-तस-थावरादिदसजुअल-णिमिणं चेदि एदासिं पयडीणं संतकम्ममत्थि। गोदस्स दुवे पयडीओ णीचुच्चागोदमिदि। अंतराइयस्स पंच पयडीओ। एदासिं पयडीणं पयडिसंतकम्ममत्थि, सेसाणं णत्थि। पुव्वु-

---

पाँच प्रकृतियाँ, दर्शनावरणकी नौ प्रकृतियाँ, वेदनीयकी दो प्रकृतियाँ तथा मोहनीयकी मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषाय ये छब्बीस प्रकृतियाँ सत्कर्मरूपसे होती हैं, क्योंकि अनादि मिथ्यादृष्टिके तथा छब्बीस प्रकृतियाँ सत्कर्मवाले सादि मिथ्यादृष्टिके इनका सद्भाव पाया जाता है। अथवा सादि मिथ्यादृष्टिके सम्यक्प्रकृतिके विना मोहनीयकी सत्ताईस प्रकृतियाँ सत्कर्मरूपसे होती हैं, क्योंकि सम्यक्त्वकी उद्वेलना कर उपशमसम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके उनके होनेमें कोई विरोध नहीं है। अथवा सम्यक्त्वके साथ अट्ठाईस प्रकृतियाँ सत्कर्मरूपसे होती हैं, क्योंकि वेदकसम्यक्त्वके योग्य कालको उल्लंघन कर जिसने सम्यक्त्व प्रकृतिकी उद्वेलना नहीं की है ऐसे उपशमसम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके उक्त प्रकारसे अट्ठाईस प्रकृतियोंका सद्भाव देखा जाता है। उक्त जीवके आयुकर्मकी एक या दो प्रकृतियाँ सत्कर्मरूपसे होती हैं।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—यदि जिसने परभवसम्बन्धी आयुका बन्ध किया है ऐसा जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होता है तो दो प्रकृतियाँ होती हैं। और जिसने परभवसम्बन्धी आयुका बन्ध नहीं किया है ऐसा वह जीव है तो भुज्यमान अन्यतर एक प्रकृति होती है।

नामकर्मकी चार गति, पाँच जाति, औदारिक-वैक्रियिक-तैजस-कार्मण शरीर, उन्हींके बन्धन और संघात, छह संस्थान, आहारक आंगोपांगको छोड़कर दो आंगोपांग, छह संहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, चार आनुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस-स्थावर आदि दश युगल और निर्माण ये प्रकृतियाँ सत्कर्मरूप हैं। गोत्रकर्मकी दो प्रकृतियाँ नीचगोत्र और उच्चगोत्र सत्कर्मरूप हैं। तथा अन्तराय कर्मकी पाँच प्रकृतियाँ सत्कर्मरूप हैं। इन प्रकृतियोंका प्रकृतिसत्कर्म है, शेष प्रकृतियोंका नहीं है।

प्पाइदेण सम्मत्तेण आहारसरीरं बंधिय पुणो मिच्छत्तं गंतूण तप्पाओग्गेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेण कालेणुवसमसम्मत्तं पडिवज्जमाणस्साहारदुगसंतकम्ममेत्थ किण्ण लब्भदे ? ण, आहारसरीरमणुव्वेल्लिय तस्स उवसमसम्मत्तपाओग्गत्ताणुवलंभादो। कुदो एवं ? वेदगपाओग्गकालादो आहारसरीरुव्वेल्लणकालस्स थोवभावोवएसादो। एदासिं चेव पयडीणमाउअवज्जाणं ट्ठिदिसंतकम्ममंतोकोडाकोडीए, आउआणं च तप्पाओग्गमणुगंतव्वं।

§ २९. अणुभागसंतकम्मं पि अप्पसत्थाणं कम्माणं पंचणाणावरणीय-णवदंसणावरणीय-असादवेदणीय-मिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोकसाय-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-णिरयगइ-तिरिक्खगइ-एइंदियादिचदुजादि-पंचसंठाण-पंचसंघडण-अप्पसत्थवण्ण-गंध-रस-फास-णिरयगइ-तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वि-उवघाद-अप्पसत्थविहायगइ-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीर-अथिर-असुम-दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसगित्ति-णीचागोद पंचंतराइयाणं विट्ठाणियाणुभागसंतकम्मिओ।

शंका—पहले उत्पन्न किये गये सम्यक्त्वके साथ आहारकशरीरका बन्धकर पुनः मिथ्यात्वमें जाकर तत्प्रायोग्य असंख्यातवे भागप्रमाण कालके द्वारा उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवके आहारकद्विक सत्कर्म यहाँ क्यों उपलब्ध नहीं होता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि आहारकशरीरकी उद्वेलना किये बिना उसके उपशमसम्यक्त्वकी प्राप्तिकी योग्यता नहीं बनती।

शंका—ऐसा किस कारणसे है ?

समाधान—क्योंकि वेदकसम्यक्त्वके योग्य कालसे आहारकशरीरके उद्वेलनाका काल स्तोक है ऐसा परमागमका उपदेश पाया जाता है। आयुकर्मके अतिरिक्त इन्हीं प्रकृतियोंका स्थितिसत्कर्म अन्तःकोडाकाड़ीके भीतर होता है। आयुकर्मोंका तत्प्रायोग्य स्थितिसत्कर्म जानना चाहिए।

विशेषार्थ—प्रथम उपशमसम्यक्त्वके सन्मुख हुए जीवके आहारकचतुष्क और तीर्थंकर इन पाँच प्रकृतियोंका सत्त्व सम्भव नहीं है। आहारकचतुष्कका सत्त्व क्यों नहीं पाया जाता इसका स्पष्टीकरण तो टीकामें किया ही है। ऐसे जीवके तीर्थंकर प्रकृतिका इसके पूर्व बन्ध ही नहीं होता, इसलिये उसका सत्त्व भी सम्भव नहीं है। शेष सब कथन सुगम है।

§ २९ अब अनुभागसत्कर्मको बतलाते है—जो अप्रशस्त कर्म पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, नरकगति, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय आदि चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारणशरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय इनका द्विस्थानीय अनुभागसत्कर्मवाला होता है।

विशेपार्थ—पहले प्रायोग्यलब्धिके कालमें ही अप्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभाग द्विस्थानीय हो जाता है यह स्पष्ट कर आये हैं और उपशम सम्यक्त्वके सन्मुख हुआ जीव प्रायोग्यलब्धि सम्पन्न होता ही है, अतः इसके भी सत्तामें स्थित अप्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभाग द्विस्थानीय

§ ३०. पसत्थाणं पि पयडीणं सादावेदणीय-मणुसगइ-देवगइ-पंचिंदियजादि-ओरालियसरीर-वेउव्विय०-तेजा-कम्मइयसरीर-तेसिं चेव बंधण-संघाद-समचउरससंठ्ठाण-ओरालिय - वेउव्वियअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-पसत्थवण्णादिचउक्क - मणुस० - देवगइ-पाओग्गाणुपुव्वि-अगुरुअलहुअ - परघादुस्सास - आदावुज्जोव - पसत्थविहायगइ - तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर - सुभ - सुभग - सुस्सर-आदेज्ज-जसगित्ति-णिमिण - उच्चागोदाण-मेदेसिं चउट्ठाणाणुभागसंतकम्मिओ । पदेससंतकम्मं पि जासिं पयडीणं पयडिसंतकम्म-मत्थि तासिमजहण्णाणुक्कस्सयं पदेससंतकम्मं भाणियव्वं ।

§ ३१. एवं ताव विदियगाहाए पढमावयवमस्सियूण पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेस-संतकम्मणिरूवणं कादूण संपहि पयडियादिबंधसरूवावहारणट्ठं गाहाए विदियावयव-मवलंबिय परूवणं कुणमाणो चुण्णिसुत्तयारो इदमाह—

* के वा अंसे णिबंधदि त्ति विहासा ।

§ ३२. सुगममेदं ।

---

जानना चाहिए। विशुद्धिवश इसके त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय अनुभागका घात हो जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

§ ३० सातावेदनीय, मनुष्यगति, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर तैजसशरीर, कार्मणशरीर, तथा उन्हींके बन्धन और संघात, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक शरीर आंगोपांग, वैक्रियिक शरीर आंगोपांग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णादि चार, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण और उच्चगोत्र इन प्रशस्त प्रकृतियोंके चतुःस्थानीय अनुभागसत्कर्मवाला होता है। प्रदेशसत्कर्म भी जिन प्रकृतियोंका इसके प्रकृतिसत्कर्म है उनका अजघन्य-अनुत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म कहना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ पर प्रथम सम्यक्त्वके सन्मुख हुए जीवके सत्तामें स्थित प्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभाग चतुःस्थानीय बतलाया है। इसका कारण यह है कि इन प्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभागका विशुद्धिवश घात नहीं होता, किन्तु प्रति समय विशुद्धिकी वृद्धि होनेसे उक्त प्रकृतियोंके अनुभागकी प्रति समय अनन्तगुणी वृद्धि देखी जाती है। ऐसा जीव न तो उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मका स्वामी है और न ही जघन्य प्रदेशसत्कर्मका स्वामी है, इसलिये इसके जितनी प्रकृतियोंकी सत्ता है उनका अजघन्य-अनुत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म होता है यह स्पष्ट ही है।

§ ३१ इस प्रकार सर्व प्रथम दूसरी गाथाके प्रथम अवयवके आश्रयसे प्रकृतिसत्कर्म, स्थितिसत्कर्म, अनुभागसत्कर्म और प्रदेशसत्कर्मका कथन कर अब प्रकृतिबन्ध आदि बन्धस्वरूपका निश्चय करनेके लिये गाथाके दूसरे अवयवका अवलम्बन लेकर कथन करते हुए चूर्णिसूत्रकार इस सूत्रको कहते हैं—

* प्रथम सम्यक्त्वके सन्मुख हुआ जीव किन कर्मांशोंका बन्ध करता है इस पदकी विभाषा।

§ ३२ यह सूत्र सुगम है।

* एत्थ पयडिबंधो ट्ठिदिबंधो अणुभागबंधो पदेसबंधो च मग्गियव्वो ।

§ ३३. एदम्मि समणंतरणिद्दिट्ठबीजपदे चउण्हमेदेसिं बंधाणमणुमग्गणा कायव्वा त्ति वुत्तं होइ । संपहि एदेण बीजपदेण सूचिदत्थविहासणं कस्सामो । तत्थ ताव पयडिबंधणिद्देसे तिण्णि महादंडया परूवेयव्वा । तं जहा—पंचणाणावरणीय-णवदंसणावरणीय-सादावेदणीय-मिच्छत्त-सोलसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रइ-भय-दुगुंछ-देवगदि-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वेउव्वियअंगोवंग-वण्णादिचउक्क-देवगदिपाओग्गाणुपुव्वि-अगुरुअलहुआदिचउक्क-पसत्थविहायगदि-तसादिचउक्क-थिरादिछक्क-णिमिण-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं बंधगो अण्णदरो मणुसो वा मणुसिणी वा पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीओ वा । एसो पढमो महादंडओ ।

§ ३४. संपहि बिदिओ वुच्चदे । तं जहा[1]—पंचणाणावरण-णवदंसणावरण-सादावेदणीय-मिच्छत्त-सोलसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि[2]-भय-दुगुंछा-मणुसगइ-पंचिंदिय-

---

* प्रकृतमें प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धका मार्गण करना चाहिए ।

§ ३३ समनन्तर पूर्व कहे गये इस बीजपदमें इन चार बन्धोंका अनुमार्गण करना चाहिए यह कहा गया है । अब इस बीजपद द्वारा सूचित किये गये अर्थका विशेष व्याख्यान करेंगे । उनमेंसे सर्व प्रथम प्रकृतिबन्धका निर्देश करते हुए तीन महादण्डकोंका कथन करना चाहिए । यथा—पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक शरीर आंगोपांग, वर्णादिचतुष्क, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु आदि चार, प्रशस्त विहायोगति, त्रसादि चतुष्क, स्थिरादि छह, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इनका अन्यतर मनुष्य, मनुष्यिनी और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिनी जीव बन्धक होता है । यह प्रथम महादण्डक है ।

विशेषार्थ—जो मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिवाला या पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिनी जीव प्रथम सम्यक्त्वके सन्मुख होता है उसके नामकर्मकी परावर्तमान अप्रशस्त प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, केवल देवगतिके साथ बँधनेके योग्य प्रशस्त प्रकृतियोंका ही बन्ध होता है ऐसा यहाँ समझना चाहिए । इसी प्रकार वेदनीय कर्मकी अपेक्षा भी जानना चाहिए, क्योंकि ऐसा जीव असातावेदनीयका बन्ध नहीं करता । मोहनीयकी अपेक्षा न स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका ही बन्ध करता है और न अरति और शोकका ही बन्ध करता है । यहाँ टीकामें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनि पद छूटा हुआ प्रतीत होता है, अतः उसमें आये हुए 'पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीओ' पदसे संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त गर्भोत्पन्न तीनों वेदवाले तिर्यञ्चोंका ग्रहण करना चाहिए । इन सब जीवोंके ऐसी अवस्थामें आयुकर्मका बन्ध नहीं होता ।

§ ३४. अब दूसरे दण्डकका कथन करते हैं । यथा—पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति,

---

1. ता०प्रतौ तं जहा इति पाठो नास्ति । 2 ता०प्रतौ हस्स-रदि इति पाठो नास्ति ।

जादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वज्जरिसह०संघडण-ओरालियअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वि-अगुरुअलहुआदिचउक्क०-पसत्थविहायगदि-तसादि४-थिरादि६-णिमिण-उच्चागोद-पंचंतराइयाणमेदासिं पयडीणं बंधगो अण्णदरो देवो वा छप्पुढविणेरइओ वा। एसो विदिओ महादंडओ।

§ ३५. संपहि तदिओ महादंडओ वुच्चदे। तं जहा—पंचणाणावरण-णवदंसणावरण-सादावेदणीय-मिच्छत्त-सोलसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछ०-तिरिक्खगइ-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-ओरालियअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुअलहुआदि४-उज्जोवं सिया पसत्थविहायगइ-तसादिचउक्क-थिरादिछक्क-णिमिण-णीचागोद-पंचंतराइयाणमेदासिं पयडीणं बंधओ अण्णदरो अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइओ। एवमेसो पयडिबंधो परूविदो।

---

पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, औदारिकशरीर आंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु आदि चार, प्रशस्त विहायोगति, त्रसादि चार, स्थिर आदि छह, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इन प्रकृतियोंका अन्यतर देव तथा छह पृथिवियोंका नारकी जीव बन्धक होता है। यह दूसरा महादण्डक है।

विशेषार्थ—जिन विशेषताओंका प्रथम महादण्डकके समय निरूपण कर आये हैं वे सब यहाँ भी यथासम्भव जान लेनी चाहिए। इतना यहाँ विशेष जानना चाहिए कि मनुष्यगति नामकर्मके बन्धके साथ संहनन नामकर्मका भी बन्ध होने लगता है, इसलिए प्रथम सम्यक्त्वके सन्मुख हुए किसी भी देव और छह पृथिवियोंके नारकीके प्रशस्त स्वरूप वज्रर्षभनाराचसंहननका भी बन्ध होता है।

§ ३५. अब तीसरे महादण्डकका कथन करते हैं। यथा—पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीर आंगोपांग, वज्रर्षभनाराच संहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु आदि चार, कदाचित् उद्योत ( का वन्धक होता है ), प्रशस्त विहायोगति, त्रसादि चार, स्थिर आदि छह, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय इन प्रकृतियोंका सातवीं पृथिवीका अन्यतर नारकी वन्धक होता है। इस प्रकार यह प्रकृतिबन्ध कहा गया है।

विशेषार्थ—प्रथम सम्यक्त्वके सन्मुख हुआ सातवीं पृथिवीका नारकी जीव नामकर्मकी यद्यपि अन्य सब प्रशस्त प्रकृतियोंका ही बन्ध करता है। परन्तु वह एकान्तसे भवसम्बन्धी परिणामवश तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीच गोत्रका बन्धक होनेसे प्रथम सम्यक्त्वके सन्मुख होने पर भी मात्र इन्हींका बन्ध करता है। तथा तिर्यञ्चगतिके साथ उद्योत प्रकृतिका भी बन्ध सम्भव होनेसे कदाचित् इसका भी बन्ध करता है। शेष कथन सुगम है।

§ ३६. ट्ठिदिबंधो वि एदासिं चेव पयडीणमंतोकोडाकोडीमेत्तो चेव होदि, विसुद्धयरस्सेदस्स तत्तो अब्भहियट्ठिदिबंधासंभवादो। अणुभागबंधो वि एदेसु महादंडएसु जाओ अप्पसत्थाओ पयडीओ तासिं बेट्ठाणिओ, सेसाणं पसत्थाणं चउट्ठाणिओ।

§ ३७. पदेसबंधो वि पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादावेदणीय-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछ-तिरिक्खगइ-मणुसगइ-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-ओरालियसरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-तिरिक्ख-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुअलहुआदि४—उज्जोव-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-जसगित्ति-णिमिण-उच्चागोद-पंचंतराइयाणमेदासिं पयडीणमणुक्कस्सओ। णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धी-मिच्छत्त-अणंताणुबंधि०४—देवगइ-वेउव्वियसरीर-समचउरससंठाण-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसह०संघडण-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी-पसत्थविहायगइ-सुभग-सुस्सरादेज्ज-णीचागोदाणमेदासिं पयडीणमुक्कस्सगो अणुक्कस्सगो वा पदेसबंधो। एवं विदियगाहासुत्तस्स विदियावयवमस्सियूण बंधमग्गणं कादूण संपहि पयडीणमुदयावलियपवेसापवेसगवेसणट्ठं सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

*** कदि आवलियं पविसंति त्ति विहासा।**

§ ३८. दंसणमोहउवसामगस्स उदयावलियमुदयाणुदयसरूवेण पविसमाणीओ

---

§ ३६ स्थितिबन्ध भी इन्हीं अर्थात् तीनों महादण्डकोंमें कही गईं प्रकृतियोंका अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण ही होता है, क्योंकि यह विशुद्धतर परिणामोंसे युक्त होता है, इसलिए इसके उससे अधिक स्थितिबन्ध सम्भव नहीं है। अनुभागबन्ध भी इन तीनों महादण्डकोंमें जो अप्रशस्त प्रकृतियाँ हैं उनका द्विस्थानीय होता है तथा शेष प्रशस्त प्रकृतियोंका चतुःस्थानीय होता है।

§ ३७ प्रदेशबन्ध भी पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीरआंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु आदि चार, उद्योत, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, यशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इन प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट होता है। निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, देवगति, वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरआंगोपांग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और नीचगोत्र इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है। इस प्रकार दूसरे गाथासूत्रके दूसरे अवयवका आश्रय कर बन्धका अनुमार्गण कर अब प्रकृतियोंके उदयावलिमें प्रवेश और अप्रवेशका अनुसन्धान करनेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* 'कितनी प्रकृतियाँ आवलिमें प्रवेश करती हैं' इस पदकी विभाषा।

§ ३८. दर्शनमोहके उपशामक जीवके उदय और अनुदयरूपसे उदयावलिमें प्रवेश

पयडीओ मूलुत्तरभेयभिण्णाओ कदि होंति त्ति एदस्स पुच्छाणिद्देसस्स णिण्णयविहाणट्ठ-मिदाणिमत्थविहासा कीरदि त्ति सुत्तत्थसंबंधो।

*** मूलपयडीओ सव्वाओ पविसंति।**

§ ३९. किं कारणं ? सव्वासिमेव मूलपयडीणमेत्थुदयदंसणादो।

*** उत्तरपयडीओ वि जाओ अत्थि ताओ पविसंति।**

§ ४०. विज्जमाणाणमुत्तरपयडीणमेत्थुदयाणुदयसरूवेणुदयावलियाणुप्पवेसे पडि-बंधाभावादो। णवरि आउअस्स कम्मस्स एया पयडी विज्जमाणिया अवद्धपरभवि-याउअस्स सा णियमा उदयावलियं पविसदि। वद्धपरभवियाउअस्स पुण दो पयडीओ विज्जमाणाओ होंति, तत्थ भुंजमाणस्सेव परभवियाउअस्स वि विज्जमाणत्तं पडि विसेसा-भावादो उदयावलियप्पवेसे अइप्पसंते तण्णिवारणट्ठमिदमाह—

*** णवरि जइ परभवियाउअमत्थि तं ण पविसदि।**

§ ४१. किं कारणं ? जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तमेवसेसभुंजमाणाउअस्सेव सम्मत्त-ग्गहणपाओग्गत्तादो।

---

करनेवाली मूल और उत्तरके भेदसे अनेक प्रकारकी प्रकृतियाँ कितनी होती हैं इस प्रकार इस पृच्छानिर्देशका निर्णय करनेके लिये इस समय अर्थविभाषा करते हैं इस प्रकार सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध है।

*** मूल प्रकृतियाँ सब प्रवेश करती हैं।**

§ ३९ क्योंकि सभी मूल प्रकृतियोंका प्रकृतमें उदय देखा जाता है।

*** उत्तर प्रकृतियाँ भी जो सत्स्वरूप हैं वे प्रवेश करती हैं।**

§ ४०. विद्यमान उत्तर प्रकृतियोंके प्रकृतमें उदय-अनुदयरूपसे उदयावलिमें प्रवेश होनेमें रुकावटका अभाव है। इतनी विशेषता है कि जिसने परभवसम्बन्धी आयुकर्मका बन्ध नहीं किया है उसके आयुकर्मकी एक प्रकृति सत्तामें विद्यमान है और वह नियमसे उदयावलिमें प्रवेश करती है। तथा जिसने परभवसम्बन्धी आयुकर्मका बन्ध कर लिया है उसके सत्कर्म-रूपसे दो प्रकृतियाँ पाई जाती हैं। इसलिये भुज्यमान परभवसम्बन्धी आयुके समान उसके भी विद्यमानपनेकी अपेक्षा विशेषताका अभाव होनेसे उदयावलिमें प्रवेश करनेरूप अतिप्रसंग होनेपर उसका निवारण करनेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

*** इतनी विशेषता है कि यदि परभवसम्बन्धी आयु है तो वह उदयावलिमें प्रवेश नहीं करती।**

§ ४१. क्योंकि जिसके जघन्यरूपसे भी अन्तर्मुहूर्त मात्र ही भुज्यमान आयु शेष है उसके प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणकी योग्यता होती है।

विशेषार्थ—ऐसा नियम है कि जो जीव परभवसम्बन्धी आयुका बन्ध करता है उसके बध्यमान आयुका आबाधाकाल बन्धके समय जितनी भुज्यमान आयु शेष हो उतना होता है। तथा जो जीव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है उसका प्रथम सम्यक्त्वके उत्पन्न होनेके

§ ४२. एवं विदियगाहाए तदियावयवस्स अत्थविहासं समाणिय संपहि चउत्थावयवमस्सिऊण मूलुत्तरपयडीणमुदीरणाणुदीरणगवेसणट्ठमुत्तरं पबंधमाह—

* कदिण्हं वा पवेसगो त्ति विहासा।

§ ४३. कदिण्ह वा पयडीणं मूलुत्तरभेयभिण्णाणमेसो पवेसगो होइ उदीरणासरूवेणे त्ति एव पयट्टस्सेदस्स पुच्छावक्कस्स अत्थविहासा एण्हिं कीरदि त्ति वुत्तं होइ।

* मूलपयडीणं सव्वासिं पवेसगो।

§ ४४. मूलपयडीणं ताव सव्वासिमेव एसो पवेसगो होइ, सव्वासिमेव तासिं उदीरणाए पवेसिज्जमाणाणं णिप्पडिबंधमुवलभादो।

* उत्तरपयडीणं पंचणाणावरणीय-चदुदंसणावरणीय-मिच्छत्त-पंचिंदियजादि-तेजा-कम्मइयसरीर-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुगलहुग-उवघाद-परघादुस्सास-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुभासुभ-णिमिण-पंचंतराइयाणं णियमा पवेसगो।

§ ४५. किं कारणं? एदासिं पयडीणमेत्थ धुवोदयत्तदंसणादो।

कालमें तथा प्रथम सम्यक्त्वके कालमें मरण नहीं होता। यही कारण है कि यहाँ पर प्रथम सम्यक्त्वके सन्मुख हुए जीवके पर भवसम्बन्धी आयुका उदयावलिमें प्रवेशका निषेध किया है।

§ ४२. इसप्रकार दूसरी गाथाके तीसरे अवयवके अर्थका विशेष व्याख्यान करके अब चौथे अवयवका आश्रयकर मूल और उत्तर प्रकृतियोंकी उदीरणा और अनुदीरणाके अनुसन्धान करनेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

* यह कितनी प्रकृतियोंका प्रवेशक होता है।

§ ४३. मूल और उत्तर प्रकृतियोंके भेदसे अनेक प्रकारकी कितनी प्रकृतियोंका यहजीव उदीरणारूपसे प्रवेशक होता है इस प्रकार इस रूपसे प्रवृत्त हुए पृच्छावाक्यके अर्थका इस समय विशेष व्याख्यान करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* मूल प्रकृतियोंका सबका प्रवेशक होता है।

§ ४४. मूल प्रकृतियोंका तो सबका ही यह जीव प्रवेशक होता है, क्योंकि सभी मूल प्रकृतियाँ बिना रुकावटके उदीरणारूपसे प्रवेश करती हुई पाई जाती हैं।

* उत्तर प्रकृतियोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, मिथ्यात्व, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, निर्माण और पाँच अन्तराय इन प्रकृतियोंका नियमसे प्रवेशक होता है।

§ ४५. क्योंकि ये प्रकृतियाँ प्रकृतमें ध्रुवोदय देखी जाती हैं।

विशेषार्थ—प्रथम सम्यक्त्व ग्रहणके सन्मुख हुए किसी भी गतिके जीवके अधःकरणके प्रथम समयमें पाँच ज्ञानावरण आदि प्रकृतियोंका नियमसे उदय होता है और इनका यहाँ उदय होनेका नियम है, इसलिये इनकी यहाँ उदीरणा होनेमें कोई रुकावट नहीं पाई जाती।

* सादासादाणमण्णदरस्स पवेसगो ।

§ ४६. किं कारणं ? एदासिं दोण्हं पयडीणं परावत्तमाणोदयाणमक्कमेण पवेसणे संभवाणुवलंभादो ।

* चदुण्हं कसायाणं तिण्हं वेदाणं दोण्हं जुगलाणमण्णदरस्स पवेसगो ।

§ ४७. किं कारणं ? परोप्परविरुद्धाणमेदेसिं जुगवं पवेसेदुमसक्कियत्तादो ।

* भय-दुगुंछाणं सिया पवेसगो ।

§ ४८. किं कारणं ? तदुदयविरहिदावत्थाए वि संभवदंसणादो । पवेसगो वि सिया अण्णदरस्स पवेसगो, सिया दोण्हं पि पवेसगो त्ति घेत्तव्वं ।

* चउण्हमाउआणमण्णदरस्स पवेसगो ।

§ ४९. किं कारणं ? चउण्हमेदेसिं पडिणियदगइविसेसपडिबद्धाणं कम्मोदयणियमदंसणादो ।

* चदुण्हं गइणामाणं दोण्हं सरीराणं छण्हं संठाणाणं दोण्हमंगोवंगाणमण्णदरस्स पवेसगो ।

§ ५०. एत्थ अण्णदरगहणस्स गदि-आदीहिं पादेक्कमहिसंबंधो कायव्वो । सेसं सुगमं ।

---

* साता और असाता इनमेंसे किसी एकका प्रवेशक होता है ।

§ ४६. क्योंकि ये दोनों प्रकृतियाँ परावर्तमान उदयस्वरूप हैं, इसलिये इनका युगपत् प्रवेशक होना सम्भव नहीं है ।

* चार कषाय, तीन वेद और दो युगलोंमेंसे अन्यतर एक-एकका प्रवेशक होता है ।

§ ४७ क्योंकि ये प्रकृतियाँ परस्पर विरुद्ध हैं, इसलिये इनका युगपत् प्रवेश करना शक्य नहीं है ।

* भय और जुगुप्साका कदाचित् प्रवेशक होता है ।

§ ४८. क्योंकि उनकी उदयसे रहित अवस्था भी देखी जाती है । यदि प्रवेशक होता भी है तो कदाचित् किसी एक प्रकृतिका प्रवेशक होता है और कदाचित् दोनों ही प्रकृतियोंका प्रवेशक होता है ऐसा यहाँ पर ग्रहण करना चाहिए ।

* चारों आयुओंमेंसे किसी एक आयुकर्मका प्रवेशक होता है ।

§ ४९. क्योंकि ये चारों आयु पृथक्-पृथक् प्रतिनियत गतिविशेषसे प्रतिबद्ध हैं, इसलिये तदनुसार ही उस उस आयुकर्मके उदयका नियम देखा जाता है ।

* चार गतिनाम, दो शरीर, छह संस्थान और दो आंगोपांग इनमेंसे अन्यतर एक-एकका प्रवेशक होता है ।

§ ५०. यहाँ पर अन्यतर पदका गति आदि प्रत्येकके साथ सम्बन्ध करना चाहिए । शेष कथन सुगम है ।

* छण्हं संघडणाणं अण्णदरस्स सिया ।

§ ५१. पवेसगो त्ति एत्थ अहियारसंबंधो, तेण छण्हं संघडणाणमण्णदरस्स सिया एसो पवेसगो, सिया च ण पवेसगो त्ति सुत्तत्थसंबंधो कायव्वो । जइ तिरिक्खो मणुस्सो वा पढमसम्मत्त पडिवज्जइ तो एदेसिमण्णदरस्स णियमा पवेसगो होइ । अह देवो णेरइओ वा उवसमसम्मत्ताहिमुहो होइ तो णियमा एदेसिमपवेसगो। त्ति घेत्तव्वं ।

* उज्जोवस्स सिया ।

§ ५२. पवेसगो त्ति पुव्वं व अहियारसंबंधो एत्थ कायव्वो । कुदो पुण उज्जोवस्स सिया पवेसगत्तमिदि चे ? ण, पंचिंदियतिरिक्खेसु चेव केसिं पि जीवाणं तदुदइल्लाणं तप्पवेसयत्तदंसणादो ।

* दो विहायगइ-सुभग-दूभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणादेज्ज-जसगित्ति-अजसगित्ति० अण्णदरस्स पवेसगो ।

---

* छह संहननोंमेंसे कदाचित् किसी एकका प्रवेशक होता है ।

§ ५१. 'पवेसगो' इस पदका यहाँ पर अधिकारवश सम्बन्ध कर लेना चाहिए, इसलिये छह संहननोंमेंसे यह जीव किसी एकका कदाचित् प्रवेशक होता है और कदाचित् प्रवेशक नहीं होता इस प्रकार सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध कर लेना चाहिए । यदि तिर्यञ्च अथवा मनुष्य प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त होता है तो इनमेंसे किसी एकका नियमसे प्रवेशक होता है । और यदि देव अथवा नारकी उपशम सम्यक्त्वके अभिमुख होता है तो नियमसे इनका अप्रवेशक होता है ऐसा यहाँ पर ग्रहण करना चाहिए ।

विशेषार्थ—वैक्रियिकशरीरका संस्थान तो होता है पर संहनन नहीं होता, अतः यहाँ देव और नारकियोंको छहों संहननोंमेंसे किसी एक भी प्रकृतिका प्रवेशक नहीं कहा है ।

* उद्योतका कदाचित् प्रवेशक होता है ।

§ ५२ 'पवेसगो' इस पदका पहलेके समान अधिकारवश सम्बन्ध करना चाहिए ।

शंका—परन्तु उद्योतका कदाचित् प्रवेशकपना कैसे बनता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें ही उद्योतके उदयसे युक्त किन्हीं जीवोंके उद्योतका प्रवेशकपना देखा जाता है ।

विशेषार्थ—यहाँ नारकी, मनुष्य और देवोंमें उद्योतका उदय-उदीरणा सम्भव नहीं है, केवल तिर्यञ्चोंमें ही, उनमें भी किन्हीं तिर्यञ्चोंमें ही उसका उदय-उदीरणा सम्भव है । इसी तथ्यको ध्यानमें रखकर 'उद्योतका कदाचित् प्रवेशक होता है, यह सूत्र वचन कहा है ।

* दो विहायोगति, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुःस्वर, आदेय-अनादेय और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति इन युगलोंमेंसे किसी एक-एक प्रकृतिका प्रवेशक होता है ।

§ ५३. एदेसिं पंचण्हं जुगलाणं पादेक्कमण्णदरस्स पवेसगो एसो होदि त्ति सुत्तत्थसमुच्चयो। सुगममण्णं।

* उच्च-णीचागोदाणमण्णदरस्स पवेसगो।

§ ५४. सुगममेदं। एवमोघेण पयडिउदीरणा परूविदा। एवं चेव पयडि-उदयस्स वि मग्गणा कायव्वा, विसेसाभावादो।

§ ५५. संपहि सुत्तणिद्दिट्ठस्सेवत्थस्स पवंचीकरणट्ठमादेससंबंधि किंचि परूवणं कस्सामो। तं जहा—आदेसेण चदुसु वि गदीसु णाणावरणीयस्स पंच वि पयडीओ उदयं पविसंति पवेसिज्जंति च। दंसणावरणीयस्स चत्तारि पयडीओ वेदणीयस्स सादासादाण-मण्णदरस्स चदुसु वि गदीसु उदयोदीरणाओ हवंति। मोहणीयस्स दस णव अट्ठ वा पयडीओ चदुसु गदीसु उदयोदीरणासरूवेण वेदिज्जंति। चदुण्हमाउआणं जत्थ गदीए जं वेदिज्जदि तस्स तत्थ वेदगो उदीरगो च।

§ ५६. णामस्स जइ णेरइओ तो णिरयगइ-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइय-सरीर-हुंडसंठाण-वेउव्वियअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघादुस्सास-

---

§ ५३ यह जीव इन पाँच प्रत्येक युगलमेंसे किसी एक-एक प्रकृतिका प्रवेशक होता है, इस प्रकार यहाँ सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध करना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

विशेषार्थ—देवोंमें सूत्रोक्त सभी शुभ और नारकियोंमें अशुभ प्रकृतियोंका उदय-उदीरणा होती है। किन्तु इनको छोड़कर अन्य दो गतिके जीवोंमें उक्त युगलोंमेंसे प्रत्येक युगलसम्बन्धी प्रशस्त या अप्रशस्त किसी एक-एक प्रकृतिका उदय-उदीरणा सम्भव है यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है।

* उच्चगोत्र और नीचगोत्र इनमेंसे किसी एक-एक प्रकृतिका प्रवेशक होता है।

§ ५४. यह सूत्र सुगम है। इस प्रकार ओघसे प्रकृति-उदीरणाका कथन किया। इसी प्रकार प्रकृत-उदयका भी अनुमार्गण कर लेना चाहिए, क्योंकि इससे उसमें कोई विशेषता नहीं है।

विशेषार्थ—प्रकृतमें ऐसा समझना चाहिए कि दर्शनमोहकी उपशमनाके सन्मुख हुए जीवके चारों गतियोंमें यथासम्भव अधःकरणके प्रथम समयमें जिन प्रकृतियोंका उदय है उन्हींकी उदीरणा भी है. यही कारण है कि यहाँ उदय और उदीरणामें विशेषता न होनेका विधान किया है।

§ ५५ अब सूत्रनिर्दिष्ट ही अर्थका विस्तारसे कथन करनेके लिये आदेशसम्बन्धी कुछ प्ररूपणा करेंगे। यथा—आदेशसे चारों ही गतियोंमें ज्ञानावरणकी पाँचों ही प्रकृतियाँ उदय रूपसे प्रविष्ट होती है और प्रविष्ट कराई जाती हैं। दर्शनावरणकी चारों ही प्रकृतियोंका तथा सातावेदनीय और असातावेदनीयमेंसे किसी एकका चारों ही गतियोंमें उदय और उदीरणा होती है। मोहनीयकी दस, नौ या आठ प्रकृतियाँ चारों गतियोंमें उदय और उदीरणारूपसे वेदी जाती हैं। चारों आयुओंमेंसे जिस गतिमें जो आयु वेदी जाती है उसका उस गतिमें वेदक और उदीरक होता है।

§ ५६. नामकर्मकी अपेक्षा यदि नारकी है तो नरकगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुंडसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस,

अप्पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसगित्ति-णिमिणमिदि एदासिं उणत्तीसण्हं पयडीणं वेदगो उदीरगो च। तहा णीचागोद-पंचंतराइयाणं च णेरइओ वेदगो होइ।

§ ५७. अह जइ तिरिक्खो तिरिक्खगइ-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइय-सरीर० छण्हं संठाणाणमेक्कदरं ओरालियअंगोवंग० छसंघडणाणं एक्कदरं वण्णादि४-अगुरुअलहुआदि४० उज्जोवं सिया दोण्हं विहायगदीणमेक्कदरं तसादि४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-दूभगाणमेक्कदरं सुस्सर-दुस्सराणमेक्कदरं आदेज्जणादेज्जाणमेक्कदरं जसगित्ति-अजसगित्तीणमेक्कदर णिमिणं चेदि एदासि पयडीणं तीसेक्कत्तीससंखाविसेसिदाणं पवेसगो होइ। पुणो णीचागोद-पंचंतराइयाणं च पवेसगो होइ।

§ ५८. अह जइ मणुसो तदो एदाओ चेव पयडीओ उज्जोववज्जाओ मणुसगइ-सहगदाओ वेदयदि। णवरि णीचुच्चागोदाणमेक्कदरमिह वत्तव्वं।

§ ५९. जइ देवो देवगइ-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरस-संठाण-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-वण्णादि४-अगुरु०४-पसत्थविहायगदि-तसादि४-थिरा-

स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशकीर्ति और निर्माण इन उनतीस प्रकृतियोंका वेदक और उदीरक होता है।

§ ५७ और यदि तिर्यञ्च है तो तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छह संस्थानोंमेंसे कोई एक, औदारिक शरीर आंगोपांग, छह संहननोंमेंसे कोई एक, वर्णादि चार, अगुरुलघु आदि चार, कदाचित् उद्योत, दो विहायोगतियोंमेसे कोई एक, त्रसादि चार, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग-दुर्भगमेसे कोई एक, सुस्वर-दुःस्वरमेसे कोई एक, आदेय-अनादेयमेसे कोई एक, यशःकीर्ति-अयश कीर्तिमेंसे कोई एक और निर्माण इन तीस और इकतीस संख्याविशिष्ट प्रकृतियोका प्रवेशक होता है। तथा नीचगोत्र और पॉच अन्तराय प्रकृतियोका प्रवेशक होता है।

विशेषार्थ—जिन संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यञ्चोंके उद्योतका उदय और उदीरणा होती है वे इकतीस प्रकृतियोके प्रवेशक होते है और जिनके उद्योत प्रकृतिका उदय और उदीरणा नहीं होती वे तीस प्रकृतियोंके प्रवेशक होते हैं। शेष कथन सुगम है।

§ ५८ और यदि मनुष्य है तो उद्योतको छोड़कर मनुष्यगतिके साथ इन्हीं प्रकृतियोंका वेदन करता है। इतनी विशेपता है कि यहॉ पर नीचगोत्र और उच्चगोत्रमेंसे किसी एक प्रकृतिका कथन करना चाहिए।

विशेपार्थ—मनुष्योमें तिर्यञ्चगतिका उदय न होकर मनुष्यगति नामकर्मका उदय होता है, इसलिये यहां टीकामे 'मणुसगइसहगदाओ' ऐसे पाठका उल्लेख किया है। शेप कथन सुगम है।

§ ५९. और यदि देव है तो देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आंगोपांग, वर्णादि चार, अगुरुलघु आदि

थिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सरादेज्ज-जसगित्ति-णिमिणणामाणमुच्चागोद-पंचतराइएहिं सह पवेसगो वेदगो च होइ।

§ ६०. संपहि एदेण सुत्तेण सूचिदट्ठिदि-अणुभाग-पदेसोदयोदीरणाणं पि किंचि अणुगमं कस्सामो। तं जहा—एदासिं चेव पयडीणमाउअवज्जाणं अंतोकोडाकोडिमेत्त-ट्ठिदीओ आउआणं च तप्पाओग्गाओ ट्ठिदीओ ओकड्डियूणुदए देदि एसा ट्ठिदिउदीरणा।

§ ६१. अणुभागुदीरणा वि पसत्थाणं पयडीणमेत्थ णिद्दिट्ठाणं चउट्ठाणिया बंधट्ठाणादो अणंतगुणहीणा, अप्पसत्थाणं विट्ठाणिया संतट्ठाणादो अणंतगुणहीणा। पदेसुदीरणा वि एदासिं चेव पयडीणमजहण्णाणुक्कस्सिया होइ। एवमुदयो वि अणुगंतव्वो। एवं विदियाए सुत्तगाहाए अत्थविहासा समत्ता।

---

चार, प्रशस्त विहायोगति, त्रसादि चार, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति और निर्माणका उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके साथ प्रवेशक और वेदक होता है।

§ ६० अब इस सूत्रद्वारा सूचित हुए स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इन तीनोंके उदय और उदीरणाका कुछ अनुगम करेंगे। यथा आयुकर्मको छोड़कर इन्हीं प्रकृतियोंकी अन्तः-कोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितियाँ और आयुकर्मकी तत्प्रायोग्य स्थितियाँ अपकर्षित कर उदयमें दी जाती हैं। यह स्थिति उदीरणा है।

विशेषार्थ—यहाँ चारों आयुओंकी स्थितिकी अपकर्षण द्वारा उदीरणा कही गई है। इसपर यह प्रश्न होता है कि क्या नारकी, भोगभूमिज तिर्यञ्च और मनुष्य तथा देवोंकी आयुकी भी अपकर्षणद्वारा उदीरणा होती है ? यदि होती है तो परमागममें इन जीवोंको अनपवर्त्य आयुवाला क्यों कहा गया है ? समाधान यह है कि इन जीवोंकी भुज्यमान आयुका भोग तो पूरा होता है। परन्तु इन आयुओंके यथा सम्भव प्रत्येक निषेकमें कुछ ऐसे परमाणु होते हैं जो उपशम, निधत्त और निकाचितरूप नहीं होते, उनकी भोगकालमें उदीरणा सम्भव होनेसे यहाँ चारों आयुओंकी अपकर्षण द्वारा उदीरणा कही गई है। शेष कथन सुगम है।

§ ६१. अनुभाग उदीरणा भी यहाँ निर्दिष्ट की गई प्रशस्त प्रकृतियोंकी चतुःस्थानीय होती है जो बन्धस्थानसे अनन्तगुणी हीन होती है। अप्रशस्त प्रकृतियोंकी द्विस्थानीय होती है, जो सत्त्वस्थानसे अनन्तगुणी हीन होती है। प्रदेश उदीरणा भी इन्हीं प्रकृतियोंकी अजघन्य अनुत्कृष्ट होती है। इसी प्रकार उदय भी जानना चाहिए। इस प्रकार दूसरी गाथाके अर्थका विशेष व्याख्यान समाप्त हुआ।

विशेषार्थ—प्रशस्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध गुणस्थानप्रतिपन्न जीवोंके होता है, इसलिये यहाँ प्रशस्त प्रकृतियोंकी अनुभाग उदीरणा चतुःस्थानीय होकर भी वह बन्धस्थानसे अनन्तगुणी हीन बतलाई है। यहाँ उदयको भी उदीरणाके समान जाननेकी सूचना की है। उसका आशय यह है कि जिन प्रकृतियोंकी यहाँ उदीरणा है उन्हींका उदय भी है। जो कर्म अपकर्षण और उत्कर्षण आदि प्रयोगके विना स्थिति क्षयको प्राप्त होकर अपना-अपना फल देते हैं उन कर्मस्कन्धोंकी उदय संज्ञा है और जो बड़ी स्थितिमें स्थित कर्म अपकर्षण द्वारा फल देनेके सन्मुख किये जाते है उनकी उदीरणा संज्ञा है। प्रकृतमें ऐसा समझना चाहिए कि जिस गतिमें दर्शनमोहके उपशमके सन्मुख हुए जीवके जिन कर्मोंका उदय है उनकी उदीरणा अवश्य होती है। शेष कथन सुगम है।

§ ६२. संपहि तदियसुत्तगाहाए जहावसरपत्तमवयारं कस्सामो । तं जहा—

* 'के अंसे झीयदे पुव्वं बंधेण उदएण वा' त्ति विहासा ।

§ ६३. एदस्स तदियगाहासुत्तपुव्वद्धस्स अत्थविहासा इदाणिं कायव्वा त्ति वुत्तं होइ । एसो च तदियगाहापुव्वद्धो दंसणमोहउवसामगस्स सव्वेसिं कम्माणं पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसे अस्सियूण बंधोदएहिं झीणभावगवेसणट्ठमागओ । तत्थ ताव पयडीणं बंधवोच्छेदकमपदंसणट्ठमिदमाह—

* असादावेदणीय-इत्थि-णवुंसयवेद-अरदि-सोग-चदुआउ० - णिरय-गदि-चदुजादि-पंचसंठाण-पंचसंघडण-णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वि-आदाव-अप्पसत्थविहायगइ - थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारण-अथिर-असुभ-दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसगित्तिणामाणि एदाणि बंधेण वोच्छिण्णाणि ।

§ ६४. एदासिं सुत्तणिद्दिट्ठाणं पयडीणं दंसणमोहोवसामगस्स पुव्वमेव जहाकमं बंधवोच्छेदो जायदि त्ति वुत्तं होइ । संपहि एदेसिं कम्माणं बंधवोच्छेदकमं वत्तइस्सामो । तं जहा—तत्थ ताव अभवसिद्धियपाओग्गविसोहीए विसुज्झमाणस्स तप्पाओग्गअंतो-कोडाकोडिमेत्तट्ठिदिबंधावत्थाए णत्थि एक्कस्स वि कम्मस्स पयडिबंधवोच्छेदो । एत्तो उवरिमंतोमुहुत्तं गंतूण सागरोवमपुधत्तमेत्तमोसरियूण अण्णं ट्ठिदिं बंधमाणस्स तक्काले

§ ६२ अब तीसरी गाथाके अवसर प्राप्त अवतारको करेंगे । यथा—

* 'दर्शनमोहके उपशमकालसे पूर्व बन्ध और उदयकी अपेक्षा कौन-कौनसे कर्मांश क्षीण होते हैं' इसकी विभाषा ।

§ ६३. इस तीसरे गाथासूत्रके पूर्वार्धके अर्थका विशेष व्याख्यान इस समय करना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यह तीसरी गाथाका पूर्वार्ध दर्शनमोहके उपशामकके सब कर्मोंके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंका आश्रयकर बन्ध और उदयकी अपेक्षा क्षीणपनेका अनुसन्धान करनेके लिये आया है। उनमेंसे सर्व प्रथम प्रकृतियोंकी बन्ध-व्युच्छित्तिके क्रमको दिखलानेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

* दर्शनमोहके उपशामकके असातावेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, चार आयु, नरकगति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, नरकगतिप्रायोग्यानु-पूर्वी, आतप, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और अयशःकीर्ति ये प्रकृतियाँ बन्धसे पहले ही व्युच्छिन्न हो जाती हैं ।

§ ६४. सूत्रमें निर्दिष्ट की गईं इन प्रकृतियोंकी दर्शनमोहके उपशामक जीवके पहले ही क्रमसे बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अब इन कर्मोंके बन्ध-व्युच्छित्तिके क्रमको बतलावेंगे। यथा—वहाँ जो अभव्योंके योग्य विशुद्धिसे विशुद्ध हो रहा है उसके तत्प्रायोग्य अन्तःकोडाकोड़ीप्रमाण स्थितिबन्धकी अवस्थामें एक भी कर्मके प्रकृतिबन्धकी व्युच्छित्ति नहीं होती। इससे आगे अन्तर्मुहूर्त जाकर सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण

णिरयाउअबंधो वोच्छिज्जदे । तदो सागरोवमपुधत्तमोसरियूण बंधमाणस्स तिरिक्खाउअ-बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमपुधत्तमोसरियूण बंधमाणस्स मणुस्साउअं बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमपुधत्तमोसरियूण बंधमाणस्स देवाउअबंधवोच्छेदो । तदो सागरोवम-पुधत्तमोसरियूण बंधमाणस्स णिरयगइ-णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वी एक्कदो बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमपुधत्तमोसरियूण सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीराणमण्णोण्णाणुगयाणमेक्कदो बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमपुधत्तमोसरियूण सुहुम-अपज्ज०-पत्तेयसरीराणमण्णोण्णाणु-गयाणमेक्कदो बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमपुधत्तं गंतूण बादर-अपज्ज०-साहारण-सरीराणमण्णोण्णाणुगयाणमेक्कदो बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमपुधत्तमोसरियूण बादर-अपज्ज०-पत्तेयसरीराणमण्णोण्णाणुगयाणमेक्कदो बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवम-पुधत्तमोसरियूण बेइंदियजादि-अपज्जत्ताणमण्णोण्णसंजोगेण बंधवोच्छेदो । तदो सागरो-वमपुधत्तं ओसरियूण तीइंदिय-अपज्ज० अण्णोण्णसंजुत्ताणं बंधवोच्छेदो। तदो सागरोवम-पुधत्तं ओसरियूण चउरिंदिय०-अपज्ज० अण्णोणसजुत्ताणं बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवम-पुधत्तं ओसरिऊण असण्णिपंचिंदिय०-अपज्ज० अण्णोणसंजुत्त० बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमपुधत्तमोसरियूण सण्णिपंचिंदिय०-अपज्ज० अण्णोण्णसंजुत्त० बंधवोच्छेदो । तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरियूण सुहुम-पज्जत्त-साहारणसरीरणामाणं परोप्परसंजोगेण

स्थिति घटाकर अन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके उस समय नरकायुकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपम पृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके तिर्यञ्चायुकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। उसके आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके मनुष्यायुकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्व-प्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके देवायुकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपम पृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके नरकगति और नरकगत्यानु-पूर्वीकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपम पृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर० अन्योन्य अनुगत सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणशरीरकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर० अन्योन्य अनुगत सूक्ष्म, अपर्याप्त और प्रत्येक शरीरकी एकसाथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर० अन्योन्य अनुगत बादर, अपर्याप्त और साधारण शरीरकी एक साथ बन्ध-व्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर० अन्योन्य अनुगत बादर, अपर्याप्त और प्रत्येकशरीरकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर० अन्योन्य अनुगत द्वीन्द्रिय जाति और अपर्याप्त नामकर्मकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर० अन्योन्य संयुक्त त्रीन्द्रिय और अपर्याप्त नामकर्मकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर० अन्योन्य संयुक्त चतुरिन्द्रिय जाति और अपर्याप्त नामकर्मकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्व-प्रमाण स्थिति घटाकर० अन्योन्य संयुक्त असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय और अपर्याप्तनामकर्मकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर० परस्पर संयुक्त संज्ञी पञ्चेन्द्रिय और अपर्याप्त नामकर्मकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे

बंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमपुधत्तमोसरियूण सुहुम-पज्जत्त-पत्तेयसरीर० परोप्परसंजुत्ताणं बंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरियूण बादर-पज्जत्त-साहारणसरीराणं परोप्परसंजोगविसेसिद० बंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमपुधत्त ओसरिदूण बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-एइंदिय-आदाव-थावरणामाणं छण्हं पयडीणमेक्कदो बंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरियूण बीइंदिय०-पज्जत्ताणं बंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरियूण तीइंदिय०-पज्जत्ताणं बंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरियूण चउरिंदिय०-पज्जत्त-बंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरिदूण असण्णिपंचिंदिय०-पज्ज० बंधवोच्छेदो। तदो[1] सागरोवमपुधत्तं ओसरिदूण तिरिक्खगइ-तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी-उज्जोवसण्णिदाणं तिण्हं पयडीणमेक्कदो बंधवोच्छेदो। तदो सागरोवपुधत्तं ओसरिदूण णीचागोदस्स बंधवोच्छेदो। णवरि सत्तमपुढविणेरइयमस्सियूण तिरिक्खगइ-तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी-उज्जोव-णीचागोदाणं बंधवोच्छेदो णत्थि। अदो चेव सुत्ते तेसिं बंधवोच्छेदो अणुवइट्ठो। तदो सागरोवमपुधत्त ओसरियूण अप्पसत्थविहायगइ-दूभग-दुस्सर-अणा-

---

सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर० परस्पर संयुक्त सूक्ष्म, पर्याप्त और साधारणशरीर नामकर्मकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर० परस्पर संयुक्त सूक्ष्म, पर्याप्त और प्रत्येक शरीर नामकर्मकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर० परस्पर संयुक्त बादर, पर्याप्त और साधारण शरीर नामकर्मकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर० बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावर नामकर्म इन छह प्रकृतियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके द्वीन्द्रियजाति और पर्याप्त नामकर्मकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके त्रीन्द्रियजाति और पर्याप्तनामकर्मकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके चतुरिन्द्रियजाति और पर्याप्त नामकर्मकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपम पृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके असंज्ञी पञ्चेन्द्रियजाति और पर्याप्त नामकर्मकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योत इन तीन प्रकृतियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके नीचगोत्रकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीके नारकीके तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत और नीचगोत्रकी बन्धव्युच्छित्ति नहीं होती और इसीलिये सूत्रमें इनकी बन्धव्युच्छित्तिका निर्देश नहीं किया। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, और अनादेय इन प्रकृतियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर

---

१ ता०प्रतौ बंधवोच्छेदो। [तदो सागरो० पुधत्त० ओसरि० सण्णिपज्ज० बंध०] तदो इति पाठः।

देज्जणामाणमक्कमेण बंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरिदूण हुंडसंठाण-असंपत्त-सेवट्टसंघडण० एदासिं दोण्हं पयडीणमेक्कदो बंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरिदूण णवुंस० बंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमपुधत्तमोसरिदूण वामणसंठाण-कीलियसंघडणाणं दोण्हं पयडीणमेक्कदो बंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमपुधत्तमोसरियूण खुज्जसंठाण-अद्धणारायण० दोण्हमेदासिं पयडीणं एक्कदो बंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमपुधत्तमोसरिदूण इत्थिवेदबंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरिदूण सादिसंठाण-णारायणसरीर० दोण्हं पि पयडीणं एक्कदो बंधवोच्छेदो। तदो सागरो० पुध० णग्गोधपरि०-वज्जणारायणसरीरसंघ० दोण्णं पि एक्कदो बंध०। तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरियूण मणुसगइ-ओरालियसरीर-तदंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वि० एदासिं पंचण्हं पयडीणं एक्कदो बंधवोच्छेदो। एदं तिरिक्ख-मणुस्से पडुच्च परूविदं, देव-णेरइएसु एदासिं बंधविच्छेदाणुवलंभादो। अदो चेव सुत्ते एदासिं बंधवोच्छेदो अणुवइट्ठो, सुत्तस्स च चउगइसामण्णावेक्खाए पयट्टत्तादो। तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरिदूण असादावेदणीय-अरदि-सोग-अथिर-असुह-अजसगित्ति-णामाणमेदासिं पयडीणं जुगवं बंधवोच्छेदो। जाव पमत्तसंजदो त्ति बंधपाओग्गाणं पि एदासिमेत्थ बंधवोच्छेदपरूवणा ण विरुज्झदे। किं कारणं? सव्वविसुद्धस्सेदस्स

बन्ध करनेवाले जीवके हुंडसंस्थान और असंप्राप्तासृपाटिका संहनन इन दोनों प्रकृतियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके नपुंसकवेदकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके वामनसंस्थान और कीलिक संहनन इन दो प्रकृतियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके कुब्जकसंस्थान और अर्धनाराचसंहनन इन दो प्रकृतियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके स्त्रीवेदकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके स्वातिसंस्थान और नाराचसंहनन इन दोनों प्रकृतियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान और वज्रनाराचसंहनन इन दोनों प्रकृतियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आंगोपांग, वज्रर्षभ-संहनन और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी इन पाँच प्रकृयियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। यह तिर्यञ्चों और मनुष्योंकी अपेक्षा कहा है, क्योंकि देवों और नारकियोंमें इन पाँच प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति नहीं पाई जाती और इसीलिये सूत्रमें इनकी बन्धव्युच्छित्ति-का निर्देश नहीं किया है, क्योंकि यह सूत्र चतुर्गति सामान्यकी अपेक्षा प्रवृत्त हुआ है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयश कीर्ति इन प्रकृतियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। यद्यपि ये प्रकृतियाँ प्रमत्तसंयत गुणस्थान तक बन्धके योग्य है फिर भी यहाँ इनकी बन्धव्युच्छित्तिका कथन विरोधको प्राप्त नहीं होता, क्योंकि उन प्रकृतियोंके बन्धके

तब्बंधपाओग्गसंकिलेसविसयमुल्लंघियूण तप्पडिवक्खपयडिबंधणिबंधणविसोहीए वड्ढ-माणस्स तब्बंधवोच्छेदे विरोहाणुवलंभादो। एवमोघेण पयडीणं बंधवोच्छेदो सुत्ताणु-सारेण परूविदो।

§ ६७. संपहि आदेसमुहेण पयडिबंधझीणाझीणत्तविसयं किंचि परूवणं कस्सामो। तं जहा—आदेसेण चदुसु वि गदीसु णाणावरणीयस्स णत्थि पयडिबंध-झीणदा। एवं दंसणावरणीयस्स वि वत्तव्वं। वेदणीयस्स असादं बंधेण झीणं, णो सादं। मोहणीयस्स इत्थि-णवुंसय-अरदि-सोगा बंधेण झीणा, सेसाओ मोहपयडीओ बंधेण णो झीणाओ। आउअस्स चत्तारि वि पयडीओ बंधेण झीणाओ। णामस्स जइ णेरइयो पढमाए जाव छट्ठि पुढवि त्ति तस्स णिरयगइ-तिरिक्खगइ-देवगइ-एइंदिय-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियजादि-वेउव्विय-आहारसरीर-पंचसंठाण-दोण्णिअंगोवंग-पंच-संघडण-णिरय-तिरिक्ख-देवाणुपुव्वि-आदावुज्जोव-अप्पसत्थविहायगदि-थावर-सुहुम-अपज्ज०-साहारण-अथिर-असुभ-दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसगित्ति-तित्थयरणामा त्ति एदाओ-

---

योग्य संक्लेशका उल्लंघन कर उनकी प्रतिपक्षभूत प्रकृतियोंके बन्धके निमित्तरूप विशुद्धिसे वृद्धिको प्राप्त हुए सर्वविशुद्ध इस जीवके उन प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति होनेमें कोई विरोध नहीं पाया जाता। इस प्रकार ओघसे सूत्रके अनुसार प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति कही।

विशेषार्थ—यहाँ सामान्यरूपसे चारों गतियोंमें घटित हों इस अपेक्षाको मुख्यकर ये चौंतीस बन्धापसरण कहे गये हैं। जिन प्रकृतियोंके विषयमें कुछ अपवाद है उनका निर्देश यथास्थान टीकामें किया ही है। उदाहरणार्थ सातवें नरकका नारकी जीव प्रथम सम्यक्त्वके प्राप्त करनेके सन्मुख होनेके पूर्व भी तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका ही नियमसे बन्ध करता रहता है तथा ऐसी भूमिकामें भी उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। इसलिये इन प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति करनेवाले दो बन्धापसरण सातवें नरकमें नहीं बनते। इसी प्रकार प्रथम सम्यक्त्वके सन्मुख होनेके पूर्व ही तिर्यञ्चों और मनुष्योंके मनुष्य-गति आदि पाँच प्रकृतियोंकी यथास्थान नियमसे बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है, इसलिये यह बन्धापसरण केवल तिर्यञ्चों और मनुष्योंकी अपेक्षा कहा है। शेष कथन सुगम है।

§ ६५. अब आदेशद्वारा प्रकृतिबन्धसम्बन्धी क्षीण-अक्षीणपनेविषयक कुछ प्ररूपणा करते हैं। यथा—आदेशसे चारों ही गतियोंमें ज्ञानावरणीयके प्रकृतिबन्धका विच्छेद नहीं है। इसी प्रकार दर्शनावरणकी अपेक्षा भी कहना चाहिए। वेदनीयकी असाताप्रकृति बन्धसे विच्छिन्न है, सातावेदनीय नहीं। मोहनीयकर्मकी स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति और शोक बन्धसे विच्छिन्न हैं, शेष मोह प्रकृतियाँ बन्धसे विच्छिन्न नहीं होतीं। आयुकर्मकी चारों ही प्रकृतियाँ बन्धसे विच्छिन्न हैं। नामकर्मकी यदि प्रथम पृथिवीसे लेकर छटी पृथिवी तकका नारकी है तो उसके नरकगति, तिर्यञ्चगति, देवगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रिय-जाति, चतुरिन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, पाँच संस्थान, दो आंगोपांग, पाँच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति और तीर्थंकर ये प्रकृतियाँ बन्धसे विच्छिन्न हैं, शेष नहीं। गोत्रकर्मकी नीचगोत्र

देऊणामाणमक्कमेण वंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरिदूण हुंडसंठाण-असंपत्त-सेवट्टसंघडण० एदासिं दोण्हं पयडीणमेक्कदो वंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरिदूण णवुंस० वंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमपुधत्तमोसरिदूण वामणसंठाण-कीलियसंघडणाणं दोण्हं पयडीणमेक्कदो वंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमपुधत्तमोसरियूण खुज्जसंठाण-अद्धणारायण० दोण्हमेदासिं पयडीणं एक्कदो वंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमपुधत्तमोसरिदूण इत्थिवेदवंधवोच्छेदो। तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरिदूण सादिसंठाण-णारायणसरीर० दोण्हं पि पयडीणं एक्कदो वंधवोच्छेदो। तदो सागरो० पुध० णग्गोधपरि०-वज्जणारायणसरीरसंघ० दोण्णं पि एक्कदो वंध०। तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरियूण मणुसगइ-ओरालियसरीर-तदंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वि० एदासिं पंचण्हं पयडीणं एक्कदो वंधवोच्छेदो। एदं तिरिक्ख-मणुस्से पडुच्च परूविदं, देव-णेरइएसु एदासिं वंधविच्छेदाणुवलंभादो। अदो चेव सुत्ते एदासिं वंधवोच्छेदो अणुवइट्ठो, सुत्तस्स च चउगइसामण्णावेक्खाए पयट्टत्तादो। तदो सागरोवमपुधत्तं ओसरिदूण असादावेदणीय-अरदि-सोग-अथिर-असुह-अजसगित्ति-णामाणमेदासिं पयडीणं जुगवं वंधवोच्छेदो। जाव पमत्तसंजदो त्ति वंधपाओग्गाणं पि एदासिमेत्थ वंधवोच्छेदपरूवणा ण विरुज्झदे। किं कारणं? सव्वविसुद्धस्सेदस्स

---

बन्ध करनेवाले जीवके हुंडसंस्थान और असंप्राप्तासृपाटिका संहनन इन दोनों प्रकृतियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके नपुंसकवेदकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपम-पृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके वामनसंस्थान और कीलिक संहनन इन दो प्रकृतियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके कुब्जकसंस्थान और अर्धनाराचसंहनन इन दो प्रकृतियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके स्त्रीवेदकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपम-पृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके स्वातिसंस्थान और नाराचसंहनन इन दोनों प्रकृतियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान और वज्रनाराचसंहनन इन दोनों प्रकृतियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आंगोपांग, वज्रर्षभ-संहनन और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी इन पाँच प्रकृयियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। यह तिर्यञ्चों और मनुष्योंकी अपेक्षा कहा है, क्योंकि देवों और नारकियोंमें इन पाँच प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति नहीं पाई जाती और इसीलिये सूत्रमें इनकी बन्धव्युच्छित्ति-का निर्देश नहीं किया है, क्योंकि यह सूत्र चतुर्गति सामान्यकी अपेक्षा प्रवृत्त हुआ है। उससे आगे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थिति घटाकर बन्ध करनेवाले जीवके असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयश कीर्ति इन प्रकृतियोंकी एक साथ बन्धव्युच्छित्ति होती है। यद्यपि ये प्रकृतियाँ प्रमत्तसंयत गुणस्थान तक बन्धके योग्य हैं फिर भी यहाँ इनकी बन्धव्युच्छित्तिका कथन विरोधको प्राप्त नहीं होता, क्योंकि उन प्रकृतियोंके बन्धके

तब्बंधपाओग्गसंकिलेसविसयमुल्लंघियूण तप्पडिवक्खपयडिबंधणिबंधणविसोहीए वड्ढमाणस्स तब्बंधवोच्छेदे विरोहाणुवलंभादो। एवमोघेण पयडीणं बंधवोच्छेदो सुत्ताणुसारेण परूविदो।

§ ६५. संपहि आदेसमुहेण पयडिबंधझीणाझीणत्तविसयं किंचि परूवणं कस्सामो। तं जहा—आदेसेण चदुसु वि गदीसु णाणावरणीयस्स णत्थि पयडिबंधझीणदा। एव दंसणावरणीयस्स वि वत्तव्वं। वेदणीयस्स असादं बंधेण झीणं, णो सादं। मोहणीयस्स इत्थि-णवुंसय-अरादि-सोगा बंधेण झीणा, सेसाओ मोहपयडीओ बंधेण णो झीणाओ। आउअस्स चत्तारि वि पयडीओ बंधेण झीणाओ। णामस्स जइ णेरइयो पढमाए जाव छट्ठि पुढवि त्ति तस्स णिरयगइ-तिरिक्खगइ-देवगइ-एइंदिय-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियजादि-वेउव्विय-आहारसरीर-पंचसंठाण-दोण्णिअंगोवंग-पंचसंघडण-णिरय-तिरिक्ख-देवाणुपुव्वि-आदावुज्जोव-अप्पसत्थविहायगदि-थावर-सुहुम-अपज्ज०-साहारण-अथिर-असुभ-दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसगित्ति-तित्थयरणामा त्ति एदाओ-

---

योग्य सक्लेशका उल्लघन कर उनकी प्रतिपक्षभूत प्रकृतियोंके बन्धके निमित्तरूप विशुद्धिसे वृद्धिको प्राप्त हुए सर्वविशुद्ध इस जीवके उन प्रकृतियोकी बन्धव्युच्छित्ति होनेमें कोई विरोध नहीं पाया जाता। इस प्रकार ओघसे सूत्रके अनुसार प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति कही।

विशेषार्थ—यहाँ सामान्यरूपसे चारों गतियोंमें घटित हों इस अपेक्षाको मुख्यकर ये चौंतीस बन्धापसरण कहे गये हैं। जिन प्रकृतियोंके विषयमे कुछ अपवाद है उनका निर्देश यथास्थान टीकामें किया ही है। उदाहरणार्थ सातवे नरकका नारकी जीव प्रथम सम्यक्त्वके प्राप्त करनेके सन्मुख होनेके पूर्व भी तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका ही नियमसे बन्ध करता रहता है तथा ऐसी भूमिकामें भी उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। इसलिये इन प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति करनेवाले दो बन्धापसरण सातवे नरकमें नहीं बनते। इसी प्रकार प्रथम सम्यक्त्वके सन्मुख होनेके पूर्व ही तिर्यञ्चों और मनुष्योंके मनुष्यगति आदि पाँच प्रकृतियोंकी यथास्थान नियमसे बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है, इसलिये यह बन्धापसरण केवल तिर्यञ्चों और मनुष्योंकी अपेक्षा कहा है। शेष कथन सुगम है।

§ ६५. अब आदेशद्वारा प्रकृतिबन्धसम्बन्धी क्षीण-अक्षीणपनेविषयक कुछ प्ररूपणा करते हैं। यथा—आदेशसे चारों ही गतियोंमे ज्ञानावरणीयके प्रकृतिबन्धका विच्छेद नहीं है। इसी प्रकार दर्शनावरणकी अपेक्षा भी कहना चाहिए। वेदनीयकी असाताप्रकृति बन्धसे विच्छिन्न है, सातावेदनीय नहीं। मोहनीयकर्मकी स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति और शोक बन्धसे विच्छिन्न हैं, शेष मोह प्रकृतियाँ बन्धसे विच्छिन्न नहीं होतीं। आयुकर्मकी चारों ही प्रकृतियाँ बन्धसे विच्छिन्न हैं। नामकर्मकी यदि प्रथम पृथिवीसे लेकर छटी पृथिवी तकका नारकी है तो उसके नरकगति, तिर्यञ्चगति, देवगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, पाँच संस्थान, दो आगोपांग, पाँच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति और तीर्थंकर ये प्रकृतियाँ बन्धसे विच्छिन्न हैं, शेष नहीं। गोत्रकर्मकी नीचगोत्र

पयडीओ बंधेण झीणाओ, ण सेसाओ । गोदस्स णीचागोदं बंधेण वोच्छिण्णं, णेदरं । अंतराइयस्स णत्थि एत्थ पयडिबंधस्स झीणदा । सत्तमाए एवं चेव । णवरि उज्जोवं सिया बंधेण झीणं सिया णोझीणं । तिरिक्खगइ-तप्पाओगाणु०-णीचागोदाणि च बंधेण णोझीणाणि । मणुसगइ-तप्पाओग्गाणुपुव्वि-उच्चागोदाणि बंधेण झीणाणि ।

§ ६६. जइ तिरिक्खो मणुस्सो वा तो तस्स णामस्स देवगदि-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वेउव्वियअंगोवंग-वण्णादि४-देवगइपाओग्गाणुपुव्वि - अगुरुलहुआदि४ - पसत्थविहायगदि - तसादि४ - थिरादि६ - णिमिणणामाणि मोत्तूण सेसाणि बंधेण झीणाणि । गोदस्स णीचागोदं बंधेण झीणं । सेसं पुव्वं व वत्तव्वं । देवगदीए पढमपुढविभंगो । एसा पयडिबंधझीणदा णाम ।

§ ६७. एदासिं चेव पयडीणं पयडिझीणदाए समुद्दिट्ठाणं ट्ठिदिबंधझीणदा च अणुमग्गियव्वा । अज्झीणबंधाणं पि पयडीणमंतोकोडाकोडीदो उवरिमट्ठिदिबंधवियप्पाणं झीणदा समयाविरोहेणाणुगंतव्वा । एवमणुभाग-पदेसविसए वि एसो अत्थो जोजेयव्वो । एवं ताव पयडिबंधवोच्छेदं ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसबंधवोच्छेदगब्भं परूविय संपहि पयडिविसयमुदयवोच्छेदं परूवेमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

* **पंचदंसणावरणीय-चदुजादिणामाणि चदुआणुपुव्विणामाणि**

---

प्रकृति बन्धसे विच्छिन्न है, उच्चगोत्र नहीं। अन्तरायकर्मके प्रकृतिबन्धका विच्छेद यहाँ नहीं है। सातवीं पृथिवीमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उद्योतप्रकृति कदाचित् बन्धसे विच्छिन्न है, कदाचित् विच्छिन्न नहीं है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्र ये बन्धसे विच्छिन्न नहीं हैं। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र ये बन्धसे विच्छिन्न हैं।

§ ६६. यदि तिर्यञ्च और मनुष्य है तो उसके नामकर्मकी देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आंगोपांग, वर्णादिचतुष्क, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु आदि चार, प्रशस्त विहायोगति, त्रसादि चार, स्थिरादि छह और निर्माण इन प्रकृतियोंको छोड़कर शेष प्रकृतियाँ बन्धसे विच्छिन्न हैं। गोत्रकर्मकी नीचगोत्र प्रकृति बन्धसे विच्छिन्न है। शेष कथन पहलेके समान कहना चाहिए। देवगतिमें पहली पृथिवीके समान भंग है। यह प्रकृतिबन्धसम्बन्धी विच्छिन्नताका निर्देश है।

§ ६७. प्रकृतिबन्धविच्छिन्नतारूपसे निर्दिष्ट इन्हीं प्रकृतियोंकी स्थितिबन्धकी अपेक्षा विच्छिन्नताका अनुमार्गण कर लेना चाहिए। तथा जिन प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति नहीं होती उन प्रकृतियोंकी अन्तःकोड़ाकोड़ीसे उपरिम स्थितिबन्धविकल्पोंकी विच्छिन्नता समयके अविरोधरूपसे जान लेना चाहिए। इसीप्रकार अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धके विषयमें भी यह अर्थ योजित करना चाहिए। इस प्रकार स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धकी बन्धव्युच्छित्ति जिसमें गर्भित है ऐसे प्रकृतिबन्धकी व्युच्छित्तिका कथन कर अब प्रकृति-विषयक उदयव्युच्छित्तिका कथन करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* **पाँच दर्शनावरण, चार जाति नामकर्म, चारों आनुपूर्वी नामकर्म तथा**

**आदाव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीरणामाणि एदाणि उदएण वोच्छिण्णाणि।**

§ ६८. एत्थ पंचदंसणावरणीयणिद्देसेण णिद्दाभेदाणं पंचण्हं गहणं कायव्वं, तेसिमेत्थुदयवोच्छेदो। किं कारणं? दंसणमोहुवसामगस्स सागर-जागारावत्थस्स तदुदय-परिणामविरोहादो। एवं चदुजादिआदीण पि सुत्तणिद्दिट्ठपयडीणमुदयवोच्छेदो वत्तव्वो।

§ ६९. एवमोघेण परूविदस्सेदस्सत्थस्स पुणो वि फुडीकरणट्ठमादेसपरूवणा कीरदे। तं जहा—आदेसेण चदुसु गदीसु वि पचणाणावरणीयाण णत्थि उदयेण झीणदा। दंसणावरणीयस्स चत्तारि पयडीओ उदएण अज्झीणाओ। वेदणीयस्स सादासादाणं णत्थि उदएण झीणदा। मोहणीयस्स सव्वासिं पयडीणं णत्थि उदएण झीणदा। णवरि णेरइएसु इत्थि-पुरिसवेदाणमुदएण झीणदा। देवेसु णवुंसयवेदस्स उदएण झीणदा वत्तव्वा। आउस्स सव्वासिं पयडीणं णत्थि उदयवोच्छेदो। णवरि

आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणशरीर नामकर्म ये प्रकृतियाँ उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं।

§ ६८ यहाँ सूत्रमें पाँच दर्शनावरण पदके निर्देशसे निद्रादि पाँच भेदोंका ग्रहण करना चाहिए, उनकी इसके उदय व्युच्छित्ति है, क्योंकि साकार उपयोग और जागृत अवस्था-विशिष्ट दर्शनमोह-उपशामकके इन पाँच निद्रादिके उदयरूप परिणामका विरोध है। इसी प्रकार सूत्रमें निर्दिष्ट की गई चार जाति आदि प्रकृतियोंकी उदयके अभावका भी कथन करना चाहिए।

विशेषार्थ—दर्शनमोहका उपशामक वही जीव हो सकता है जो संज्ञी, पञ्चेन्द्रिय और पर्याप्त होकर जीवादि नौ पदार्थोंके यथार्थ ज्ञानके साथ अपने साकार उपयोग द्वारा जीवादि नौ पदार्थोंमें अनुस्यूत एकमात्र जीवपदार्थके अनुमननके सन्मुख हो। ऐसा जीव नियमसे जागृत होता है, इसलिये तो उसके निद्रादि पाँच दर्शनावरण प्रकृतियोंके उस कालमें उदयका निषेध किया है। साथ ही उसके संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त एकमात्र यही जीवसमास होता है, इसलिये उसके एकेन्द्रिय आदि चार जाति, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण इन प्रकृतियोंके उदयका निषेध किया है। यहाँ सूत्रमें पाँच दर्शनावरण आदिके मात्र उदयका निषेध किया है। परन्तु इससे इन प्रकृतियोंकी उदीरणाका भी निषेध जान लेना चाहिए, क्योंकि कुछ अपवादोंको छोड़कर सर्वत्र उदीरणा उदयकी अविनाभाविनी होती है।

§ ६९. इस प्रकार ओघसे कहे गये इस अर्थका फिर भी स्पष्टीकरण करनेके लिये आदेशप्ररूपणा करते हैं। यथा—आदेशसे चारों ही गतियोंमें पाँच ज्ञानावरण प्रकृतियोंका उदयविच्छेद नहीं है। दर्शनावरणकी चार प्रकृतियोंका उदयविच्छेद नहीं है। वेदनीयकी साता और असाता इन दोनों प्रकृतियोंका उदयविच्छेद नहीं है। मोहनीयकी सब प्रकृतियोंका उदयविच्छेद नहीं है। इतनी विशेषता है कि नारकियोंमें स्त्रीवेद और पुरुषवेदका उदय नहीं होता। तथा देवोंमें नपुंसकवेदका उदय नहीं होता ऐसा कहना चाहिए। आयुकी सभी

एक्कम्मि आउए गदिविसेससंबंधेण णिरुद्धे तत्थ सेसाणमुदएण झीणदा त्ति वत्तव्वं ।

§ ७०. णामस्स जइ णेरइओ, णिरयगइ-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइय-सरीर-हुंडसंठाण०-वेउव्वियअंगोवंग-वण्ण४-अगुरुअलहुअ४-अप्पसत्थविहाय०-तस४-थिराथिर-सुहासुह-दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसगित्ति-णिमिणणामाओ एदाओ पयडीओ उदएण अज्झीणाओ, सेसाओ झीणाओ ।

§ ७१. जइ तिरिक्खो, तिरिक्खगइ-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर० छण्हं संठाणाणमेक्कदरं ओरालियअंगोवंग० छण्हं संघडणाणमेक्कदरं वण्ण४-अगुरुलहुअ४ उज्जोवं सिया० दोण्हं विहायगदीणमेक्कदरं तसादिचउक्क० थिराथिर-सुभासुभ० सुभग-दूभगाणमेक्कदरं सुस्सर-दुस्सराणमेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाणमेक्कदरं जस-अजसगित्तीण-मेक्कदरं णिमिणं च एदाओ पयडीओ तिरिक्खस्स उदएण अज्झीणाओ। सेसाओ पयडीओ उदएण झीणाओ । मणुस्सस्स वि मणुसगदि-पंचिंदियजादि० एवं तिरिक्ख-भंगेण णेदव्वं । णवरि उज्जोववज्जं ।

§ ७२. जइ देवो, देवगइ-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरस-संठाण-वेउव्वियअंगोवंग-वण्ण४-अगुरुलहुअ४-पसत्थविहायगइ-तस४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसगित्ति-णिमिणमिदि एदाओ पयडीओ उदएण अज्झी-

---

प्रकृतियोंका उदयविच्छेद नहीं है । इतनी विशेषता है कि गतिविशेषके सम्बन्धसे एक आयुके उदय रहनेपर उसके शेष आयुओंका उदय नहीं होता ऐसा कहना चाहिए।

§ ७०. यदि नारकी है तो नामकर्मकी नरकगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुंडसंस्थान, वैक्रियिक शरीर आंगोपांग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, अप्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माण नामवाली ये प्रकृतियाँ उदयसे विच्छिन्न नहीं हैं, शेष प्रकृतियाँ उदयसे विच्छिन्न हैं अर्थात् शेष प्रकृतियोंका उसके उदय नहीं होता ।

§ ७१. यदि तिर्यञ्च है तो तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस-शरीर, कार्मणशरीर, छह संस्थानोंमेंसे कोई एक, औदारिक शरीर आंगोपांग, छह संहननोंमेंसे कोई एक, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, कदाचित् उद्योत दो विहायोगतियोंमेंसे कोई एक, त्रसादिचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग-दुर्भगमेंसे कोई एक, सुस्वर-दुःस्वरमेंसे कोई एक, आदेय-अनादेयमेंसे कोई एक, यशःकीर्ति-अयशःकीर्तिमेंसे कोई एक और निर्माण ये प्रकृतियाँ तिर्यञ्चके उदयसे विच्छिन्न नहीं हैं, शेष प्रकृतियाँ उदयसे विच्छिन्न हैं, अर्थात् शेष प्रकृतियोंका उसके उदय नहीं होता । मनुष्यके भी मनुष्यगति और पञ्चेन्द्रियजाति इत्यादि रूपसे तिर्यञ्चके समान जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इसके उद्योत प्रकृतिका उदय नहीं होता।

§ ७२. यदि देव है तो देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आंगोपांग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशः-कीर्ति और निर्माण नामवाली ये प्रकृतियाँ उदयसे विच्छिन्न नहीं हैं, शेष प्रकृतियाँ उदयसे

णाओ, सेसाओ झीणाओ।

§ ७३. गोदस्स जइ णेरइओ तिरिक्खो वा णीचागोदमुदयादो अज्झीणमुच्चागोदं झीणं। जइ मणुसो, णीचुच्चागोदाणमेक्कदरं झीणं। जइ देवो, उच्चगोदं उदएण अज्झीण, णीचागोदं झीणं। चदुसु वि गदीसु पंचंतराइयाणि उदएण णो झीणाणि। एसा ताव पयडिउदयझीणदा सुत्ताणुसारेण मग्गिदा।

§ ७४. जाओ पयडीओ जत्थ उदएण अज्झीणाओ तत्थ तासिमंतोकोडाकोडिमेत्ता ट्ठिदी उदएण अज्झीणा। सेसाणं पयडीणं सव्वाओ ट्ठिदीओ उदएण झीणाओ। एसा ट्ठिदिउदयझीणदा णाम। जाओ अप्पसत्थपयडीओ उदएण अज्झीणाओ तासिं विट्ठाणिओ अणुभागो संतादो अणंतगुणहीणो उदएण अज्झीणो। जाओ पसत्थपयडीओ उदएण अज्झीणाओ तासिं पयडीणं चउट्ठाणिओ अणुभागो बंधादो अणतगुणहीणसरूवो उदयादो अज्झीणो, सेसाणं झीणत्तं। एसा अणुभागझीणदा णाम। पदेसझीणदा वि जाओ पयडीओ उदएण अज्झीणाओ तासिं पयडीणमणुक्कस्सयं पदेसग्गमुदयादो अज्झीणं, सेसाणि ज्झीणाणि। एत्थेव पयडिआदीणमुदीरणादो वि झीणाझीणत्तभेदीए दिसाए अणुगंतव्वं। एवं तदियगाहापुव्वद्धस्स अत्थविहासा समत्ता।

---

विच्छिन्न हैं, अर्थात् उनका उदय नहीं होता।

§ ७३ यदि नारकी और तिर्यञ्च है तो गोत्रकर्मकी नीचगोत्र प्रकृति उदयसे विच्छिन्न नहीं है, उच्चगोत्र प्रकृति उदयसे विच्छिन्न है। यदि मनुष्य है तो नीचगोत्र और उच्चगोत्र इनमेसे कोई एक प्रकृति उदयसे विच्छिन्न है। यदि देव है तो उच्चगोत्र प्रकृति उदयसे विच्छिन्न नहीं है, नीचगोत्र प्रकृति उदयसे विच्छिन्न है। यह प्रकृति उदयविच्छिन्नता है जिसका सूत्रके अनुसार विचार किया।

§ ७४. जो प्रकृतियाँ जहाँ पर उदयसे अविच्छिन्न हैं वहाँ उनकी अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थिति उदयसे अविच्छिन्न हैं। शेप प्रकृतियोकी सब स्थितियाँ उदयसे विच्छिन्न हैं। यह स्थितिउदयविच्छिन्नता है। जो अप्रशस्त प्रकृतियाँ उदयसे अविच्छिन्न है उनका द्विस्थानीय अनुभाग सत्त्वसे अनन्तगुणा हीन होकर उदयसे अविच्छिन्न है। जो प्रशस्त प्रकृतियाँ उदयसे अविच्छिन्न हैं उन प्रकृतियोंका चतुःस्थानीय अनुभाग बन्धसे अनन्तगुणा हीनस्वरूप होकर उदयसे अविच्छिन्न है, शेप प्रकृतियोंका अनुभाग उदयसे विच्छिन्न है। यह अनुभाग विच्छिन्नता है। प्रदेशविच्छिन्नता—जो प्रकृतियाँ उदयसे अविच्छिन्न है उन प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशपिण्ड उदयसे अविच्छिन्न है, शेष प्रकृतियाँ प्रदेशपिण्डकी अपेक्षा उदयसे विच्छिन्न हैं। यहीं पर प्रकृति आदिकी उदीरणाकी विच्छिन्नता और अविच्छिन्नताको भी इसी दिशासे जान लेना चाहिए। इस प्रकार तीसरी गाथाके पूर्वार्धके अर्थका विशेष व्याख्यान समाप्त हुआ।

विशेपार्थ—यहाँ चूर्णिसूत्रमें दर्शनमोहके उपशमके सन्मुख हुए जीवके निद्रादिक पाँचका अनुदय बतलाया है। उसका कारण देते हुए टीकामें बतलाया है कि ऐसा जीव नियमसे जागृत होता है। किन्तु धवला टीकामे ऐसे जीवको दर्शनावरणकी चार या निद्रा-

§ ७५. संपहि तप्पच्छद्धस्स अत्थविहासणट्ठमिदमाह—

* 'अंतरं वा कहिं किच्चा के के उवसामगो कहिं' त्ति विहासा।

§ ७६. एदस्स गाहापच्छद्धस्स एण्हिमत्थविहासा अहिकीरदि त्ति भणिदं होइ।

* ण ताव अंतरं उवसामगो वा पुरदो होहिदि त्ति।

§ ७७. ण ताव इदानीमंतरकरणमुपशमकत्वं वा दर्शनमोहस्य विद्यते, किंतु तदुभयं पुरस्तादनिवृत्तिकरणं प्रविष्टस्य भविष्यतीत्ययमत्र सूत्रार्थसद्भावः। एवं तदिय-गाहाए अत्थविहासा समत्ता।

§ ७८. संपहि चउत्थगाहाए अत्थविहासणट्ठमिदमाह—

प्रचला इनमेंसे किसी एक प्रकृतिके साथ पाँच प्रकृतियोंका वेदक कहा है। धवला टीकाका वह उल्लेख इस प्रकार है—

चक्खुदंसणावरणीयमचक्खुदंसणावरणीयमोहिदंसणावरणीय-केवलदंसणावरणीयमिदि चदुण्हं दंसणावरणीयाणं वेदगो, णिद्दा-पयलाणं एक्कदरेण सह पंचण्हं वा वेदगो।

२. मोहनीयकर्मके प्रसंगसे यहाँ मोहनीयकर्मकी सभी प्रकृतियोंका उदय बतलाया है। सो उसका यह आशय है कि उक्त जीवके सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृतिको छोड़कर आगमानुसार सभी प्रकृतियोंका उदय सम्भव है। यथा—मिथ्यात्व, चारों क्रोध, या चारों मान, या चारों माया या चारों लोभ, तीन वेदोंमेंसे कोई एक वेद, हास्य-रति और अरति-शोक इन दो युगलोंमेंसे कोई एक युगल तथा भय और जुगुप्सा इस प्रकार १० का, या भय-जुगुप्सामेंसे एकके बिना ९ का, या दोनोंके बिना ८ का उदय होता है।

३. दूसरे यहाँ उदयागत प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका उदय बतलाया है, किन्तु धवला टीकामें उदयगत प्रकृतियोंके अजघन्य-अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका वेदक बतलाया है। यथा—

उदइल्लाणं पयडीणमजहण्णाणुक्कस्सपदेसाणं वेदगो।

§ ७५ अब उसके उत्तरार्धके अर्थका विशेष व्याख्यान करनेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

* उक्त जीव 'अन्तर कहाँ पर करता है और कहाँ पर किन-किन कर्मोंका उपशामक होता है' इस पदकी विभाषा।

७६ 'तीसरी गाथाके इस उत्तरार्धके अर्थका इस समय विशेष व्याख्यान अधिकार प्राप्त है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें न तो अन्तरकरण होता है और न ही यहाँ पर वह उपशामक होता है, आगे जाकर ये दोनों कार्य होंगे।

§ ७७. इस समय दर्शनमोहका न तो अन्तरकरण होता है और न ही उपशामकपना ही पाया जाता है, किन्तु ये दोनों आगे अनिवृत्तिकरणमें प्रविष्ट हुए जीवके होंगे यह यहाँ सूत्रके अर्थका तात्पर्य है। इस प्रकार तीसरी गाथाके अर्थका विशेष व्याख्यान समाप्त हुआ।

§ ७८ अब चौथी गाथाके अर्थका विशेष व्याख्यान करनेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

* किं ठिदियाणि कम्माणि अणुभागेसु केसु वा। ओवट्टेयूण सेसाणि कं ठाणं पडिवज्जदि त्ति विहासा।

§ ७९. एदिस्से चउत्थगाहाए जहावसरपत्तमत्थविहासणमिदाणिं कस्सामो त्ति वुत्तं होइ।

* ट्ठिदिघादो संखेज्जा[1] भागे घादेदूण संखेज्जदिभागं पडिवज्जइ।

§ ८०. अधापवत्तकरणचरिमसमयविसयादो ठिदिसंतकम्मादो अंतोकोडाकोडिसागरोवमपमाणादो अपुव्वाणियट्टिकरणपरिणामेहिं संखेज्जे भागे जहाकमं संखेज्जसहस्सेहिं ठिदिखंडयघादेहिं घादिदूण तदो पुव्वणिरुद्धठिदीए संखेज्जदिभागमेसो पडिवज्जदि त्ति भणिदं होइ।

* अणुभागघादो अणंते भागे घादिदूण अणंतभागं पडिवज्जइ।

§ ८१. अप्पसत्थाणं कम्माणं अणुभागस्साणंते भागे अपुव्वाणियट्टिकरणपरिणामेहिं घादिय तदणंतिमभागमेसो पडिवज्जदि त्ति वुत्तं होइ। सपहि एदे दो वि घादा अधापवत्तकरणं वोलिय अपुव्वकरणपढमसमयप्पहुडि पयट्टंति त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—

---

* 'उक्त जीव किस स्थितिवाले कर्मोंका और किन अनुभागोंमें स्थित कर्मोंका अपवर्तन करके किस स्थानको प्राप्त करता है' इसकी विभाषा।

§ ७९ यथा अवसर प्राप्त इस चौथी गाथाके अर्थका इस समय विशेष व्याख्यान करेंगे यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* स्थितिघात—संख्यात बहुभागप्रमाण स्थितियोंका घातकर संख्यातवें भागको प्राप्त होता है।

§ ८० अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें जो स्थितिसत्कर्म अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण है उसमेंसे अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंके बलसे यथाक्रम संख्यात हजार स्थिति काण्डकघातोंके द्वारा संख्यात बहुभागप्रमाण स्थितिका घातकर पहलेकी विवक्षित स्थितिके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिको यह प्राप्त होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* अनुभागघात—अनन्त बहुभागप्रमाण अनुभागका घातकर अनन्तवें भागप्रमाण अनुभागको प्राप्त होता है।

§ ८१. अप्रशस्त कर्मोंके अनुभागके अनन्त बहुभागका अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंके बलसे घातकर उसके अनन्तवें भागप्रमाण अनुभागको यह प्राप्त होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अब ये दोनों ही घात अधःप्रवृत्तकरणको उल्लंघन कर अपूर्वकरणके प्रथम समयसे प्रवृत्त होते हैं इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेके सूत्रको कहते हैं—

---

१ ता०प्रतौ ट्ठिदियादो सखेज्जे इति पाठो।

* तदो इमस्स चरिमसमयअधापवत्तकरणे वट्टमाणस्स णत्थि ट्ठिदिघादो वा अणुभागघादो वा। से काले दो वि घादा पवत्तीहिंत्ति।

§ ८२. जदि एसो पडिसमयमणंतगुणाए विसोहीए सुट्ठु वि विसुज्झमाणो संतो ट्ठिदि-अणुभागखंडयघादपाओग्गविसोहीओ ण पावदि, हेट्ठा चेव वट्टदि, तदो इमस्स चरिमसमयाधापवत्तकरणभावे वट्टमाणस्स णत्थि ट्ठिदिघादो अणुभागघादो वा। किंतु से काले अपुव्वकरणं पविट्ठपढमसमए दो वि एदे ट्ठिदि-अणुभागविसयघादा गुणसेढिणिक्खेवादिसहगदा पवत्तीहिंति। तम्हा तत्थेव तप्परूवणं करसामो त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो।

* अतः अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें विद्यमान इस जीवके स्थितिघात और अनुभागघात नहीं होता, किन्तु तदनन्तर समयमें दोनों ही घात प्रवृत्त होंगे।

§ ८२ यद्यपि यह जीव प्रत्येक समयमें अनन्तगुणी विशुद्धिसे अत्यन्त विशुद्ध होता हुआ भी स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघातके योग्य विशुद्धिको नहीं प्राप्त होता, नीचे ही रहता है, इसलिये अधःप्रवृत्तकरणभावमें विद्यमान इसके स्थितकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात नहीं होता। किन्तु तदनन्तर समयमें अपूर्वकरणके प्रथम समयमें प्रविष्ट होनेपर गुणश्रेणिनिक्षेप आदिके साथ स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात प्रवृत्त होंगे, इसलिये वहीं पर उनका कथन करेंगे यह इस सूत्रका भावार्थ है।

विशेषार्थ—क्षयोपशम आदि चार लब्धियोंसे संयुक्त जो जीव दर्शनमोहका उपशम करनेके सन्मुख होकर अधःप्रवृत्तकरणमें प्रविष्ट होता है उसके प्रथम समयसे लेकर इस करणके अन्तिम समय तक प्रत्येक समयके परिणामोंमें उत्तरोत्तर अनन्तगुणी विशुद्धि होती जाती है। इस जीवके अपने कालके भीतर प्रत्येक समयमे अप्रशस्त कर्मोंका अनन्तगुण हीन द्विस्थानीय और प्रशस्त कर्मोंका अनन्तगुणा चतु.स्थानीय अनुभागबन्ध होता रहता है। तथा एक स्थितिबन्धका समय पूर्ण होनेपर दूसरा स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण कम होकर अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है। इसी क्रमसे तीसरा, चौथा आदि जानना चाहिए। इसप्रकार इस करणमें सख्यात हजार स्थितिबन्धापसरण होते हैं। किन्तु इन परिणामोको निमित्तकर स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात, गुण-श्रेणि रचना और गुणसंक्रम ये चार आवश्यक नहीं होते। यहाँ अपूर्वकरणमें स्थिति काण्डकघात, अनुभाग-काण्डकघात और गुणश्रेणि रचना होती है। यह उक्त कथनका तात्पर्य है। उपरितन एक काण्डक—प्रमाण स्थितिका फालिक्रमसे अन्तर्मुहूर्तकालमें घात करना स्थितिकाण्डकघात कहलाता है, अप्रशस्त प्रकृतियोंके उपरितन एक काण्डक प्रमाण बहुभाग अनुभागका फालि-क्रमसे अन्तर्मुहूर्तकालमे घात करना अनुभागकाण्डकघात कहलाता है। आयुके सिवाय शेष कर्मोंके उपरितन स्थितियोंमें स्थित कर्मपुंजमें अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारका भाग देनेपर जो एक भाग द्रव्य प्राप्त हो, उसमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर प्राप्त हुआ एक भागप्रमाण उदयवाली प्रकृतियोंका द्रव्य उदयावलिमें निक्षिप्त करना तथा उदयवाली व अनुदयवाली शेष प्रकृतियोंके द्रव्यको गुणितक्रमसे उदयावलिके अनन्तर समयवर्ती निषेकसे लेकर गुणश्रेणिशीर्ष तक निक्षिप्त करना गुणश्रेणि रचना कहलाती है। इन सबका विशेष विचार आगे किया ही है। यहाँ मात्र उनका स्वरूप बतलानेके लिये संक्षेपमे निर्देश किया है।

*** एदाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ अधापवत्तकरणस्स पढमसमए परूविदाओ।**

§ ८३. गयत्थमेदं सुत्तं। संपहि 'दंसणमोहउवसामगस्स परिणामो केरिसो भवे' इच्चेद सुत्तपदमस्सियूण दसणमोहोवसामगस्स करणलद्धिपरूवणट्ठमुवरिमो पबंधो।

*** दंसणमोहउवसामगस्स तिविहं करणं।**

§ ८४. येन परिणामविशेषेण दर्शनमोहोपशमादिर्विवक्षितो भावः क्रियते निष्पाद्यते स परिणामविशेषः करणमित्युच्यते। तं पुण करणमेत्थ तिविहं होइ त्ति एदेण सुत्तेण जाणाविदं। सपहि तेसिं तिण्हं करणाणं णामणिद्देसं कुणमाणो पुच्छावक्कमाह—

*** तं जहा।**

§ ८५. सुगमं।

*** अधापवत्तकरणमपुव्वकरणमणियट्टिकरणं च।**

§ ८६. एवमेदाणि तिण्णि करणाणि एत्थ होंति त्ति भणिदं होइ। संपहि एदेसिं तिण्हं करणाणं किंचि अत्थपरूवणं कस्सामो। तं जहा—जम्हि वट्टमाणस्स जीवस्स करणपरिणामा अधो हेट्ठा पवत्तंति तमधापवत्तकरणं णाम। एदम्मि करणे उवरिमसमयपरिणामा हेट्ठिमसमयेसु वि वट्टंति त्ति भणिदं होइ। समयं पडि अपुव्वा

*** इन चार गाथाओंकी अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें प्ररूपणा करनी चाहिए।**

§ ८३. यह सूत्र गतार्थ है। अब 'दर्शनमोहके उपशामकका परिणाम कैसा होता है।' इस प्रकार इस सूत्रपदका आलम्बन लेकर दर्शनमोहके उपशामककी करणलब्धिका कथन करनेके लिये आगेका प्रबन्ध कहते हैं—

*** दर्शनमोहके उपशामकके तीन करण होते हैं।**

§ ८४ जिस परिणामविशेषके द्वारा दर्शनमोहका उपशमादिरूप विवक्षित भाव किया जाता है अर्थात् उत्पन्न किया जाता है वह परिणाम करण कहलाता है। वह करण यहाँपर तीन प्रकारका होता है यह इस सूत्र द्वारा ज्ञात कराया गया है। अब उन तीन करणोंका नामनिर्देश करते हुए पृच्छावाक्यको कहते हैं—

*** वे जैसे।**

§ ८५ यह सूत्र सुगम है।

*** अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण।**

§ ८६ इस प्रकार ये तीन करण यहाँपर होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अब इन तीन करणोंके अर्थका किंचित् प्ररूपण करते हैं। यथा—जिस करणमें विद्यमान जीवके करणपरिणाम 'अधः' नीचे अर्थात् उपरितन ( आगेके ) समयके परिणाम नीचे ( पूर्व ) के समयके परिणामोंके समान प्रवृत्त होते हैं वह अधःप्रवृत्तकरण है। इस करणमें उपरिम समयके परिणाम नीचेके समयोंमें भी पाये जाते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। जिस

१. ता०प्रतौ त जहा इति पाठो नास्ति।

असमाणा णियमा अणंतगुणसरूवेण वड्ढिदा[1] करणा परिणामा जम्हि तमपुव्वकरणं णाम। एत्थतणपरिणामा पडिसमयमसंखेज्जलोगमेत्ता होदूणण्णसमयट्ठिदपरिणामेहिं सरिसा ण होंति त्ति भावत्थो। जम्हि वट्टमाणाणं जीवाणमेगसमयम्हि परिणामभेदो णत्थि तमणियट्टिकरणं णाम। एदेसिं करणाणं विसेसणिण्णयमुवरि कस्सामो। एवमधापवत्तादिकरणाणं णामणिद्देसं कादूण संपहि एदेसिं तिण्हमद्धाहिंतो उवरि उवसामणद्धा होइ त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

* चउत्थी उवसामणद्धा।

§ ८७. का उवसामणद्धा णाम? जम्हि अद्धाविसेसे दंसणमोहणीयमुवसंतावण्णं होदूण चिट्ठइ सा उवसामणद्धा त्ति भण्णदे। उवसमसम्माइट्ठिकालो त्ति भणिदं होइ।

* एदेसिं करणाणं लक्खणं।

§ ८८. एदेसिं करणाणं लक्खणपरूवणं इदाणिं कस्सामो त्ति भणिदं होइ। तत्थ ताव जहा उद्देसो तहा णिद्देसो त्ति णायादो अधापवत्तकरणलक्खणं पढममेव परूविज्जदे। तत्थ दोण्णि अणिओगद्दाराणि—अणुकट्ठिपरूवणा अप्पाबहुअं चेदि। एत्थ ताव सुत्तणिबद्धस्स अप्पाबहुअस्स साहणट्ठमणुकट्ठिपरूवणं कस्सामो। तं जहा— अधापवत्तकरणपढमसमयप्पहुडि जाव चरिमसमओ त्ति ताव पादेक्कमेक्केक्कम्मि समये

करणमें प्रत्येक समयमें अपूर्व अर्थात् असमान नियमसे अनन्तगुणरूपसे वृद्धिगत करण अर्थात् परिणाम होते हैं वह अपूर्वकरण है। इस करणमें होनेवाले परिणाम प्रत्येक समयमें असंख्यात लोकप्रमाण होकर अन्य समयमें स्थित परिणामोंके सदृश नहीं होते हैं -यह उक्त कथनका भावार्थ है। जिस करणमें विद्यमान जीवोंके एक समयमें परिणामभेद नहीं है वह अनिवृत्तिकरण है। इन करणोंका विशेष निर्णय ऊपर करेंगे। इस प्रकार अधःप्रवृत्त आदि करणोंका नामनिर्देश करके अब इन तीनोंके कालसे ऊपर ( आगे ) उपशामनकाल होता है इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र आया है—

* चौथी उपशामनाद्धा है।

§ ८७. शंका—उपशामनाद्धा किसे कहते हैं?

समाधान—जिस कालविशेषमें दर्शनमोहनीय उपशान्त होकर अवस्थित होता है उसे उपशामनाद्धा कहते हैं। उपशमसम्यग्दृष्टिका काल यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* अब इन करणोंका लक्षण कहते हैं।

§ ८८. इन करणोंके लक्षणका कथन इस समय करेंगे यह उक्त कथनका तात्पर्य है। उसमें भी सर्वप्रथम 'उद्देश्यके अनुसार निर्देश किया जाता है' इस न्यायके अनुसार प्रथम ही अधःप्रवृत्तकरणका लक्षण कहते हैं। उसमें दो अनुयोगद्वार हैं—अनुकृष्टिप्ररूपणा और अल्पबहुत्व। यहाँ सर्वप्रथम सूत्रमें निबद्ध किये गये अल्पबहुत्वका साधन करनेके लिये अनुकृष्टिका कथन करेंगे। यथा—अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय तक पृथक्

१. ता०प्रती -णाववड्ढिदा इति पाठ।

असंखेज्जलोगमेत्ताणि परिणामट्ठाणाणि छवड्ढिकमेणावट्ठिदाणि ट्ठिदिबंधोसरणादीणं कारणभूदाणि अत्थि। तेसिं परिवाडीए विरचिदाण पुणरुत्तापुणरुत्तभावगवेसणा अणुकट्ठी णाम। अनुकर्षणमनुकृष्टिरन्योन्येन समानत्वानुचिंतनमित्यनर्थान्तरम्। सा पुण संसारपाओग्गेसु ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणादिपरिणामेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभाग-मेत्तद्धाणमुवरि गंतूण वोच्छिज्जदि, जहण्णट्ठिदिबधपाओग्गपरिणामाणमुवरि पलिदोवमा-संखेज्जदिभागमेत्तट्ठिदिविसेसेसु अणुवुत्तीए तत्थ दंसणादो। इह पुण तहा ण होइ, किंतु अंतोमुहुत्तमेत्तमवट्ठिदमद्धाणं सगद्धाए संखेज्जदिभागं गंतूणाणुकट्ठिवोच्छेदो होदि। तत्कथमिति चेत्? उच्यते—अधापवत्तकरणपढमसमए असंखेज्जलोगमेत्ताणि परिणाम-ट्ठाणाणि होंति। पुणो विदियसमए ताणि चेव परिणामट्ठाणाणि अण्णेहिं अपुव्वेहिं परिणामट्ठाणेहिं विसेसाहियाणि। केत्तियमेत्तो विसेसो? असंखेज्जलोगपरिणामट्ठाणमेत्तो पढमसमयपरिणामट्ठाणाणमंतोमुहुत्तपडिभागिओ। एवमेदेण पडिभागेण[1] समय पडि विसेसाहियाणि कादूण णेदव्वं जाव अधापवत्तकरणचरिमसमयो त्ति।

---

पृथक् एक-एक समयमें छह वृद्धियोंके क्रमसे अवस्थित और स्थितिबन्धापसरणादिकके कारण-भूत असंख्यात लोकप्रमाण परिणामस्थान होते हैं। परिपाटीक्रमसे विरचित इन परिणामोंके पुनरुक्त और अपुनरुक्त भावका अनुसन्धान करना अनुत्कृष्टि है। 'अनुकर्षणमनुकृष्टि' अर्थात् इन परिणामोंकी परस्पर समानताका विचार करना यह अनुकृष्टिका एकार्थ है। परन्तु वह संसारके योग्य स्थितिबन्धाध्यवसानस्थानादिरूप परिणामोंके रहते हुए पल्योपमके असंख्यातवे भागप्रमाण काल ऊपर जाकर व्युच्छिन्न होती है, क्योंकि जघन्य स्थितिबन्धके योग्य परिणामों के सद्भावमें पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिविशेषोंकी अनुवृत्ति वहाँ देखी जाती है। परन्तु यहाँ पर वैसा नहीं होता, किन्तु अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवस्थित कालके, जो कि अपने अर्थात् अधःप्रवृत्तकरणके कालके संख्यातवें भागप्रमाण है, व्यतीत होनेपर अनुकृष्टिका विच्छेद होता है।

शंका—वह कैसे?

समाधान—कहते हैं—अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें असंख्यात लोकप्रमाण परि-णामस्थान होते हैं। पुनः दूसरे समयमें वे ही परिणामस्थान अन्य अपूर्व परिणामस्थानोंके साथ विशेष अधिक होते हैं।

शंका—विशेषका प्रमाण कितना है?

समाधान—प्रथम समयके परिणामस्थानोंमें अन्तर्मुहूर्तका भाग देने पर जो एक भागप्रमाण असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम प्राप्त होते हैं उतना है।

इस प्रकार इस प्रतिभागके अनुसार प्रत्येक समयमें विशेष अधिक परिणामस्थान करके अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समय तक ऐसा ही जानना चाहिए।

विशेषार्थ—जिसमें आगेके समयोंमें होनेवाले परिणामोंकी पिछले समयके परिणामों के साथ समानता दिखलाई जाती है उसका नाम अनुकृष्टि है। यह अनुकृष्टि संसार अवस्थाके

---

१ ता०प्रती —मेदेण परिणामेण पडिभागेण इति पाठ।

§ ८९. संपहि एदेसिं परिणामट्ठाणाणं पढमसमयप्पहुडि उवरि जहाकमं विसेसाहियकमेण ठवणा एवमणुगंतव्वा। तं जहा—पढमसमयअधापवत्तकरणस्स जाणि परिणामट्ठाणाणि ताणि अंतोमुहुत्तस्स जत्तिया समया तत्तियमेत्ताणि खंडाणि कायव्वाणि। किंपमाणमेदमंतोमुहुत्तमिदि पुच्छिदे सगद्धाए संखेज्जदिभागमेत्तं। तमेव णिव्वग्गणकंडयमिदि[1] घेत्तव्वं। विवक्खियसमयपरिणामाणं जत्तो परमणुकड्ढिवोच्छेदो[2] तं णिव्वग्गणकंडयमिदि भण्णदे। संपहि एदाणि खंडाणि किमण्णोण्णं सरिसाणि, आहो विसरिसाणि त्ति पुच्छिदे सरिसाणि ण होंति, विसरिसाणि चेवे त्ति घेत्तव्वं, अण्णोण्णं पेक्खियूण जहाकममेदेसिं विसेसाहियकमेणावट्ठाणदंसणादो। एसो विसेसो अंतोमुहुत्तपडिभागिओ। पुणो एदाणि चेव परिणामट्ठाणाणि पढमखंडवज्जाणि विदियसमए परिवाडिमुल्लंघिय ठवेयव्वाणि। णवरि अण्णाणि च अपुव्वाणि परिणामट्ठाणाणि असंखेज्जलोगमेत्ताणि पढमसमयचरिमखंडपरिणामेहिंतो अंतोमुहुत्तपडिभागेण

परिणामोंमें भी पाई जाती है और अधःप्रवृत्तकरण परिणामोंमें भी पाई जाती है। अन्तर इतना है कि संसार अवस्थामें इस अनुत्कृष्टिका काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है क्योंकि जघन्य स्थितिबन्धके योग्य जो परिणाम होते हैं उनके सद्भावमें पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिविशेषोंकी उपलब्धि देखी जाती है। परन्तु अधःप्रवृत्तकरणमें इस अनुकृष्टिका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र अवस्थितस्वरूप है, क्योंकि यह काल अधःप्रवृत्तकरणके कालके संख्यातवें भागप्रमाण है। इसी तथ्यको स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें जो असंख्यात लोकप्रमाण परिणामस्थान होते हैं, उनमेंसे प्रारम्भके एक खण्डप्रमाण परिणामोंको छोड़कर दूसरे समयमें भी अन्य अपूर्व परिणामस्थानोंके साथ वे परिणामस्थान पाये जाते हैं। इस प्रकार यह क्रम अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समय तक जानना चाहिए। इस विषयका विशेष खुलासा आगे करेंगे।

§ ८९. अब प्रथम समयसे लेकर यथाक्रम विशेष अधिकके क्रमसे इन परिणामस्थानोंकी स्थापना इस प्रकार जाननी चाहिए। यथा—अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें जो परिणामस्थान होते हैं उन्हें अन्तर्मुहूर्त कालके जितने समय हैं मात्र उतने खण्डप्रमाण करना चाहिए।

शंका—इस अन्तर्मुहूर्तका क्या प्रमाण है ?

समाधान—अपने कालके संख्यातवें भागप्रमाण है।

वही निर्वर्गणाकाण्डक है ऐसा ग्रहण करना चाहिए। विवक्षित समयके परिणामोंका जिस स्थानसे आगे अनुकृष्टिका विच्छेद होता है वह निर्वर्गणाकाण्डक कहा जाता है। अब ये खण्ड परस्पर क्या सदृश होते हैं या विसदृश होते हैं ऐसा पूछने पर सदृश नहीं होते हैं, विसदृश ही होते हैं ऐसा ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि एक-दूसरेको देखते हुए ये यथाक्रम विशेष अधिकक्रमसे ही अवस्थित देखे जाते हैं। यह विशेष अन्तर्मुहूर्तका भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना है। पुनः प्रथम खण्डको छोड़कर इन्हीं परिणामस्थानोंको दूसरे समयमें परिपाटीको उल्लंघन कर स्थापित करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इस दूसरे समयमें असंख्यात लोकप्रमाण अन्य अपूर्व परिणामस्थान होते हैं जो प्रथम समयके अन्तिम खण्डके

१. ता०प्रतौ प्राय. सर्वत्र 'कंडय' स्थाने 'खडय' इति पाठ.। २. ता०प्रतौ जत्तो परमाणाणुकड्ढिवोच्छेदो इति पाठ.।

**विसेसाहियाणि । एत्थ चरिमखंडभावेण ठवेयव्वाणि । एवं ठविदे विदियसमयए वि अंतोमुहुत्तमेत्ताणि चेव परिणामखंडाणि लद्धाणि हवंति। एवं तदियादिसमएसु वि परिणामट्ठाणविण्णासो जहाकमं कायव्वो जाव अधापवत्तकरणचरिमसमयो त्ति ।**

---

परिणामोंसे अन्तर्मुहूर्तका भाग देने पर जो लब्ध आवे उतने विशेष अधिक होते है। उन्हे यहाँ अन्तिम खण्डरूपसे स्थापित करना चाहिए। इस प्रकार स्थापित करने पर दूसरे समयमें भी अन्तमुर्हूर्तप्रमाण परिणामखण्ड प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार तृतीय आदि समयोंमे भी परिणामस्थानोंकी रचना अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयके प्राप्त होने तक क्रमसे करनी चाहिए।

**विशेषार्थ**—जिस करणमें ऊपरके समयवर्ती जीवोंके परिणाम पिछले समयवर्ती जीवोंके परिणामोंके सदृश होते हैं, उस करणको अधःप्रवृत्तकरण कहते हैं। इसका काल अन्तमुर्हूर्त है और इस करणमें होनेवाले परिणामोंका प्रमाण असंख्यात लोकप्रमाण है। फिर भी इसके प्रथम समयके योग्य परिणाम भी असंख्यात लोकप्रमाण है, दूसरे समयके योग्य परिणाम भी असंख्यात लोकप्रमाण हैं। इसी प्रकार अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समय तक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि ये प्रत्येक समयके परिणाम उत्तरोत्तर सदृश वृद्धिको लिये हुए विशेष अधिक हैं। यह अधःप्रवृत्तकरणके स्वरूपनिर्देशके साथ उसके काल और उसके प्रत्येक समयमें होनेवाले परिणामोंकी क्रमवृद्धिको लिये हुए किस प्रकार कहाँ कितने परिणाम होते हैं इसका सामान्य निर्देश है। आगे इस करणके प्रत्येक समयमें परिणामस्थानों-की व्यवस्था किस प्रकार है इसे स्पष्ट करके बतलाते है। ऐसा नियम है कि अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमे जितने परिणाम होते हैं वे अधःप्रवृत्तकरणके कालके संख्यातवे भागप्रमाण खण्डोंमे विभाजित हो जाते हैं। जो उत्तरोत्तर विशेष अधिक प्रमाणको लिये हुए होते हैं। यहाँ पर उन परिणामोके जितने खण्ड हुए, निर्वर्गणाकाण्डक भी उतने समयप्रमाण होता है, जिसकी समाप्तिके बाद दूसरा निर्वर्गणाकाण्डक प्रारम्भ होता है। आगे भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इसका स्वरूपनिर्देश टीकामें किया ही है। यहाँ जो प्रथम खण्डसे दूसरे खण्डको और दूसरे आदि खण्डोंसे तीसरे आदि खण्डोंको विशेष अधिक कहा है सो उस विशेषका प्रमाण तत्प्रायोग्य अन्तमुर्हूर्तका भाग देने पर प्राप्त होता है। ये सब खण्ड परस्परमें समान न होकर विसदृश ही होते है, क्योंकि आगे-आगे प्रत्येक खण्ड विशेष अधिक प्रमाणको लिये हुए होता है। इन खण्डोंमेंसे प्रथम खण्डगत परिणाम तो अध प्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें ही पाये जाते हैं। शेष अनेक खण्ड और तद्गत परिणाम दूसरे समयमें स्थित जीवोंके भी होते हैं। साथ ही यहाँ असंख्यात लोकप्रमाण अन्य अपूर्व परिणाम भी होते हैं जो अन्तिम खण्डरूपसे दूसरे समयमें होते हैं। ये अपूर्व परिणाम प्रथम समयके अन्तिम खण्डमें तत्प्रायोग्य अन्तमुर्हूर्तका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतने अधिक होते हैं। तीसरे समयमें दूसरे समयके जितने खण्ड और तद्गत परिणाम हैं उनमेंसे प्रथम खण्ड और तद्गत परिणामोंको छोड़कर वे सब प्राप्त होते हैं। साथ ही यहाँ असंख्यात लोक-प्रमाण अन्य अपूर्व परिणाम भी प्राप्त होते हैं जो अन्तिम खण्डरूपसे तीसरे समयमें पाये जाते हैं। इसी प्रकार इसी प्रक्रियासे अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयके प्राप्त होने तक चौथे आदि समयोंमें भी परिणामस्थानोंकी व्यवस्था जान लेनी चाहिए। आगे इस विषयको उदाहरण देकर संदृष्टि द्वारा और भी स्पष्ट किया गया है। अतः यहाँ मात्र संक्षेपमें निर्देश किया है।

§ ९०. अथवा अधापवत्तकरणपढमसमयपरिणामट्ठाणाणमेवं खंडणविहाणमणुगंतव्वं। तं जहा—विदियसमयजहण्णपरिणामेण सह जं समाणं पढमसमयपरिणामट्ठाणं तत्तो हेट्ठिमासेसपरिणामट्ठाणाणि घेत्तूण पढमसमए पढमखंडं भवदि। पुणो तदियसमयजहण्णपरिणामेण सह सरिसं जं पढमसमयपरिणामट्ठाणं तत्तो हेट्ठिमासेसपुव्वगहिदसेसपरिणामट्ठाणाणि घेत्तूण तत्थेव विदियखंडपमाणं होइ। एवमेदेण कमेण गंतूण पुणो पढमणिव्वग्गणकंडयचरिमसमयजहण्णपरिणामेण सह पढमसमयपरिणामट्ठाणेसु जं परिणामट्ठाणं सरिसं भवदि तत्तो हेट्ठिमासेसपुव्वगहिदसेसपरिणामट्ठाणाणि घेत्तूण पढमसमए दुचरिमखंडपमाणं होइ। तत्तो उवरिमसेसासेसविसोहिट्ठाणेहिं चरिमखंडपमाणमुप्पज्जइ। एवं च कदे अधापवत्तकरणद्धं संखेज्जखंडे कादूण तत्थेयखंडम्मि जत्तिया समया तत्तियमेत्ताणि चेव खंडाणि जादाणि। एवं विदियादिसमएसु वि पादेक्कमंतोमुहुत्तमेत्तखंडाणि जहावुत्तेण विहाणेणाणुगंतव्वाणि जाव अधापवत्तकरणचरिमसमयो त्ति। संपहि एवं परूविदासेसपरिणामट्ठाणाणमेसा संदिट्ठी।

१०००००००००००१००००००००००००१०००००००००००००
१०००००००००००००० ।

१००००००००००१०००००००००००१००००००००००००१००-
००००००००००० ।

१०००००००००१००००००००००१०००००००००००१००००-
०००००००० ।

१०००००००००१०००००००००१००००००००००१००००००००००० ।

§ ९०. अथवा अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयके परिणामस्थानोंकी खण्डविधिको इस प्रकार जानना चाहिए। यथा—दूसरे समयके जघन्य परिणामके साथ प्रथम समयका जो परिणामस्थान समान होता है उनसे भिन्न पूर्वके समस्त परिणामस्थानोंको ग्रहणकर प्रथम समयमें प्रथमखण्ड होता है। पुनः तीसरे समयके जघन्य परिणामके साथ प्रथम समयका जो परिणामस्थान समान होता है उससे पूर्वके पहले ग्रहण किये गये समस्त परिणामोंसे शेष बचे हुए परिणामस्थानोंको ग्रहण कर वहीं दूसरे खण्डका प्रमाण होता है। इस प्रकार इस क्रमसे जाकर पुनः प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयके जघन्य परिणामके साथ प्रथम समयके परिणामस्थानोंमें जो परिणामस्थान सदृश होता है उससे पूर्वके पहले ग्रहण किये गये समस्त परिणामोंसे शेष बचे हुए परिणामस्थानोंको ग्रहणकर प्रथम समयमें द्विचरम खण्डका प्रमाण होता है तथा उससे आगेके शेष समस्त विशुद्धिस्थानोंके द्वारा अन्तिम खण्डका प्रमाण उत्पन्न होता है। और ऐसा करने पर अधःप्रवृत्तकरणके कालके संख्यात भाग करके उनमेंसे एक भागमें जितने समय होते हैं उतने ही खण्ड हो जाते हैं। इसी प्रकार अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयके प्राप्त होने तक द्वितीयादि समयोंमें भी पृथक्-पृथक् पूर्वोक्त कही गई विधिसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण खंड जानने चाहिए। इस प्रकार कहे गये समस्त परिणामस्थानोंकी यह संदृष्टि है।

( संदृष्टि मूलमें दी है )

१००००००० १०००००००० १००००००००० १०००००००००० ।
१०००००० १००००००० १०००००००० १००००००००० ।
१००००० १०००००० १००००००० १०००००००० ।
१०००० १००००० १०००००० १००००००० ।

विशेषार्थ—यहाँ संदृष्टिमें अधःप्रवृत्तकरणका काल आठ समयप्रमाण स्वीकार करके प्रत्येक समयके परिणामोंको खण्डरूपसे चार-चार भागोंमें विभाजित किया गया है। संदृष्टिमें १ यह संख्या प्रत्येक खण्डकी सूचक है और शून्य उस-उस खण्डमें कितने-कितने परिणामस्थान हैं इसके सूचक हैं। अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें कुल परिणामस्थान २२ है जो चार खंडोंमें विभाजित है। उनमेंसे प्रथम खण्डमें ४, द्वितीय खण्डमें ५, तृतीय खण्डमें ६ और चौथे खण्डमें ७ परिणामस्थान स्वीकार किये गये हैं। यद्यपि अर्थसंदृष्टिकी अपेक्षा प्रत्येक समयके परिणामस्थान असंख्यात लोकप्रमाण है, अतः प्रत्येक खण्डमें भी वे परिणामस्थान असंख्यात लोकप्रमाण प्राप्त होते हैं, परन्तु यहाँ अंक संदृष्टिकी अपेक्षा उक्त प्रकारसे खण्डों और परिणामस्थानोंकी स्थापना की गई है। अधःप्रवृत्तकरणके दूसरे समयमें प्रथम समयके प्रथम खण्डमें विवक्षित परिणामस्थान तो नहीं होते, प्रथम समयके शेष तीनों खण्डोंमें विभाजित शेष सब परिणामस्थान होते हैं। तथा इनके सिवाय असंख्यात लोकप्रमाण अन्य अपूर्व परिणामस्थान भी होते हैं, सदृष्टिमें जिनकी रचना अन्तिम खण्डरूपसे ८ स्वीकार की गई है। इस प्रकार दूसरे समयमें कुल परिणामस्थान २६ कल्पित किये हैं। प्रथम खण्डमें ५, द्वितीय खण्डमे ६, तृतीय खण्डमें ७ और चतुर्थ खण्डमे ८ इस प्रकार अंकसदृष्टिकी अपेक्षा कुल परिणामस्थान स्वीकार किये गये हैं। इनमेंसे दूसरे समयके प्रथम खण्डके ५ परिणामस्थान प्रथम समयके दूसरे खंडके ५ परिणामस्थानोंके समान है। दूसरे खण्डके ६ परिणामस्थान प्रथम समयके तीसरे खण्डके ६ परिणामस्थानोके समान हैं। तथा तीसरे खण्डके ७ परिणामस्थान प्रथम समयके चौथे खण्डके ७ परिणामस्थानोंके समान है। यहाँ दूसरे समयमें प्राप्त होनेवाले परिणामस्थान प्रथम समयमें प्राप्त होनेवाले परिणामस्थानोंके समान होनेसे इसीका नाम अनुकृष्टि है। दूसरे समयके अन्तिम खण्डमे जो परिणामस्थान विवक्षित किये गये हैं वे प्रथम समयके सब परिणामस्थानोंसे विलक्षण हैं। प्रथम समयमें उनमेंसे एक भी परिणामस्थान नहीं पाया जाता। अधःप्रवृत्तकरणके तीसरे समयमें प्रथम समयके प्रथम और द्वितीय खण्डके तथा द्वितीय समयके प्रथम खण्डके परिणामस्थानोंके समान परिणामस्थान तो नहीं पाये जाते, प्रथम और द्वितीय समयके शेष सब खण्डोंके परिणामस्थानोके समान परिणामस्थान पाये जाते हैं। कारण यह है कि प्रथम समयके दूसरे खण्डके परिणामस्थानोंके समान परिणामस्थान तो दूसरे समय तक ही पाये जाते हैं, इसलिये इनका तीसरे समयमें न पाया जाना युक्तियुक्त ही है। किन्तु प्रथम समयके अन्तिम दो खण्डोंके परिणामस्थानोंके समान परिणामस्थान द्वितीय समयके द्वितीय और तृतीय खण्डोके समान होनेसे उनकी अनुवृत्ति तृतीय समयके प्रथम और द्वितीय खण्डरूपसे भी देखी जाती है। तृतीय समयके तीसरे खण्डमें तत्सदृश ही परिणामस्थान होते हैं जो द्वितीय समयके अन्तिम खण्डमें पाये जाते हैं। इस प्रकार तीसरे समयके प्रथम खण्डमें, ६, दूसरे खण्डमें ७, तीसरे खण्डमें ८ और चौथे खण्ड मे ९ परिणामस्थान होते हैं, जो सब मिलाकर ३० होते हैं। इसी प्रकार चौथे आदि समयोंमें भी परिणामस्थान और उनके खण्डोंकी व्यवस्था जान लेनी चाहिए। यहाँ ऐसा समझना चाहिए कि प्रथम समयके चार खण्डोंमें विभाजित जो परिणामस्थान हैं उनमेंसे प्रथम

§ ९१. संपहि एदीए संदिट्ठीए अणुकट्टिपरूवणं कस्सामो। तं जहा—अधापवत्तकरणपढमसमयपढमखंडपरिणामा उवरिमसमयपरिणामेसु केहिं मि समाणा ण होंति। तत्थेव विदियखंडपरिणामा विदियसमयपढमखंडपरिणामेहिं सरिसा। एवमेत्थतणतदियादिखंडपरिणामाणं पि तदियादिसमयपढमखंडपरिणामेहिं जहाकमं पुणरुत्तभावो अणुगंतव्वो जाव पढमसमयचरिमखंडपरिणामा पढमणिव्वग्गणकंडयचरिमसमयपढमखंडपरिणामेहि पुणरुत्ता होदूण णिट्ठिदा त्ति। एवं अधापवत्तकरणविदियादिसमयपरिणामखंडाणं पि पादेक्कं णिरुंभणं कादूण तत्थतणविदियादिखंडपरिणामाणं णिरुद्धसमयादो उवरिमसमयूणणिव्वग्गणकंडयमेत्तसमयपंतीणं पढमखंडपरिणामेहिं पुणरुत्तभावो परूवेयव्वो[1]। णवरि सव्वत्थ पढमखंडपरिणामा अपुणरुत्तभावेणावसिट्ठा दट्ठव्वा।

खण्डके परिणामस्थान तो प्रथम समयमें ही होते हैं। द्वितीय खण्डके परिणामस्थानोंके सदृश परिणामस्थान प्रथम समयके समान द्वितीय समयमें भी पाये जाते हैं। तीसरे खण्डके परिणामस्थानोंके सदृश परिणामस्थान प्रथम समयके समान द्वितीय और तृतीय समयमें भी पाये जाते हैं तथा चौथे खण्डके परिणामस्थानोंके सदृश परिणामस्थान प्रथम समयके समान दूसरे, तीसरे और चौथे समयमें भी पाये जाते हैं। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए। यतः प्रथम समयके परिणामस्थानोंके सदृश परिणामस्थान चौथे समय तक ही पाये जाते हैं, अतः उक्त विधिसे प्रथम समयके परिणामस्थानोंकी चौथे समय तकके परिणामस्थानोंके साथ सदृशता और विसदृशता होनेसे इन परिणामस्थानोंकी अनुकृष्टि चौथे समयसे लेकर प्रथम समय तक बनती है। निर्वर्गणाकाण्डकका प्रमाण भी इतना ही है। इससे आगे दूसरा निर्वर्गणाकाण्डक प्रारम्भ होता है। विवक्षित समयके परिणामोंका जिस स्थानसे आगे अनुकृष्टिका विच्छेद होता है उनका नाम निर्वर्गणाकाण्डक है। जैसे अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा प्रथम समयके परिणामोंकी चौथे समयसे आगे अनुकृष्टिका विच्छेद है, इसलिये यहाँ निर्वर्गणाकाण्डक चार समय प्रमाण हुआ। इस अपेक्षासे इससे आगे दूसरा निर्वर्गणाकाण्डक प्रारम्भ होता है। इसी प्रकार अर्थसंदृष्टिकी अपेक्षा अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समय तक जान लेना चाहिए।

§ ९१. अब इस संदृष्टिका आलम्बन लेकर अनुकृष्टिका प्ररूपण करेंगे। यथा—अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसम्बन्धी प्रथम खण्डके परिणाम उपरिम समयसम्बन्धी परिणामोंमेंसे किन्हीं भी परिणामोंके समान नहीं होते हैं। वहीं पर दूसरे खण्डके परिणाम दूसरे समयके प्रथम खण्डके परिणामोंके समान होते हैं। इसी प्रकार यहाँके अर्थात् प्रथम समयके तीसरे आदि खण्डोंके परिणामोंका भी तृतीय आदि समयोंके प्रथम खण्डके परिणामोंके साथ क्रमसे पुनरुक्तपना तब तक जानना चाहिए जब जाकर प्रथम समयसम्बन्धी अन्तिम खण्डके परिणाम प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयके प्रथम खण्डके परिणामोंके साथ पुनरुक्त होकर समाप्त होते हैं। इसी प्रकार अधःप्रवृत्तकरणके द्वितीयादि समयोंके परिणामखंडोंको भी पृथक्-पृथक् विवक्षित कर वहाँके द्वितीय आदि खण्डगत परिणामोका विवक्षित समय (द्वितीय आदि समय) से लेकर ऊपर एक समय कम निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण समयपंक्तियोंके प्रथम खण्डके परिणामोंके साथ पुनरुक्तपनेका कथन करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सर्वत्र प्रथम खण्डके परिणाम अपुनरुक्तपनेसे अवशिष्ट जानने चाहिए। अर्थात् प्रत्येक समय

१. ता०प्रतौ परूवेमो इति पाठः।

एवं चेव । विदियणिव्वग्गणकंडयपरिणामखंडाणं तदियणिव्वग्गणखंडयपरिणामखंडेहिं पुणरुत्तभावं कादूण णेदव्वं । एत्थ वि पढमखंडपरिणामा चेव अपुणरुत्तभावेण पडिसिद्धा त्ति । एदेणेव कमेण तदिय-चउत्थ-पंचमादिणिव्वग्गणकंडयाणं पि अणंतरोवरिमणिव्वग्गणकंडएहि पुणरुत्तभावं कादूण णेदव्वं जाव दुचरिमणिव्वग्गणकंडयपढमादिसमयसव्वपरिणामखंडा पढमखंडवज्जा चरिमणिव्वग्गणकंडयपरिणामेहिं पुणरुत्ता होदूण णिट्ठिदा त्ति । संपहि चरिमणिव्वग्गणकंडयपरिणामाणं पि सत्थाणे पुणरुत्तापुणरुत्तभावगवेसणा समयाविरोहेण कायव्वा ।

§ ९२. अधवा एवमेत्थ सण्णियासो कायव्वो । तं कधं ? पढमसमए जं पढमखंडं तमुवरि केण वि सरिसं ण होइ । पुणो पढमसमयविदियखंडं विदियसमयपढमखंडं च दो वि सरिसाणि । पुणो पढमसमयतदियखंडं विदियसमयविदियखंडं च दो वि सरिसाणि । एवं गंतूण पुणो पढमसमयचरिमखंडं विदियसमयदुचरिमखंडं च

---

के प्रथम खण्डके परिणाम अगले समयके किसी भी खण्डके परिणामोंके सदृश नहीं होते । इसी प्रकार दूसरे निर्वर्गणाकाण्डकके परिणामखण्डोंका तीसरे निर्वर्गणाकाण्डकके परिणामखण्डोंके साथ पुनरुक्तपना जानना चाहिए । किन्तु यहाँपर भी प्रथम खण्डके परिणाम ही अपुनरुक्तरूपसे अवशिष्ट रहते हैं । इसी क्रमसे तीसरे, चौथे और पाँचवें आदि निर्वर्गणाकाण्डकोंके भी अनन्तर उपरिम निर्वर्गणाकाण्डकोंके साथ पुनरुक्तपना वहाँ तक जानना चाहिए जब जाकर द्विचरम निर्वर्गणाकाण्डकके प्रथमादि समयोंके सब परिणामखण्ड प्रथम खण्डको छोड़कर अन्तिम निर्वर्गणाकाण्डकके परिणामोंके साथ पुनरुक्त होकर समाप्त होते हैं । अब अन्तिम निर्वर्गणाकाण्डकके परिणामोंके स्वस्थानमें पुनरुक्त-अपुनरुक्तपनेका अनुसन्धान परमागमके अविरोधपूर्वक करना चाहिए ।

**विशेषार्थ**—यहाँ निर्वर्गणाकाण्डकके आश्रयसे पूर्व-पूर्व समयके परिणामोंकी उत्तरोत्तर आगे-आगेके परिणामोंके साथ किस प्रकार सदृशता और विसदृशता है यह बतलाया गया है । उदाहरणार्थ प्रथम समयके प्रथम खण्डके परिणाम अगले समयोंके किसी भी खण्डके परिणामोंके सदृश नहीं हैं । इसी प्रकार दूसरे आदि समयोंके प्रथम खण्डके परिणामोंके विषयमें भी जान लेना चाहिए । वे भी उत्तरोत्तर आगे-आगेके समयोंके किसी भी खण्डके परिणामोंके सदृश नहीं है । शेष परिणामोंके विषयमें ऐसा जानना चाहिए कि प्रथम समयके द्वितीय खण्डके परिणाम तथा दूसरे समयके प्रथम खण्डके परिणाम परस्पर सदृश हैं । इसीप्रकार आगे भी संदृष्टिके अनुसार जान लेना चाहिए ।

§ ९२ अथवा यहाँपर इस प्रकार सन्निकर्ष करना चाहिए ।

**शंका**—वह कैसे ?

**समाधान**—प्रथम समयमें जो प्रथम खण्ड है वह ऊपर किसीके साथ भी सदृश नहीं है । पुनः प्रथम समयका दूसरा खण्ड तथा दूसरे समयका प्रथम खण्ड दोनों ही सदृश हैं । पुनः प्रथम समयका तीसरा खण्ड और दूसरे समयका दूसरा खण्ड ये दोनों सदृश हैं । इसी प्रकार जाकर पुनः प्रथम समयका अन्तिम खण्ड तथा दूसरे समयका द्विचरम खण्ड ये

**दो वि सरिसाणि। एवं विदियसमयपरिणामखंडाणं तदियसमयपरिणामखंडाणं च सण्णियासो कायव्वो। एवमुवरि वि अणंतराणंतरेण सण्णियासविहाणं जाणियूण णेदव्वं। एवमणुकट्टिपरूवणा गया।**

---

दोनों सदृश हैं। इसी प्रकार दूसरे समयके परिणामखण्डोंका और तीसरे समयके परिणाम-खण्डोंका सन्निकर्ष करना चाहिए। इसी प्रकार ऊपर भी पिछलेकी तदनन्तरके साथ सन्निकर्ष-विधि जानकर कथन करना चाहिए। इस प्रकार अनुकृष्टिप्ररूपणा समाप्त हुई।

विशेषार्थ—यहाँपर आगे कहे जानेवाले अल्पबहुत्व तथा अनुकृष्टि रचनाका स्पष्ट ज्ञान करनेके लिये अंकसंदृष्टि दी जाती है। अधःप्रवृत्तकरणका काल अन्तर्मुहूर्त है जो अंक-संदृष्टिमें यहाँ १६ स्वीकार किया गया है। कुल परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं, जो यहाँ ३०७२ स्वीकार किये गये हैं। ये सब परिणाम प्रत्येक समयमें उत्तरोत्तर समान वृद्धिको लिये हुए हैं। इस हिसाबसे यहाँ समान वृद्धि या चयका प्रमाण ४ है। प्रथम स्थानमें वृद्धिका अभाव है, इसलिये प्रथम समयको छोड़कर १५ समयोंमें क्रमशः चयकी वृद्धि हुई है, अतः एक कम सब समयोंके आधेको चय और समयोंकी संख्यासे गुणित करनेपर १६ − १ = १५; $१५ \div २ = \frac{१५}{२}$; $\frac{१५}{२} \times ४ \times १६ = ४८०$ चयधनका प्रमाण होता है। इसे सर्वधन ३०७२ में से घटाकर शेष २५९२ में सब समयोंका भाग देनेपर १६२ लब्ध आता है। यह प्रथम समयके परिणामोंका प्रमाण है। पुनः प्रथम समयके कुल परिणामोंकी संख्या १६२ में चयका प्रमाण ४ मिलानेपर दूसरे समयके सब परिणामोंकी संख्या १६६ होती है। इसमें चयका प्रमाण ४ मिलानेपर तीसरे समयके सब परिणामोंकी संख्या १७० होती है। इसी हिसाबसे प्रत्येक समयमें चयप्रमाण परिणामोंकी वृद्धि करते हुए अन्तिम समयमें सब परिणामोंकी संख्या २२२ होती है। इस प्रकार १६ समयोंमें विभाजित इन परिणामोंका कुल योग ३०७२ होता है। इसका आशय यह है कि नाना जीवोंकी अपेक्षा प्रथम समयमें कुल १६२ परिणाम होते हैं, दूसरे समयमें १६६ और तीसरे समयमें १७० परिणाम होते हैं। एक समयमें एक जीवके एक ही परिणाम होता है, इसलिये यहाँ प्रत्येक समयमें उस उस समयके ये परिणाम नाना जीवोंके होते हैं, ऐसा कहा गया है।

यह तो अध प्रवृत्तकरणके कालमें उसमें होनेवाले सब परिणामोंका विभागीकरण किस प्रकारसे है इसका विचार हुआ। अब ऊपरके समयोंमें स्थित जीवोंके परिणामोंकी नीचेके समयोंमें स्थित जीवोंके परिणामोंके साथ सदृशता और विसदृशता किस प्रकारसे है यह बतलानेके लिए अनुकृष्टि रचना करते हैं। अधःप्रवृत्तकरणके प्रत्येक समयके जितने परिणाम है उनके अन्तर्मुहूर्तके जितने समय हैं उतने खण्ड करे। यह अन्तर्मुहूर्त अधःप्रवृत्तकरणके कालके संख्यातवे भागप्रमाण है। इस हिसाबसे संख्यातका प्रमाण ४ स्वीकार कर उसका भाग १६ में देने पर ४ लब्ध आये। निर्वर्गणाकाण्डकका प्रमाण भी इतना ही है, अतः प्रत्येक समयके परिणामोंको चार-चार खण्डोंमें विभाजित करना चाहिए। उसमें भी प्रथम खण्डसे द्वितीय खण्ड, द्वितीय खण्डसे तृतीय खण्ड और तृतीय खण्डसे चतुर्थ खण्ड विशेष अधिक है। यहाँ विशेष या चयका प्रमाण अन्तर्मुहूर्तका भाग निर्वर्गणाकाण्डकके प्रमाणमें देने पर जो लब्ध आवे उतना है। पहले अंकसंदृष्टिमें निर्वर्गणाकाण्डकका प्रमाण ४ बतला आये हैं। अन्तर्मुहूर्तका प्रमाण भी इतना ही है। अतः अन्तर्मुहूर्तका प्रमाण ४ का भाग निर्वर्गणाकाण्डक

के प्रमाण ४ में देने पर लब्ध १ आया। यही प्रकृतमें विशेपका प्रमाण है। इस हिसावसे यहाँ प्रथम खण्डमे तो वृद्धिका प्रश्न ही नही उठता। दूसरे खण्डमे प्रथम खण्डसे १ संख्या की वृद्धि हुई है, तीसरे खण्डमें प्रथम खण्डसे २ संख्याकी और चौथे खण्डमें प्रथम खण्डसे ३ संख्याकी वृद्धि हुई है, क्योंकि प्रथम खण्डसे उत्तरोत्तर द्वितीयादि खण्डोंमे एक-एक अंककी वृद्धि स्वीकार करनेपर उन खण्डोंमें वृद्धिको प्राप्त हुई संख्या उक्तप्रमाण ही प्राप्त होती है। इस प्रकार प्रकृतमें चय धनका कुल योग ६ होता है। इसे प्रथम समयके परिणाम १६२ मेसे घटा देनेपर कुल १५६ परिणाम शेष रहे। इसमें खंडप्रमाण संख्या ४ का भाग देने पर ३९ प्रथम खण्डके परिणामोंका प्रमाण होता है। तथा द्वितीयादि खण्डोंका प्रमाण क्रमसे ४०, ४१ और ४२ होता है। यह प्रथम समयके परिणामोंकी खण्डोंमें रचना किस प्रकार है इसका क्रम है। इसी विधिसे द्वितीयादि समयोंके परिणामोंकी ४-४ खण्डोमे रचना कर लेनी चाहिए। आगे इसीको अंकसंदृष्टिकी रचना द्वारा स्पष्ट करते हैं—

| समयका क्रम नं० | परिणामोंका प्रमाण | प्रथम खण्ड | द्वितीय खण्ड | तृतीय खण्ड | चतुर्थ खण्ड |
|---|---|---|---|---|---|
| १ | १६२ | ३९ | ४० | ४१ | ४२ |
| २ | १६६ | ४० | ४१ | ४२ | ४३ |
| ३ | १७० | ४१ | ४२ | ४३ | ४४ |
| ४ | १७४ | ४२ | ४३ | ४४ | ४५ |
| ५ | १७८ | ४३ | ४४ | ४५ | ४६ |
| ६ | १८२ | ४४ | ४५ | ४६ | ४७ |
| ७ | १८६ | ४५ | ४६ | ४७ | ४८ |
| ८ | १९० | ४६ | ४७ | ४८ | ४९ |
| ९ | १९४ | ४७ | ४८ | ४९ | ५० |
| १० | १९८ | ४८ | ४९ | ५० | ५१ |
| ११ | २०२ | ४९ | ५० | ५१ | ५२ |
| १२ | २०६ | ५० | ५१ | ५२ | ५३ |
| १३ | २१० | ५१ | ५२ | ५३ | ५४ |
| १४ | २१४ | ५२ | ५३ | ५४ | ५५ |
| १५ | २१८ | ५३ | ५४ | ५५ | ५६ |
| १६ | २२२ | ५४ | ५५ | ५६ | ५७ |

अर्थसंदृष्टिको स्पष्ट करनेके लिये यह अंकसंदृष्टि कल्पित की गई है। इसे देखनेसे विदित होता है कि प्रथम समयके प्रथम खण्डके जो ३९ परिणाम हैं वे मात्र प्रथम समयमें ही किन्हीं जीवोंके पाये जाते हैं द्वितीयादि समयोंमें नहीं। प्रथम समयके द्वितीय खण्डके जो ४० परिणाम हैं वे किन्हीं जीवोंके प्रथम समयमें भी पाये जाते हैं और किन्हीं जीवोंके दूसरे समयमें भी पाये जाते हैं। इससे अगले समयोंमें नहीं। प्रथम समयके तृतीय खण्डके

§ ९३. संपहि अप्पाबहुअपरूवणं कस्सामो। तं च दुविहमप्पाबहुअं सत्थाण-परत्थाणभेदेण। तत्थ ताव सत्थाणप्पाबहुअं कस्सामो। तं जहा—अधापवत्तकरण-पढमसमयम्मि पढमखंडजहण्णपरिणामो थोवो। तत्थेव विदियखंडजहण्णपरिणामो अणंतगुणो। तदियखंडजहण्णपरिणामो अणंतगुणो। एवं णेदव्वं जाव चरिमखंड-जहण्णपरिणामो अणंतगुणो त्ति। एवं पढमसमयपरिणामखंडाणं जहण्णपरिणाम-ट्ठाणाणि चेव अस्सिऊण सत्थाणप्पाबहुअं कदं। संपहि पढमसमयम्मि पढमखंडस्स उक्कस्सपरिणामो थोवो। तत्थेव विदियखंडउक्कस्सपरिणामो अणंतगुणो। तदियखंड-उक्कस्सपरिणामो अणंतगुणो। एवमुवरि वि णेदव्वं जाव चरिमखंडउक्कस्सपरिणामो अणंतगुणो त्ति। एवं पढमसमयसव्वखंडाणमुक्कस्सपरिणामे अस्सियूण सत्थाणप्पा-बहुअं भणिदं। एवं चेव विदियसमयप्पहुडि खंडं पडि ट्ठिदजहण्णुक्कस्सपरिणामाणं सत्थाणप्पाबहुअमणुगंतव्वं जाव अधापवत्तकरणचरिमसमयो त्ति। तदो सत्थाणप्पा-बहुअं गदं। संपहि परत्थाणप्पाबहुअपरूवणट्ठमुवरिमं सुत्तपबंधमाह—

---

जो ४१ परिणाम हैं वे प्रथम समयके समान द्वितीय और तृतीय समयमें भी पाये जाते हैं, इससे अगले समयोंमें नहीं और इसी प्रकार प्रथम समयके चौथे खण्डके जो ४२ परिणाम हैं वे प्रथम समयसे लेकर चौथे समय तक ही पाये जाते हैं, इससे अगले समयोंमें नहीं। इस प्रकार प्रथम समयके परिणामोंकी अनुकृष्टि उक्त अंक संदृष्टिके अनुसार चौथे समय तक बनती है, इससे आगे नहीं। तथा चौथे समयसे आगे प्रथम समयमें पाये जानेवाले परिणामों की निर्वृत्ति हो जाती है, इसलिये इससे आगे प्रथम समयके परिणामोंकी व्युच्छित्ति हो जाने से निर्वर्गणाकाण्डकका प्रमाण भी ४ समयप्रमाण ही प्राप्त होता है। यह प्रथम समयके परिणामोंकी व्यवस्था है। द्वितीयादि समयोंमें पाये जानेवाले परिणामोंकी व्यवस्था भी उक्त पद्धतिसे कर लेनी चाहिए. विशेष वक्तव्य न होनेसे यहाँ पृथक्-पृथक् मीमांसा नहीं की है। शेष स्पष्टीकरण मूलसे ही हो जाता है।

§ ९३. अब अल्पबहुत्वका कथन करेंगे। वह अल्पबहुत्व स्वस्थान और परस्थानके भेदसे दो प्रकारका है। उनमेंसे सर्वप्रथम स्वस्थान अल्पबहुत्वका कथन करेंगे। यथा—अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें प्रथम खण्डका जघन्य परिणाम सबसे स्तोक है। उससे वहीं पर द्वितीय खण्डका जघन्य परिणाम अनन्तगुणा है। उससे वहीं पर तीसरे खण्डका जघन्य परिणाम अनन्तगुणा है। इस प्रकार वहीं पर अन्तिम खण्डका जघन्य परिणाम अनन्तगुणा है इस स्थानके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। इस प्रकार मात्र प्रथम समयके परिणामखण्डोंके जघन्य परिणामस्थानोंका अवलम्बन लेकर स्वस्थान अल्पबहुत्व किया। अब प्रथम समयमें प्रथम खण्डका उत्कृष्ट परिणाम स्तोक है। उससे वहीं पर दूसरे खण्डका उत्कृष्ट परिणाम अनन्तगुणा है। उससे वहीं पर तीसरे खण्डका उत्कृष्ट परिणाम अनन्तगुणा है। इसी प्रकार आगे भी अन्तिम खण्डका उत्कृष्ट परिणाम अनन्तगुणा है इस स्थानके प्राप्त होने तक कथन करना चाहिए। इस प्रकार प्रथम समयके सब खण्डोंके उत्कृष्ट परिणामोंका आलम्बन लेकर स्वस्थान अल्पबहुत्वका कथन किया। इसी प्रकार दूसरे समयसे लेकर अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समय तक प्रत्येक खण्डके प्रति प्राप्त जघन्य और उत्कृष्ट परिणामों-का स्वस्थान अल्पबहुत्व जानना चाहिए। इसके बाद स्वस्थान अल्पबहुत्वका कथन समाप्त

* अधापवत्तकरणपढमसयए जहण्णिया विसोही थोवा ।

§ ९४. किं कारणं ? एत्तो अण्णस्स जहण्णविसोहिट्ठाणस्स अधापवत्तकरण-विसए अणुवलंभादो ।

* विदियसमए जहण्णिया विसोही अणंतगुणा ।

§ ९५. कुदो ? पढमसमयजहण्णविसोहिट्ठाणादो छट्ठाणकमेणासंखेज्जलोगमेत्त-विसोहिट्ठाणाणि समुल्लंघियूण ट्ठिदविदियखंडजहण्णविसोहिट्ठाणस्स विदियसमए जहण्णभावदंसणादो ।

* एवमंतोमुहुत्तं ।

§ ९६. एवमेदेण कमेण जहण्णविसोहीओ चेव पडिसमयमणंतगुणकमेण णेदव्वाओ जाव अंतोमुहुत्तमुवरिं चडिदूण ट्ठिदपढमणिव्वग्गणकंडयचरिमसमओ त्ति भणिदं होदि ।

---

हुआ । अब परस्थान अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें जघन्य विशुद्धि सबसे स्तोक है ।

§ ९४. क्योंकि इससे कम अन्य जघन्य विशुद्धिस्थान अधःप्रवृत्तकरणमें नहीं पाया जाता ।

* उससे दूसरे समयमें जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है ।

§ ९५ क्योंकि प्रथम समयके जघन्य विशुद्धिस्थानसे षट्स्थानक्रमसे असंख्यात लोक-मात्र विशुद्धिस्थानोंको उल्लंघन कर स्थित हुए दूसरे खण्डके जघन्य विशुद्धिस्थानका दूसरे समयमे जघन्यपना देखा जाता है ।

विशेषार्थ—अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयका जो दूसरा खण्ड है तत्सदृश ही दूसरे समयका प्रथम खण्ड है । जैसा कि पूर्वोक्त अंक संदृष्टिसे स्पष्ट ज्ञात होता है । इन दोनो स्थानोंकी जघन्य विशुद्धि समान होकर भी यह प्रथम समयके प्रथम खण्डकी जघन्य विशुद्धिसे षट्स्थान पतितक्रमसे अनन्तगुणी है यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है । जीवकाण्ड ज्ञान-मार्गणाके अन्तर्गत श्रुतज्ञान प्ररूपणाके समय पर्यायज्ञानके ऊपर पर्यायसमास ज्ञानके वृद्धि क्रमको बतलानेके लिये जो षट्स्थानपतित वृद्धिका निर्देश किया है उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए ।

* इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त तक जानना चाहिए ।

§ ९६. इस प्रकार अन्तमुहूर्त ऊपर जाकर स्थित हुए प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयके प्राप्त होने तक इस क्रमसे जघन्य विशुद्धिका ही प्रति समय अनन्तगुणितक्रमसे कथन करना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

विशेषार्थ—अधःप्रवृत्तकरणमें प्रत्येक निर्वर्गणाकाण्डकका प्रमाण अन्तमुहूर्त है जो अधःप्रवृत्तकरणके कालके संख्यातवें भागप्रमाण है । अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे लेकर प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समय तक प्रथम समयकी जघन्य विशुद्धिसे दूसरे समय-

§ ९७. संपहि एत्तो उवरि किंचि णाणत्तमत्थि त्ति तप्पदुप्पायणट्ठमिदमाह—

*** तदो पढमसमए उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा ।**

§ ९८. किं कारणं ? पुव्विल्लजहण्णविसोही णाम अधापवत्तकरणपढमसमयविसोहिट्ठाणाणं चरिमखंडस्सादिविसोही । एसा वुण तत्थेवुक्कस्सविसोही, तत्तो असंखेज्जलोगमेत्तपरिणामट्ठाणाणि छट्ठाणवड्ढिदसरूवाणि वोलिय समवट्ठिदा । तदो पुव्विल्लजहण्णविसोहीदो एसा अणंतगुणा जादा ।

*** जम्हि जहण्णिया विसोही णिट्ठिदा तदो उवरिमसमए जहण्णिया विसोही अणंतगुणा ।**

---

की जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है । दूसरे समयकी जघन्य विशुद्धिसे तीसरे समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है तथा तीसरे समयकी जघन्य विशुद्धिसे चौथे समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है । इस प्रकार निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समय तक पूर्व-पूर्वके समयकी जघन्य विशुद्धिसे अगले-अगले समयकी जघन्य विशुद्धि उत्तरोत्तर अनन्तगुणी जाननी चाहिए यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है । अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा यहाँ निर्वर्गणाकाण्डकका प्रमाण ४ है । निर्वर्गणाकाण्डककी प्रत्येक समयकी यह जघन्य विशुद्धि अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयके प्रथमादि खण्डगत जघन्य विशुद्धियोंके सदृश होनेसे निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समय तक इसका जघन्यपना देखा जाता है यह उक्त अंकसदृष्टिसे भले प्रकार ज्ञात होता है ।

§ ९७ अब इससे ऊपर कुछ नानात्व है उसका कथन करनेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

*** उससे प्रथम समयमें उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है ।**

§ ९८. क्योंकि इससे समनन्तर पूर्व जो जघन्य विशुद्धि बतला आये हैं वह तो अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयके विशुद्धिस्थानोंके अन्तिम खण्डकी आदिकी विशुद्धि है और यह ( प्रकृत सूत्र निर्दिष्ट ) वहींपर उत्कृष्ट विशुद्धि है जो उक्त जघन्य विशुद्धिसे छह स्थान क्रमसे वृद्धिरूप असंख्यात लोकप्रमाण परिणामस्थानोंको उल्लंघनकर अवस्थित है, इसलिए अनन्तर पूर्वकी जघन्य विशुद्धिसे यह अनन्तगुणी हो गई है ।

विशेषार्थ—प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयकी जघन्य विशुद्धि और अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयके अन्तिम खण्डकी जघन्य विशुद्धि सदृश है यह समनन्तर पूर्व ही बतला आये हैं । यहाँ प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयकी जघन्य विशुद्धिसे अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयके अन्तिम खण्डकी उत्कृष्ट विशुद्धिको जो अनन्तगुणा बतलाया है सो इससे उसी खण्डकी उत्कृष्ट विशुद्धि लेनी चाहिए, क्योंकि प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयकी जघन्य विशुद्धिसे अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसम्बन्धी अन्तिम खण्डकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी होना युक्तियुक्त है । अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयका अन्तिम खण्ड ४२ अंक प्रमाण है । चौथे समयके प्रथम खण्डका भी यही प्रमाण है । अतः स्पष्ट है कि प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयकी जघन्य विशुद्धिसे प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है ।

*** पूर्वमें जहाँ जघन्य विशुद्धि समाप्त हुई है उससे उपरिम समयमें जघन्य विशुद्धि ( प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे ) अनन्तगुणी है ।**

§ ९९. एत्थ 'जम्हि जहण्णिया विसोही णिट्ठिदा' त्ति वयणेण पढमणिव्वग्गण-कंडयचरिमसमयस्स परामरिसो कओ। तमवहियं कादूण जहण्णविसोहिट्ठाणाणमणंत-गुणवड्ढिकमेण पुव्वं परूविदत्तादो। त्तदो उवरिमसमए त्ति वुत्ते विदियणिव्वग्गण-कंडयपढमसमयो घेत्तव्वो। एत्थतणजहण्णविसोही पढमसमयउक्कस्सविसोहीदो अणंतगुणा होइ। किं कारणं? पढमसमयउक्कस्सविसोही णाम विदियसमयदुचरिमखंड-चरिमपरिणामेण समाणा होदूण उव्वंकभावेणावट्ठिदा। एसा वुण जहण्णविसोही तत्थतणचरिमखंडजहण्णपरिणामेण अट्ठंकसरूवेण समाणा। तेणाणंतगुणा जादा।

*** विदियसमए उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा।**

§ १००. किं कारणं? पुव्विल्लजहण्णविसोही णाम विदियसमयचरिमखंडस्स जहण्णपरिणामो। एसो वुण तत्तो असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि समुल्लंघियूण ट्ठिद-विदियसमयचरिमखंडउक्कस्सविसोहि त्ति। तेण कारणेणाणंतगुणा जादा।

---

§ ९९. यहाँ अर्थात् उक्त सूत्रमें 'जम्हि जहण्णिया विसोही णिट्ठिदा' इस वचनसे प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयका परामर्श किया गया है। इसे मर्यादा करके जघन्य विशुद्धिस्थानोंका अनन्तगुणी वृद्धिके क्रमसे पहले ही कथन कर आये हैं। उससे उपरिम समय ऐसा कहने पर दूसरे निर्वर्गणाकाण्डकका प्रथम समय लेना चाहिए। यहाँकी जघन्य विशुद्धि प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे अनन्तगुणी होती है, क्योंकि प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि द्वितीय समयके द्विचरम खण्डके अन्तिम परिणामके सदृश होकर ऊर्वकपनेसे अवस्थित है और यह जघन्य विशुद्धि वहीं ( दूसरे समय ) के अन्तिम खण्डके अष्टांक-स्वरूप जघन्य परिणामरूपसे अवस्थित है। इसलिए अनन्तगुणी हो गई है।

विशेषार्थ—द्वितीय निर्वर्गणाकाण्डकके प्रथम समयकी जो जघन्य विशुद्धि है उसके समान ही अधःप्रवृत्तकरणके द्वितीय समयके अन्तिम खण्डकी जघन्य विशुद्धि है जो अधः-प्रवृत्तिकरणके प्रथम समयके अन्तिम खण्डकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे अनन्तगुणी है। इसका कारण यह है कि अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयके अन्तिम खण्डकी यह उत्कृष्ट विशुद्धि द्वितीय समयके उपान्त्य खण्डके अन्तिम परिणामके सदृश ऊर्वकप्रमाण है और इससे उसी समयके अन्तिम खण्डकी जघन्य विशुद्धि अष्टांकस्वरूप होनेसे अनन्तगुणी है।

*** उससे दूसरे समयमें उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है।**

§ १००. क्योंकि पूर्वकी जघन्य विशुद्धि दूसरे समयके अन्तिम खण्डके जघन्य परिणामस्वरूप है, परन्तु यह उससे असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंको उल्लंघन कर स्थित हुए दूसरे समयके अन्तिम खण्डकी उत्कृष्ट विशुद्धि है, इसलिये यह उससे अनन्तगुणी हो जाती है।

विशेषार्थ—यहाँ पर दूसरे समयसे अधःप्रवृत्तकरणका दूसरा समय लिया गया है। इसके अन्तिम खण्डकी जो जघन्य विशुद्धि है उतनी ही द्वितीय निर्वर्गणाकाण्डकके प्रथम समयकी जघन्य विशुद्धि है ये दोनो विशुद्धियाँ परस्पर समान है, अतः उससे चूर्णिसूत्रमें अधःप्रवृत्तकरणके दूसरे समयके अन्तिम खण्डकी उत्कृष्ट विशुद्धिको जो अनन्तगुणा बतलाया है वह युक्तियुक्त ही है, क्योंकि पूर्वकी जघन्य विशुद्धि उसी खण्डके प्रथम परिणामस्वरूप

* एवं णिव्वग्गणकंडयमंतोमुहुत्तद्धमेत्तं अधापवत्तकरणचरिम-समयो त्ति ।

§ १०१. एवमेदीए दिसाए अंतोमुहुत्तद्धमेत्तमेगं णिव्वग्गणकंडयमवट्ठिदं कादूण जहण्णुक्कस्सपरिणामाणमुवरिमहेट्ठिमाणमप्पाबहुअं कायव्वं जाव सव्वणिव्वग्गण-कंडयाणि जहाकममुल्लंघियूण पुणो दुचरिमणिव्वग्गणकंडयचरिमसमयउक्कस्सविसोहीदो अधापवत्तकरणचरिमसमए जहण्णिया विसोही अणंतगुणा होदूण जहण्णविसोहीणं पज्जवसाणं पत्ते त्ति । एद्दूरं जाव एगंतरिदजहण्णुक्कस्सविसोहिट्ठाणपडिबद्धाए पयदप्पाबहुअपरूवणाए णत्थि णाणत्तमिदि वुत्तं होइ ।

§ १०२. संपहि एदेण सुत्तेण सूचिदत्थस्स किंचि विवरणं कस्सामो । तं जहा— पढमणिव्वग्गणकंडयविदियसमए उक्कस्सविसोहीदो उवरि विदियणिव्वग्गणकंडयविदिय-समए जहण्णविसोही अणंतगुणा । एदम्हादो उवरि पढमणिव्वग्गणकंडयतदियसमए उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा । एदिस्से उवरि विदियणिव्वग्गणकंडयतदियसमए

---

है और यह उत्कृष्ट विशुद्धि उसी खण्डके अन्तिम परिणामस्वरूप है जो षट्स्थानपतित असंख्यात लोकप्रमाण वृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त हुई है ।

* इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण एक (प्रत्येक) निर्वर्गणाकाण्डकको अवस्थित कर अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समय तक अल्पबहुत्व जानना चाहिए ।

§ १०१. इस प्रकार इस पद्धतिसे अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण एक निर्वर्गणाकाण्डकको अवस्थित कर उपरिम और अधस्तन जघन्य और उत्कृष्ट परिणामोंका अल्पबहुत्व करना चाहिए । और यह सब अल्पबहुत्व सब निर्वर्गणाकाण्डकोंको क्रमसे उल्लंघन कर पुनः द्विचरमनिर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी होकर जघन्य विशुद्धिका अन्त प्राप्त होने तक करना चाहिए । इतने दूर तक जो एक-एक निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तरसे जघन्य और उत्कृष्ट विशुद्धि-स्थानोंसे प्रतिबद्ध प्रकृत अल्पबहुत्व कहा है उसमें कोई भेद नहीं है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

विशेषार्थ—यह परस्थान अल्पबहुत्व बतलानेका प्रकरण है, इसलिये पूर्वमें ऊपर और नीचेके परिणामोंकी विशुद्धिका जो अनुकृष्टि पद्धतिसे अल्पबहुत्व बतलाया गया है वह आगेके परिणामोंमें किस प्रकारका है यह बतलानेके लिए यह सूत्र आया है । इस विषयका विशेष स्पष्टीकरण आगे श्री जयधवला जीमें स्वयं किया ही है ।

§ १०२. अब इस सूत्रसे सूचित हुए अर्थका कुछ विवरण करेंगे । यथा—प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके दूसरे समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे ऊपर दूसरे निर्वर्गणाकाण्डकके दूसरे समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है । इससे ऊपर प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके तीसरे समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है । इससे ऊपर दूसरे निर्वर्गणाकाण्डकके तीसरे समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है । इससे ऊपर प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके चौथे समयकी उत्कृष्ट

जहण्णविसोही अणंतगुणा। तत्तो पढमणिव्वग्गणकंडयचउत्थसमए उक्कसविसोही अणंतगुणा। एवं जाणिऊण णेदव्व जाव विदियणिव्वग्गणकंडयचरिमसमए जहण्णविसोही अणंतगुणा जादा त्ति। एवमणंतरोवरिमणिव्वग्गणकंडयजहण्णपरिणामाणमणंतरहेट्ठिमणिव्वग्गणकंडयुक्कस्सपरिणामेहिं जहाकममणुसंधाणं कादूण णेदव्वं जाव अधापवत्तकरणचरिमसमए जहण्णिया विसोही दुचरिमणिव्वग्गणकंडयचरिमसमयुक्कस्सविसोहीदो अणंतगुणा होदूण जहण्णविसोहीणं पज्जवसाणं पत्ता त्ति।

§ १०३. संपहि एत्तो उवरि चरिमणिव्वग्गणकंडयमेत्ताणमुक्कस्सपरिणामाणं चेव अप्पाबहुअं णेदव्वमिदि पदुप्पायणट्ठमुत्तरं पबंधमाह—

*** तदो अंतोमुहुत्तमोसरियूण जम्हि उक्कस्सिया विसोही णिट्ठिदा तत्तो उवरिमसमए उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा।**

---

विशुद्धि अनन्तगुणी है। इस प्रकार जानकर दूसरे निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है इसके प्राप्त होने तक अल्पबहुत्व करते जाना चाहिए। इस प्रकार अनन्तर उपरिम निर्वर्गणाकाण्डकके जघन्य परिणामोंका अनन्तर अधस्तन निर्वर्गणाकाण्डकके उत्कृष्ट परिणामोंके साथ क्रमसे अनुसन्धान करते हुए अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयकी जघन्य विशुद्धि द्विचरम निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे अनन्तगुणी होकर जघन्य विशुद्धियोंके अन्तको प्राप्त होती है इस स्थानके प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए।

**विशेषार्थ**—पहले द्वितीय निर्वर्गणाकाण्डकके प्रथम समयकी जघन्य विशुद्धिसे प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके द्वितीय समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है यह बतला आये हैं। यहाँ इससे आगे अल्पबहुत्वका क्या क्रम है यह सूचित करते हुए बतलाया है कि प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके द्वितीय समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे द्वितीय निर्वर्गणाकाण्डकके द्वितीय समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है, क्योंकि प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके द्वितीय समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि ऊर्वकस्वरूप है और द्वितीय निर्वर्गणाकाण्डकके द्वितीय समयकी जघन्य विशुद्धि अष्टांकस्वरूप है। इसलिए यह उससे अनन्तगुणी है। तथा इससे आगे अर्थात् द्वितीय निर्वर्गणाकाण्डकके द्वितीय समयकी जघन्य विशुद्धिसे प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके तीसरे समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है, क्योंकि यह उत्कृष्ट विशुद्धि पूर्वकी जघन्य विशुद्धिसे षट्स्थानपतितक्रमसे असंख्यात लोकप्रमाण वृद्धिके हो जानेपर प्राप्त होती है। इस प्रकार ऊपरके तथा नीचेके निर्वर्गणाकाण्डकोंके आश्रयसे जघन्य और उत्कृष्ट विशुद्धिके अल्पबहुत्वका विचार अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयकी जघन्य विशुद्धिके प्राप्त होने तक इसी क्रमसे करना चाहिए। यह जघन्य विशुद्धि उपान्त्य निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे अनन्तगुणी है।

§ १०३ अब इससे ऊपर अन्तिम निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाण उत्कृष्ट परिणामोंका ही अल्पबहुत्व करते हुए ले जाना चाहिए इस बातका कथन करनेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

* पुनः अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयसे अन्तर्मुहूर्त नीचे आकर जहाँ उत्कृष्ट विशुद्धि समाप्त हुई है उससे उपरिम समयमें उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी होती है।

§ १०४. एत्थ 'जम्हि उद्देसे उक्कस्सिया विसोही णिट्ठिदा' त्ति णिद्देसेणेदेण दुचरिमणिव्वग्गणकंडयचरिमसमयो परामरसिओ, तत्थतणुक्कस्सविसोहीदो उवरि अधापवत्तचरिमसमयजहण्णविसोहीए अणंतगुणभावेण पुव्व परूविदत्तादो। 'तदो उवरिमसमये' त्ति वुत्ते चरिमणिव्वग्गणकंडयपढमसमयस्स गहणं कायव्वं, तत्थतणुक्कस्स-विसोही पुव्विल्लजहण्णविसोहिट्ठाणादो अणंतगुणा त्ति वुत्तं होइ। एत्थ कारणं सुगमं।

*** एवमुक्कस्सिया विसोही णेदव्वा जाव अधापवत्तकरणचरिम-समयो त्ति।**

§ १०५. एवमुक्कस्सिया चेव विसोही अणंतराणं पेक्खियूणाणंतगुणा णेयव्वा। केद्दूरमिदि वुत्ते जाव अधापवत्तकरणचरिमसमयो त्ति पयदप्पाबहुअपरूवणाए मज्जादा-णिद्देसो कदो। सेसं सुगमं।

---

§ १०४ यहाँ 'जिस स्थान पर उत्कृष्ट विशुद्धि समाप्त हुई है' इस प्रकार इस निर्देशसे द्विचरम निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयका परामर्श किया गया है। उस स्थानकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे ऊपर अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयकी जघन्य विशुद्धिका अनन्तगुणेरूपसे पहले कथन कर आये हैं। 'उससे ऊपरके समयमें' ऐसा कहने पर अन्तिम निर्वर्गणाकाण्डकके प्रथम समयका ग्रहण करना चाहिए। उस स्थानकी उत्कृष्ट विशुद्धि पूर्वके जघन्य विशुद्धि-स्थानसे अनन्तगुणी होती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यहाँ पर कारणका कथन सुगम है।

विशेषार्थ—पहले द्विचरम निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयकी जो जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी बतला आये है उससे अन्तिम निर्वर्गणाकाण्डकके प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी होती है यह इस सूत्रका भाव है। कारण यह है कि यह जघन्य विशुद्धिसे षट्स्थान पतित असंख्यात लोक-प्रमाण परिणामोंकी वृद्धि होने पर प्राप्त होती है।

*** इस प्रकार उत्कृष्ट विशुद्धिका यह क्रम अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समय तक ले जाना चाहिए।**

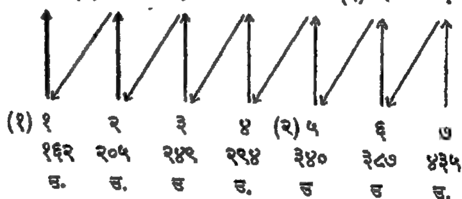
§ १०५ इस प्रकार समनन्तर पूर्व समयोंको देखते हुए उत्कृष्ट विशुद्धि ही अनन्तगुणी ले जानी चाहिए। कितनी दूर तक ले जानी चाहिए ऐसा कहने पर 'अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समय तक' इस प्रकार प्रकृत अल्पबहुत्वप्ररूपणाकी मर्यादाका निर्देश किया है। शेष कथन सुगम है।

विशेषार्थ—यहाँ पूर्वमें निर्दिष्ट की गई कल्पित अंक संदृष्टिको ध्यानमें रखकर अनेक जीवोंके आश्रयसे विशुद्धिसम्बन्धी उक्त अल्पबहुत्वको स्पष्ट करते है। समझो एक जीव है जो अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें विशुद्धिवश १ संख्याक परिणामको प्राप्त हुआ उसकी विशुद्धि सबसे जघन्य होगी। अब एक ऐसा दूसरा जीव है जो दूसरे समयमें ४० संख्याक जघन्य परिणामको प्राप्त हुआ। उसकी विशुद्धि पूर्वकी विशुद्धिसे अनन्तगुणी होगी। अब एक ऐसा तीसरा जीव है जो ८० संख्याक जघन्य परिणामको तीसरे समयमें प्राप्त हुआ।

---

१ ता०प्रतौ णिद्देसे इति पाठ ।

उसकी विशुद्धि पूर्वकी विशुद्धिसे अनन्तगुणी होगी। अब एक ऐसा जीव है जो चौथे समयमें १२१ सख्याक जघन्य परिणामको प्राप्त हुआ। उसकी विशुद्धि पूर्वकी विशुद्धिसे अनन्तगुणी होगी। यहाँ सर्वत्र षट्स्थान पतित क्रमसे असंख्यात लोकप्रमाण परिणामोंके बाद तत्तत्स्थानसम्बन्धी यह जघन्य विशुद्धिस्थान प्राप्त होता है ऐसा समझना चाहिए। अब एक ऐसा जीव है जो अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें ही १६२ संख्याक उत्कृष्ट परिणामको प्राप्त हुआ। उसकी उत्कृष्ट विशुद्धि पूर्वकी जघन्य विशुद्धिसे अनन्तगुणी होगी। इस विशुद्धिको भी अनन्तगुणी पूर्वोक्त प्रकारसे जान लेना चाहिए। अब एक ऐसा जीव है जो द्वितीय निर्वर्गणाकाण्डकके प्रथम समयमें १६३ संख्याक जघन्य परिणामको प्राप्त हुआ। उसकी जघन्य विशुद्धि पूर्वकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे अनन्तगुणी है। यहाँ पूर्वकी उत्कृष्ट विशुद्धि ऊर्वकस्वरूप है और प्रकृत जघन्य विशुद्धि अष्टांकस्वरूप है, इसलिये उससे यह अनन्तगुणी है। अब एक ऐसा जीव है जो अधःप्रवृत्तकरणके द्वितीय समयमें २०५ संख्याक उत्कृष्ट परिणामको प्राप्त हुआ। उसकी उत्कृष्ट विशुद्धि पूर्वकी जघन्य विशुद्धिसे अनन्तगुणी है। अब एक ऐसा जीव है जो द्वितीय निर्वर्गणाकाण्डकके द्वितीय समयमें २०६ संख्याक जघन्य परिणामको प्राप्त हुआ। उसकी जघन्य विशुद्धि पूर्वकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे अनन्तगुणी है। अब एक ऐसा जीव है जो अधःप्रवृत्तकरणके तीसरे समयमें २४९ संख्याक उत्कृष्ट परिणामको प्राप्त हुआ। उसकी उत्कृष्ट विशुद्धि पूर्वकी जघन्य विशुद्धिसे अनन्तगुणी है। यह एक क्रम है जिसे ध्यानमें लेकर परस्थानसम्बन्धी पूरे अल्पबहुत्वको समझ लेना चाहिए। अब यहाँ इसी विषयको स्पष्ट करनेके लिये कोष्ठक दे रहे हैं—




ज. ज. ज. ज. ज. ज.
४३६ ४८५ ५३५ ५८६ ६३८ ६९१
११ १२ (४) १३ १४ १५ १६।

७ ८ (३) ९ १० ११ १२ (४) १३ १४ १५ १६
४८४ ५३४ ५८५ ६३७ ६९० ७४४ ७९९ ८८५ ९१२
उ. उ. उ. उ उ उ. उ. उ उ.

§ १०६. एवमधापवत्तकरणविसोहीणमप्पाबहुअमुहेण परूवणं कादूण संपहि पयदत्थमुवसंहरेमाणो सुत्तमिदमाह—

* एदमधापवत्तकरणस्स लक्खणं।

§ १०७. एदमणंतरपरूविदमणुकट्टिलक्खणमधापवत्तकरणस्स लक्खणं दट्ठव्वमिदि भणिदं होदि। एवमेदमुवसंहरिय संपहि अपुव्वकरणलक्खणपरूवणट्ठमिदमाह—

* अपुव्वकरणस्स पढमसमए जहण्णिया विसोही थोवा।

§ १०८. एत्थ ताव अपुव्वकरणद्धमंतोमुहुत्तपमाणं समयभावेण ट्ठविय तत्थ परिणामाणमवट्ठाणक्कमं सुत्तसूचिदं वत्तइस्सामो। तं जहा—तत्थ तिण्णि अणिओगद्दाराणि—परूवणा पमाणमप्पाबहुअं च। तत्थ परूवणदाए अत्थि अपुव्वकरणपढमसमए परिणामट्ठाणाणि। एवं णेदव्वं जाव चरिमसमओ त्ति। परूवणा गया। पमाणं—एक्केक्कम्मि समए परिणामट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा। पमाणं गदं।

§ १०९. अप्पाबहुअं दुविहं—विसोहीणं तिव्व-मंदप्पाबहुअं परिणामपंति-

---

१. यहाँ १ से लेकर १६ तककी संख्या अधःप्रवृत्तकरणके समयोंकी सूचक है।

२ ब्रेकेटके भीतरकी संख्या निर्वर्गणाकाण्डकोंकी सूचक है। प्रत्येक निर्वर्गणाकाण्डक ४-४ समयोंका है।

३ १, ४० आदि संख्या उस उस समयके उस उस संख्याक परिणामकी सूचक है।

४. यहाँ जघन्यसे जघन्य, जघन्यसे उत्कृष्ट, उत्कृष्टसे जघन्य और उत्कृष्टसे उत्कृष्ट प्रत्येक स्थान अनन्तगुणी विशुद्धिको लिये हुए है।

§ १०६ इस प्रकार अधःप्रवृत्तकरणसम्बन्धी विशुद्धियोंके अल्पबहुत्वद्वारा कथन करके अब प्रकृत अर्थका उपसंहार करते हुए इस सूत्रको कहते हैं—

* यह अधःप्रवृत्तकरणका लक्षण है।

§ १०७. यह अनन्तर पूर्व कहा गया अनुत्कृष्टिका लक्षण अधःप्रवृत्तकरणका लक्षण जानना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस प्रकार इसका उपसंहार कर अब अपूर्वकरणके लक्षणका कथन करनेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

* अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जघन्य विशुद्धि सबसे स्तोक है।

§ १०८. यहाँ पर सर्वप्रथम अपूर्वकरणके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कालको समयरूपसे स्थापित कर वहाँ परिणामोंके सूत्र द्वारा सूचित हुए अवस्थानक्रमको बतलावेंगे। यथा—प्रकृतमें तीन अनुयोगद्वार हैं—प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व। उनमेंसे सर्वप्रथम प्ररूपणा अनुयोगद्वारको बतलाते हैं—अपूर्वकरणके प्रथम समयमें परिणामस्थान हैं। इसी प्रकार अन्तिम समय तक कथन करते हुए ले जाना चाहिए। प्ररूपणा अनुयोगद्वार समाप्त हुआ। प्रमाण—एक-एक समयमें परिणामस्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं। प्रमाण अनुयोद्वार समाप्त हुआ।

§ १०९ अल्पबहुत्व दो प्रकार है—विशुद्धियोंकी तीव्रता-मन्दतासम्बन्धी अल्पबहुत्व

दीहत्तप्पाबहुअं चेदि । तत्थ ताव पढमसमयप्पहुडि परिणामपंतीणमायामस्स थोव-बहुत्तविधिं वत्तइस्सामो । तं जहा—अपुव्वकरणपढमसमए परिणामपंतिआयामो थोवो । विदियसमए विसेसाहिओ । केत्तियमेत्तो विसेसो ? असंखेज्जलोगपरिणामट्ठाणमेत्तो । होंतो वि पढमसमयपरिणामपंतिमंतोमुहुत्तमेत्तखंडाणि कादूण तत्थ एयखंडमेत्तो । एवमणंतरोवणिधाए विसेसाहियकमेण णेदव्वं जाव चरिमसमयपरिणामपतिआयामो त्ति । णवरि समए समए अपुव्वाणि चेव परिणामट्ठाणाणि । संपहि विसोहीणं तिव्व-मंददाये अप्पाबहुअं सुत्ताणुसारेण कस्सामो । तं जहा—'अपुव्वकरणपढमसमए जहण्ण-विसोही थोवा' एवं भणिदे अपुव्वकरणपढमसमए असंखेज्जलोगमेत्तविसोहिट्ठाणाणं मज्झे जा जहण्णिया विसोही सा सव्वमंदाणुभागा त्ति वुत्तं होइ ।

* तत्थेव उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा ।

§ ११०. तत्थेवापुव्वकरणपढमसमए जा उक्कस्सिया विसोही असंखेज्जलोगमेत्त-छट्ठाणाणि समुल्लंघियूणावट्ठिदा सा पुव्विल्लजहण्णविसोहीदो अणंतगुणा त्ति वुत्तं होइ ।

* विदियसमए जहण्णिया विसोही अणंतगुणा ।

---

और परिणामसम्बन्धी पंक्तियोंकी दीर्घतासम्बन्धी अल्पबहुत्व । उनमेंसे सर्वप्रथम प्रथम समयसे लेकर परिणामोंकी पंक्तियोंके आयामकी अल्पबहुत्वविधिको बतलावेंगे । यथा—अपूर्वकरणके प्रथम समयमें परिणामोंकी पंक्तिका आयाम सबसे स्तोक है । उससे दूसरे समयमें विशेष अधिक है ।

शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—असंख्यात लोकप्रमाण जो परिणामस्थान है तत्प्रमाण है । इतना होता हुआ भी प्रथम समयकी परिणामोंकी पंक्तिके, अन्तर्मुहूर्तके जितने समय हों उतने खण्ड करने पर उनमें एक खण्डप्रमाण है ।

इस प्रकार अनन्तरोपनिधाका आश्रयकर विशेषाधिक क्रमसे अन्तिम समयके परि-णामोंकी पंक्तिके आयामके प्राप्त होनेतक कथन करते हुए ले जाना चाहिए । इतनी विशेषता है कि प्रत्येक समयमें अपूर्व ही परिणामस्थान प्राप्त होते हैं । अब विशुद्धियोंकी तीव्रता-मन्दताके अल्पबहुत्वको सूत्रके अनुसार करेंगे । यथा—'अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जघन्य विशुद्धि सबसे स्तोक है' ऐसा कहने पर अपूर्वकरणके प्रथम समयमें असंख्यात लोकप्रमाण विशुद्धिस्थानोंके मध्य जो जघन्य विशुद्धि है वह सबसे मन्द अनुभागवाली है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

* वहीं पर उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है ।

§ ११०. वहीं पर अर्थात् अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जो उत्कृष्ट विशुद्धि है वह असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंको उल्लंघन कर अवस्थित है । वह पूर्वकी जघन्य विशुद्धिसे अनन्तगुणी है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

* उससे दूसरे समयमें जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है ।

§ १११. किं कारणं ? असंखेज्जलोगमेत्ताणि छट्ठाणाणि अंतरिदूणेदिस्से समुप्पत्तिअब्भुवगमादो ।

* तत्थेव उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा ।

§ ११२. तत्थेवापुव्वकरणविदियसमए जा उक्कस्सिया विसोही सा अणंतर-परूविदजहण्णविसोहीदो अणंतगुणा त्ति भणिदं होइ । एत्थ वि कारणं पुव्वं व वत्तव्वं ।

* समये समये असंखेज्जा लोगा परिणामट्ठाणाणि ।

§ ११३. अपुव्वकरणद्धाए सव्वत्थ समयं पडि असंखेज्जलोगमेत्ताणि परिणाम-ट्ठाणाणि एदेणप्पाबहुअविहिणा अवट्ठिदा त्ति भणिदं होइ ।

* एवं णिव्वग्गणा च ।

§ ११४. जत्तियमद्धाणमुवरि गंतूण णिरुद्धसमयपरिणामाणमणुकट्टी वोच्छिज्जदि तमेव णिव्वग्गणकंडयं णाम । एत्थ पुण समये समये चेव णिव्वग्गणकंडयं घेत्तव्वं, विवक्खियसमयपरिणामाणमुवरि एगम्मि वि समए संभवाणुवलंभादो त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो ।

* एदं अपुव्वकरणस्स लक्खणं ।

§ ११५. एदमणंतरपरूविदं समए समए अणुकट्टिवोच्छेदलक्खणमपुव्वकरण-लक्खणमवहारेयव्वमिदि वुत्तं होइ ।

---

§ १११. क्योंकि असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंके अन्तरसे इसकी उत्पत्ति स्वीकार की गई है ।

* वहीं पर उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है ।

§ ११२ वहीं पर अर्थात् अपूर्वकरणके दूसरे समयमें जो उत्कृष्ट विशुद्धि होती है वह अनन्तरपूर्व कही गई जघन्य विशुद्धिसे अनन्तगुणी है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यहाँ पर भी कारणका कथन पहलेके समान करना चाहिए ।

* प्रत्येक समयमें असंख्यात लोकप्रमाण परिणामस्थान होते हैं ।

§ ११३. अपूर्वकरणके कालमें सर्वत्र प्रत्येक समयमें असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम-स्थान होते हैं यह बात इस अल्पबहुत्वके द्वारा निश्चित होती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

* और इसी प्रकार प्रत्येक समयमें निर्वर्गणा होती है ।

§ ११४. जितने स्थान ऊपर जाकर विवक्षित समयके परिणामोंकी अनुकृष्टिका विच्छेद होता है उसीका नाम निर्वर्गणाकाण्डक है । परन्तु यहाँ अपूर्वकरणके प्रत्येक समयमें निर्वर्गणा-काण्डकको ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि विवक्षित समयके परिणाम ऊपरके एक भी समयमें सम्भव नहीं हैं यह इस सूत्रका भावार्थ है ।

* यह अपूर्वकरणका लक्षण है ।

§ ११५ अनन्तर पूर्व कहा गया यह प्रत्येक समयमें अनुकृष्टिका विच्छेदस्वरूप अपूर्व-करणका लक्षण जानना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

विशेषार्थ—यहाँ अपूर्वकरणके स्वरूपका निर्देश करते हुए बतलाया है कि अपूर्वकरण का काल अन्तर्मुहूर्त है जो अधःप्रवृत्तकरणके कालके संख्यातवे भागप्रमाण है। इस कालमें कुल परिणामोंका प्रमाण असंख्यात लोकप्रमाण होकर भी प्रत्येक समयके परिणाम भी असंख्यात लोकप्रमाण हैं। जो प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय तक प्रत्येक समयमें सदृश वृद्धिको लिये हुए हैं। प्रथम समयके असंख्यात लोकप्रमाण परिणामोंमें अन्तर्मुहूर्तका भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आवे उतना प्रत्येक समयमे वृद्धि या चयका प्रमाण है। यहाँ प्रत्येक समयमें असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम हैं इसकी सिद्धि प्रत्येक समयमें प्राप्त होनेवाली विशुद्धिके अल्पबहुत्वको ध्यानमें रख कर की गई है, क्योंकि प्रथम समयकी जघन्य विशुद्धि सबसे स्तोक है। उससे उसी समयमे प्राप्त होनेवाली उत्कृष्ट विशुद्धि असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंको उल्लंघन कर प्राप्त होती है, इसलिये अनन्तगुणी है। उससे दूसरे समयमें प्राप्त होनेवाली जघन्य विशुद्धि असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंको उल्लंघन कर प्राप्त होती है, इसलिये अनन्तगुणी है। तथा उससे उसी समयमें प्राप्त होनेवाली उत्कृष्ट विशुद्धि असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंको उल्लंघन कर प्राप्त होती है, इसलिये अनन्तगुणी है। इसी प्रकार आगे भी प्रत्येक समयमें जघन्य और उत्कृष्ट विशुद्धिका यह अल्पबहुत्व अपूर्वकरणके अन्तिम समय तक जानना चाहिए। यहाँ प्रत्येक समयकी जघन्य विशुद्धिसे उसी समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिको और उस समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे अगले समयकी जघन्य विशुद्धिको उक्त प्रकारसे अनन्तगुणी बतलाया है। इससे स्पष्ट है कि अपूर्वकरणके प्रत्येक समयमे असंख्यात-लोकप्रमाण परिणामस्थान होते हैं। वे सब परिणामस्थान प्रत्येक समयके अपूर्व-अपूर्व ही होते हैं, इसलिये यहाँ भिन्न समयवाले जीवोंको तद्भिन्न समयवाले जीवोंके साथ अनुकृष्टि तो बनती ही नहीं। किन्तु एक समयवाले जीवोंके परिणामोंमें सदृशता-विसदृशता बन जाती है। इसलिये अपूर्वकरणमे एक समयवाली ही निर्वर्गणा स्वीकार की गई है। खुलासा इस प्रकार है कि जो अनेक जीव एक साथ अपूर्वकरणमे प्रवेश करते हैं उनके परिणाम परस्परमें सदृश भी हो सकते हैं और विसदृश भी। किन्तु भिन्न समयवाले जीवोंके परिणाम विसदृश ही होते हैं। अब अपूर्वकरणके उक्त स्वरूपको स्पष्ट करनेके लिये यहाँ कल्पित अंक-संदृष्टि दी जाती है—

कुल परिणामोंकी संख्या—४०९६, अन्तर्मुहूर्तका प्रमाण ८, चयका प्रमाण १६, नियम यह है कि एक कम पदके आधेको पद और चयसे गुणित करनेपर उत्तरधन प्राप्त होता है। यथा—$८ - १ = ७ - २ = \frac{७}{२} \times ८ \times १६ = ४४८$, इसे सर्वधन ४०९६ मेसे कम करने पर $४०९६ - ४४८ = ३६४८$ शेष रहे। इसमें ८ का भाग देने पर $३६४८ \div ८ = ४५६$ लब्ध आये। यह अपूर्वकरणके प्रथम समयके कुल परिणाम हैं। इनमे उत्तरोत्तर एक-एक चय १६ जोड़ने पर दूसरे समयसे लेकर आठवे समय तक प्रत्येक समयका द्रव्य क्रमसे ४७२, ४८८, ५०४, ५२०, ५३६, ५५२, और ५६८ होता है। प्रत्येक समयमे होनेवाले ये परिणाम नाना जीवोंकी अपेक्षा कहे गये हैं, क्योंकि एक समयमे एक जीवका परिणाम एक ही होता है, दूसरे जीवका भी उसी समय यह परिणाम हो सकता है और उससे भिन्न परिणाम भी हो सकता है। इस प्रकार प्रत्येक समयमें नाना जीवोके परिणाम परस्पर सदृश भी होते हैं और विसदृश भी होते हैं, इसलिये इसका अपूर्वकरण यह नाम सार्थक है। इसमे भिन्न-भिन्न समयवाले जीवोंके परिणामोंमें परस्पर अनुकृष्टि नहीं बनती यह हम पहले ही बतला आये हैं, इसलिये इस करणमें प्रत्येक समयमें पृथक्-पृथक् निर्वर्गणाकाण्डक स्वीकार किया गया है।

§ ११६. संपहि अणियट्टिकरणस्स लक्खणट्ठपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—

* अणियट्टिकरणे समए समए एक्केक्कपरिणामट्ठाणाणि अणंतगुणाणि च ।

§ ११७. अणियट्टिकरणपढमसमयप्पहुडि जाव चरिमसमओ त्ति ताव एक्केक्कं चेव परिणामट्ठाणं होइ । तत्थेगसमयम्मि परिणामभेदाभावेहिं होंतं पि समयं पडि अणंतगुणक्कमेणेवावट्ठिद[1] दट्ठव्वं, तत्थ पयारंतरासंभवादो । तम्हा अणियट्टिकरणम्मि अंतोमुहुत्तमेत्ताणि चेव परिणामट्ठाणाणि अणंतगुणसरूवेणावट्ठिदाणि होंति त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो ।

* एदमणियट्टिकरणस्स लक्खणं ।

§ ११८. सुगममेदमुवसंहारवक्कं ।

---

§ ११६ अब अनिवृत्तिकरणके लक्षणके अर्थका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रको कहते हैं—

* अनिवृत्तिकरणके प्रत्येक समयमें एक-एक परिणामस्थान होता है तथा वे सब परिणामस्थान उत्तरोत्तर अनन्तगुणित होते हैं ।

§ ११७. अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय तक एक-एक परिणामस्थान ही होता है । वहाँ एक समयमें परिणाम भेद नहीं है, फिर भी प्रत्येक समयमें होनेवाला वह परिणाम उत्तरोत्तर अनन्तगुणित क्रमसे ही अवस्थित है ऐसा जानना चाहिए, क्योंकि वहाँ दूसरा प्रकार सम्भव नहीं है । इसलिये अनिवृत्तिकरणमें अन्तर्मुहूर्तप्रमाण ही परिणामस्थान अनन्तगुणितस्वरूपसे अवस्थित हैं यह इस सूत्रका भावार्थ है ।

* यह अनिवृत्तिकरणका लक्षण है ।

§ ११८. यह उपसंहारवाक्य सुगम है ।

विशेषार्थ—यहाँ अनिवृत्तिकरणके स्वरूपका निर्देश करते हुए बतलाया है कि इस करणका काल भी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है जो अपूर्वकरणके कालके संख्यातवे भागप्रमाण है । पहले अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरणमें अपने-अपने कालके भीतर होनेवाले सब परिणामोंका योग असंख्यात लोकप्रमाण बतला आये हैं और प्रत्येक समयमें होनेवाले परिणाम भी उत्तरोत्तर सदृश वृद्धिरूपसे अवस्थित असंख्यात लोकप्रमाण बतला आये हैं । किन्तु वह व्यवस्था अनिवृत्तिकरणमें नहीं है । किन्तु इस करणका जितना काल है उसमें होनेवाले परिणाम भी उतने ही हैं जो उत्तरोत्तर अनन्तगुणी विशुद्धिको लिये हुए हैं । तात्पर्य यह है कि यहाँ नाना जीवोंकी अपेक्षा भी विवक्षित समयमें वही परिणाम होता है जो दूसरे आदि जीवोंका उस समयमें पहले अतीत कालमें हुआ है, वर्तमान समयमें है या भविष्यमें होगा । इसमें न तो गतिभेद बाधक है, न लेश्याभेद बाधक है, न संस्थानभेद बाधक है और न वेदभेद ही बाधक है । एक समयमें स्थित नाना जीवोंका एक ही परिणाम होता है और भिन्न समयमें स्थित जीवोंका भिन्न ही परिणाम होता है । इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि इस

---

१. ता०प्रतौ –क्कमेण वावट्ठिदं इति पाठः ।

§ ११९. एवं तिण्हं करणाणं लक्खणं परूविय संपहि एदेहिं करणेहिं अणादिय-मिच्छादिट्ठिस्स दंसणमोहोवसामणाविहाणं परूवेमाणो तव्विसयमेव पइण्णावक्कमाह—

* अणादियमिच्छादिट्ठिस्स उवसामगस्स परूवणं वत्तइस्सामो।

§ १२०. दंसणमोहउवसामणाए पट्ठवगो अणादियमिच्छाइट्ठी वा होज्ज सादिय-मिच्छाइट्ठी वा वेदगपाओग्गभावं वोलिय अट्ठावीसं सत्तावीसं छव्वीसाणमण्णदरकम्मं-सिओ होदूण पुणो सम्मत्तग्गहणाहिमुहो होज्ज त्ति। तत्थ ताव अणादियमिच्छादिट्ठि-मस्सियूण परूवणं वत्तइस्सामो, सादियमिच्छादिट्ठिउवसामयपरूवणाए तप्परूवणादो चेव गयत्थत्तदंसणादो त्ति भणिदं होइ।

* तं जहा।

करणके कालके जितने समय हैं, परिणाम भी उतने ही है, न न्यून हैं और न अधिक है। ऐसा होते हुए भी ये परिणाम उत्तरोत्तर अनन्तगुणी वृद्धिरूपसे ही अवस्थित हैं। इसका आशय यह है कि जिस प्रकार अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरणके एक समयमें होनेवाले परि-णामों में उत्तरोत्तर अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि आदि बन जाती है। इस प्रकारकी व्यवस्था यहाँ एक समयवर्ती परिणामभेद न होनेके कारण इन परिणामोंकी न होकर यहाँ प्रथम समयके परिणामसे दूसरे समयका परिणाम तथा द्वितीयादि समयोंके परिणामोंसे तृतीयादि समयोंके परिणाम उत्तरोत्तर अनन्तगुणी वृद्धिको लिये हुए ही है। इस प्रकार यह अनिवृत्तिकरणका स्वरूप है।

§ ११९ इस प्रकार तीनों करणोंके लक्षणोंका कथन कर अब इन करणोंके द्वारा अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके दर्शनमोहनीयकर्मकी उपशामनाविधिका कथन करते हुए तद्विषयक ही प्रतिज्ञावाक्यको कहते हैं—

* अब अनादि मिथ्यादृष्टि उपशामककी प्ररूपणा बतलाते हैं।

§ १२०. दर्शनमोहकी उपशामनाका प्रस्थापक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव भी होता है और वेदकसम्यक्त्वके योग्य भावको उल्लंघन कर अट्ठाईस, सत्ताईस तथा छब्बीस इनमेंसे अन्यतर प्रकृतियोंकी सत्तावाला होकर सादि मिथ्यादृष्टि भी सम्यक्त्व ग्रहणके अभिमुख होता है। उनमेंसे सर्व प्रथम अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके आश्रयसे कथन करेंगे, क्योंकि सादि मिथ्यादृष्टि उपशामककी प्ररूपणाका ज्ञान अनादि मिथ्यादृष्टि उपशामककी प्ररूपणासे ही होता हुआ देखा जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

विशेषार्थ—सभी सादि मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके पात्र नहीं होते। किन्तु जिन्होंने कमसे कम वेदकसम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य पल्योपमके असंख्यातवे भागप्रमाण कालको उल्लंघन कर लिया है ऐसे मोहनीयकर्मकी २८, २७ या २६ प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जीव ही दर्शनमोहनीयकी उपशामना करनेमें समर्थ होते हैं। यहाँ यद्यपि अनादि मिथ्यादृष्टि जीव दर्शनमोहनीयकी उपशामना किस प्रकार करते हैं यह प्रमुखतासे बतलाया जा रहा है, पर उससे सादि मिथ्यादृष्टि जीवोंके दर्शनमोहनीयकी उपशामना किस प्रकारसे होती है इसका भी ज्ञान हो जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* वह जैसे।

§ १२१. सुगमं ।

*** अधापवत्तकरणे ट्ठिदिखंडयं वा अणुभागखंडयं वा गुणसेढी वा गुणसंकमो वा णत्थि, केवलमणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झदि ।**

§ १२२. किं कारणमेत्थ ट्ठिदिखंडयघादादीणमभावो चे? ण, अधापवत्तविसोहीणं तहाविहसत्तीए असंभवादो । तम्हा केवलमेसो पडिसमयमणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झदि, ण पुण ट्ठिदिखंडयादिकज्जकरणक्खमो त्ति सिद्धं ।

*** अप्पसत्थकम्मंसे जे बंधइ ते दुट्ठाणिये अणंतगुणहीणे च, पसत्थकम्मंसे जे बंधइ ते च चउट्ठाणिए अणंतगुणे च समये समये ।**

§ १२३. जइ वि ऐसो ट्ठिदिखंडयघादादिकज्जविसेसं ण कुणइ तो वि ण एदस्स पडिसमयमणंतगुणविसोहिपरिणामो णिप्फलो, समयं पडि अप्पसत्थ-पसत्थपयडीण-

---

§ १२१ यह सूत्र सुगम है ।

*** अधःप्रवृत्तकरणमें स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात, गुणश्रेणि और गुणसंक्रम नहीं होता । केवल वह प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धिसे विशुद्ध होता जाता है ।**

§ १२२ शंका—इस करणमें स्थितिकाण्डकघात आदिका अभाव होनेका क्या कारण है?

समाधान—नहीं, क्योंकि अधःप्रवृत्तकरणमें प्राप्त होनेवाली विशुद्धियोंमें उसप्रकारकी शक्तिका अभाव है, इसलिये वह केवल प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धिसे विशुद्ध होता जाता है । परन्तु वह काण्डकघात आदि कार्य करनेमें समर्थ नहीं होता यह सिद्ध हुआ ।

विशेषार्थ—अधःप्रवृत्तकरणके प्रत्येक समयके परिणामोंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा तो यथासम्भव षट्स्थान पतित वृद्धिस्वरूप विशुद्धि बन जाती है, परन्तु प्रथम समयके विवक्षित परिणामसे दूसरे समयका विवक्षित परिणाम नियमसे अनन्तगुणी विशुद्धिसे युक्त होता है यह सब पहले प्रथमादि समयोंमें प्राप्त होनेवाली विशुद्धियोंके अल्पबहुत्वके कथनके प्रसंगसे बतला ही आये हैं । फिर भी इन परिणामोंमें स्थितिकाण्डकघात आदिरूप कार्य करनेकी सामर्थ्य नहीं पाई जाती यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

*** यह जीव जिन अप्रशस्त कर्मांशोंको बाँधता है उन्हें समय समयमें द्विस्थानीय अनन्तगुणी हीन अनुभाग शक्तिसे युक्त बाँधता है । तथा जिन प्रशस्त कर्मांशोंको बाँधता है उन्हें समय समयमें चतुःस्थानीय अनन्तगुणी अनुभागशक्तिसे युक्त बाँधता है ।**

§ १२३. यद्यपि यह जीव स्थितिकाण्डकघात आदि कार्यविशेषको नहीं करता है तो भी इसका प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धिस्वरूप होनेवाला परिणाम निष्फल नहीं है, क्योंकि

मणुभागबंधोसरणतदुक्कस्सीकरणलक्खणफलविसेसोवलंभादो त्ति वुत्तं होइ ।

*** ट्ठिदिबंधे पुण्णे पुण्णे अण्णं ट्ठिदिबंधं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभाग-हीणं बंधदि ।**

§ १२४. एतदुक्तं भवति–अधापवत्तकरणपढमसमए चेव तदणंतरहेट्ठिमसमयट्ठिदि-बंधादो तप्पाओग्गंतोकोडाकोडिपमाणादो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण परिहीणमण्ण-ट्ठिदिबंधमाढवेइ । पुणो एदं ट्ठिदिबंधमंतोमुहुत्तकालमवट्ठिदसरूवेण बंधमाणो तब्बंधगद्धा परिछिज्जदे, तत्तो अण्णं ट्ठिदिबंधं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण परिहीणमाढविय तं पि अंतोमुहुत्तकालमवट्ठिदसरूवेण बंधइ । एवमेदेण कमेण पुण्णे पुण्णे ट्ठिदिबंधे अण्णं ट्ठिदिबंधं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण परिहीणं कादूण बंधमाणो सगद्धाए संखेज्ज-सहस्समेत्ताणि ट्ठिदिबंधोसरणाणि करेदि त्ति ।

---

उससे अप्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभागबन्धापसरण लक्षण और प्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभाग-बन्धका उत्कृष्टीकरणलक्षण फलविशेष पाया जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

**विशेषार्थ**—इस जीवके पहले नरकादि किस गतिमें किन प्रकृतियोंका बन्ध होता है यह बतला आये है। यहाँ यह बतलाया है कि जिस गतिसम्बन्धी इस अवस्थामें जिन प्रकृतियोंका बन्ध होता है उनमेंसे अप्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभागबन्ध द्विस्थानीय होकर भी प्रत्येक समयमे अनन्तगुणा हीन होता जाता है और प्रशस्त प्रकृतियोका अनुभागबन्ध चतुः-स्थानीय होकर भी प्रत्येक समयमे अनन्तगुणी वृद्धिरूप होता जाता है ।

*** एक-एक स्थितिबन्धके पूर्ण पूर्ण होनेपर पल्योपमके संख्यातवें भागसे हीन अन्य-अन्य स्थितिबन्धको बाँधनेके लिये आरम्भ करता है ।**

§ १२४ उक्त कथनका यह तात्पर्य है कि अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें ही उससे अनन्तर पूर्व अधस्तन समयमे होनेवाले तत्प्रायोग्य अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिबन्धसे पल्योपमका सख्यातवां भाग हीन अन्य स्थितिबन्धको आरम्भ करता है। पुनः इस स्थिति-बन्धको अन्तर्मुहूर्त कालतक अवस्थितरूपसे बाँधनेवालेके उसका बन्धकाल क्षीण हो जाता है। पुनः उससे पल्योपमका संख्यातवां भागप्रमाण न्यून अन्य स्थितिबन्धका आरम्भकर उसे भी अन्तर्मुहूर्तकालतक अवस्थितरूपसे बाँधता है। इसप्रकार इस क्रमसे स्थितिबन्धके पुनः पुनः पूर्ण होनेपर पल्योपमका संख्यातवा भागप्रमाण हीन अन्य स्थितिबन्धको प्रारम्भकर बन्ध करता हुआ उक्त जीव अधःप्रवृत्तकरण कालके भीतर संख्यात हजार स्थितिबन्धापसरण करता है।

**विशेषार्थ**—अधःप्रवृत्तकरणका जो अन्तर्मुहूर्त काल है उसके एक स्थितिबन्धापसरणके कालप्रमाण सख्यात हजार खण्ड करे। उनमेंसे प्रत्येक खंडका प्रमाण भी अन्तर्मुहूर्त होता है। इसप्रकार अधःप्रवृत्तकरणके कालके जितने खण्ड हुए उतने उस कालमे स्थितिबन्धापसरण होते हैं। इनमेसे प्रत्येक स्थितिबन्धापसरणमे पूर्व-पूर्वके स्थितिबन्धके प्रमाणमेसे पल्योपमके सख्यातवे भागप्रमाण स्थिति कम हो-होकर बन्ध होता है यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है।

§ १२५. एवमधापवत्तकरणे वावारविसेसं परूविय संपहि तमुल्लंघियूणापुव्वकरण-विसोहीए परिणदस्स पढमसमयप्पहुडि वावारविसेसपदुप्पायणट्ठमुवरिमसुत्तपबंधमाह—

*** अपुव्वकरणपढमसमये ट्ठिदिखंडयं जहण्णगं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो, उक्कस्सगं सागरोवमपुधत्तं ।**

§ १२६. अणंतरपरूविदेण विधिणा अधापवत्तकरणद्धं वोलाविय पुणो अपुव्व-करणं पविट्ठस्स पढमसमए चेव ट्ठिदि-अणुभागखंडयघादा दो वि कादुमाढत्ता, अपुव्वकरण-विसोहिपरिणामस्स तदुभयघादणिबंधणत्तादो । तत्थ ताव पढमट्ठिदिखंडयमेत्तवियप्प-माहो अत्थि जहण्णुक्कस्सवियप्पसंभवो त्ति एवंविहाए पुच्छाए णिरारेगीकरणट्ठमिदं सुत्तमोइण्णं । तं जहा—जहण्णेण ताव पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागायामं ट्ठिदिखंडय-मागाएदि, दंसणमोहोवसामगपाओग्गसव्वजहण्णंतोकोडाकोडिमेत्तट्ठिदिसंतकम्मेणा-गदम्मि तदुवलंभादो । उक्कस्सेण पुण सागरोवमपुधत्तमेत्तायामं पढमट्ठिदिखंडयमाढवेइ, पुव्विल्लजहण्णट्ठिदिसंतकम्मादो संखेज्जगुणट्ठिदिसंतकम्मेण सहागंतूण अपुव्वकरणं पविट्ठस्स पढमसमये तदुवलंभादो । किं पुण कारणं दोण्हं पि विसोहिपरिणामेसु समाणेसु संतेसु घादिदसेसाणं ट्ठिदिसंतकम्माणं एवं विसरिसभावो त्ति णासंकणिज्जं, संसार-

---

§ १२५. इसप्रकार अधःप्रवृत्तकरणमें व्यापारविशेषका कथनकर अब उसको उल्लंघन-कर अपूर्वकरणकी विशुद्धिरूपसे परिणत हुए जीवके प्रथम समयसे लेकर व्यापारविशेषका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

*** अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जघन्य स्थितिकाण्डक पल्योपमका संख्यातवाँ भागप्रमाण होता है और उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण होता है ।**

§ १२६. अनन्तर पूर्व कही गई विधिसे अधःप्रवृत्तकरणके कालको बिताकर अपूर्व-करणमें प्रविष्ट हुआ जीव प्रथम समयमें ही स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात इन दोनोंको करनेके लिये आरम्भ करता है, क्योंकि अपूर्वकरणके विशुद्धिसे युक्त परिणाममें इन दोनोंके घात करनेकी हेतुता है । वहाँ प्रथम स्थितिकाण्डक प्रमाण ही एक प्रकार है या उसमें जघन्य और उत्कृष्ट भेद भी सम्भव है ऐसी आशंका होनेपर निःशंक करनेके लिये यह सूत्र आया है । यथा—जघन्यरूपसे तो पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण आयामवाले स्थितिकाण्डकको ग्रहण करता है, क्योंकि दर्शनमोहनीयकी उपशामनाके योग्य सबसे जघन्य अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिसत्कर्मके साथ आये हुए जीवमें स्थितिकाण्डकका आयाम उक्त प्रमाण पाया जाता है । परन्तु उत्कृष्टरूपसे सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण आयामवाले प्रथम स्थितिकाण्डकको आरम्भ करता है, क्योंकि पूर्वके जघन्य स्थितिसत्कर्मसे संख्यातगुणे स्थितिसत्कर्मके साथ आकर अपूर्वकरणमें प्रविष्ट हुए जीवके प्रथम समयमें उसकी उपलब्धि होती है ।

शंका—दोनों जीवोंके ही विशुद्धिरूप परिणामोंके समान होनेपर घात करनेसे शेष रहे स्थितिसत्कर्मोंमें इस प्रकारकी विसदृशता होती है इसका क्या कारण है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि संसार अवस्थाके योग्य अध-

पाओग्गाणं हेट्ठिमविसोहीणं सव्वेसु समाणत्ते णियमाणुवलभादो।

§ १२७. एवमपुव्वकरणपढमसमए पारद्धस्स ट्ठिदिखंडयस्स पमाणविणिण्णयं कादूण संपहि तत्थेव ट्ठिदिबंधपमाणावहारणट्ठमिदमाह—

* ट्ठिदिबंधो अपुव्वो।

§ १२८. अधापवत्तकरणचरिमसमयट्ठिदिबंधादो अपुव्वो अण्णो ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण हीणो एण्हिमाढत्तो त्ति भणिदं होइ। संपहि एत्थेवापुव्वकरणपढमसमए अणुभागखंडयं पि घादेदुमाढवेइ। तं पुण केसिं कम्माणं किं पमाणं वा होइ त्ति जाणावणट्ठमुत्तरं पबंधमाह—

* अणुभागखंडयमप्पसत्थकम्मंसाणमणंता भागा।

§ १२९. अणुभागकंडयमप्पसत्थाणं चेव कम्माणं होइ पसत्थकम्माणं विसोहीए अणुभागवड्ढिं मोत्तूण तग्घादाणुववत्तीदो। तस्स पमाणं तक्कालभाविविट्ठाणाणुभागसंतकम्मस्साणंता भागा, अणुभागखंडयस्स करणपरिणामेहिं घादिज्जमाणस्स सेसवियप्पा-

---

स्तन विशुद्धियाँ सभी जीवोंमें समान होती हैं ऐसा कोई नियम नहीं है।

विशेषार्थ—यहाँपर अपूर्वकरणमे प्राप्त विशुद्धियोसे पूर्वकी सभी विशुद्धियोंको संसार अवस्थाके योग्य कहा है। इसका यह अर्थ नहीं है कि सम्यक्त्वके सन्मुख हुए जीवके जो अधःप्रवृत्तकरणसम्बन्धी विशुद्धि होती है वह भी ससार अवस्थाके योग्य है। किन्तु इसका केवल इतना ही अर्थ है कि जातिकी अपेक्षा जिस लक्षणवाले परिणाम अधःप्रवृत्तकरणमें होते हैं उस लक्षणवाले परिणाम अन्य संसारी जीवोंके भी हो सकते है। इसलिए उनके तारतम्यसे कर्मकी स्थितियोमे भी विभिन्नता बनी रहती है और इसी कारण अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिकाण्डक अनेक प्रकारकी स्थितियोंवाले बन जाते हैं।

§ १२७ इस प्रकार अपूर्वकरणके प्रथम समयमे प्रारम्भ किये गये स्थितिकाण्डकके प्रमाणका निर्णयकर अब वहींपर स्थितिबन्धके प्रमाणका निश्चय करनेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

* स्थितिबन्ध अपूर्व होता है।

§ १२८ अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयके स्थितिबन्धसे पल्योपमका संख्यातवां भाग हीन अपूर्व अर्थात् अन्य स्थितिबन्धको यहाँ आरम्भ करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अब यहीं अपूर्वकरणके प्रथम समयमे अनुभागकाण्डकका भी घात करनेके लिये आरम्भ करता है। वह किन कर्मोका होता है और उसका क्या प्रमाण है इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

* अनुभागकाण्डक अप्रशस्त कर्मोंका अनन्त बहुभागप्रमाण होता है।

§ १२९. अनुभागकाण्डक अप्रशस्त कर्मोंका ही होता है, क्योंकि विशुद्धि के कारण प्रशस्त कर्मोंकी अनुभागवृद्धिको छोड़कर उसका घात नहीं बन सकता। उस अनुभागकाण्डकका प्रमाण तत्कालभावी द्विस्थानीय अनुभागसत्कर्मके अनन्त बहुभागप्रमाण है, क्योंकि करण-

संभवादो । संपहि एदस्स अपुव्वकरणपढमाणुभागकंडयस्स माहप्पजाणावणट्ठमुत्तर-पबंधमाह—

*** तस्स पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरफद्दयाणि थोवाणि ।**

§ १३०. तस्से त्ति वुत्ते अहियारवसेण अणुभागस्स गहणं कायव्वं, तदो अणुभागविसयएगपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरस्स अब्भंतरे जाणि फद्दयाणि ताणि अभवसिद्धिएहिंतो अणंतगुणाणि सिद्धाणमणंतभागमेत्ताणि होदूण उवरि वुच्चमाणपदावेक्खाए थोवाणि त्ति वुत्तं होइ ।

*** अइच्छावणाफद्दयाणि अणंतगुणाणि ।**

§ १३१. उवरिमअणुभागफद्दयाणि ओकड्डेमाणो जत्तियाणि अणुभागफद्दयाणि जहण्णेणाइच्छाविय हेट्ठिमफद्दयसरूवेणोकड्डइ ताणि जहण्णाइच्छावणाविसयाणि अणंतगुणाणि त्ति जह वुत्तं होइ । किं कारणमेदेसिमणंतगुणत्तं जादमिदि चे ? ण, जहण्णाइच्छावणब्भंतरे अणताणं पदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणमत्थित्तोवएसादो ।

*** णिक्खेवफद्दयाणि अणंतगुणाणि ।**

§ १३२. एवं भणिदे कंडयस्स हेट्ठा जहण्णाइच्छावणमेत्तफद्दयाणि मोत्तूण सेसहेट्ठिमसव्वफद्दयाणं गहणं कायव्वं । एदाणि जहण्णाइच्छावणाफद्दएहिंतो अणंतगुणाणि त्ति भणिदं होइ ।

---

परिणामोंके द्वारा घाते जानेवाले अणुभागकाण्डकके शेष विकल्पोंका होना असम्भव है। अब इस अपूर्वकरणके प्रथम अनुभागकाण्डककी दीर्घताका ज्ञान करानेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

*** उसके एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरके स्पर्धक सबसे स्तोक हैं ।**

§ १३० सूत्रमें 'तस्स' ऐसा कहनेपर अधिकारवश अनुभागका ग्रहण करना चाहिए, अतः अनुभागविषयक एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरके भीतर जो स्पर्धक हैं वे अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण होकर आगे कहे जानेवाले पदोंकी अपेक्षा स्तोक हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

*** उनसे अतिस्थापनारूप स्पर्धक अनन्तगुणे हैं ।**

§ १३१. उपरिम अनुभागसम्बन्धी स्पर्धकोंका अपकर्षण करते हुए जितने अनुभागस्पर्धकोंको जघन्यरूपसे अतिस्थापितकर उनसे नीचेके स्पर्धकरूपसे अपकर्षित करता है वे जघन्य अतिस्थापनाविषयक स्पर्धक एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरके स्पर्धकोंसे अनन्तगुणे होते हैं यह पूर्वोक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—ये अनन्तगुणे किस कारणसे हो जाते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जघन्य अतिस्थापनाके भीतर अनन्त प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरोंके अस्तित्वका उपदेश पाया जाता है ।

*** उनसे निक्षेपसम्बन्धी स्पर्धक अनन्तगुणे होते हैं ।**

§ १३२. ऐसा कहनेपर अनुभागकाण्डकके नीचे जघन्य अतिस्थापनाप्रमाण स्पर्धकोंको

* आगाइदफद्दयाणि अणंतगुणाणि ।

§ १३३. तस्सेव दंसणमोहोवसामगस्स अपुव्वकरणपढमाणुभागखंडए वट्टमाणस्स खंडयसरूवेणागाइदाणि जाणि फद्दयाणि ताणि पुव्वुत्तणिक्खेवफद्दएहिंतो अणंतगुणाणि। किं कारणं ? एत्थतणाणुभागसंतकम्मस्स विट्ठाणियस्साणंतिमभागं मोत्तूण सेसाणमणंताणं भागाणं कंडयसरूवेणागाइदत्तादो ।

§ १३४. एवमपुव्वकरणपढमसमए ट्ठिदि-अणुभागखंडयतव्वंधोसरणाणमक्कमेण

---

छोड़कर नीचेके शेष सब स्पर्धकोंका ग्रहण करना चाहिए। ये जघन्य अतिस्थापनासम्बन्धी स्पर्धकोंसे अनन्तगुणे होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* उनसे काण्डकरूपसे ग्रहण किये गये स्पर्धक अनन्तगुणे होते हैं।

§ १३३ अपूर्वकरणके प्रथम अनुभागकाण्डकमे विद्यमान दर्शनमोहका उपशम करनेवाले उसी जीवके काण्डकस्वरूपसे जो स्पर्धक ग्रहण किये गये वे पूर्वोक्त निक्षेपसम्बन्धी स्पर्धकोंसे अनन्तगुणे होते हैं क्योंकि अपूर्वकरणके प्रथम समयमें द्विस्थानीय अनुभागसत्कर्मके अनन्तवें भागको छोड़कर शेष अनन्त बहुभागको काण्डकरूपसे ग्रहण किया है।

विशेषार्थ—यहाँ अपूर्वकरणके प्रथम समयमे अनुभागकाण्डकका प्रमाण कितना है तथा किन कर्मोंका अनुभागकाण्डक घात होता है यह सब स्पष्ट किया गया है। यह तो अपूर्वकरणके लक्षणको स्पष्ट करते हुए ही बतला आये है कि इस करणमे नाना जीवोंकी अपेक्षा प्रत्येक समयमें असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम होकर भी प्रत्येक समयके वे परिणाम अपूर्व-अपूर्व ही होते हैं और यह भी पहले बतला आये है कि करण परिणाम माड़नेके अन्तर्मुहूर्त पूर्व ही अप्रशस्त कर्मोंका अनुभाग द्विस्थानीय हो जाता है तथा उन परिणामोंको निमित्तकर प्रशस्त कर्मोका अनुभाग चतुःस्थानीय हो जाता है। अब यहाँ यह बतलाया गया है कि अपूर्व करणके प्रारम्भ होनेके पहले समयमे ही अप्रशस्त प्रकृतियोके अनुभागका काण्डकघात होने लगता है। किन्तु प्रशस्त प्रकृतियोंमे ऐसा नहीं होता, किन्तु वहाँ प्राप्त हुई विशुद्धिके कारण उनके अनुभागमें उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगती है। अब यह देखना है कि यहाँ एक अनुभागकाण्डकका क्या प्रमाण है ? इसी तथ्यको स्पष्ट करनेके लिये यहाँ अनुभागविषयक एक गुणहानि, अतिस्थापना, निक्षेप और अणुभागकाण्डक इन चारोंके आश्रयसे अल्पबहुत्वका निर्देश किया गया है। अनुभागविषयक एक गुणहानिमे अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण स्पर्धक होते हैं। उनसे अतिस्थापनासम्बन्धी स्पर्धक अनन्तगुणे होते हैं। ऊपरके जिन अनुभागस्पर्धकोका अपकर्षण होता है उनसे नीचेके और निक्षपसम्बन्धी स्पर्धकोसे ऊपरके जिन बीचके स्पर्धकोंमें निक्षेप नहीं होता उनकी अतिस्थापना संज्ञा है। इन अतिस्थापना सम्बन्धी स्पर्धकोंसे नीचेके सब स्पर्धकोंकी निक्षेप संज्ञा है। ये अतिस्थापनासम्बन्धी स्पर्धकोंसे अनन्तगुणे होते हैं। तथा अतिस्थापनासे ऊपरके जिन स्पर्धकोंका अपकर्षण होता है वे काण्डकगत स्पर्धक कहलाते हैं। वे निक्षेपसम्बन्धी स्पर्धकोंसे भी अनन्तगुणे होते हैं। इस अल्पबहुत्वसे स्पष्ट है कि अपूर्वकरणके प्रथम समयमे अप्रशस्त कर्मोंका जो अनुभागकाण्डक उत्कीरणके लिये ग्रहण किया जाता है उसका प्रमाण अनन्त बहुभागस्वरूप होता है।

§ १३४ इस प्रकार अपूर्वकरणके प्रथम समयमे स्थितिकाण्डकघात अनुभागकाण्डकघात

पारंभं परूविय संपहि एत्थेवाउगवज्जाणं कम्माणं गुणसेढिणिक्खेवो वि आढत्तो त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

*** अपुव्वकरणस्स चेव पढमसमए आउगवज्जाणं कम्माणं गुणसेढिणिक्खेवो अणियट्टिअद्धादो अपुव्वकरणद्धादो च विसेसाहिओ ।**

§ १३५. तम्मि चेवापुव्वकरणस्स पढमसमए आउगवज्जाणं गुणसेढिणिक्खेवो वि आढत्तो त्ति भणिदं होइ । किमट्ठमाउगस्स गुणसेढिणिक्खेवो णत्थि त्ति चे ? ण, सहावदो चेव । तत्थ गुणसेढिणिक्खेवपवुत्तीए असंभवादो । सो वुण[1] गुणसेढिणिक्खेवो केत्तिओ होइ त्ति पुच्छाए अणियट्टिकरणद्धादो अपुव्वकरणद्धादो च विसेसाहियो त्ति णिद्दिट्ठं । एत्थतण अपुव्वाणियट्टिकरणद्धाणं समुदिदाणं पमाणमंतोमुहुत्तमेत्तं होइ । तत्तो विसेसाहिओ एदस्स गुणसेढिणिक्खेवस्सायामो त्ति वुत्तं होइ । केत्तियमेत्तो विसेसो ? अणियट्टिअद्धाए संखेज्जदिभागमेत्तो ? कुदो एदं परिच्छिज्जदे ? उवरि भण्णमाणअप्पाबहुअसुत्तादो ।

स्थितिबन्धापसरण और अनुभागबन्धापसरणका युगपत् प्रारम्भकर अब यहींपर आयुकर्मके अतिरिक्त कर्मोंका गुणश्रेणिनिक्षेप भी प्रारम्भ करता है इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र अवतीर्ण हुआ है—

*** अपूर्वकरणके प्रथम समयमें ही आयुकर्मके अतिरिक्त शेष कर्मोंका गुणश्रेणिनिक्षेप होता है जो अनिवृत्तिकरणके कालसे और अपूर्वकरणके कालसे विशेष अधिक होता है ।**

§ १३५. वह जीव अपूर्वकरणके उसी प्रथम समयमें आयुकर्मके अतिरिक्त शेष कर्मोंका गुणश्रेणिनिक्षेप भी प्रारम्भ कर देता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

**शंका**—आयुकर्मका गुणश्रेणिनिक्षेप किसलिये नहीं करता है ?

**समाधान**—नहीं, इसका गुणश्रेणिनिक्षेप स्वभावसे ही नहीं करता है, क्योंकि आयुकर्ममें गुणश्रेणिनिक्षेपकी प्रवृत्ति असम्भव है ।

परन्तु उस गुणश्रेणिनिक्षेपका प्रमाण कितना है ऐसी पृच्छा होनेपर वह अनिवृत्तिकरणके कालसे और अपूर्वकरणके कालसे विशेष अधिक है ऐसा निर्देश किया है । यहाँ अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके समुदित कालका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है । उससे विशेष अधिक इस गुणश्रेणिनिक्षेपका आयाम है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

**शंका**—विशेषका प्रमाण कितना है ?

**समाधान**—अनिवृत्तिकरणके कालके संख्यातवें भागप्रमाण है ।

**शंका**—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

**समाधान**—ऊपर कहे जानेवाले अल्पबहुत्वविषयक सूत्रसे जाना जाता है ।

१. ता० प्रतौ- च इति पाठ ।

§ १३६. संपहि एत्थ गुणसेढिविण्णासक्कमो वुच्चदे। तं जहा—अपुव्वकरणपढमसमए दिवड्ढगुणहाणिमेत्तसमयपबद्धे ओकड्डुक्कड्डणभागहारेण खंडेयूण तत्थेयखंडमेत्तदव्वमोकड्डिय तत्थासंखेज्जलोगपडिभागियं दव्वमुदयावलियब्भंतरे गोवुच्छायारेण णिसिंचिय पुणो सेसबहुभागदव्वमुदयावलियबाहिरे णिक्खिवमाणो उदयावलियबाहिराणंतरट्ठिदीए असंखेज्जसमयपबद्धमेत्तदव्वं णिसिंचदे। तत्तो उवरिमट्ठिदीए असंखेज्जगुणं देदि। एवमसंखेज्जगुणाए सेढीए णिसिंचदि जाव अपुव्वाणियट्टिकरणद्धाहितो विसेसाहियगुणसेढिसीसयं ति। पुणो उवरिमाणंतरट्ठिदीए असंखेज्जगुणहीणं देदि। तत्तो परं विसेसहीणं णिक्खिवदि जाव चरिमट्ठिदिमधिच्छावणावलियमेत्तेण अपत्तो त्ति। एवमपुव्वकरण विदियादिसमएसु वि गुणसेढिणिक्खेवक्कमो परूवेयव्वो। णवरि गलिदसेसायामेण णिसिंचदि त्ति वत्तव्वं।

---

§ १३६. अब यहाँपर गुणश्रेणिकी रचनाके क्रमको बतलाते हैं। यथा—अपूर्वकरणके प्रथम समयमें डेढ गुणहानिप्रमाण समयप्रबद्धोंको अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारसे भाजितकर वहाँ लब्धरूपसे प्राप्त एक खण्डप्रमाण द्रव्यका अपकर्षणकर उसमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर जो एक भाग द्रव्य प्राप्त हो उसे उदयावलिके भीतर गोपुच्छाकाररूपसे निक्षिप्तकर पुनः शेष बहुभागप्रमाण द्रव्यको उदयावलिके बाहर निक्षिप्त करता हुआ उदयावलिके बाहर अनन्तर स्थितिमे असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण द्रव्यको निक्षिप्त करता है। तथा उससे उपरिम स्थितिमे असंख्यातगुणे द्रव्यको देता है। इसप्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके कालसे विशेष अधिक गुणश्रेणिशीर्षके प्राप्त होनेतक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणित श्रेणिरूपसे निक्षिप्त करता है। पुनः गुणश्रेणिशीर्षकी उपरिम अनन्तर स्थितिमें असंख्यातगुणा हीन द्रव्य देता है। उसके बाद अतिस्थापनावलिको प्राप्त न होता हुआ उससे पूर्वकी अन्तिम स्थितितक क्रमसे विशेष हीन द्रव्यका निक्षेप करता है। इसीप्रकार अपूर्वकरणके द्वितीयादि समयोंमें भी गुणश्रेणिके निक्षेपका कथन करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि गलित होनेसे जो काल शेष रहे उसके आयासके अनुसार निक्षिप्त करता है।

**विशेषार्थ**—गुणश्रेणिका स्वरूप निर्देश हम पहले कर आये है। यहाँ गुणश्रेणिप्रमाण निषेकोंमे अपकर्षित द्रव्यका निक्षेप किस प्रकार होता है इसका क्रम बतलाया गया है। यहाँ आयुकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंकी जिन प्रकृतियोंका वर्तमानमें उदय होता है उनकी उदय समयसे लेकर गुणश्रेणि रचना होती है और जिन कर्मप्रकृतियोका उदय नहीं होता है उनकी उदयावलिके उपरिम समयसे लेकर गुणश्रेणि रचना होती है। ऐसा होते हुए भी गुणश्रेणि रचनाका प्रमाण अवस्थित होनेसे उसमें प्रत्येक समयमे एक-एक समयकी हानि होती जाती है, क्योकि अपूर्वकरणके प्रथम समयसे गुणश्रेणिरचनाके प्रारम्भ होनेपर जैसे-जैसे एक-एक समय अतीत होता जाता है वैसे-वैसे गुणश्रेणिका आयाम भी घटता जाता है, ऊपर गुणश्रेणि शीर्षमे वृद्धि नहीं होती। इसलिये इसकी अवस्थित गुणश्रेणि संज्ञा है। गुणश्रेणिरचनाके कालमें अपकर्षित द्रव्यका निक्षेप किस क्रमसे होता है इसका विचार मूलमें किया ही है। यहाँ इतना विशेष समझना चाहिए कि उदयावलिसे ऊपर प्रथम स्थितिसे लेकर अन्तिम स्थितितक प्रत्येक स्थितिमेंसे द्रव्यका अपकर्षण होकर गुणश्रेणिमें निक्षेप होता है। क्रम यह है कि उदयावलिसे उपरिम प्रथम स्थितिमेंसे अपकर्षित द्रव्यका एक समय कम आवलिके एक समय अधिक

§ १३७. संपहि अपुव्वकरणपढमसमए जुगवमाढत्ताणं ट्ठिदि-अणुभागखंडय-ट्ठिदिबंधाणं परिसमत्ती किमक्कमेण होइ, आहो कमेणे त्ति आसंकाए णिण्णयविहाणट्ठमिदमाह—

* तम्हि ट्ठिदिखंडयद्धा ट्ठिदिबंधगद्धा च तुल्ला ।

§ १३८. अपुव्वकरणे पढमट्ठिदिखंडयद्धा पढमट्ठिदिबंधगद्धा च अंतोमुहुत्तमेत्ती होदूण अण्णोण्णेण तुल्ला भवदि । एवं विदियादिट्ठिदिखंडय-ट्ठिदिबंधद्धाणमण्णोण्णं समाणत्तं वत्तव्वं । णवरि पढमट्ठिदिखंडयतब्बंधगद्धाहिंतो विदियादीणं जहाकमं विसेसहीणत्तमवगंतव्वं । सुत्तेणाणुवइट्ठं कथमेदमवगम्मदि त्ति णासंकणिज्जं, उवरिमअप्पाबहुअसुत्तबलेण तण्णिण्णयादो । तदो ट्ठिदिखंडय-ट्ठिदिबंधाणं पारंभो पज्जवसाणं च जुगवं होदि त्ति सुत्तस्स भावत्थो । संपहि ट्ठिदिखंडयद्धाए संखेज्जदिभागमेत्ती चेव अणुभागखंडय-

---

त्रिभागमें उदय समयसे लेकर निक्षेप होता है तथा एक समयकम उदयावलिका दो त्रिभाग अतिस्थापनारूप रहता है। इससे उपरिम द्वितीय स्थितिके कर्मपुंजका अपकर्षण होनेपर निक्षेपका प्रमाण वही रहता है, मात्र अतिस्थापनामें एक समयकी वृद्धि हो जाती है। पुनः इससे उपरिम तृतीय स्थितिके कर्मपुंजका अपकर्षण होनेपर निक्षेप तो वही रहता है, मात्र अतिस्थापनामें एक समयकी और वृद्धि हो जाती है। इसप्रकार उत्तरोत्तर अतिस्थापनाके एक आवलिप्रमाण होनेतक उसमें वृद्धि होती जाती है, निक्षेपका प्रमाण वही रहता है। पुनः इससे ऊपर सर्वत्र अतिस्थापना एक आवलिप्रमाण ही रहती है, मात्र निक्षेपमें प्रति समय वृद्धि होती जाती है। यहाँ जघन्य निक्षेपका प्रमाण एक समय कम एक आवलिका एक समय अधिक त्रिभागप्रमाण है और उत्कृष्ट निक्षेपका प्रमाण एक समय अधिक दो आवलि कम यहाँ गुणश्रेणि रचनाके कालके प्रत्येक समयमें प्राप्त कर्मस्थितिप्रमाण है।

§ १३७ अब अपूर्वकरणके प्रथम समयमें युगपत् प्राप्त हुए स्थितिकाण्डक, अनुभागकाण्डक और स्थितिबन्धकी परिसमाप्ति अक्रमसे अर्थात् युगपत् होती है या क्रमसे होती है ऐसी आशंका होनेपर निर्णयका विधान करनेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

* वहाँ स्थितिकाण्डकका काल और स्थितिबन्धका काल तुल्य है।

§ १३८. अपूर्वकरणमें प्रथम स्थितिकाण्डकका उत्कीरण काल और प्रथम स्थितिबन्धका काल अन्तर्मुहूर्त होकर परस्पर तुल्य होता है। इसीप्रकार द्वितीयादि स्थितिकाण्डक और स्थितिबन्धका काल परस्पर समान है ऐसा कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि प्रथम स्थितिकाण्डकके उत्कीरणकालसे और प्रथम स्थितिबन्धके कालसे द्वितीयादिको यथाक्रम विशेष हीन विशेष हीन जानना चाहिए।

शंका—सूत्रमें इस विशेषताका उपदेश नहीं दिया है, फिर यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि आगे कहे जानेवाले अल्पबहुत्वके प्रतिपादक सूत्रोंके बलसे इस विशेषताका निर्णय होता है।

इसलिए स्थितिकाण्डक और स्थितिबन्धका प्रारम्भ और समाप्ति एकसाथ होती है यह इस सूत्रका भावार्थ है। अब स्थितिकाण्डकघातके कालके संख्यातवें भागप्रमाण ही अनु-

उक्कीरणद्धा होदि त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो—

*** एक्कम्हि ट्ठिदिखंडए अणुभागखंडयसहस्साणि घादेदि ।**

§ १३९. किं कारणं ? ट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धादो अणुभागखंडयउक्कीरणद्धाए संखेज्जगुणहीणत्तादो । संपहि एदस्सेवत्थस्स परिप्फुडीकरणट्ठमिमं परूवणं वत्तइस्सामो । तं जहा—एगाणुभागकंडयउक्कीरणकालेण एगट्ठिदिखंडयउक्कीरणकालम्मि भागे हिदे संखेज्जसहस्समेत्ताणि रूवाणि आगच्छंति । पुणो एदाणि विरलिय पढमट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धं समखंडं कादूण दिण्णे तत्थ एक्केक्कस्स रूवस्स अणुभागखंडयउक्कीरणकालपमाणं पावेइ । पुणो एत्थ एगरूवधरिदं विरलिय पुध ट्ठवेयव्वं । संपहि एवंविहपुधविरलणाए पढमसमयम्मि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागायामपढमट्ठिदिखंडयस्स पढमफालिमागाएदूण णासेइ । अणुभागखंडयस्स वि जहण्णफद्दयप्पहुडि जावुक्कस्सफद्दये त्ति ताव विरचिदफद्दयाणमणंताभागमेत्तपढमफालिं घेत्तूण तत्थेव णासेइ । तिस्से चेव पुधट्ठविदविरलणाए विदियसमयम्मि तेणेव विधिणा ठिदिखंडयविदियफालिमणुभागखंडयविदियफालिं च समयं घेत्तूण घादेदि । एवं पुणो पुणो गेण्हमाणेण पुव्वुत्तेगरूवधरिदसमयमेत्तफालीसु घादिदासु पढमाणुभागखंडयं समप्पइ । णवरि पढमट्ठिदिखंडयमज्ज वि ण समप्पइ, तदुक्कीरणद्धाए संखेज्जदिभागस्सेव गयत्तादो । पुणो एदेणेव विधिणा सेसविरलिदसंखेज्ज-

भागकाण्डकका उत्कीरणकाल होता है इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेके सूत्रका अवतार हुआ है—

*** एक स्थितिकाण्डकमें हजारों अनुभागकाण्डकोंका घात करता है ।**

§ १३९ क्योंकि स्थितिकाण्डकके उत्कीरणकालसे अनुभागकाण्डकका उत्कीरणकाल संख्यातगुणा हीन होता है । अब इसी अर्थको सुस्पष्ट करनेके लिये इस प्ररूपणाको बतलाते हैं। यथा—एक अनुभागकाण्डककालके उत्कीरणकालका एक स्थितिकाण्डकके उत्कीरणकालमें भाग देनेपर संख्यात हजारप्रमाण संख्या प्राप्त होती है। पुनः इनका विरलनकर प्रथम स्थितिकाण्डकके उत्कीरणकालके समान खंड करके प्रत्येक विरलन अंकके प्रति देयरूपसे देनेपर वहाँ एक-एक अंकके प्रति अनुभागकाण्डकके उत्कीरणकालका प्रमाण प्राप्त होता है। पुनः यहाँपर एक अंकके प्रति जो प्राप्त हुआ उसका विरलनकर पृथक् स्थापित करना चाहिए। अब इसप्रकारका जो पृथक् विरलन स्थापित किया उसके प्रथम समयमें पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण आयामवाले प्रथम स्थितिकाण्डककी प्रथम फालिको ग्रहणकर उसका नाश करता है। अनुभागकाण्डककी भी जघन्य स्पर्धकसे लेकर उत्कृष्ट स्पर्धकतक विरचित स्पर्धकोंकी अनन्त बहुभागप्रमाण प्रथम फालिको ग्रहणकर उसका वहींपर नाश करता है। पृथक् स्थापित हुए उसी विरलनके दूसरे समयमें उसी विधिसे स्थितिकाण्डककी दूसरी फालिको तथा अनुभागकाण्डककी दूसरी फालिको उसी समय ग्रहणकर उनका घात करता है। इसप्रकार पुनः पुनः उन दोनोंको ग्रहण करनेसे पूर्वोक्त विरलनके एक अंकके प्रति समयका जितना प्रमाण प्राप्त हुआ था तत्प्रमाण फालियोंका घात करनेपर प्रथम अनुभागकाण्डक समाप्त होता है। इतनी विशेषता है कि प्रथम स्थितिकाण्डक अभी भी समाप्त नहीं हुआ है, क्योंकि उसके उत्कीरणकालका

सहस्समेत्ताणुभागखंडएसु घादिदेसु तदो अपुव्वकरणपढमट्ठिदिबंधो पढमट्ठिदिखंडयं संखेज्जसहस्समेत्ताणमेत्थतणाणुभागखंडयाणं परिमाणखंडयं[1] च एदाणि तिण्णि वि जुगवं परिसमप्पंति। एवं होदि त्ति कट्टु एक्कम्हि ट्ठिदिखंडए अणुभागसहस्साणि घादेदि त्ति सिद्धं। संपहि एदस्सेवत्थस्स उवसंहारमुहेण परिप्फुडीकरणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

*** ठिदिखंडगे समत्ते अणुभागखंडयं च ट्ठिदिबंधगद्धा च समत्ताणि भवंति।**

§ १४०. सुगमं चेदं, अणंतरादीदपबंधेणेव गयत्थत्तादो। संपहि एवंविहेसु ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु पादेक्कमणुभागखंडयसहस्साविणाभावीसु गदेसु तदो अपुव्वकरणद्धा समप्पदि त्ति पदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

*** एवं ठिदिखंडयसहस्सेहिं बहुएहिं गदेहिं अपुव्वकरणद्धा समत्ता भवदि।**

§ १४१. गयत्थमिदं सुत्तं। णवरि पढमट्ठिदिखंडयादो विदियट्ठिदिखंडयं विसेसहीणं संखेज्जदिभागेण। एवमणंतराणंतरादो विसेसहीणं णेदव्वं जाव चरिमट्ठिदिखंडये त्ति।

---

संख्यातवाँ भाग ही व्यतीत हुआ है। पुनः इसी विधिसे शेष विरलनोंके प्रति प्राप्त संख्यात हजार संख्याप्रमाण अनुभागकाण्डकोंका घात करनेपर उस समय अपूर्वकरणसम्बन्धी प्रथम स्थितिबन्ध, प्रथम स्थितिकाण्डक और यहाँ सम्बन्धी संख्यात हजार अनुभागकाण्डकोंके परिमाणसे युक्त अनुभागकाण्डक ये तीनों ही एकसाथ समाप्त होते हैं। इसप्रकार होता है ऐसा करके एक स्थितिकाण्डकके भीतर हजारों अनुभागकाण्डकोंका घात करता है यह सिद्ध हुआ। अब इसी उपसंहारद्वारा अर्थको सुस्पष्ट करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

*** स्थितिकाण्डकके समाप्त होनेपर अनुभागकाण्डक और स्थितिबन्धकाल समाप्त होते हैं।**

§ १४०. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि अनन्तर पूर्व कहे गये प्रबन्धसे ही इसका ज्ञान हो जाता है। अब इस प्रकार जो प्रत्येक स्थितिकाण्डक हजारों अनुभागकाण्डकोंका अविनाभावी है ऐसे हजारों स्थितिकाण्डकोंके व्यतीत होनेपर तब अपूर्वकरणका काल समाप्त होता है इस बातका कथन करनेकेलिये आगेके सूत्रको कहते कहते हैं—

*** इस प्रकार बहुत हजार स्थितिकाण्डकोंके व्यतीत होनेपर अपूर्वकरणका काल समाप्त होता है।**

§ १४१. यह सूत्र गतार्थ है। इतनी विशेषता है कि प्रथम स्थितिकाण्डकसे दूसरा स्थितिकाण्डक संख्यातवां भाग हीन है। इसप्रकार अन्तिम स्थितिकाण्डकके प्राप्त होने तक पूर्व-पूर्वके स्थितिकाण्डकसे आगे-आगेका स्थितिकाण्डक विशेष हीन जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय तक आयुकर्मके

---

१. ताप्रतौ परिमाणाणुखंडयं इति पाठः।

§ १४२. संपहि अपुव्वकरणचरिमसमए घादिदसेसट्ठिदिसंतकम्मपमाणावहारणट्ठमिदमाह—

*** अपुव्वकरणस्स पढमसमए ट्ठिदिसंतकम्मादो चरिमसमए ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणहीणं।**

§ १४३. किं कारणं ? अपुव्वकरणपढमसमए पुव्वणिरुद्धंतोकोडाकोडिमेत्तसाग-

---

अतिरिक्त शेष कर्मोंकी स्थितिमें उत्तरोत्तर हानि किसप्रकार होती है, अप्रशस्त कर्मोंके द्विस्थानीय अनुभागकी हानि भी किस विधिसे होती है और प्रत्येक स्थितिबन्धका काल कितना है इसका स्पष्टीकरण किया गया है। यह तो हम पहले ही बतला आये हैं कि गुणश्रेणिरचनाके समान ये तीनों ही कार्य अपूर्वकरणके प्रथम समयसे ही प्रारम्भ हो जाते हैं। इनमेंसे प्रत्येक स्थितिकाण्डकका उत्कीरण काल अन्तर्मुहूर्त है। ऐसे हजारों स्थितिकाण्डक अपूर्वकरणके कालके भीतर होते हैं। अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जितनी स्थिति होती है उसमेंसे पल्योपमके संख्यातवे भागप्रमाण उपरितन स्थितिको ग्रहणकर उसका फालिरूपसे प्रत्येक समयमें अपवर्तन करते हुए अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर उसका अभाव करना एक स्थितिकाण्डकघात है। जैसे लकड़ीके एक कुन्देके कुछ भागके बराबर लम्बे अनेक फलक चीर लिये जाते हैं उसी प्रकार पल्योपमके संख्यातवे भागप्रमाण स्थितिके तत्प्रमाण आयामवाली उत्कीरणकालके जितने समय हों उतनी फालियाँ करके एक-एक समयमें उनका अपवर्तन करते हुए अन्तर्मुहूर्तके अन्तिम समयमें पूरी काण्डकप्रमाण स्थितिका अपवर्तन करना स्थितिकाण्डकघात है। पुनः दूसरे अन्तर्मुहूर्तमे दूसरे स्थितिकाण्डकका उक्त विधिसे अपवर्तन करना दूसरा स्थितिकाण्डकघात है। इसी प्रकार अन्तिम समय तक हजारों स्थितिकाण्डकोंका अपवर्तनविधिसे घात होता है। यह तो स्थितिकाण्डकघातकी प्रक्रिया है। अनुभागकाण्डकघातकी प्रक्रिया भी इसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि एक-एक स्थितिकाण्डकके उत्कीरणकालमें हजारों अनुभागकाण्डकघात होते हैं। इनमेंसे प्रत्येक अनुभागकाण्डकका उत्कीरणकाल भी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है। इसी प्रकार स्थितिबन्धापसरणके विषयमें भी समझ लेना चाहिए। इतनी विशेषता है कि एक स्थितिकाण्डकके उत्कीरणका जो काल है उतना ही एक स्थितिबन्धका काल है। अर्थात् इतने काल तक प्रति समय सदृश स्थितिका बन्ध होता है। स्थितिकाण्डकके बदलते ही दूसरा स्थितिबन्ध प्रारम्भ होता है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर जितने स्थितिकाण्डकघात होते है उतने ही स्थितिबन्धापसरण होते हैं। इसके अतिरिक्त स्थितिकाण्डकोंके विषयमें विशेष खुलासा मूलमें किया ही है। अर्थात् प्रथम स्थितिकाण्डकसे दूसरा स्थितिकाण्डक विशेष हीन होता है, दूसरेसे तीसरा, तीसरेसे चौथा इस प्रकार अन्तिम स्थितिकाण्डक तक पूर्व-पूर्व स्थितिकाण्डकसे आगे-आगेका स्थितिकाण्डक विशेष हीन होता है।

§ १४२ अपूर्वकरणके अन्तिम समयमे घात करनेसे शेष स्थितिसत्कर्मके प्रमाणका निश्चय करनेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

*** अपूर्वकरणके प्रथम समयके स्थितिसत्कर्मसे अन्तिम समयमें स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा हीन है।**

§ १४३. क्योंकि अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जो पहलेकी अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम-

रोवमाणं संखेज्जे भागे अपुव्वकरणविसोहिणिबंधणट्ठिदिखंडयसहस्सेहिं घादिय संखेज्जदि-भागमेत्तस्सेव ट्ठिदिसंतकम्मस्स परिसेसिदत्तादो। संपहि अपुव्वकरणपढमसमयप्पहुडि जाव चरिमसमयो त्ति ताव एदम्मि अंतरे घादिदासेससागरोवमाणमागमणमिच्छामो त्ति तेरासियं कादूण जोइज्जदे। तं कथं? तप्पाओग्गसंखेज्जरूवमेत्ताणं ठिदिखंडयाणं जइ एगं पलिदोवमं लब्भइ तो एत्तो संखेज्जसहस्सकोडिगुणट्ठिदिकंडएसु केत्तियाणि पलिदोवमाणि लहामो त्ति तेरासियं कादूण ट्ठिदिखंडयस्स ट्ठिदिखंडयं सरिसमवणिय हेट्ठिमसंखेज्जरूवेहिं उवरिमसंखेज्जरूवाणि ओवट्टिय लद्धेण पलिदोवमे गुणिदे संखेज्जकोडाकोडिमेत्तपलिदो-वमाणि आगच्छंति ट्ठिदिखंडयगुणगारमाहप्पादो। पुणो एदाणि संखेज्जकोडाकोडिमेत्त-पलिदोवमाणि तेरासियकमेण सागरोवमपमाणेण कीरमाणाणि संखेज्जकोडिमेत्तसारोवमाणि होंति त्ति। होंताणि वि पुव्वणिरुद्धंतोकोडाकोडीए संखेज्जाभागमेत्ताणि[1] त्ति घेत्तव्वाणि। अण्णहा अपुव्वकरणपढमसमयट्ठिदिसंतकम्मादो चरिमसमयट्ठिदिसंतकम्मस्स संखेज्ज-गुणहीणत्ताणुववत्तीदो। ठिदिबंधोसरणस्स वि एसो चेव अत्थो जोजेयव्वो।

---

प्रमाण स्थिति है उसके संख्यात बहुभागप्रमाण स्थितिका अपूर्वकरणसम्बन्धी विशुद्धिनिमित्तक हजारों स्थितिकाण्डकोंके द्वारा घातकर उसके अन्तिम समयमें संख्यातवें भागमात्र ही स्थिति-सत्कर्म शेष रहता है। अब अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय तक इस कालके भीतर जितने सागरोपमप्रमाण स्थितियोंका घात हुआ है उन सबको प्राप्त करना चाहते हैं इस-लिये त्रैराशिक करके योजना करते हैं।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—तत्प्रायोग्य संख्यात संख्याप्रमाण स्थितिकाण्डकोंका यदि एक पल्योपम प्राप्त होता है तो इनसे संख्यात हजार कोटिगुणे स्थितिकाण्डकोंमें कितने पल्योपम प्राप्त होंगे इस प्रकार त्रैराशिककर स्थितिकाण्डक स्थितिकाण्डकके सदृश है अतः उसका अपनयनकर तथा अधस्तन संख्यात संख्यासे उपरिम संख्यात संख्याको भाजितकर जो लब्ध आवे उससे पल्यो-पमके गुणित करनेपर स्थितिकाण्डकसम्बन्धी गुणकारके माहात्म्यसे संख्यात कोड़ाकोड़ीप्रमाण पल्योपम प्राप्त होते हैं। पुनः इन संख्यात कोड़ाकोड़ीप्रमाण पल्योपमोंको त्रैराशिकविधिसे सागरोपमके प्रमाणसे करनेपर संख्यात कोटिप्रमाण सागरोपम होते हैं। इतने होते हुए भी अपूर्वकरणके प्रथम समयमें विवक्षित अन्तःकोड़ाकोड़ीके संख्यात बहुभागप्रमाण होते हैं ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। अन्यथा अपूर्वकरणके प्रथम समयके स्थितिसत्कर्मसे अन्तिम समयका स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा हीन नहीं बन सकता। स्थितिबन्धापसरणके विषयमें भी इसी अर्थकी योजना करनी चाहिए।

विशेषार्थ—अपूर्वकरणके प्रथम समयमें विवक्षित कर्मोंका जितना स्थितिसत्त्व रहता है उसके अन्तिम समयमें वह संख्यातगुणा हीन कैसे हो जाता है इसी बातको यहाँ त्रैराशिक विधिसे स्पष्ट किया गया है। कारण यह है कि चूर्णिसूत्रमें एक स्थितिकाण्डकका आयाम

---

१. ता. प्रतौ संखेज्जभागमेत्ताणि इति पाठः।

§ १४४. एवमेत्तिएण वावारविसेसेणापुव्वकरणद्धं समाणिय तदो अणियट्टिकरणं पविट्ठस्स किरियाविसेसपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—

*** अणियट्टिस्स पढमसमए अण्णं ट्ठिदिखंडयं अण्णो ट्ठिदिबंधो अण्णमणुभागखंडयं।**

§ १४५. अणियट्टिकरणपविट्ठपढमसमए चेव अण्णमपुव्वकरणचरिमट्ठिदिखंडयादो विसेसहीणट्ठिदिखंडयमाढत्तं। ट्ठिदिबंधो वि पुव्विल्लादो ठिदिबंधादो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागहीणो तत्थेवाढत्तो। अणुभागखंडयं पि घादिदसेसाणुभागस्साणंतभागमेत्तं तत्थेवागाइदं। गुणसेढिणिक्खेवो पुण पुव्विल्लो[1] चेव गलिदसेसो पडिसमयम संखेज्जगुणपदेसविण्णासविसेसिदो हवइ। सेसो वि विही पुव्वुत्तो चेव दट्ठव्वो त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो।

---

पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण है और अपूर्वकरणके कालमें ऐसे स्थितिकाण्डक संख्यात हजार होते हैं मात्र इतना ही बतलाया गया है, इसलिए स्थितिकाण्डकोंका प्रमाण कितना होना चाहिए ताकि उसके आधारसे अपूर्वकरणके कालमें घटनेवाली विवक्षित स्थितिका प्रमाण प्राप्त किया जा सके। इसी तथ्यको स्पष्ट करनेके लिये यहाँ एक पल्योपममें जितने स्थितिकाण्डक हों उनसे संख्यात हजार कोटिगुणे कुल स्थितिकाण्डक होते हैं यह स्वीकारकर अपूर्वकरणके कालमें घटनेवाली विवक्षित स्थितिका प्रमाण त्रैराशिक विधिसे प्राप्तकर वह संख्यात कोटि सागरोपमप्रमाण बतलाया गया है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जितना स्थितिसत्त्व होता है उसके अन्तमें वह संख्यातगुणा हीन हो जाता है। इसी प्रकार स्थितिबन्धके विषयमें भी आगमानुसार समझ लेना चाहिए।

§ १४४ इस प्रकार इतने व्यापारविशेषके द्वारा अपूर्वकरणके कालको समाप्तकर उसके बाद अनिवृत्तिकरणमें प्रविष्ट हुए जीवके क्रियाविशेषका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें अन्य स्थितिकाण्डक, अन्य स्थितिबन्ध और अन्य अनुभागकाण्डक होता है।**

§ १४५ अनिवृत्तिकरणमें प्रविष्ट होनेके प्रथम समयसे ही अपूर्वकरणके अन्तिम स्थितिकाण्डकसे विशेष हीन अन्य स्थितिकाण्डकका आरम्भ करता है। पूर्वके स्थितिबन्धसे पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण हीन स्थितिबन्ध भी वहींपर आरम्भ करता है। तथा घात करनेसे शेष रहे अनुभागके अनन्त बहुभागप्रमाण अनुभागकाण्डकको भी वहींपर ग्रहण करता है। परन्तु गुणश्रेणिनिक्षेप पूर्वका ही रहता है, जो अधःस्तन स्थितियोंके गलनेपर जितना शेष रहे उतना होता है तथा प्रतिसमय असंख्यातगुणे प्रदेशोंके विन्याससे विशेषताको लिये हुए होता है। शेष विधि भी पूर्वोक्त ही जाननी चाहिए यह इस सूत्रका भावार्थ है।

विशेषार्थ—यहाँ अनिवृत्तिकरणमें स्थितिकाण्डक आदिकी क्या व्यवस्था रहती है यह

---

१. ता० प्रतौ पुन्विल्लादो इति पाठः।

§ १४६. एवमेदीए परूवणाए बहूहिं ट्ठिदिखंडयसदस्सेहिं गदेहिं तदो कीरमाण-कज्जविसेसपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—

*** एवं ट्ठिदिखंडयसहस्सेहिं अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु अंतरं करेदि ।**

§ १४७. एवमणंतरपरूविदविहाणेण बहूहिं ट्ठिदिखंडयसहस्सेहिं पादेक्कमणुभाग-खण्डयसहस्साविणाभावीहि अणियट्टिअद्धाए संखेज्जे भागे गमिय तदद्धाए संखेज्ज-भागमेत्तावसेसे अंतरकरणमाढवेदि त्ति भणिदं होइ। किमंतरकरणं णाम ? विवक्खिय-कम्माणं हेट्ठिमोवरिमट्ठिदीओ मोत्तूण मज्झे अंतोमुहुत्तमेत्ताणं ट्ठिदीणं परिणामविसेसेण णिसेगाणमभावीकरणमंतरकरणमिदि भण्णदे । संपहि एवं लक्खणमंतरकरणमाढविय पुणो केत्तियमेत्तेण कालेण केत्तियाओ ट्ठिदीओ घेत्तूणंतरं करेदि, केत्तियमेत्तिं वा मिच्छ-त्तस्स पढमट्ठिदिं परिसेसेदि त्ति एवंविहस्स अत्थविसेसस्स परूवणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

---

स्पष्टरूपसे बतलाया गया है। विशेष बात इतनी ही है कि दर्शनमोहनीयकी उपशमना करने-वाले जीवके अवस्थित गुणश्रेणिरचना न होकर गलितावशेष गुणश्रेणि रचना होती है। इसलिए अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयसे लेकर आगे भी गुणश्रेणिविन्यासके अन्तिम समय तक जो गुणश्रेणिका आयाम शेष रहता जाता है मात्र उतने प्रमाणमे ही प्रति समय असंख्यात गुणित प्रदेश विन्यासरूपसे उसकी रचना होती रहती है।

§ १४६ इसप्रकार इस प्ररूपणाके अनुसार बहुत हजार स्थितिकाण्डकोंके हो जानेपर उसके आगे किये जानेवाले कार्यविशेषका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

**इस प्रकार हजारों स्थितिकाण्डकोंके द्वारा अनिवृत्तिकरणके कालके संख्यात बहु-भागके व्यतीत होनेपर अन्तर करता है ।**

§ १४७ इसप्रकार अनन्तरपूर्व कही गई विधिके अनुसार जो प्रत्येक स्थितिकाण्डक हजारों अनुभागकाण्डकोंका अविनाभावी है ऐसे बहुत हजार स्थितिकाण्डकोंके द्वारा अनि-वृत्तिकरणके कालके संख्यात बहुभागको विताकर उसके कालके संख्यातवे भागप्रमाण शेष रहनेपर अन्तरकरणका आरम्भ करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

**शंका**—अन्तरकरण किसे कहते हैं ?

**समाधान**—विवक्षित कर्मोंकी अधस्तन और उपरिम स्थितियोंको छोड़कर मध्यकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थितियोंके निषेकोंका परिणामविशेषके कारण अभाव करनेको अन्तरकरण कहते हैं।

अब इसप्रकारके लक्षणवाले अन्तरकरणका आरम्भकर पुनः कितने कालके द्वारा कितनी स्थितियोंको ग्रहणकर अन्तर करता है तथा मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिको कितना शेष रहने देता है इसप्रकार इस अर्थविशेषका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

*** जा तम्हि ट्ठिदिबंधगद्धा तत्तिएण कालेण अंतरं करेमाणो गुणसेढिणिक्खेवस्स अग्गग्गादो संखेज्जदिभागं खंडेदि ।**

§ १४८. एदेण सुत्तेण अंतरकरणं करेमाणस्स कालपमाणमंतरट्ठमागाइदट्ठिदीणं पमाणावहारणं पढमट्ठिदिदीहत्तं च परूविदं होइ । तं जहा—अंतरं करेमाणो केत्तियमेत्तेण कालेणंतरं करेदि त्ति पुच्छिदे 'जा तम्हि ट्ठिदिबंधगद्धा तत्तिएण कालेण करेदि' त्ति णिद्दिट्ठं । एदेण वयणेणेगसमएण दोहि तीहि वा समएहिं एवं जाव संखेज्जासंखेज्जेहिं वा समएहिं अंतरकरणसमत्ती ण होइ । किंतु अंतोमुहुत्तेणेव होइ त्ति जाणाविदं ।

§ १४९. संपहि एदेण कालेणंतरं करेमाणो केत्तियमेत्तीओ ट्ठिदीओ घेत्तूण केत्तियमेत्तिं वा पढमट्ठिदिं ठविय अंतरं करेदि त्ति पुच्छाए णिण्णयं करिस्सामो । तं जहा—'गुणसेढिणिक्खेवस्स अग्गग्गादो' एत्थ गुणसेढिणिक्खेवो त्ति वुत्ते जो अपुव्वकरणस्स पढमसमए अणियट्टिकरणद्धाहिंतो विसेसाहियायामेण णिक्खित्तो गलिदसेससरूवेणेत्तियकालमागदो तस्स गहणं कायव्वं । तस्स अग्गग्गमिदि भणिदे गुणसेढिसीसयस्स गहणं कायव्वं । तत्तो प्पहुडि हेट्ठा संखेज्जदिभागं खंडेदि त्ति भणिदे सयलस्स गुणसेढिआयामस्स तक्कालं दीसमाणस्स संखेज्जदिभागभूदो जो अणियट्टिअद्धादो अब्भिदो

---

*** उस समय जितना स्थितिबन्धककाल है उतने कालके द्वारा अन्तरको करता हुआ गुणश्रेणिनिक्षेपके अग्राग्रसे अर्थात् गुणश्रेणिशीर्षसे लेकर ( नीचे ) गुणश्रेणि आयामके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिनिषेकोंका खण्डन करता है ।**

§ १४८ इस सूत्रद्वारा अन्तरकरण करनेवाले जीवके कालका प्रमाण, अन्तर करनेके लिये ग्रहण की गई स्थितियोंके प्रमाणका अवधारण तथा प्रथम स्थितिकी दीर्घता इन तीनका कथन किया गया है । यथा—अन्तर करनेवाला कितने कालके द्वारा अन्तर करता है ऐसी पृच्छा होनेपर 'जो उस समय स्थितिबन्धका काल है उतने कालके द्वारा करता है' यह निर्दिष्ट किया है । इस वचनसे यह जताया गया है कि एक समयद्वारा अथवा दो या तीन समयोंद्वारा इसप्रकार संख्यात और असंख्यात समयोंद्वारा अन्तरकरणविधि समाप्त नहीं होती है, किन्तु अन्तर्मुहूर्तकालके द्वारा ही यह विधि समाप्त होती है ।

§ १४९ अब इतने कालके द्वारा अन्तरको करता हुआ मात्र कितनी स्थितियोंको ग्रहणकर तथा कितनी प्रथम स्थितिको स्थापितकर अन्तर करता है ऐसी पृच्छा होनेपर निर्णय करते हैं । यथा—'गुणसेढिणिक्खेवस्स अग्गग्गादो' इस वचनमें 'गुणश्रेणिनिक्षेप' ऐसा कहने पर जो अपूर्वकरणके प्रथम समयमें अनिवृत्तिकरणके कालसे विशेष अधिक आयामरूपसे निक्षिप्त द्रव्य गलित शेषरूपसे इतने काल तक आया है उसका ग्रहण करना चाहिए । उसका अग्राग्र ऐसा कहने पर गुणश्रेणिशीर्षका ग्रहण करना चाहिए । 'उससे लेकर नीचे संख्यातवें भागका खण्डन करता है' ऐसा कहने पर जो उस समय दिखाई देता है ऐसे समस्त गुणश्रेणि आयामका संख्यातवाँ भागरूप जो अनिवृत्तिकरणके कालसे उपरिम विशेष अधिक निक्षेप है

उवरिमो विसेसाहियणिक्खेवो तं सव्वमंतरट्ठमागाएदि त्ति भणिदं होइ। किमेत्तियं चेव अंतरदीहत्तं ? ण, गुणसेढिसीसयादो उवरि अण्णाओ वि सखेज्जगुणाओ ट्ठिदीओ घेत्तूणंतरं करेदि। सुत्तेणाणुवइट्ठमेदं कथमवगम्मदे चे ? ण, पुरदो भणिस्समाणप्पाबहुअबलेण तदवगमादो। अथवा गुणसेढिअग्गग्गादो हेट्ठा संखेज्जदिभागं खंडेदि त्ति भणंतेण उवरि संखेज्जगुणाणं ट्ठिदीणं खंडणं भणिदमेव। कुदो ? उवरि खंडिज्जमाणाणं ट्ठिदीणं संखेज्जदिभागमेत्तं गुणसेढिअग्गग्गादो हेट्ठा खंडेदि त्ति सुत्तत्थसंबंधावलंबणादो। तदो अणियट्टिअद्धासेसस्स संखेज्जभागमेत्तेण कालेण अंतरं करेमाणो अंतरकरणद्धादो संखेज्जगुणं मिच्छत्तस्स पढमट्ठिदिं परिसेसिय पुणो अणियट्टिकरणद्धादो उवरिमविसेसाहियगुणसेढिणिक्खेवेण सह तत्तो संखेज्जगुणाओ अण्णाओ वि ठिदीओ घेत्तूणंतरमेसो करेदि त्ति सिद्धो सुत्तस्स समुदायत्थो। एत्थ अंतफालीओ पडिसमयमसंखेज्जगुणसरूवेण घेत्तूण पढमविदियट्ठिदीसु समयाविरोहेण णिक्खिवमाणो अंतोमुहुत्तमेत्तेण कालेणंतरं समाणेदि त्ति वत्तव्वं।

---

उस सबको अन्तरके लिए ग्रहण करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका—क्या अन्तरकी दीर्घता इतनी ही है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि गुणश्रेणिशीर्षसे ऊपर अन्य भी संख्यातगुणी स्थितियोंको ग्रहणकर अन्तर करता है।

शंका—सूत्रमें निर्देश नहीं की गई यह विशेषता किस प्रमाणसे जानी जाती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि आगे कहे जानेवाले अल्पबहुत्वके बलसे इसका ज्ञान होता है।

अथवा गुणश्रेणिके अग्राग्रसे नीचे संख्यातवे भागप्रमाण स्थिति निषेकोंका खण्डन करता है ऐसा कथन करनेवाले आचार्यदेवने ऊपर संख्यातगुणी स्थितियोंका खण्डन करता है यह कह ही दिया है, क्योंकि ऊपर खण्डित होनेवाली स्थितियोंके संख्यातवे भागप्रमाण स्थितियोंका गुणश्रेणिके अग्राग्रसे नीचे खण्डन करता है इस प्रकार सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्धका अवलम्बन लिया है। इसलिये अनिवृत्तिकरणका जितना काल शेष है उसके संख्यातवे भागप्रमाण कालके द्वारा अन्तरको करता हुआ अन्तरकरणके कालसे संख्यातगुणी मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिको शेष रखकर पुनः अनिवृत्तिकरणके कालसे उपरिम विशेष अधिक गुणश्रेणि-निक्षेपके साथ उससे सख्यातगुणी अन्य स्थितियोंको भी ग्रहण कर यह जीव अन्तर करता है इस प्रकार सूत्रका समुदाय रूप अर्थ सिद्ध हुआ। यहाँ पर अन्तर फालियोंको प्रत्येक समयमे असंख्यातगुणे रूपसे ग्रहण कर प्रथम और द्वितीय स्थितियोंमे आगमानुसार निक्षेप करता हुआ अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कालके द्वारा अन्तरकरणको समाप्त करता है ऐसा कहना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ अन्तरकरणके करनेमे कितना काल लगता है, अन्तरके लिये ग्रहण की गई स्थितियोंका प्रमाण कितना है और अन्तरके पूर्वकी प्रथम स्थितिका प्रमाण कितना है इन तीन बातोंका मुख्यरूपसे निर्णय किया गया है। विवक्षित कर्मकी अधस्तन और उपरितन

* तदो अंतरं कीरमाणं कदं ।

§ १५० अंतरकरणपारंभसमकालभाविट्ठिदिबंधगद्धामेत्तेण कालेण समयं पडि अंतरट्ठिदीओ फालिसरूवेणुक्कीरंतेण कमेण कीरमाणमंतरमंतरकरणद्धाचरिमसमये अंतरचरिमफालीए पादिदाए कदं णिट्ठिदमिदि वुत्तं होइ । एदं च मिच्छत्तस्सेव अंतरकरणं, दंसणमोहोवसामणाए अण्णेसिं कम्माणमंतरकरणाभावादो । णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तसंतकम्मिओ जदि उवसमसम्मत्तं पडिवज्जइ तो तेसिं पि अंतरकरणमेदेणेव विहाणेण करेदि । णवरि तेसिमावलियबाहिरमुवरि मिच्छत्तंतरेण सरिसमंतरं करेदि त्ति घेत्तव्वं ।

---

स्थितियोंको छोड़कर मध्यकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थितियोंके निषेकोंका परिणामविशेषके द्वारा अभाव करनेको अन्तरकरण कहते हैं । अनादि मिथ्यादृष्टि जीव अनिवृत्तिकरणके कालके बहुभागके व्यतीत होने पर जो एक भाग प्रमाणकाल शेष रहता है उसके एक स्थितिबन्धके योग्य संख्यातवें भागप्रमाण कालमें मिथ्यात्वके निषेकोंका अन्तरकरण करता है । इससे अन्तरकरण करनेमें कितना काल लगता है इसका ज्ञान हो जाता है । यह जीव जिस समय अन्तरकरणका प्रारम्भ करता है उस समयसे लेकर अनिवृत्तिकरणका जितना काल शेष रहता है तत्काल प्रमाण मिथ्यात्वकी अधस्तन स्थितियोंकी प्रथम स्थिति होती है, क्योंकि अनिवृत्तिकरणके इतने कालके मिथ्यात्वरूपसे व्यतीत होने पर यह जीव अन्तरमें प्रवेश कर नियमसे सम्यग्दृष्टि हो जाता है । अब अन्तरके लिये कितनी स्थितियोंको ग्रहण करता है इसका विचार करते हैं । गुणश्रेणिशीर्षके अग्रभागसे नीचे गुणश्रेणिशीर्षके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितियोंका और उससे ऊपर संख्यातगुणी स्थितियोंका यह जीव अन्तर करता है । इस अन्तरके ऊपर मिथ्यात्वकी जो स्थिति शेष रहती है वह सब उपरितन स्थिति कहलाती है । यहाँ मिथ्यात्वकी जिन स्थितियोंके निषेकोंका अन्तर करता है उनका फालिक्रमसे उत्कीरणकर अन्तर्मुहूर्त कालसे प्रथम और आबाधाकालसे हीन द्वितीय स्थितिमें निक्षेपण करता है । निक्षेपणकी पूरी विधि आगमसे जान लेनी चाहिए यह उक्त सूत्र और उसकी टीकाका आशय है ।

* इस प्रकार इस विधिसे किया जानेवाला अन्तरका कार्य किया ।

§ १५० अन्तरकरणके प्रारम्भके समकालभावी स्थितिबन्धके कालप्रमाण काल द्वारा प्रत्येक समयमें अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंका फालिरूपसे उत्कीरण करनेवाले जीवने क्रमसे किया जानेवाला अन्तर अन्तरकरणके कालके अन्तिम समयमें अन्तरसम्बन्धी अन्तिम फालिका पात करने पर किया अर्थात् सम्पन्न किया यह उक्त कथनका तात्पर्य है । और यह मिथ्यात्वकर्मका ही अन्तरकरण है क्योंकि दर्शनमोहनीयकी उपशामनामें अन्य कर्मोंके अन्तरकरणका अभाव है । इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्कर्मवाला जीव यदि उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त होता है तो उन कर्मोंका भी अन्तरकरण इसी विधिसे करता है । इतनी विशेषता है उनका नीचेकी एक आवलिप्रमाण ( उदयावलिप्रमाण ) स्थितियोंके सिवाय स्थितिसे लेकर ऊपर मिथ्यात्वके अन्तरके सदृश अन्तर करता है ऐसा ग्रहण करना चाहिए ।

विशेषार्थ—अनादि मिथ्यादृष्टि जीव प्रथमोपशमको उत्पन्न करते समय अनिवृत्तिकरण-

* तदो प्पहुडि उवसामगो त्ति भण्णइ।

§ १५१ जइ वि एसो पुव्वं पि अधापवत्तकरणपढमसमयप्पहुडि उवसामगो चेव तो वि एत्तो पाए विसेसदो चेव उवसामगो होइ त्ति भणिदं होइ। एदेण 'अंतरं वा कहिं किच्चा के के उवसामगो कहिं' ति एदिस्से पुच्छाए अत्थणिण्णओ कओ दट्ठव्वो, अणियट्टि-अद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु संखेज्जदिभागसेसे अंतरं कादूण तदो दंसणमोहणीयस्स पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसाणमुवसामगो होइ त्ति परूवणावलंबणादो। एवमंतर-करणाणंतरमुवसामगववएसं लद्धूण मिच्छत्तमुवसामेमाणस्स मिच्छत्तपढमट्ठिदिवेदगा-वत्थाए हेट्ठिमपरूवणादो णत्थि णाणत्तं। णवरि पढमट्ठिदीए समयूणादिकमेणोहट्टमाणीए ताधे आवलिय-पडिआवलियाओ सेसाओ ताधे को विसेसो अत्थि त्ति पदुप्पायणट्ठमुवरिमो सुत्तपबंधो—

* **पढमट्ठिदीदो वि बिदियट्ठिदीदो वि आगाल-पडिआगालो ताव जाव आवलिय-पडिआवलियाओ सेसाओ त्ति।**

---

के बहुभागको बिता कर एक भागके शेष रहने पर स्थितिबन्धके कालप्रमाण काल द्वारा मात्र मिथ्यात्वका अन्तरकरण करता हुआ प्रारम्भमें अन्तरके नीचे प्रथम स्थितिको अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थापित करता है। किन्तु यदि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तावाला सादि मिथ्यादृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है तो वह नीचे एक आवलिप्रमाण प्रथम स्थितिको स्थापित कर ऊपर मिथ्यात्वकी जहाँ तककी स्थितिका अन्तरकरण करता है वहाँ तककी इन दोनों कर्मोंकी स्थितिका भी अन्तरकरण करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* वहाँसे लेकर यह जीव उपशामक कहलाता है।

§ १५१. यद्यपि यह जीव पहले ही अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे लेकर उपशामक ही है तो भी यहाँसे लेकर यह विशेषरूपसे ही उपशामक होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस प्रकार इतने कथन द्वारा 'अंतरं वा कहिं किच्चा के के उवसामगो कहिं' इस पृच्छाके अर्थका निर्णय किया हुआ जानना चाहिए, क्योंकि प्रकृतसे अनिवृत्तिकरणके कालके संख्यात बहुभागोंके जाने पर तथा संख्यातवें भागके शेष रहने पर अन्तरको करके वहाँसे लेकर दर्शन मोहनीयकी प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंका उपशामक होता है इस प्रकारकी प्ररूपणा-का अवलम्बन लिया है। इस प्रकार अन्तरकरणके अनन्तर उपशामक संज्ञाको प्राप्त कर मिथ्यात्वकी उपशामना करनेवाले जीवके मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके वेदन करनेरूप अवस्थामें अधस्तन प्ररूपणासे कोई भेद नहीं है। इतनी विशेषता है कि प्रथम स्थितिके एक समय क्रम आदिके क्रमसे गलित होती जाने पर जब आवलि-प्रतिआवलि शेष रहती हैं तब क्या विशेषता है इसका कथन करनेके लिये उपरिमसूत्र प्रबन्ध है—

* प्रथम स्थितिसे भी और द्वितीय स्थितिसे भी तब तक आगाल-प्रत्यागाल होते रहते हैं जब तक आवलि-प्रत्यावलि शेष रहती हैं।

§ १५२. आगालणमागालो, विदियट्ठिदिपदेसाणं पढमट्ठिदीए ओकड्डणावसेणा-गमणमिदि वुत्तं[1] होइ। प्रत्यागलनं प्रत्यागालः, पढमट्ठिदिपदेसाणं विदियट्ठिदीए उकड्डणावसेण गमणमिदि भणिदं होइ। तदो पढम-विदियट्ठिदिपदेसाणमुकड्डणोकड्डणा-वसेण परोप्परविसयसंकमो आगाल-पडिआगालो त्ति घेत्तव्वो। एवंलक्खणो आगाल-पडिआगालो ताव ण पडिहम्मदे जाव पढमट्ठिदीए आवलिय-पडिआवलियाओ समयुत्तराओ सेसाओ त्ति आवलिय-पडिआवलियाणं तस्स मज्जादाभावेण सुत्ते णिद्दिट्ठत्तादो। तत्थावलिया त्ति वुत्ते उदयावलिया घेत्तव्वा। पडिआवलिया त्ति एदेण वि उदयावलियादो उवरिमविदियावलिया गहेयव्वा। किं पुण कारणमावलिय-पडिआवलियमेत्तसेसाए पढमट्ठिदीए आगाल-पडिआगालवोच्छेदणियमो ? ण, सहावदो चेव तदवत्थाए तप्पडि-घादब्भुवगमादो। तदो चेव एत्तो प्पहुडि मिच्छत्तस्स गुणसेढिणिक्खेवो णत्थि त्ति जाणावणट्ठमिदमाह—

*** आवलिय-पडिआवलियासु सेसासु तदो प्पहुडि मिच्छत्तस्स गुणसेढी णत्थि।**

§ १५२. आगालकी व्युत्पत्ति है—आगालनं आगाल', अर्थात् द्वितीय स्थितिके कर्मपर-माणुओंका प्रथम स्थितिमें अपकर्षणवश आना आगाल है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। प्रत्या-गालकी व्युत्पत्ति है—प्रत्यागालनं प्रत्यागालः। प्रथम स्थितिके कर्मपरमाणुओंका द्वितीय स्थिति-में उत्कर्षणवश जाना प्रत्यागाल है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अतः प्रथम और द्वितीय स्थितिके कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण और अपकर्षणवश परस्पर विषयसंक्रमका नाम आगाल-प्रत्यागाल है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकारके लक्षणवाले आगाल-प्रत्यागाल तब तक नहीं व्युच्छिन्न होते हैं जब तक प्रथम स्थितिमें एक समय अधिक आवलि-प्रत्यावलि शेष रहती है, अतएव आवलि प्रत्यावलिको उसकी मर्यादारूपसे सूत्रमें निर्दिष्ट किया है। उनमेंसे आवलि ऐसा कहनेपर उदयावलिको ग्रहण करना चाहिए। प्रत्यावलि इससे भी उदयावलिसे उपरिम दूसरी आवलिको ग्रहण करना चाहिए।

शंका—प्रथम स्थितिके आवलि-प्रत्यावलिमात्र शेष रहनेपर आगाल और प्रत्यागालके विच्छेदका नियम है इसका क्या कारण है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि स्वभावसे ही उस अवस्थामें उनका विच्छेद स्वीकार किया गया है ?

और इसीलिए यहाँसे लेकर मिथ्यात्वका गुणश्रेणिनिक्षेप नहीं होता इस बातका ज्ञान करानेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

*** आवलि और प्रत्यावलिके शेष रहनेपर वहाँसे लेकर मिथ्यात्वकी गुणश्रेणि नहीं होती।**

१. ता प्रतौ भणिद इति पाठ।

§ १५३. किं कारणं ? विदियट्ठिदीदो पढमट्ठिदीए तदवत्थाए पदेसागमणस्सा- णंतरमेव पडिसिद्धत्तादो । ण च पढमट्ठिदीए पडिआवलियपदेसग्गमोकड्डियूण गुणसेढि- णिक्खेवो कीरदि त्ति वोत्तुं जुत्तं, उदयावलियब्भंतरे गुणसेढिणिक्खेवस्स एदम्मि विसए असंभवादो । ण च पडिआवलियादो ओकड्डिदपदेसग्गं तत्थेव गुणसेढीए णिक्खिवदि त्ति संभवो अत्थि, अप्पणो अइच्छावणाविसए णिक्खेवविरोहादो ।

---

§ १५३ क्योंकि दूसरी स्थितिसे प्रथम स्थितिमें उस अवस्थामें कर्मपरमाणुओंके आने- का अनन्तर पूर्व ही निषेध कर आये हैं। यदि कहा जाय कि प्रत्यावलिके कर्मपरमाणुओंका प्रथम स्थितिमें अपकर्षण करके गुणश्रेणिनिक्षेप किया जाता है सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसी अवस्थामें उदयावलिके भीतर गुणश्रेणिनिक्षेपका होना असम्भव है। और प्रत्यावलिमेंसे अपकर्षित प्रदेशपुञ्जका वहीं गुणश्रेणिमें निक्षेप होता है यह भी सम्भव नही है, क्योंकि अपनी अतिस्थापनामें अपकर्षित द्रव्यके निक्षेपका निरोध है।

**विशेषार्थ**—यहाँ यह बतलाया गया है कि अन्तरकरणके बाद जब मिथ्यात्वकी प्रथम स्थिति आवलि-प्रत्यावलिप्रमाण शेष रह जाती है तब वहाँसे लेकर द्वितीय स्थितिमेंसे अप- कर्षित होकर मिथ्यात्वका द्रव्य प्रथम स्थितिमें निक्षिप्त नहीं होता और प्रथम स्थितिके द्रव्यका उत्कर्षण होकर द्वितीय स्थितिमें निक्षेप नही होता और इसीलिए यहाँसे लेकर मिथ्यात्वके द्रव्यका गुणश्रेणिनिक्षेप भी रुक जाता है। इसपर शंकाकारका कहना है कि ऐसी स्थितिमे भले ही प्रथम स्थितिके द्रव्यका द्वितीय स्थितिमे उत्कर्षण होकर निक्षेप मत होओ और द्वितीय स्थितिके द्रव्यका भले ही प्रथम स्थितिमे अपकर्षण होकर निक्षेप मत होओ, क्योंकि मिथ्यात्व- की प्रथम स्थितिमें आवलि-प्रत्यावलिप्रमाण स्थितिके शेष रहनेपर आगाल-प्रत्यागालका सूत्रमें निषेध किया है। किन्तु जब तक प्रत्यावलिका द्रव्य सत्त्वरूपसे अवस्थित है तब तक प्रत्यावलि के द्रव्यका अपकर्षण होकर उसका गुणश्रेणिमें निक्षेप होना सम्भव है। यह एक शंका है। इसका समाधान यह है कि जब प्रथम स्थितिमें आवलि और प्रत्यावलिमात्र स्थिति शेष रहती है तबसे लेकर उदयावलिमे गुणश्रेणिनिक्षेपका होना सम्भव नहीं है। कारण यह है कि जब द्वितीय स्थितिमेंसे द्रव्यका अपकर्षण होकर प्रथम स्थितिमे निक्षेप ही नहीं होता ऐसी अवस्था- में केवल प्रत्यावलिके आधारसे मिथ्यात्वके द्रव्यकी गुणश्रेणिरचनाका होते रहना सम्भव नहीं है। कदाचित् शंकाकार यह कहे कि प्रत्यावलिकी उपरितन स्थितियोंका अपकर्षण होकर अध- स्तन स्थितियोंमें निक्षेप होना बन जायगा सो भी बात नहीं है, क्योंकि उपरितन स्थितियोंका अपकर्षण होकर अधस्तन स्थितियोंमे निक्षेप मध्यमे अतिस्थापनाको छोड़कर ही होता है ऐसी व्यवस्था है। यतः प्रत्यावलिकी उपरितन स्थितियोंके लिये उसीकी अधस्तन स्थितियाँ अति- स्थापनारूप है, अतः प्रत्यावलिकी उपरितन स्थितियोका भी वहीं गुणश्रेणिमे निक्षेप नही हो सकता। इसलिये यही निश्चित हुआ कि मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके आवलि-प्रत्यावलिप्रमाण शेष रहनेपर मिथ्यात्वकी द्वितीय स्थितिका प्रथम स्थितिमे और प्रथम स्थितिका द्वितीय स्थितिमे क्रमसे अपकर्षण-उत्कर्षण नहीं होता। साथ ही प्रत्यावलिके निषेकोंका उदयावलिमें और प्रत्या- वलिकी उपरितन स्थितियोंका उसीकी अधस्तन स्थितियोंमे अपकर्षण होकर निक्षेप नहीं होता। इसलिए यहाँसे लेकर मिथ्यात्वके कर्मपुंजका गुणश्रेणिनिक्षेप भी नहीं होता।

§ १५४. सेसाण पुण कम्माणमाउगवज्जाणं सा चेव पोराणिया गुणसेढी गलिद-सेसा तथा चेव हवइ, ण तत्थ पडिसेहो अत्थि त्ति जाणावणफलमुत्तरसुत्तं—

*** सेसाणं कम्माणं गुणसेढी अत्थि ।**

§ १५५. गयत्थमेदं सुत्तं। एवमेदम्मि अवत्थाविसेसे मिच्छत्तस्स गुणसेढिणिक्खेवा-संभव सेसकम्माणं च गुणसेढिणिक्खेवसंभवं पदुप्पाइय संपहि आवलिय-पडिआवलिय-मेत्तसेसपढमट्ठिदियस्स मिच्छत्तस्स तम्मि अवत्थाविसेसे पडिआवलियादो उदीरणासंभव-पदुप्पायणट्ठमिदमाह—

*** पडिआवलियादो चेव उदीरणा ।**

§ १५६. तदवत्थस्स मिच्छत्तस्स पडिआवलियादो चेव पदेसग्गमसंखेज्जलोग-पडिभागेणोकड्डिय उदयावलियब्भंतरे समयाविरोहेण णिक्खिवदि त्ति वुत्तं होइ। एत्तो समयाहियावलियमेत्तसेसाए पढमट्ठिदीए मिच्छत्तस्स जहण्णिया ठिदिउदीरणा होदि, उदयावलियबाहिरेयट्ठिदिमोकड्डिय असखेज्जलोगपडिभागेण आवलिय-बे-तिभागे अइच्छाविय तत्तिभागे उदयप्पहुडि समयाविरोहेण णिक्खेवदंसणादो ।

*** आवलियाए सेसाए मिच्छत्तस्स घादो णत्थि ।**

---

§ १५४ परन्तु आयुकर्मके अतिरिक्त शेष कर्मोकी वही पुरानी गलितावशेष गुणश्रेणि उसी प्रकार होती है, उसके होनेमें प्रतिषेध नहीं है इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** शेष कर्मोंकी गुणश्रेणि होती है ।**

§ १५५ यह सूत्र गतार्थ है। इस प्रकार इस अवस्थाविशेषमें मिथ्यात्वप्रकृतिका गुण-श्रेणिनिक्षेप असम्भव है और शेष कर्मोका गुणश्रेणिनिक्षेप सम्भव है इसका कथन करके अब जिसकी आवलि और प्रत्यावलिप्रमाण प्रथम स्थिति शेष है ऐसे मिथ्यात्वकर्मकी उस अवस्था-विशेषमें प्रत्यावलिमेंसे उदीरणा होना सम्भव है इसका कथन करनेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

*** प्रत्यावलिमेंसे ही उदीरणा होती है ।**

§ १५६ तदवस्थ मिथ्यात्वकर्मकी जो प्रत्यावलि है उसके द्रव्यमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर जो एक भागप्रमाण कर्मपुञ्ज लब्ध आवे उसका अपकर्षणकर उसे आगममें बतलाई गई विधिके अनुसार उदयावलिमें निक्षिप्त करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस प्रत्यावलिमेंसे एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण प्रथम स्थितिकी जघन्य स्थिति उदी-रणा होती है, क्योंकि उदयावलिके बाहर एक स्थितिके द्रव्यमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे उसका अपकर्षणकर एक समय कम आवलिके दो त्रिभागको अति-स्थापितकर एक समय अधिक उसके त्रिभागमें उदय समयसे लेकर आगमविधिसे निक्षेप देखा जाता है ।

*** आवलिप्रमाण प्रथम स्थितिके शेष रहनेपर मिथ्यात्वकर्मका घात नहीं होता ।**

§ १५७. आवलियमेत्तसेसाए पढमट्ठिदीए मिच्छत्तस्स ट्ठिदि-अणुभागाणमुदीरणा-सरूवेण घादो णत्थि त्ति भणिदं होइ। ट्ठिदि-अणुभागकंडयघादो पुण जाव पढमट्ठिदि-चरिमसमयो ताव मिच्छत्तस्स संभवदि, चरिमट्ठिदिबंधेण सह तत्थ तेसिं परिसमत्ति-दंसणादो। तदो उदीरणाघादस्सेव एसो पडिसेहो त्ति सद्दहेयव्वं।

§ १५८. एवमेदेण विहाणेण मिच्छत्तपढमट्ठिदिमावलियपविट्ठं कमेण वेदयमाणो चरिमसमयमिच्छादिट्ठी जादो। तदणंतरसमए च मिच्छत्तपढमट्ठिदिं सव्वं गालिय पढमसम्मत्तमुप्पाएमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

* चरिमसमयमिच्छाइट्ठी से काले उवसंतदंसणमोहणीओ।

§ १५९. पढमसम्मत्तमुप्पाएदि त्ति वक्कविसेसो एत्थ कायव्वो। को एत्थ दंसणमोहणीयउवसमो णाम? वुच्चदे—करणपरिणामेहिं णिसत्तीकयस्स दंसणमोह-

---

§ १५७. प्रथम स्थितिके आवलिप्रमाण शेष रहनेपर मिथ्यात्वकर्मके स्थिति-अनुभागका उदीरणारूपसे घात नहीं होता यह उक्त कथनका तात्पर्य है। परन्तु प्रथम स्थितिके अन्तिम समयतक मिथ्यात्वकर्मका स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात सम्भव है, क्योंकि वहाँपर अन्तिम स्थितिबन्धके साथ उनकी परिसमाप्ति देखी जाती है। इसलिये उदीरणाघातका ही यह निषेध है ऐसा श्रद्धान करना चाहिए।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वप्रकृतिका बन्ध अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयतक होता है, अतः उसका अविनाभावी स्थितिकाण्डकघात भी तथा एक स्थितिकाण्डकघातके कालमें हजारों अनुभागकाण्डकघात भी वहींतक समझने चाहिए। यह स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघातकी क्रिया और उनका निक्षेप आवलि-प्रत्यावलिके शेष रहनेपर वहाँसे लेकर अन्तरसे उपरितन स्थिति और अनुभागमें ही जानना चाहिए, प्रथम स्थिति और उसके अनुभागमे नहीं यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

§ १५८. इसप्रकार इस विधिसे उदयावलिमें प्रविष्ट हुई मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिका क्रमसे वेदन करता हुआ अन्तिम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि हो जाता है। और मिथ्यात्वकी सम्पूर्ण प्रथम स्थितिको गलाकर तदनन्तर समयमें प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाला होता है इस बातको बतलानेवाले आगेके सूत्रको कहते हैं—

* पुनः वह अन्तिम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि जीव तदनन्तर समयमें उपशान्त दर्शनमोहनीय होकर प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है।

§ १५९. प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है इतने वाक्यविशेषकी यहाँ योजना करनी चाहिए।

शंका—यहाँपर दर्शनमोहनीयका उपशम किसे कहते हैं?

समाधान—करणपरिणामोंके द्वारा निःशक्त किये गये दर्शनमोहनीयके उदयरूप पर्यायके विना अवस्थित रहनेको उपशम कहते हैं।

णीयस्स उदयपज्जाएण विणा अवट्ठाणमुवसमो त्ति भण्णदे। ण सव्वोवसमो एत्थ संभवइ, उवसंतस्स वि दंसणमोहणीयस्स संकमोकड्डणाकरणाणमुवलब्भदे। तम्हा अंतरपवेसपढमसमए चेव दंसणमोहणीयमुवसामिय उवसमसम्माइट्ठी जादो त्ति सिद्धो सुत्तस्स समुच्चयत्थो। संपहि तम्हि चेव पढमसमए कीरमाणकज्जभेदपदुप्पायणट्ठमुत्तर-सुत्तावयारो—

*** ताधे चेव तिण्णि कम्मंसा उप्पादिदा।**

§ १६०. तम्हि चेव उवसंतदंसणमोहणीयपढमसमए तिण्णि कम्मंसा उप्पादिदा। के ते? मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तसण्णिदा। कुदो एवमेदेसिमुप्पत्ती चे? ण, अणियट्टिकरणपरिणामेहिं पेलिज्जमाणस्स दंसणमोहणीयस्स जंतेण दलिज्जमाणकोद्दव-रासिस्सेव तिण्हं भेदाणमुप्पत्तीए विरोहाभावादो।

§ १६१. संपहि उवसमसम्माइट्ठिपढमसमयप्पहुडि मिच्छत्तपदेसाणं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेसु गुणसंकमेण परिणमणकममप्पाबहुअमुहेण परूवेमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

यहाँपर सर्वोपशम सम्भव नहीं है, क्योंकि उपशमपनेको प्राप्त होनेपर भी दर्शनमोहनीयके संक्रमकरण और अपकर्पणकरण पाये जाते हैं। इसलिए अन्तरमें प्रवेश करनेके प्रथम समयमें ही दर्शनमोहनीयको उपशमाकर उपशमसम्यग्दृष्टि हो गया इसप्रकार सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ सिद्ध हुआ। अब उसी प्रथम समयमें किये जानेवाले कार्यभेदका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

*** उसी समय वह मिथ्यात्वकर्मके तीन खण्ड उत्पन्न करता है।**

§ १६०. उसी उपशान्त-दर्शनमोहनीयके प्रथम समयमें तीन कर्मभेद उत्पन्न करता है।

शंका—वे कौनसे?

समाधान—सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और मिथ्यात्व संज्ञावाले।

शंका—इनकी इसप्रकार उत्पत्ति कैसे होती है?

समाधान—नहीं, क्योंकि जैसे यन्त्रसे कोदोंके दलनेपर उनके तीन भाग हो जाते हैं वैसे ही अनिवृत्तिकरणपरिणामोंके द्वारा दलित किये गये दर्शनमोहनीयके तीन भेदोंकी उत्पत्ति होनेमें विरोधका अभाव है।

विशेषार्थ—चक्की आदि यन्त्रसे कोदोंके दलनेपर उनके चावल, कण और तुष ऐसे तीन भाग हो जाते हैं वैसे ही अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंसे मिथ्यात्वकर्मको निःशक्त करके जिस समय यह जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसी समय मिथ्यात्वकर्मके तीन टुकड़े हो जाते हैं—सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और मिथ्यात्व।

§ १६१. अब उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके प्रथम समयसे लेकर मिथ्यात्वकर्मके प्रदेशोंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें गुणसंक्रमद्वारा परिणमनके क्रमको अल्पबहुत्वद्वारा कथन करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* पढमसमयउवसंतदंसणमोहणीओ मिच्छत्तादो सम्मामिच्छत्ते बहुगं पदेसग्गं देदि । सम्मत्ते असंखेज्जगुणहीणं देदि ।

§ १६२. पढमसमयउवसंतदंसणमोहणीयो णाम पढमसमयउवसमसम्माइट्ठी । सो मिच्छत्तादो सम्मामिच्छत्ते बहुअं पदेसग्गं देदि । सम्मत्ते पुण तत्तो असंखेज्जगुणहीणं पदेसग्गं देदि । दोण्हमेदेसिं दव्वाणमागमणट्ठं मिच्छत्तस्स को पडिभागो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपमाणो गुणसंकमभागहारो । णवरि सम्मामिच्छत्तपदेसागमणणिमित्तगुणसंकमभागहारादो सम्मत्तपदेसागमणणिबंधणगुणसंकमभागहारो असंखेज्जगुणो त्ति घेत्तव्वो । एवमेदेण प्पाबहुअविहिणा अंतोमुहुत्तमेत्तकालं मिच्छत्तादो सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि पूरेदि । णवरि समयं० असंखेज्जगुणमसंखेज्जगुणं मिच्छत्तादो पदेसग्गं संकामेमाणो पढमसमए सम्मामिच्छत्तम्मि संकंतदव्वादो विदियसमये सम्मत्तम्मि असंखेज्जगुणं दव्वं संकामेदि । तत्थेव सम्मामिच्छत्ते असंखेज्जगुणं पदेसग्गं संकामेदि । एवं जाव गुणसंकमचरिमसमयो त्ति । संपहि एवंविहस्स अत्थविसेसस्स जाणावणट्ठमुत्तर-सुत्तप्पबंधमाह—

---

* प्रथम समयवर्ती उपशान्त-दर्शनमोहनीय जीव मिथ्यात्वके द्रव्यमेंसे सम्यग्मिथ्यात्वमें बहुत प्रदेशपुंजको देता है । उससे सम्यक्त्वमें असंख्यातगुणे हीन प्रदेशपुञ्जको देता है ।

§ १६२. प्रथम समयवर्ती उपशान्त-दर्शनमोहनीय जीव प्रथम समयवर्ती उपशमसम्यग्दृष्टि कहलाता है । वह मिथ्यात्वके द्रव्यमेंसे सम्यग्मिथ्यात्वमें बहुत प्रदेशपुञ्जको देता है । परन्तु सम्यक्त्वमें उससे असंख्यातगुणे हीन प्रदेशपुञ्जको देता है ।

शंका—इन दोनोंके द्रव्योंके आनेके लिये मिथ्यात्वका क्या प्रतिभाग है ?

समाधान—गुणसंक्रम भागहार प्रतिभाग है, जो पल्योपमके असंख्यातवे भागप्रमाण है । इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वके प्रदेशोंके आनेके निमित्तरूप गुणसंक्रम भागहारसे सम्यक्त्वके प्रदेशोंके आनेका निमित्तरूप गुणसंक्रम भागहार असंख्यातगुणा है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए ।

इसप्रकार इस अल्पबहुत्वविधिसे अन्तर्मुहूर्त कालतक मिथ्यात्वके द्रव्यमेंसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको पूरित करता है । इतनी विशेषता है कि प्रत्येक समयमें मिथ्यात्वके द्रव्यमेंसे असंख्यातगुणे असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जका संक्रम करता हुआ प्रथम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रान्त हुए द्रव्यसे दूसरे समयमें सम्यक्त्वमें असंख्यातगुणे द्रव्यका संक्रम करता है। तथा उसी समयमें सम्यग्मिथ्यात्वमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुंजका संक्रम करता है । इसप्रकार गुण संक्रमके अन्तिम समयतक जानना चाहिए । अब इसप्रकारके अर्थविशेषका ज्ञान करानेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* विदियसमए सम्मत्ते असंखेज्जगुणं देदि ।

* सम्मामिच्छत्ते असंखेज्जगुणं देदि ।

* तदियसमए सम्मत्ते असंखेज्जगुणं देदि ।

* सम्मामिच्छत्ते असंखेज्जगुणं देदि ।

* एवमंतोमुहुत्तद्धं गुणसंकमो णाम ।

§ १६३. एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि । एदेहिं सुत्तेहिं परत्थाणप्पाबहुअं भणिदं। संपहि सत्थाणप्पाबहुए भण्णमाणे पढमसमए सम्मामिच्छत्ते संकमिदपदेसग्गं थोवं। विदियसमए असंखेज्जगुणं । एवं जाव गुणसंकमचरिमसमओ त्ति । एवं सम्मत्तस्स वि सत्थाणप्पाबहुअं णेदव्वं। एत्थ उवसमसम्माइट्ठिविदियसमयप्पहुडि जाव मिच्छत्तस्स गुणसंकमो अत्थि ताव सम्मामिच्छत्तस्स वि गुणसंकमो भवदि, अंगुलस्सासंखेज्जभाग-पडिभागियविज्झादगुणसंकमेण सम्मामिच्छत्तदव्वस्स सम्मत्ते तदवत्थाए संकमणोव-लंभादो। सुत्तेणाणुवइट्ठमेदं कुदो लब्भदि त्ति णासंकणिज्जं; सुत्तस्सेदस्स देसामासयभावेण तहाविहत्थविसेससंसूचणे वावारब्भुवगमादो ।

---

* उससे दूसरे समयमें सम्यक्त्वमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जको देता है ।

* उससे सम्यग्मिथ्यात्वमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जको देता है ।

* उससे तीसरे समयमें सम्यक्त्वमें असंख्यतागुणे प्रदेशपुञ्जको देता है ।

* उससे सम्यग्मिथ्यात्वमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जको देता है ।

* इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कालतक गुणसंक्रम होता है ।

§ १६३ ये सूत्र सुगम हैं । इन सूत्रोंद्वारा परस्थान अल्पबहुत्वका कथन किया । अब स्वस्थान अल्पबहुत्वका कथन करनेपर प्रथम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमित हुआ प्रदेश-पुंज स्तोक है । दूसरे समयमें संक्रमित हुआ प्रदेशपुंज असंख्यातगुणा है । इसप्रकार गुण-संक्रमके अन्तिम समयतक जानना चाहिए । इसीप्रकार सम्यक्त्वका भी स्वस्थान अल्पबहुत्व ले जाना चाहिए । यहाँपर उपशमसम्यग्दृष्टिके दूसरे समयसे लेकर जहाँतक मिथ्यात्वका गुणसंक्रम होता है वहाँतक सम्यग्मिथ्यात्वका भी गुणसंक्रम होता है, क्योंकि सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागके प्रतिभागीरूप विध्यातगुणसंक्रमद्वारा सम्यग्मिथ्यात्वके द्रव्यका सम्यक्त्वमें उस अवस्थामें संक्रमण उपलब्ध होता है ।

शंका—सूत्रमें इसका उपदेश नहीं दिया, फिर यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इस सूत्रका देशामर्षकरूपसे उस प्रकारकी अवस्थाविशेषके सूचन करनेमें व्यापार स्वीकार किया गया है ।

विशेषार्थ—यहाँ उपशमसम्यग्दृष्टिके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त काल तक मिथ्यात्वके द्रव्यका सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वमें गुणसंक्रम भागहारद्वारा किस प्रकार

§ १६४. एवमेदेण विधिणा अंतोमुहुत्तकालं गुणसंकमणुपालिय तदो गुणसंकमकालपरिसमत्तीए मिच्छत्तस्स विज्झादसंकममाढवेदि त्ति पदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तारंभो—

*** तत्तो परमंगुलस्स असंखेज्जदिभागपडिभागेण संकमेदि सो विज्झादसंकमो णाम ।**

§ १६५. पुव्विल्लो उवसमसम्माइट्ठी पढमसमयप्पहुडि एगंताणुवड्ढीए वड्ढमाणस्स अंतोमुहुत्तकालभाविओ गुणसंकमो णाम । एत्तो परमंगुलस्स असंखेज्जदिभागपडिभागिओ विज्झादसण्णिदो संकमविसेसो गुणसंकमपरिसमत्तिसमकालपारंभो होदूण जाव उवसमसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी च ताव णिप्पडिबंधं पयट्टदि त्ति भणिदं होदि । कुदो पुण एदस्स विज्झादसण्णा त्ति चे ? विज्झादविसेहियस्स जीवस्स ट्ठिदि-अणुभागखंडयगुणसेढिआदिपरिणामेसु थक्केसु पयट्टमाणत्तादो विज्झादसंकमो त्ति एसो भण्णदे । एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि एदम्मि विसए विज्झादसंकमपवुत्ती वक्खाणेयव्वा ।

---

उत्तरोत्तर गुणित क्रमसे असंख्यातगुणे द्रव्यका निक्षेप होता है यह बतलानेके साथ यह भी बतलाया है कि उपशमसम्यग्दृष्टिके दूसरे समयसे लेकर सम्यग्मिथ्यात्वके द्रव्यका भी गुणसंक्रम होता है, क्योंकि सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागका सम्यग्मिथ्यात्वके द्रव्यमें भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतने द्रव्यका विध्यात-गुणसंक्रम द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वके द्रव्यका सम्यक्त्वमें उस अवस्थामें संक्रमण होता रहता है। यह द्रव्य सम्यक्त्वमें प्रति समय गुणितक्रमसे प्राप्त होता है, इसलिए यहाँ ऐसे संक्रमका नाम विध्यात संक्रम होते हुए भी उसे टीकाकारने गुणसंक्रम कहा है ऐसा प्रतीत होता है। श्री धवलाजीके इसी स्थलपर इसका कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं होता।

§ १६४ इस प्रकार इस विधिसे अन्तमुहूर्त काल तक गुणसंक्रमका पालनकर इसके आगे गुणसंक्रमका काल समाप्त होनेपर मिथ्यात्वकर्मका विध्यातसंक्रम आरम्भ करता है इसका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रका आरम्भ करते हैं—

*** उससे आगे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागरूप प्रतिभागके द्वारा संक्रमण करता है वह विध्यातसंक्रम है।**

§ १६५. जो पहलेका उपशमसम्यग्दृष्टि जीव प्रथम समयसे लेकर एकान्तानुवृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त हो रहा है उसके अन्तर्मुहूर्त कालतक होनेवाला संक्रम गुणसंक्रम कहलाता है। इससे आगे सूच्यंगुलके असंख्यातवे भागरूप भागहारस्वरूप विध्यातसंज्ञावाला संक्रमविशेष गुणसंक्रमकी समाप्तिके समकालमें प्रारम्भ होकर जबतक उपशमसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि है तब तक विना किसी प्रतिबन्धके प्रवृत्त रहता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

**शंका**—इस संक्रमकी विध्यात संज्ञा किस कारणसे है ?

**समाधान**—विध्यात हुई है विशुद्धि जिसकी ऐसे जीवके स्थितिकाण्डक, अनुभागकाण्डक और गुणश्रेणि आदि परिणामोंके रुक जानेपर प्रवृत्त होनेके कारण इसे विध्यातसंक्रम कहते हैं।

* जाव गुणसंकमो ताव मिच्छत्तवज्जाणं कम्माणं ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेढी च ।

§ १६६. एत्थ मिच्छत्तवज्जाणमिदि णिद्देसो मिच्छत्तस्स उवसंतावत्थस्स तदवत्थाए ट्ठिदिखंडयादीणमभावपदुप्पायणफलो । तम्हा जाव गुणसंकमो ताव एयंताणुवड्डिपरिणामेहिं दंसणमोहणीयवज्जाणं कम्माणं ठिदि-अणुभागघाद-गुणसेढिणिक्खेवलक्खणं कज्जविसेसमेसो करेदि, णो परदो, तत्थ विज्झादविसोहियत्तादो त्ति सुत्तत्थणिच्छओ । कुदो पुण मिच्छाइट्ठिचरिमसमए चेवाणियट्टिकरणपरिणामेसु णिट्ठिदेसु गुणसंकमकालब्भंतरे ट्ठिदि-अणुभागघादादीणं संभवो ? ण एस दोसो, पुव्वपओगवसेण तदुवरमे वि केत्तियं पि कालं तप्पवुत्तीए बाहाणुवलंभादो ।

---

इस प्रकार इस स्थलपर सम्यग्मिथ्यात्वके भी विध्यातसंक्रमकी प्रवृत्तिका व्याख्यान करना चाहिए।

* जब तक गुणसंक्रम होता रहता है तब तक इस जीवके मिथ्यात्वको छोड़कर शेष कर्मोंके स्थितिघात, अनुभागघात और गुणश्रेणिरूप कार्य होते रहते हैं।

§ १६६ यहाँपर 'मिथ्यात्वको छोड़कर शेष कर्मों' इस पदके निर्देशका फल उपशान्त अवस्थाको प्राप्त मिथ्यात्वप्रकृतिके उस अवस्थामें स्थितिकाण्डकघात आदिके अभावका कथन करना है। इसलिये जबतक गुणसंक्रम होता है तबतक यह जीव एकान्तानुवृद्धिरूप परिणामोंके द्वारा दर्शनमोहनीयको छोड़कर शेष कर्मोंके स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात और गुणश्रेणिनिक्षेप लक्षणवाले कार्यविशेषको करता है, इससे आगे नहीं, क्योंकि आगे उसकी विशुद्धि विध्यात हो जाती है यह इस सूत्रके अर्थका निश्चय है।

शंका—परन्तु मिथ्यादृष्टिके अन्तिम समयमें ही अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंके समाप्त हो जानेपर गुणसंक्रम कालके भीतर स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात आदि कैसे सम्भव है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि पूर्वप्रयोगवश अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंके उपरम हो जानेपर भी कितने ही कालतक उक्त कार्योंकी प्रवृत्तिमें बाधा नहीं उपलब्ध होती।

विशेषार्थ—जो जीव अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंके रुकते ही अन्तरमें प्रवेशकर उपशमसम्यग्दृष्टि हो जाता है उसके कितने कालतक किन कर्मोंके स्थितिकाण्डकघात आदि कार्य होते रहते हैं, मिथ्यात्वप्रकृतिका गुणसंक्रम होकर क्या कार्य होता है, और इस कालमें किस प्रकारकी विशुद्धि होती है और उपशमसम्यग्दृष्टिके स्थितिकाण्डकघात आदि होनेका कारण क्या है इन सब बातोंका यहाँ निर्णय किया गया है। साथमें यह भी बतलाया है कि उपशमसम्यग्दृष्टिके दूसरे समयसे लेकर सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका सम्यक्त्वप्रकृतिमें विध्यातसंक्रमके द्वारा प्रदेशनिक्षेप भी होता रहता है। इसप्रकार जबतक गुणसंक्रमकी प्रवृत्ति होती है तबके कार्यविशेषोंका सूचनकर उसके बाद विध्यातसंक्रमकी प्रवृत्ति होनेसे स्थितिकाण्डकघात आदि कार्य रुक जाते हैं इस बातका सकारण निर्देश किया गया है।

§ १६७. एवमेत्तिएण संबंधेण दंसणमोहउवसामणाए परूवणं कादूण संपहि एत्थेव कालसंबंधियाणं पदाणं अप्पाबहुअपरूवणट्ठमुवरिमं पबंधमाह—

*** एदिस्से परूवणाए णिट्ठिदाए इमो दंडओ पणुवीसपडिगो ।**

§ १६८. एदिस्से अणंतरपरूविदाए दंसणमोहोवसामगपरूवणाए समत्ताए संपहि एत्तो 'दंसण-चरित्तमोहे' त्ति पदपडिपूरणं बीजपदमवलंबिय इमो पणुवीसपडिओ अप्पाबहुअदंडओ कादव्वो होइ। एदेण विणा जहण्णुक्कस्सट्ठिदि-अणुभागखंडणुकीरणद्धादि-पदाणं पमाणविसयणिण्णयाणुप्पत्तीदो त्ति भणिदं होइ। एवमेदेण सुत्तेण कयावसरस्स पणुवीसपदियस्स अप्पाबहुअदंडयस्स जहाकममेसो णिद्देसो—

*** सव्वत्थोवा उवसामगस्स जं चरिमअणुभागखंडयं तस्स उक्कीरणद्धा।**

§ १६९. एत्थ उवसामगो त्ति वुत्ते दंसणमोहउवसामगो घेत्तव्वो। तस्स चरिमाणुभागखंडयमिदि वुत्ते मिच्छत्तस्स पढमट्ठिदीए समप्पंतीए तत्थतणचरिमंतोमुहुत्तकालभावियस्स अणुभागखंडयस्स गहणं कायव्वं। सेसकम्माणं पुण गुणसंकमकालचरिमावत्थाभाविणो अणुभागखंडयस्स गहणं कायव्वं, तदुक्कीरणद्धा अंतोमुहुत्तमेत्ती होदूण सव्वत्थोवा त्ति णिद्दिट्ठा।१।

*** अपुव्वकरणस्स पढमस्स अणुभागखंडयस्स उक्कीरणकालो विसेसाहिओ।**

---

§ १६७, इसप्रकार इतने प्रबन्धके द्वारा दर्शनमोहनीयकी उपशामनाका कथनकर अब यहींपर कालसम्बन्धी पदोंके अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

* इस प्ररूपणाके समाप्त होनेपर यह पच्चीसपदिक दण्डक करने योग्य है।

§ १६८ अनन्तरपूर्व कही गई दर्शनमोहके उपशामककी इस प्ररूपणाके समाप्त होनेपर अब 'दंसण-चरित्तमोहे' इस पदकी पूर्तिस्वरूप बीजपदका अवलम्बन लेकर यह पच्चीसपदिक अल्पबहुत्वदंडक करने योग्य है, क्योंकि इसके विना जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति और अनुभागसम्बन्धी उत्कीरणकाल आदि पदोंके प्रमाणका निर्णय नहीं हो सकता यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इसप्रकार इस सूत्रद्वारा अवसरप्राप्त पच्चीसपदिक अल्पबहुत्वदण्डकका क्रमसे यह निर्देश है—

* उपशामकका जो अन्तिम अनुभागकाण्डक है उसका उत्कीरणकाल सबसे स्तोक है।

§ १६९ यहाँ सूत्रमें 'उपशामक' ऐसा कहनेपर दर्शनमोहके उपशामकको ग्रहण करना चाहिए। 'उसके अन्तिम अनुभागकाण्डक' ऐसा कहनेपर मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके समाप्त होते समय वहाँ अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमें होनेवाले अनुभागकाण्डकका ग्रहण करना चाहिए। परन्तु शेष कर्मोंका गुणसंक्रम कालकी अन्तिम अवस्थामें होनेवाले अनुभागकाण्डकका ग्रहण करना चाहिए, उनका उत्कीरण काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होकर सबसे स्तोक है ऐसा निर्देश किया है।१।

* उससे अपूर्वकरणके प्रथम अनुभागकाण्डकका उत्कीरणकाल विशेष अधिक है।

§ १७०. किं कारणं ? चरिमाणुभागकंडयुकीरणद्धादो विसेसाहियकमेण सखेज्ज-सहस्समेत्तीसु अणुभागखण्डयउकीरणद्धासु हेट्ठा ओदिण्णासु एदस्स समुप्पत्तीदो। एत्थ विसेसपमाण हेट्ठिमरासिस्स सखेज्जदिभागमेत्तं होदूण संखेज्जावलियपमाणमिदि घेत्तव्वं। २।

*** चरिमट्ठिदिखंडयउक्कीरणकालो तम्हि चेव ट्ठिदिबंधकालो च दो वि तुल्ला संखेज्जगुणा।**

§ १७१. एव भणिदे मिच्छत्तस्स पढमट्ठिदीए समप्पमाणाए तक्कालियचरिमट्ठिदि-खंडयउकीरणकालो तत्थतणचरिमट्ठिदिबंधकालो च गहेयव्वो। सेसकम्माणं पुण गुण-संकमकालचरिमट्ठिदिबंध-ट्ठिदिखंडयकालाणं गहणं कायव्वं। एदे च दो वि सरिसपरि-माणा होदूण पुव्विल्लादो अपुव्वकरणपढमसमयविसयाणुभागकंडयुकीरणद्धादो संखेज्ज-गुणा त्ति णिद्दिट्ठा। किं कारणं ? एकम्मि ट्ठिदिखंडयकालब्भतरे सखेज्जसहस्समेत्ताणि अणुभागखडयाणि होंति त्ति परमगुरूवएसादो। ३-४।

*** अंतरकरणद्धा तम्हि चेव ट्ठिदिबंधगद्धा च दो वि तुल्लाओ विसेसा-हियाओ।**

§ १७२. किं कारणं ? पुव्विल्लदोकालेहिंतो हेट्ठा अंतोमुहुत्तकालमोसरियूण दोण्ह-मेदासिमद्धाणं पवुत्तिदंसणादो। ५-६।

---

§ १७० क्योंकि अन्तिम अनुभागकाण्डकके उत्कीरणकालसे विशेष अधिकके क्रमसे संख्यात हजार अनुभागकाण्डकसम्बन्धी उत्कीरणकालोंके नीचे उतरने पर इसकी उत्पत्ति होती है। यहाँपर विशेषका प्रमाण अधस्तन राशिका संख्यातवां भागमात्र होकर संख्यात आवलि-प्रमाण है ऐसा ग्रहण करना चाहिए। २।

*** उससे अन्तिम स्थितिकाण्डकका उत्कीरणकाल और वहींपर स्थितिबन्धकाल ये दोनों ही परस्पर तुल्य होकर संख्यातगुणे हैं।**

§ १७१ ऐसा कहनेपर मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके समाप्त होते समय उस कालमें होने-वाले अन्तिम स्थितिकाण्डकके उत्कीरणकालको और वहाँके अन्तिम स्थितिबन्धकालको ग्रहण करना चाहिए। तथा शेष कर्मोंके गुणसंक्रमकालके अन्तिम स्थितिबन्धकालको और स्थितिकाण्डककालको ग्रहण करना चाहिए। ये दोनों सदृश परिमाणवाले होकर पूर्वोक्त अपूर्वकरणके प्रथम समयसम्बन्धी अनुभागकाण्डकके उत्कीरणाकालसे संख्यातगुणे हैं ऐसा यहाँ निर्देश किया है, क्योंकि एक स्थितिकाण्डकके कालके भीतर संख्यात हजार अनुभाग काण्डक होते है ऐसा परम गुरुका उपदेश है। ३-४।

*** उन दोनोंसे अन्तरकरणका काल और वहीं पर स्थितिबन्धकाल ये दोनों ही परस्पर तुल्य होकर विशेष अधिक हैं।**

§ १७२ क्योंकि पूर्वोक्त दो कालोसे नीचे अन्तर्मुहूर्त काल पीछे जाकर इन दोनो कालोंकी प्रवृत्ति देखी जाती है। ५-६।

*** अपुव्वकरणे ट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धा ट्ठिदिबंधगद्धा च दो वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ।**

§ १७३. किं कारणं? पुव्विल्लदोकालेहिंतो तत्तो हेट्ठा अंतोमुहुत्तमोसरिय अपुव्वकरणपढमट्ठिदिखंडयविसए एदासिं पवुत्तिदंसणादो। ८।

*** उवसामगो जाव गुणसंकमेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि पूरेदि सो कालो संखेज्जगुणो।**

§ १७४. किं कारणं? तक्कालब्भंतरे संखेज्जाणं ट्ठिदिखण्डयाणं ट्ठिदिबंधाणं च संभवादो।

*** पढमसमयउवसामगस्स गुणसेढिसीसयं संखेज्जगुणं।**

§ १७५. एत्थ पढमसमयउवसामगो त्ति भणिदे भाविनि भूतवदुपचारं कृत्वा पढमसमयउवसामगभाविस्स पढमसमयअंतरकारयस्स गहणं कायव्वं। तस्स गुणसेढिसीसगमिदि वुत्ते अंतरचरिमफालीए पदमाणियाए गुणसेढिणिक्खेवस्स अग्गग्गादो संखेज्जदिभागं खंडेयूण जं फालीए सह णिल्लेविज्जमाणं गुणसेढिसीसयं तस्स गहणं कायव्वं। तं पुण पुव्विल्लादो गुणसंकमकालादो संखेज्जगुणं, गुणसेढिसीसयस्स संखेज्जदिभागे चेव गुणसंकमकालस्स पज्जवसाणदंसणादो। अथवा पढमसमयउवसामगस्स गुणसेढि-

---

*** उनसे अपूर्वकरणमें स्थितिकाण्डकका उत्कीरणकाल और स्थितिबन्धकाल ये दोनों ही परस्पर तुल्य होकर विशेष अधिक हैं।**

§ १७३. क्योंकि पूर्वोक्त दो कालोंसे उनसे नीचे अन्तर्मुहूर्त काल पीछे जाकर अपूर्वकरणके प्रथम स्थितिकाण्डकके समय इनकी प्रवृत्ति देखी जाती है। ७-८।

*** उन दोनोंसे उपशामक जीव जब तक गुणसंक्रमके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियोंको पूरता है वह काल संख्यातगुणा है।**

§ १७४ क्योंकि उस कालके भीतर संख्यात स्थितिकाण्डक और स्थितिबन्ध सम्भव हैं। ९।

*** उससे प्रथम समयवर्ती उपशामकका गुणश्रेणिशीर्ष संख्यातगुणा है।**

§ १७५ यहाँ पर 'प्रथम समयवर्ती उपशामक' ऐसा कहने पर भावोंमें भूतके समान उपचार करके प्रथम समयवर्ती उपशामक होनेवालेका अर्थात् प्रथम समयवर्ती अन्तर करनेवालेका ग्रहण करना चाहिए। उसका गुणश्रेणिशीर्ष ऐसा कहनेपर अन्तरसम्बन्धी अन्तिम फालिका पतन होते समय गुणश्रेणिनिक्षेपके अग्राग्रसे संख्यातवें भागका खण्डन कर जो फालिके साथ निर्जीर्ण होनेवाला गुणश्रेणिशीर्ष है उसका ग्रहण करना चाहिए। वह पूर्वके गुणसंक्रमसम्बन्धी कालसे संख्यातगुणा है, क्योंकि गुणश्रेणिशीर्षके संख्यातवें भागमें ही गुणसंक्रमकालका अन्त देखा जाता है। अथवा सूत्रोंमें प्रथम समयवर्ती उपशामकसम्बन्धी मिथ्यात्वका गुणश्रेणिशीर्ष ऐसा विशेषण लगा कर नहीं कहा, किन्तु सामान्यरूपसे कहा है,

सीसयं मिच्छत्तस्से त्ति विसेसियूण सुत्ते ण परूविदं, किंतु सामण्णेणोवइट्ठं, तेण सेसकम्माणं पढमसमयउवसामगस्स गुणसेढिसीसयं गहेयव्वं, तेसिमंतरकरणाभावेण पढमसमयउवसामगम्मि तस्संभवे विरोहाणुवलंभादो । १० ।

* पढमट्ठिदी संखेज्जगुणा ।

§ १७६. किं कारणं ? पढमट्ठिदीए संखेज्जदिभागमेत्तस्सेव गुणसेढिसीसयस्स अंतरट्ठमागाइदत्तादो । ११ ।

* उवसामगद्धा विसेसाहिया ।

§ १७७. केत्तियमेत्तो विसेसो ? समयूणदोआवलियमेत्तो । किं कारणं ? चरिम-

---

इसलिये प्रथम समयवर्ती उपशामकके जो शेष कर्म हैं उनका गुणश्रेणिशीर्ष लेना चाहिए, क्योंकि उन कर्मोंका अन्तरकरण न होनेसे प्रथम समयवर्ती उपशामकके उसके सम्भव होनेमें विरोध नहीं पाया जाता । १० ।

विशेषार्थ—यहाँ चूर्णिसूत्रमें 'पढमसमयउवसामगस्स गुणसेढिसीसयं' ऐसा कहा है। इसलिये प्रश्न होता है कि यहाँ पर किस गुणश्रेणिशीर्षका ग्रहण किया है ? क्या मिथ्यात्वकर्मके गुणश्रेणिशीर्षका या शेष कर्मोंके गुणश्रेणिशीर्षका ? यदि मिथ्यात्वका गुणश्रेणिशीर्ष लिया जाता है तो जिस समय यह जीव उपशमसम्यग्दृष्टि होता है उसके प्रथम समयमें तो मिथ्यात्वका गुणश्रेणिशीर्ष बनता नहीं, क्योंकि उसका पतन अन्तरकरणके समय अन्तर सम्बन्धी अन्तिम फालिके पतनके साथ हो जाता है। इसलिये मिथ्यात्वका गुणश्रेणिशीर्ष यदि लेना ही है तो भावीमें भूतका उपचार करके जो प्रथम समय अन्तर करनेवाला है उसे यहाँ प्रथम समयवर्ती उपशामकरूपसे ग्रहण करना चाहिए। ऐसे जीवके मिथ्यात्वका गुणश्रेणिशीर्ष पाया जाता है और वह उपशमसम्यग्दृष्टिके गुणसंक्रमकालसे संख्यातगुणा है। किन्तु यहाँ सूत्रमें मिथ्यात्वका गुणश्रेणिशीर्ष ऐसा नहीं कहा है। ऐसी अवस्थामें जो प्रथम समयवर्ती उपशामक है उसके शेष कर्मोंका गुणश्रेणिशीर्ष लिया जा सकता है। इसप्रकार सूत्रोक्त पदोंके ये दोनों अर्थ करनेमें संगति बैठ जाती है, क्योंकि अन्तरकरणके प्रथम समयमें मिथ्यात्वके गुणश्रेणिशीर्षका जो प्रमाण है वही प्रमाण प्रथम समयवर्ती उपशामकके शेष कर्मोंके गुणश्रेणिशीर्षका है, क्योंकि यहाँ गलितावशेष गुणश्रेणि होती है, इसलिये उक्त दोनों स्थलोंमें दोनों गुणश्रेणिशीर्षोंके समान होनेमें कोई बाधा नहीं आती।

* उससे प्रथम स्थिति संख्यातगुणी है ।

§ १७६. क्योंकि प्रथम स्थितिके संख्यातवें भागप्रमाण ही गुणश्रेणिशीर्षको अन्तरके लिये ग्रहण किया गया है । ११ ।

* उससे उपशामकका काल विशेष अधिक है ।

§ १७७ शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—एक समय कम दो आवलिकाल विशेषका प्रमाण है ।

शंका—इसका क्या कारण है ?

समयमिच्छाइट्ठिणा बद्धमिच्छत्तणवकबंधस्स एगसमयो पढमट्ठिदीए चेव गलदि। पुणो इमं पढमट्ठिदिचरिमसमयं मोत्तूण उवसमसम्माइट्ठिकालब्भंतरे समयूणदोआवलियमेत्तद्धाण-मुवरिगंत्तूण तस्स उवसामणा समप्पइ, तेण कारणेण पढमट्ठिदीए उवरिमाओ समयूणदो-आवलियाओ पवेसियूण विसेसाहिया जादा।१२। संपहि एदस्सेव विसेसाहियपमाणस्स णिण्णयकरणट्ठमुत्तरो सुत्तावयवो—

*** वे आवलियाओ समयूणाओ।**

§ १७८. गयत्थमेदं सुत्तं।

*** अणियट्टिअद्धा संखेज्जगुणा।**

§ १७९. किं कारणं? अणियट्टिअद्धाए संखेज्जदिभागे चेव पढमट्ठिदीए सरूवोवलद्धीदो।१३।

*** अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा।**

§ १८०. सव्वद्धमणियट्टिकरणद्धादो अपुव्वकरणद्धाए तहाभावेणावट्ठाणदंसणादो।१४।

---

**समाधान**—क्योंकि अन्तिम समयवर्ती मिथ्यादृष्टिके द्वारा बाँधे गये मिथ्यात्वसम्बन्धी नवकबन्धका एक समय प्रथम स्थितिमें ही गल जाता है। पुनः इस प्रथम स्थितिसम्बन्धी अन्तिम समयको छोड़कर उपशमसम्यग्दृष्टिके कालके भीतर एक समय कम दो आवलिप्रमाण काल ऊपर जाकर उसकी उपशामना समाप्त होती है, इसलिए प्रथम स्थितिमें एक समय कम दो आवलिका प्रवेश कराकर वह विशेष अधिक हो जाता है।१२।

अब इसी विशेष-अधिक प्रमाणका निर्णय करनेके लिये आगेका सूत्रवचन है—

*** वह विशेष एक समय कम दो आवलिप्रमाण है।**

§ १७८. यह सूत्र गतार्थ है।

*** उससे अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणा है।**

§ १७९. क्योंकि अनिवृत्तिकरणके कालके संख्यातवे भागमें ही प्रथम स्थितिके स्वरूपकी उपलब्धि होती है।१३।

**विशेषार्थ**—अनिवृत्तिकरणमें अन्तरकरणके प्रथम समयसे लेकर अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समय तकका जितना काल है वही मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिका काल है जो कि अनिवृत्तिकरणके कालके संख्यातवें भागप्रमाण है। यही कारण है कि यहाँ टीकामें यह निर्देश किया है कि अनिवृत्तिकरणके कालके सख्यातवें भागमें ही प्रथम स्थितिकी उपलब्धि होती है।

*** उससे अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है।**

§ १८०. क्योंकि सर्वदा अनिवृत्तिकरणके कालसे अपूर्वकरणके कालका उसी प्रकारसे अवस्थान देखा जाता है।१४।

* गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ ।

§ १८१. अपुव्वकरणपढमसमये आढत्तो जो गुणसेढिणिक्खेवो सो अपुव्वकरणद्धादो विसेसाहिओ त्ति भणिदं होइ । केत्तियमेत्तो विसेसो ? विसेसाहियअणियट्टिअद्धामेत्तो । १५ ।

* उवसंतद्धा संखेज्जगुणा ।

§ १८२. जम्मि काले मिच्छत्तमुवसंतभावेणच्छदि सो उवसमसम्मत्तकालो उवसंतद्धा त्ति भण्णदे । एसा गुणसेढिणिक्खेवादो संखेज्जगुणा । कुदो एदं णव्वदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो । १६ ।

* अंतरं संखेज्जगुणं ।

§ १८३. अंतरदीहत्तमुवसमसम्मत्तद्धादो संखेज्जगुणमिदि भणिदं होदि । किं कारणं ? अंतरस्स संखेज्जदिभागे चेव उवसमसम्मत्तद्धं गालिय तदो तिण्हं कम्माण-

---

* उससे गुणश्रेणिका निक्षेप विशेष अधिक है ।

§ १८१ क्योंकि अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जो गुणश्रेणिनिक्षेप उपलब्ध होता है वह अपूर्वकरणके कालसे विशेष अधिक है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—अनिवृत्तिकरणके कालको विशेष अधिक करनेपर जो लब्ध आवे तत्प्रमाण है । १५ ।

विशेषार्थ—प्रारम्भमें गुणश्रेणिनिक्षेपका काल अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके कालसे कुछ अधिक बतला आये हैं । इसीलिये यहाँपर विशेषको उक्तप्रमाण बतलाया है ।

* उससे उपशान्ताद्धा संख्यातगुणा है ।

§ १८२ जिस कालमें मिथ्यात्व उपशांतरूपसे रहता है वह उपशमसम्यक्त्वका काल उपशान्ताद्धा कहलाता है । यह गुणश्रेणिनिक्षेपसे संख्यातगुणा है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है । १६ ।

* उससे अन्तर संख्यातगुणा है ।

§ १८३. क्योंकि अन्तरका आयाम उपशमसम्यक्त्वके कालसे संख्यातगुणा है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—इसका क्या कारण है ?

समाधान—क्योंकि अन्तरके संख्यातवें भागमें ही उपशमसम्यक्त्वके कालको गलाकर

**मण्णदरमोकड्डियूण वेदेमाणो अंतरं विणासेदि त्ति परमगुरूवएसादो । १७ ।**

*** जहण्णिया आवाहा संखेज्जगुणा ।**

**§ १८४. एसा जहण्णिया आवाहा कत्थ गहेयव्वा ? मिच्छत्तस्स ताव चरिमसमयमिच्छादिट्ठिणा णवकबंधविसए गहेयव्वा । तत्तो अण्णत्थ मिच्छत्तस्स सव्वजहण्णाबाहाणुवलंभादो । सेसकम्माणं पुण गुणसंकमचरिमसमयणवकबंधजहण्णाबाहा घेत्तव्वा । उवरि किण्ण घेप्पदे ? ण, गुणसंकमकालं वोलिय विज्झादे पदिदस्स मंदविसोहीए ट्ठिदिबंधो वड्ढइ त्ति तव्विसयावाहाए सव्वजहण्णत्ताणुववत्तीदो । एसा च अंतरायामादो संखेज्जगुणा । कुदो एवं णव्वदे ? एदम्हादो चेव परमागमवक्कादो । १८ ।**

---

उससे आगे तीनों कर्मोंमेंसे किसी एकका अपकर्षणकर उसका वेदन करता हुआ अन्तरको समाप्त करता है ऐसा परम गुरुका उपदेश है । १७ ।

**विशेषार्थ**—अन्तरकरणके समय प्रथम स्थिति और उपरितन स्थितिके मध्यकी जितनी स्थितिको उक्त दोनों स्थितियोंमें निक्षेपकर अन्तर करता है उस अन्तरके कालमें यह जीव उपशम सम्यक्त्वको प्राप्तकर अन्तरके संख्यातवे भागप्रमाण कालतक ही यह जीव उपशमसम्यग्दृष्टि रहता है, इसलिये उपशान्ताद्धासे अन्तरके कालको संख्यातगुणा कहा है ऐसा परम्परासे गुरुका उपदेश चला आ रहा है ।

*** उससे जघन्य आवाधा संख्यातगुणी है ।**

§ १८४ **शंका**—यह जघन्य आबाधा कहाँकी लेनी चाहिए ?

**समाधान**—अन्तिम समयवर्ती मिथ्यादृष्टिके जो नवकबन्ध होता है उसकी लेनी चाहिए, क्योंकि उस स्थलके सिवाय अन्यत्र मिथ्यात्वकी जघन्य आवाधा नहीं उपलब्ध होती। परन्तु शेष कर्मोंका गुणसंक्रमके अन्तिम समयमें जो नवक बन्ध होता है उसकी जघन्य आबाधा लेनी चाहिए ।

**शंका**—इससे और आगेके कालकी क्यों नहीं ली जाती ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि गुणसंक्रमके कालको उल्लंघनकर विध्यात संक्रमको प्राप्त हुए जीवके मन्द विशुद्धिवश स्थितिबन्ध वृद्धिगत होता है, इसलिये वहाँकी आवाधा सबसे जघन्य नहीं हो सकती । और यह अन्तरायामसे संख्यातगुणी है ।

**शंका**—ऐसा किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

**समाधान**—इसी परमागमके वाक्यसे जाना जाता है । १८ ।

**विशेषार्थ**—यहाँपर अन्तरायामसे जिस जघन्य आवाधाको संख्यातगुणा बतलाया गया है वह यदि मिथ्यात्वकर्मके बन्धकी ली जाती है तो प्रकृतमें अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें मिथ्यात्वकर्मका जो सबसे जघन्य बन्ध होता है उसकी लेनी चाहिए, क्योंकि प्रकृतमें मिथ्यात्वकर्मका इससे जघन्य बन्ध अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयको छोड़ अन्यत्र तीनों

* उक्कस्सिया आबाहा संखेज्जगुणा ।

§ १८५. किं कारणं ? अपुव्वकरणपढमसमयट्ठिदिबंधविसए सव्वकम्माणमुक्कस्साबाहाए विवक्खियत्तादो । पुव्विल्लविसयजहण्णट्ठिदिबंधादो एत्थतणठिदिबंधो संखेज्जगुणो, तेण तदाबाहा वि तत्तो संखेज्जगुणा त्ति वुत्तं होइ । १९ ।

* जहण्णयं ट्ठिदिखंडयमसंखेज्जगुणं ।

§ १८६. मिच्छत्तस्स ताव पढमट्ठिदीए थोवावसेसे आढत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडयस्स गहणं कायव्वं । सेसकम्माणं च गुणसंकमकालस्स थोवावसेसे आढत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडयस्स जहण्णभावेण संगहो कायव्वो । एदं च पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागपमाणत्तणेण[1] पुव्विल्लादो असंखेज्जगुणमिदि घेत्तव्वं । २० ।

करणोंमें कहीं भी नहीं पाया जाता। और यदि प्रकृतमें ज्ञानावरणादि शेष कर्मोंके जघन्य बन्धकी जघन्य आबाधा लेनी है तो वह इस जीवके गुणसंक्रमके अन्तिम समयमें इन कर्मोंका जो अपने पूर्व कालकी अपेक्षा जघन्य विवक्षित बन्ध होता है उसकी लेनी चाहिए, क्योंकि इससे कम प्रमाणवाला बन्ध अन्यत्र सम्भव नहीं है। यद्यपि गुणसंक्रमके समाप्त होनेके बाद भी यह जीव प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि बना रहता है, किन्तु इसके मन्दविशुद्धिके कारण स्थितिबन्ध अधिक होने लगता है, इसलिये प्रकृतमें गुणसंक्रमके अन्तिम समयमें होनेवाले जघन्य स्थितिबन्धकी जघन्य आबाधा ही लेनी चाहिए। अतः उक्त दोनों स्थलोंकी जघन्य आबाधा अन्तरके कालसे संख्यातगुणी होती है यही आशय प्रकृतमें लेना चाहिए।

* उससे उत्कृष्ट आबाधा संख्यातगुणी है ।

§ १८५ क्योंकि सब कर्मोंकी अपूर्वकरणके प्रथम समयमें होनेवाली स्थितिबन्धविषयक उत्कृष्ट आबाधा यहाँ विवक्षित है, क्योंकि पूर्वमें कहे गये जघन्य स्थितिबन्धसे इस स्थलका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा होता है, इसलिये उसकी आबाधा भी पूर्वमें कही गई जघन्य आबाधासे संख्यातगुणी होती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। १९।

विशेषार्थ—स्थितिकाण्डकघात आदि कार्यविशेष अपूर्वकरणके प्रथम समयसे ही प्रारम्भ होते हैं। तदनुसार अपूर्वकरणके प्रथम समयमें होनेवाला स्थितिबन्ध ही यहाँपर लिया गया है। वह आगे होनेवाले सब कर्मोंके स्थितिबन्धोंकी अपेक्षा सबसे अधिक होता है, इसलिये उसकी आबाधा भी आगे होनेवाले स्थितिबन्धोंकी आबाधाओंकी अपेक्षा सबसे अधिक होगी यह स्पष्ट ही है। वही यहाँ उत्कृष्ट आबाधारूपसे विवक्षित है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* उससे जघन्य स्थितिकाण्डक असंख्यातगुणा है ।

§ १८६ मिथ्यात्वके तो प्रथम स्थितिके स्तोक शेष रहनेपर प्राप्त हुए अन्तिम स्थितिकाण्डकका ग्रहण करना चाहिए और शेष कर्मोंके गुणसंक्रमकालके स्तोक शेष रहनेपर प्राप्त हुए अन्तिम स्थितिकाण्डकका जघन्यरूपसे संग्रह करना चाहिए। और यह पल्योपमके संख्यातवें

१ आदर्शप्रतौ पलिदोवमासखेज्जदिभागपमाणत्तणेण इति पाठः ।

* उक्कस्सयं ट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं ।

§ १८७. किं कारणं ? सागरोवमपुधत्तपमाणत्तादो । २१ ।

* जहण्णगो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ।

§ १८८. किं कारणं ? मिच्छत्तस्स चरिमसमयमिच्छाइट्ठिजहण्णट्ठिदिबंधस्स अंतो-कोडाकोडिपमाणस्स सेसकम्माणं पि गुणसंकमचरिमसमयजहण्णट्ठिदिबंधस्स गह-णादो । २२ ।

* उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ।

§ १८९. किं कारणं ? सव्वकम्माणं पि अपुव्वकरणपढमसमयट्ठिदिबंधस्स पुव्विल्ल-जहण्णट्ठिदिबंधादो संखेज्जगुणत्तसिद्धीए णिव्वाहमुवलंभादो । २३ ।

---

भागप्रमाण होनेसे पूर्वमें कही गई उत्कृष्ट आबाधासे असंख्यातगुणा है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । २० ।

विशेषार्थ—पूर्वमें जो उत्कृष्ट आबाधा बतला आये हैं वह संख्यात काल प्रमाण होती है और जघन्य स्थितिकाण्डक पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है, इसलिये ही प्रकृतमें उत्कृष्ट आबाधासे जघन्य स्थितिकाण्डकको असंख्यातगुणा बतलाया है ।

* उससे उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक संख्यातगुणा है ।

§ १८७ क्योंकि यह सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण है । २१ ।

विशेषार्थ—अपूर्वकरणके प्रथम समयमें किन्हीं जीवोंके सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थितिकाण्डक होता है यह पहले ही बतला आये है । उसीको यहाँ ग्रहण किया है । यह पूर्वके पल्योपमके संख्यातवे भागप्रमाण स्थितिकाण्डकसे संख्यातगुणा होता है यह स्पष्ट ही है ।

* उससे जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ।

§ १८८ क्योंकि अन्तिम समयवर्ती मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण और शेष कर्मोंका भी गुणसंक्रमके अन्तिम समयका जघन्य स्थितिबन्ध लिया है । २२ ।

विशेषार्थ—पूर्वमें उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण बतला आये हैं और यहाँ जघन्य स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण बतलाया है, इसलिए यह उससे संख्यातगुणा ही होगा यह स्पष्ट है ।

* उससे उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ।

§ १८९. क्योंकि सभी कर्मोंका अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जो स्थितिबन्ध होता है वह पूर्वमें कहे गये जघन्य स्थितिबन्धसे संख्यातगुणा होता है इसकी सिद्धि निर्बाध पाई जाती है । २३ ।

विशेषार्थ—अपूर्वकरणके प्रथम समयमें सब कर्मोंका जो स्थितिबन्ध होता है वहाँसे

* जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं ।

§ १९०. किं कारणं ? मिच्छत्तस्स मिच्छाइट्ठिचरिमसमयजहण्णट्ठिदिसंतकम्मस्स सेसकम्माणं पि गुणसंकमकालचरिमसमयजहण्णट्ठिदिसंतकम्मस्स बधादो संखेज्जगुणत्ते विरोहाणुवलंभादो । २४ ।

---

लेकर संख्यात हजारों स्थितिबन्धभेदोंका अपसरण होकर अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें मिथ्यात्वका और गुणसंक्रमके अन्तिम समयमें शेष छह कर्मोंका प्राप्त होनेवाला स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन हो जाता है। यही कारण है कि यहाँपर उक्त दोनों स्थलोंपर होनेवाले मिथ्यात्व और शेष छह कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धसे अपूर्वकरणके प्रथम समयमें होनेवाला उक्त सब कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा बतलाया है।

* उससे जघन्य स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा है ।

§ १९० क्योंकि मिथ्यादृष्टिके अन्तिम समयमें मिथ्यात्वका जो जघन्य स्थितिसत्कर्म होता है और शेष कर्मोंका भी गुणसंक्रमकालके अन्तिम समयमें जो जघन्य स्थितिसत्कर्म होता है उनके वहाँके बन्धकी अपेक्षा संख्यातगुणे होनेमें कोई विरोध नहीं पाया जाता । २४।

विशेषार्थ---यद्यपि सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रन्थोंमें प्रथमोपशम सम्यक्त्वके योग्य कौन जीव होता है इस प्रसंगसे किसी शिष्यने यह प्रश्न किया है कि अनादि मिथ्यादृष्टि भव्य जीवके कर्मोंके उदयसे प्राप्त कलुषताके रहते हुए दर्शनमोहनीयका और चार अनन्तानुबन्धीका उपशम कैसे होता है ? इसी प्रश्नका उत्तर देते हुए आचार्यदेवने बतलाया है कि काललब्धि आदिके कारण उनका उपशम होता है। वहाँ प्रथम काललब्धिका निरूपण करते हुए बतलाया है कि कर्मयुक्त भव्य आत्मा अर्धपुद्गलपरिवर्तन नामवाले कालके अवशिष्ट रहनेपर प्रथम सम्यक्त्वके योग्य होता है, इससे अधिक कालके शेष रहनेपर नहीं। इससे संसारमें रहनेका अधिकसे अधिक कितना काल शेष रहनेपर भव्य जीव प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहण करनेके लिये पात्र होता है इसका नियम किया गया है। यह एक काललब्धि है। दूसरी कर्मस्थितिक काललब्धि है। न तो ज्ञानावरणादि कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहण करनेकी पात्रता होती है और न ही जघन्य स्थितिके रहते हुए प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहण करनेकी पात्रता होती है। किन्तु जिसके परिणामोंकी विशुद्धिवश उस समय बन्धको प्राप्त होनेवाले कर्मोंका स्थितिबन्ध अन्तःकोडा-कोडी सागरोपम हो रहा हो और जिसने सत्तामें स्थित कर्मोंकी स्थिति उससे संख्यात हजार सागरोपमोंसे न्यून अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थापित कर ली हो वह जीव प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य होता है। इस प्रकार यद्यपि यहाँपर बन्धस्थितिकी अपेक्षा सत्कर्मोंकी स्थिति न्यून बतलाई गई है, परन्तु यह काललब्धि उस जीवकी अपेक्षा बतलाई गई है जो क्षयोपशम आदि चार लब्धियोंसे सम्पन्न होकर प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके सन्मुख होता है। किन्तु यहाँ पर जो उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे जघन्य स्थिति सत्कर्म संख्यातगुणा बतलाया जा रहा है वह मिथ्यात्वकर्मकी अपेक्षा अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयको लक्ष्यमें लेकर तथा ज्ञानावरणादि छह कर्मोंकी अपेक्षा गुणसंक्रमके अन्तिम समयको लक्ष्यमें लेकर बतलाया जा रहा है, इसलिये सर्वार्थसिद्धि आदिके उक्त कथनसे इस कथनमें कोई बाधा नहीं आती। शेष कथन सुगम है।

* उक्कस्सयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं।

§ १९१. सव्वकम्माणं पि अपुव्वकरणपढमसमयविसयस्स उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मस्से-हावलंबियत्तादो। २५।

* एवं पणुवीसदिपडिगो दंडगो समत्तो।

§ १९२. एवं पणुवीसदिपडिगमप्पाबहुअदंडयं समाणिय एत्तो अदीदासेसपबंधेण विहासिदत्थाणं गाहासुत्ताणं सरूवणिद्देसं कुणमाणो विहासासुत्तयारो इदमाह—

* एत्तो सुत्तफासो कायव्वो भवदि।

§ १९३. पुव्वं परिभासिदत्थाणं गाहसुत्ताणमेण्हि समुक्कित्तणा जहाकमं कायव्वा त्ति भणिदं होइ।

(४२) दंसणमोहस्सुवसामगो दु चदुसु वि गदीसु बोद्धव्वो।
पंचिंदिओ य सण्णी णियमा[1] सो होइ पज्जत्तो॥ ९५॥

* उससे उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा है।

§ १९१. क्योंकि सभी कर्मोंके अपूर्वकरणके प्रथम समयसे सम्बन्ध रखनेवाले उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मका प्रकृतमें अवलम्बन लिया गया है। २५।

विशेषार्थ—अधःप्रवृत्तकरणमें स्थितिकाण्डकघात नहीं होता। परन्तु संख्यात हजार स्थितिबन्धापसरण अवश्य होते हैं। इसलिए अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें होनेवाले स्थिति-बन्धसे उसके अन्तिम समयमे संख्यातगुणा हीन स्थितिबन्ध होने लगता है। इसलिये अपूर्व-करणके प्रथम समयमे वहाँ प्राप्त स्थितिबन्धसे स्थितिसत्कर्मका संख्यातगुणा होना न्याय प्राप्त है। ऐसी अवस्थामें यह उत्कृष्ट स्थितिकत्कर्म अपने जघन्यसे संख्यातगुणा होता है ऐसा भी निर्णय करना उचित ही है।

* इसप्रकार पचीस पदवाला दण्डक समाप्त हुआ।

§ १९२. इसप्रकार पच्चीस पदवाले अल्पबहुत्वदण्डकको समाप्तकर आगे अतीत समस्त प्रबन्धके द्वारा जिनके अर्थका विशेष व्याख्यान किया गया है ऐसे गाथासूत्रोंका स्वरूपनिर्देश करते हुए विभाषासूत्रकार इस सूत्रको कहते हैं—

* अब आगे गाथासूत्रोंकी समुत्कीर्तना करने योग्य है।

§ १९३. जिनके अर्थका पहले स्पष्टीकरण कर आये हैं उन गाथासूत्रोंकी क्रमसे इस समय समुत्कीर्तना करनी चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* दर्शनमोहनीयकर्मका उपशम करनेवाला जीव चारों ही गतियोंमें जानना चाहिए। वह नियमसे पञ्चेन्द्रिय, संज्ञी और पर्याप्तक होता है॥ ९५॥

---

१ ता० प्रतौ 'पंचिंदिय सण्णी [ पुण ] णियमा' इति पाठः।

§ १९२. एसा पढमगाहा दंसणमोहोवसामणपट्ठवणाए को सामिओ होइ किमविसेसेण चदुसु वि गदीसु वट्टमाणो, आहो अत्थि को विसेसो त्ति पुच्छाए णिण्णयविहाणट्ठमवइण्णा। एदिस्से किंचि अवयवत्थपरामसं कस्सामो। तं जहा— दंसणमोहस्स उवसामगो अविसेसेण चदुसु वि गदीसु होदि त्ति बोद्धव्वो। एवं चदुगदिविसयत्तसामण्णेणावहारिदस्स पाओग्गलद्धिमुहेण विसेसपदुप्पायणफलो गाहापच्छद्धणिद्देसो। तं कधं? 'पंचिंदियसण्णी' इच्चादि। एत्थ पंचिंदियणिद्देसेण तिरिक्खगदीए एइंदियवियलिंदियाणं पडिसेहो कओ दट्ठव्वो। तत्थ वि सण्णिपंचिंदिओ चेव सम्मत्तुप्पत्तीए पाओग्गो होदि, णासण्णिपंचिंदिओ त्ति जाणावणट्ठं सण्णिविसेसणं कदं। एवं चदुगदिविसयत्तेण सण्णिपंचिंदियविसयत्तेण अवहारिदस्सेदस्स पज्जत्तावत्थाए चेव सम्मत्तुप्पत्तिपाओग्गभावो, णापज्जत्तावत्थाए त्ति जाणावणट्ठं 'णियमा सो होइ पज्जत्तो' त्ति णिद्दिट्ठं। लद्धिअपज्जत्त-णिव्वत्तिअपज्जत्तए मोत्तूण णियमा णिव्वत्तिपज्जत्तो चेव सम्मत्तुप्पत्तिपाओग्गो होदि त्ति एसो एदस्स भावत्थो।

§ १९२ यह प्रथम गाथा दर्शनमोहनीयकर्मकी उपशामना प्रस्थापनाका कौन जीव स्वामी है, क्या अविशेषरूपसे चारों ही गतियोंमें विद्यमान जीव स्वामी है या कोई विशेषता है ऐसी पृच्छा होनेपर निर्णयका विधान करनेके लिये आई है। अब इसके पदोंके अर्थका कुछ परामर्श करेंगे। यथा—दर्शनमोहनीयकर्मका उपशम करनेवाला जीव सामान्यरूपसे चारो ही गतियोंमे होता है ऐसा जानना चाहिए। इस प्रकार चारों गतियाँ दर्शनमोहनीय कर्मकी उपशमनाका विषय है इस बातका सामान्य रूपसे निश्चय होने पर प्रायोग्य लब्धिद्वारा विशेषका कथन करनेके लिये गाथाके उत्तरार्धका निर्देश है।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—'पंचिंदियसण्णी' इत्यादि।

इस पदमें 'पञ्चेन्द्रिय' पदके निर्देश द्वारा तिर्यञ्चगतिसम्बन्धी एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियोंका प्रतिषेध किया हुआ जानना चाहिए। उसमें भी संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव ही प्रथम सम्यक्त्वके योग्य होता है, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव नहीं इस बातका ज्ञान करानेके लिये उसका 'सञ्ज्ञी' विशेषण दिया है। इस प्रकार चारों गतियाँ इसका विषय है और सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव इसका विषय हैं इस रूपसे निश्चय किये गये इसके पर्याप्त अवस्थामे ही सम्यक्त्वकी उत्पत्तिकी योग्यता होती है, अपर्याप्त अवस्थामें नहीं इस बातका ज्ञान कराने के लिये 'णियमा सो होइ पज्जत्तो' इस वचनका निर्देश किया है। लब्ध्यपर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त अवस्थाको छोड़कर नियमसे निर्वृत्ति पर्याप्त जीव ही प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके योग्य होता है यह इसका भावार्थ है।

विशेषार्थ—यहाँ पर प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहण करनेके लिये कौन जीव योग्य होता है इसका निर्देश किया गया है। जो जीव प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेके सन्मुख होता है वह चारों गतियोंका होकर भी संज्ञी, पञ्चेन्द्रिय, पर्याप्त होना चाहिए। इसका यह तात्पर्य है कि यदि वह नारकी या देवगतिका जीव है तो उसके संज्ञी पञ्चेन्द्रिय होनेपर भी निर्वृत्यपर्याप्त

**(४३) सव्वणिरय-भवणेसु दीव-समुद्दे गह-जोदिसि-विमाणे।**
**अभिजोग्गमणभिजोग्गे[1] उवसामो होइ बोद्धव्वो ॥९६॥**

§ १९३. एसा विदियसुत्तगाहा पुव्वसुत्तुद्दिट्ठत्थविसेसपरूवणाए पडिबद्धा। तं जहा—णिरयगदीए ताव सव्वासु णिरयपुढवीसु सव्वेसु णिरइंदएसु सव्वसेढीबद्ध-पइण्णएसु च वट्टमाणा णेरइया जहावुत्तसामग्गीए परिणदा वेयणाभिभवादीहिं कारणेहिं सम्मत्तमुप्पाएंति त्ति जाणावणट्ठं सव्वणिरयग्गहणं। तहा सव्वभवणेसु त्ति वुत्ते जत्तिया

नहीं होना चाहिए। किन्तु छहों पर्याप्तियोंकी पूर्णता होनेपर अन्तमुहूर्तके बाद ही वह प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य होता है। यदि मनुष्यगतिका जीव है तो उसके भी सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय होनेपर भी वह लब्ध्यपर्याप्त और निर्वृत्त्यपर्याप्त नहीं होना चाहिए। वह पर्याप्त ही होना चाहिए। उसमें भी यदि कर्मभूमिज मनुष्य है तो पर्याप्त होनेके प्रथम समयसे लेकर आठ वर्षका होना चाहिए और यदि भोगभूमिज है तो उनचास दिनका होना चाहिए। ऐसा होनेपर ही वह प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य होता है। यदि तिर्यञ्चगतिका जीव है तो वह एकेन्द्रिय, विकलत्रय और असंज्ञी न होकर संज्ञी पञ्चेन्द्रिय ही होना चाहिए। उसमें भी ऐसा जीव यदि लब्ध्यपर्याप्त और निर्वृत्त्यपर्याप्त है तो वह प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य नहीं होता। वह छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होना चाहिए। उसमें तिर्यञ्च दो प्रकारके होते हैं—भोगभूमिज और कर्मभूमिज। कर्मभूमिज भी दो प्रकारके होते है—गर्भज और सम्मूर्च्छन। सो इनमेंसे गर्भज ही प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न कर सकते हैं सम्मूर्च्छन नहीं। उसमें भी दिवसपृथक्त्व अवस्थाके होनेपर ही वे प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य होते हैं। विशेष आगमसे जान लेना चाहिए। यहाँ पर प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य जो अन्य विशेषताएँ बतलाई हैं, जैसे संसारमें रहनेका इस जीवका अधिकसे अधिक अर्धपुद्गल-परिवर्तन नामवाला काल शेष रहे तब अनादि मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य होता है। यदि सादि मिथ्यादृष्टि जीव है तो वेदक कालके समाप्त होनेपर ही वह प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य होता है। तथा वह क्षयोपशम आदि चार लब्धियोंसे सम्पन्न होना चाहिए इत्यादि सर्व साधारण विशेषताओंके साथ ही चारों गतियोंका संज्ञी पञ्चे-न्द्रिय पर्याप्त जीव ही प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य होता है यह उक्त गाथासूत्रका तात्पर्य है।

**सब नरकोंमें रहनेवाले नारकियोंमें सब भवनोंमें रहनेवाले भवनवासी देवोंमें, सब द्वीपों और समुद्रोंमें विद्यमान संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यञ्चोंमें, ढाई द्वीप-समुद्रोंमें रहनेवाले पर्याप्त मनुष्योंमें, सब व्यन्तरावासोंमें रहनेवाले व्यन्तर देवोंमें, सब ज्योतिष्क देवोंमें, विमानोंमें रहनेवाले नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें तथा अभियोग्य और अनभियोग्य देवोंमें दर्शनमोहनीयका उपशम होता है ऐसा जानना चाहिए।**

§ १९३. यह दूसरी सूत्रगाथा पूर्व गाथा सूत्रमें कहे गये अर्थविशेषके कथनमें प्रति-बद्ध है। यथा—नरकगतिके सब नरक पृथिवी सम्बन्धी सब इन्द्रकबिलोंमे, सब श्रेणिबद्ध और प्रकीर्णक बिलोंमें विद्यमान नारकी जीव यथोक्त सामग्रीसे परिणत होकर वेदना अभिभव आदि कारणोंसे प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करते है इस बातका ज्ञान करानेके लिये, गाथासूत्रमे 'सव्वणिरय' पदका ग्रहण किया है तथा 'सव्वभवणेसु' ऐसा कहनेपर

१. ता०प्रतौ -मणभिजोग्गो इति पाठ.।

दसविहाणं भवणवासियाणमावासा तेसु सव्वेसु चेव समुप्पण्णा जीवा जिणबिंब-देविद्धि-दंसणादीहि कारणेहिं सम्मत्तमुप्पाएंति, ण तत्थ विसेसणियमो अत्थि त्ति भणिदं होइ। तहा दीव-समुद्दे त्ति वुत्ते सव्वेसु दीवसमुद्देसु वट्टमाणा जे सण्णिपंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता जे च अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु मणुसा संखेज्जवस्साउआ गब्भोवक्कंतिया असंखेज्जवस्साउआ च ते सव्वे वि जाइंभरत्त-धम्मसवणादिपच्चएहिं अप्पप्पणो विसए सव्वत्थ सम्मत्त-मुप्पाएंति। ण तत्थ देसविसेसणियमो अत्थि त्ति घेत्तव्वं। तसजीवविरहिएसु असंखेज्जेसु समुद्देसु कथं? ण, तत्थ वि पुव्ववेरियदेवपओगेण णीदाणं तिरिक्खाणं सम्मत्तुप्पत्तीए पयट्टंताणमुवलंभादो। गहसद्दो जेण वेंतरदेवाणं वाचओ तेणासंखेज्जेसु दीव-समुद्देसु[1] जे वेंतरावासा तेसु सव्वेसु वट्टमाणा वाणवेंतरा जिणमहिमादंसणादीहि कारणेहिं सम्मत्तमुप्पाएंति, ण तत्थ विसेसणियमो अत्थि त्ति गहेयव्वं। तहा 'जोदिसिय' त्ति जोदिसियदेवाण चंदाइच्च-गह-णक्खत्त-ताराभेयभिण्णाणं गहणं कायव्वं। तेसु वि जिणबिंबिद्धिदंसणादीहिं कारणेहिं सम्मत्तुप्पत्ती सव्वत्थ ण विरुद्धा त्ति घेत्तव्वं। 'विमाणे' त्ति वुत्ते विमाणवासियदेवाणं गहणं कायव्वं। तेसु वि सोहम्मादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति सव्वत्थ वट्टमाणा सगजाइपडिबद्धसम्मत्तुप्पत्तिकारणेहि परिणदा

दस प्रकारके भवनवासियोंके जितने आवास हैं उन सबमें ही उत्पन्न हुए जीव जिनबिम्ब-दर्शन और देवर्धिदर्शन आदि कारणोंसे सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं, वहाँ विशेष नियम नहीं है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। तथा 'दीव-समुद्दे' ऐसा कहने पर सब द्वीप-समुद्रोंमें वर्तमान जो संज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त हैं और ढाई द्वीप-समुद्रोंमें जो संख्यात वर्षकी आयुवाले गर्भज और असंख्यात वर्षकी आयुवाले मनुष्य हैं वे सभी जातिस्मरण और धर्मश्रवण आदि निमित्तोंसे अपने-अपने लिये सर्वत्र सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं। वहाँ देशविशेषका नियम नहीं है ऐसा यहाँपर ग्रहण करना चाहिए।

शंका—त्रस जीवोंसे रहित असंख्यात समुद्रोंमें तिर्यञ्चोंका प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करना कैसे बन सकता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहाँ पर भी पूर्वके वैरी देवोंके प्रयोगसे ले जाये गये तिर्यञ्च सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें प्रवृत्त हुए पाये जाते हैं।

'गह' शब्द यतः व्यन्तर देवोंका वाचक है अतः असंख्यात द्वीप-समुद्रोंमें जो व्यन्तरा-वास हैं। उन सबमें वर्तमान वानव्यन्तर देव जिनमहिमादर्शन आदि कारणोंसे सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं वहाँ विशेष नियम नहीं है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। तथा 'जोदिसिय' इससे चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और ताराओंके भेदसे अनेक प्रकारके ज्योतिषी देवोंको ग्रहण करना चाहिए। उनमें भी जिनबिम्बदर्शन और देवर्द्धिदर्शन आदि कारणोंसे सम्यक्त्वकी उत्पत्ति सर्वत्र विरुद्ध नहीं है ऐसा ग्रहण करना चाहिए। 'विमाणे' ऐसा कहनेपर विमान-वासी देवोंका ग्रहण करना चाहिए। उनमें भी सौधर्म कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तक सर्वत्र विद्यमान और अपनी-अपनी जातिसे सम्बन्ध रखनेवाले सम्यक्त्वोत्पत्तिके कारणोंसे

१ ता०प्रतौ दीव इति पाठो नास्ति।

सम्मत्तं उप्पाएंति त्ति घेत्तव्वं । तत्तो उवरिमअणुदिसाणुत्तरविमाणवासियदेवेसु सम्मत्तुप्पत्ती किण्ण होदि त्ति चे ? ण, तत्थ सम्माइट्ठीणं चेव उप्पादणियमदंसणादो । एत्थेवावंतरविसेसपदुप्पायणट्ठमाह—'अभिजोग्गमणभिजोग्गे' इदि । अभियुज्यंत इत्यभियोग्याः, वाहनादौ कुत्सिते कर्मणि नियुज्यमाणा वाहनदेवा इत्यर्थः । तेभ्योऽन्ये किल्विषिकादयोऽनुत्तमदेवाः, उत्तमाश्च पारिषदादयोऽनभियोग्याः । तेसु सर्वेषु यथोक्तहेतुसन्निधाने सम्यक्त्वोत्पत्तिरविरुद्धेति यावत् । 'उवसामो होइ बोद्धव्वो' एवं भणिदे एदेसु सव्वेसु दंसणमोहस्स उवसामगो होइ त्ति णायव्वो, विरोहाभावादो त्ति भणिदं होइ ।

---

परिणत हुए देव सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं ऐसा ग्रहण करना चाहिए ।

**शंका**—उनसे उपरिम अनुदिश और अनुत्तर विमानवासी देवोंमें सम्यक्त्वकी उत्पत्ति क्यों नहीं होती ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि उनमें सम्यग्दृष्टि जीवोंके ही उत्पन्न होनेका नियम देखा जाता है ।

अब यहीं पर अवान्तर भेदोंका कथन करनेके लिये कहते हैं—'अभिजोग्गमणभिजोग्गे'—'अभियुज्यन्ते इत्यभियोग्याः' इस व्युत्पत्तिके अनुसार जो वाहनदेव वाहन आदि कुत्सित कर्ममें नियोजित हैं वे अभियोग्य देव हैं यह इस पदका अर्थ है। उनसे अन्य किल्विषिक आदि अनुत्तम देव और पारिषद आदि उत्तम देव अनभियोग्य देव हैं। उन सबमें यथोक्त हेतुओंका सन्निधान होने पर सम्यक्त्वकी उत्पत्ति अविरुद्ध है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । 'उवसामो होइ बोद्धव्वो' ऐसा कहने पर इन सबमें दर्शनमोहका उपशामक होता है ऐसा जानना चाहिए, क्योंकि इसमें कोई विरोध नहीं है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

**विशेषार्थ**—पूर्व गाथासूत्रमें सामान्यसे इतना ही कहा गया था कि चारों गतियोंके संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीव दर्शनमोहके उपशामक होते हैं । इस गाथासूत्रमें उन जीवोंका नाम निर्देश पूर्वक स्पष्ट रूपसे खुलासा किया गया है। किसी भी गतिका संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त कोई भी जीव क्यों न हो यदि वह प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके उस उस गतिसे सम्बन्ध रखनेवाले अपने-अपने कारणोंसे सम्पन्न है तो वह दर्शनमोहका उपशामक होता है यह इस गाथासूत्रके कथनका सार है। यहाँ टीकामें सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके बाह्य साधनोंसे कतिपय कारणोंका संकेत किया गया है, अतएव यहाँ उन सब साधनोंका खुलासा किया जाता है। प्रारम्भके तीन नरकोंमें जातिस्मरण, धर्मश्रवण और वेदनाभिभव ये तीन प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके बाह्य साधन हैं। यद्यपि नारकियोंके विभंगज्ञान होनेसे उन सबको यथासम्भव पूर्वभवोंका स्मरण होता है। किन्तु यहाँ पर पूर्वभवोंका स्मरणमात्र प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका साधन नहीं है। किन्तु पूर्व भवमें धार्मिक बुद्धिसे जो अनुष्ठान किये थे वे विफल क्यों हुए इसे जानकर जो आत्म-निरीक्षण कर जीवादि नौ पदार्थोंके मननपूर्वक अपने उपयोगको आत्मामें युक्त करते हैं उनके जातिस्मरण सम्यकत्वकी उत्पत्तिमें बाह्य साधन है। धर्मश्रवण पूर्वभवके स्नेही सम्यग्दृष्टि देवोंके निमित्तसे होता है, क्योंकि वहाँ ऋषियोंका जाना सम्भव नहीं है। यहाँ पर वेदनाभिभवको प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका तीसरा बाह्य साधन कहा है। सो उससे ऐसा समझना चाहिए कि वेदनासामान्य प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका

वाह्य साधन नहीं है। किन्तु जिनका ऐसा उपयोग होता है कि यह वेदना इस मिथ्यात्व तथा असंयमके सेवनसे उत्पन्न हुई है उनके वह वेदना सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका साधन होता है। अन्तके चार नरकोंमें मात्र जाति-स्मरण और वेदनाभिभव ये दो ही प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके वाह्य साधन हैं। वहाँ सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका वाह्य साधन धर्मश्रवण सम्भव नहीं, क्योंकि इन नरकोंमें एक तो देवोंका गमनागमन नहीं होता। दूसरे वहाँकि नारकियोंमें भवके सम्बन्धवश या पूर्वके वैरवश परस्परमें अनुग्राह्य-अनुग्राहक भाव नहीं पाया जाता। अतः वहाँ उक्त दो ही प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके निमित्त है।[1]

तिर्यञ्चोंमें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके वाह्य साधन तीन हैं—जातिस्मरण, धर्मश्रवण और जिनबिम्बदर्शन। ये ही तीन मनुष्योंमें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके वाह्य साधन हैं। किन्हीं मनुष्योंको जिन महिमा देखकर प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति होती है। पर इसे अलगसे चौथा साधन माननेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इसका जिनबिम्बदर्शनमें अन्तर्भाव हो जाता है। कदाचित् किन्हीं मनुष्योंको लब्धिसम्पन्न ऋषियोंके देखनेसे भी प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति होती है। पर इसे भी अलगसे साधन माननेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इसका भी जिन बिम्बदर्शनमें अन्तर्भाव हो जाता है। सम्मेदाचल, गिरनार, चम्पापुर और पावापुर आदिका दर्शन भी जिनबिम्बदर्शनमें ही गर्भित है, क्योंकि वहाँ भी जिनबिम्बदर्शन तथा मुक्तिगमनसम्बन्धी कथाका सुनना या कहना आदिके बिना प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति नहीं होती।

देवोंमें भी भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिषी और बारहवे कल्पतकके कल्पवासी देवोंमें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके चार मुख्य साधन हैं—जातिस्मरण, धर्मश्रवण, जिनमहिमा दर्शन और देवर्धिदर्शन। जिनमहिमादर्शन जिनबिम्बदर्शनके बिना बन नहीं सकता, इसलिए जिनमहिमादर्शनमें ही वह गर्भित है। यद्यपि जिनमहिमादर्शनमें स्वर्गावतरण और जन्माभिषेक आदि गर्भित है, पर इनमें जिनबिम्बदर्शन नहीं होता, इसलिए यह कहा जा सकता है कि जिनमहिमादर्शनके साथ जिनबिम्बदर्शनका अविनाभाव नहीं है सो ऐसा कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि वहाँ भी ये आगामी कालमें साक्षात् जिन होनेवाले हैं ऐसा बुद्धिमें स्वीकार करके ही उक्त कल्याणक किये जाते हैं, अतः इन कल्याणकोंमें भी जिनबिम्बदर्शन बन जाता है। अथवा ऐसे कल्याणकोंको निमित्तकर जो प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न होता है उसे जिनगुणश्रवणनिमित्तक समझना चाहिए। देवर्धिदर्शन जातिस्मरणसे भिन्न साधन है, क्योंकि अपनी-अपनी अणिमादि ऋद्धियोंको देखकर ऐसा विचार होना कि ये ऋद्धियाँ जिनदेवद्वारा उपदिष्ट धार्मिक अनुष्ठानके फलस्वरूप उत्पन्न हुई हैं, जातिस्मरणस्वरूप होनेसे इसको निमित्तकर उत्पन्न हुआ प्रथम सम्यक्त्व जातिस्मरणनिमित्तक है और ऊपरके देवोंकी महा ऋद्धियोंको देखकर जो ऐसा विचार करता है कि इन देवोंके ये ऋद्धियां सम्यग्दर्शनसे युक्त संयमधारणके फलस्वरूप उत्पन्न हुई हैं और मैं सम्यग्दर्शनसे रहित द्रव्यसंयम पालकर वाहन आदि नीच देवोंमें उत्पन्न हुआ हूँ उस जीवके ऊपरके देवोंकी ऋद्धिको देखकर उत्पन्न हुए प्रतिबोधसे जो प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति होती है वह देवर्धिदर्शननिमित्तक प्रथम सम्यक्त्व है। इसप्रकार जातिस्मरण और देवर्धिदर्शन इन दोनोंमें अन्तर है। दूसरे जातिस्मरण देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर ही होता है और देवर्धिदर्शन कालान्तरमें होता है, इसलिये भी इन दोनोंमें अन्तर है। आनत कल्पसे लेकर अच्युत कल्प तकके देवोंमें देवर्धिदर्शनको छोड़कर प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके पूर्वोक्त तीन साधन हैं। एक तो इन देवोंमें ऊपरके महर्धिक देवोंका आगमन नहीं होता। दूसरे वहाँके देवोंकी

(४४) उवसामगो च सव्वो णिव्वाघादो तहा णिरासाणो।
उवसंते भजियव्वो णीरासाणो य खीणम्मि ॥९७॥

§ १९४. एसा तदियगाहा दंसणमोहोवसामगस्स तीहिं करणेहिं वावदावत्थाए णिव्वाघादत्तं णिरासाणभावं च पदुप्पाएदि। तं जहा—सव्वो चेव उवसामगो णिव्वाघादो होइ, दंसणमोहोवसामणं पारभिय उवसामेमाणस्स जइ वि चउव्विहोवसग्गवग्गो जुगवमुवइट्ठाइंतो वि णिच्छएण दंसणमोहोवसामणमेत्तो पडिबंधेण विणा समाणेदि त्ति वुत्तं होइ। एदेण दंसणमोहोवसामगस्स तदवत्थाए मरणाभावो वि

---

महर्धिको बार-बार देखनेसे उन्हें आश्चर्य नहीं होता तथा तीसरे वहां शुक्ललेश्या होनेसे उनके संक्लेशरूप परिणाम नहीं होते, इसलिये वहाँ देवर्धिदर्शन प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका साधन नहीं स्वीकार किया गया है। नौ ग्रैवेयकवासी देवोंमें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके दो साधन है—जातिस्मरण और धर्मश्रवण। यहाँ ऊपरके देवोंका आगमन नहीं होता, इसलिए देवर्धिदर्शन साधन नहीं है। नन्दीश्वर द्वीप आदिमें इनका गमन नहीं होता, इसलिए वहाँ जिनबिम्बदर्शन साधन भी नहीं है। वहाँ रहते हुए वे अवधिज्ञानके द्वारा जिन महिमाको जानते हैं, इसलिए भी उनके जिन महिमादर्शन प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका बाह्य साधन नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वे विस्मयको उत्पन्न करनेवाले रागसे मुक्त होते हैं, इसलिये उन्हें जिन महिमा देखकर विस्मय नहीं होता। उनके अहमिन्द्र होते हुए भी उनमें परस्पर अनुग्राह्य-अनुग्राहक भाव होनेसे उनमें धर्मश्रवण प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका बाह्य साधन स्वीकार किया गया है। इससे आगे अनुदिश और अनुत्तर विमानवासी देव नियमसे सम्यग्दृष्टि होते हैं, इसलिये वहाँ प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति कैसे होती है यह प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। यहाँ प्रत्येक गतिमें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके जो साधन बतलाये हैं उनमेंसे किसीके कोई एक प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका साधन है और किसीके कोई दूसरा प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका साधन है ऐसा यहाँ समझना चाहिए। प्रत्येक गतिमें प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके जितने साधन बतलाये हैं वे सब उस-उस गतिमें प्रत्येकके होने चाहिए ऐसा नहीं है। शेष कथन सुगम है।

दर्शनमोहका उपशम करनेवाले सब जीव व्याघातसे रहित होते हैं और उस कालके भीतर सासादन गुणस्थानको नहीं प्राप्त होते। दर्शनमोहके उपशान्त होने पर सासादनगुणस्थानकी प्राप्ति भजितव्य है। किन्तु क्षीण होने पर सासादनगुणस्थानकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ३-९७ ॥

§ १९४ यह तीसरी गाथा दर्शनमोहका उपशम करनेवाले जीवके तीन करणोंके द्वारा व्यापृत अवस्थारूप होनेपर निर्व्याघातपने और निरासानपनेका कथन करती है। यथा—सभी उपशामक जीव व्याघातसे रहित होते हैं, क्योंकि दर्शनमोहके उपशमको प्रारम्भ करके उसका उपशम करनेवाले जीवके ऊपर यद्यपि चारों प्रकारके उपसर्ग एक साथ उपस्थित होवे तो भी वह निश्चयसे प्रारम्भसे लेकर दर्शनमोहकी उपशमनविधिको प्रतिबन्धके विना समाप्त करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस कथन द्वारा दर्शनमोहके उपशामकका उस अवस्थामें मरण भी नहीं होता यह कहा हुआ जानना चाहिए, क्योंकि मरण भी

पदुप्पाइदो दट्ठव्वो, तस्स वि वाघादभेदत्तादो। 'तहा णिरासाणो' त्ति भणिदे दंसणमोहणीयमुवसामेंतो तदवत्थाए सासणगुणं पि ण एसो पडिवज्जदि त्ति भणिदं होइ। 'उवसंते भजियव्वो' उपशान्ते दर्शनमोहनीये भाज्यो विकल्प्यः, सासादनपरिणामं कदाचिद् गच्छेन्न वेति। किं कारणं? उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियावसेसाए तदोप्पहुडि सासणगुणपडिवत्तीए केसु वि जीवेसु संभवदंसणादो। 'णीरासाणो य खीणम्मि' उवसमसम्मत्तद्धाए खीणाए सासादनगुणं णियमा ण पडिवज्जदि त्ति भणिदं होइ। कुदो एवं चे? उवसमसम्मत्तद्धाए जहण्णेणेयसमयमेत्तसेसाए उक्कस्सेण छावलियमेत्तावसेसाए सासणगुणपरिणामो होइ, ण परदो त्ति णियमदंसणादो। अथवा 'णीरासाणो य खीणम्मि' एवं भणिदे दंसणमोहणीयम्मि खीणम्मि णिरासाणो चेव, ण तत्थ सासणगुणपरिणामो संभवइ त्ति घेत्तव्वं, खइयस्स सम्मत्तस्सापडिवादिसरूवत्तादो, सासणपरिणामस्स उवसमसम्मत्तपुरंगमत्तणियमदंसणादो च।

व्याघातका एक भेद है। 'तहा णिरासाणो' ऐसा कहने पर दर्शनमोहका उपशम करनेवाला जीव उस अवस्थामें सासादन गुणस्थानको भी नहीं प्राप्त होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। 'उवसंते भजियव्वो' अर्थात् दर्शनमोहके उपशान्त होने पर भाज्य है-विकल्प्य है अर्थात् वह जीव कदाचित् सासादन गुणस्थानको प्राप्त होता है और कदाचित् प्राप्त नहीं होता, क्योंकि उपशम सम्यक्त्वके कालमें छह आवलि शेष रहने पर वहाँसे लेकर सासादन गुणस्थानकी प्राप्ति किन्हीं भी जीवोंमें सम्भव देखी जाती है। 'णीरासाणो य खीणम्मि' अर्थात् उपशम सम्यक्त्वका काल क्षीण होने पर यह जीव सासादन गुणस्थानको नियमसे नहीं प्राप्त होता यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका—ऐसा किस कारणसे है?

समाधान—क्योंकि उपशम सम्यक्त्वके कालमें जघन्यरूपसे एक समय शेष रहने पर और उत्कृष्टरूपसे छह आवलि काल शेष रहने पर सासादनगुणस्थान परिणाम होता है, इसके बाद नहीं ऐसा नियम देखा जाता है। अथवा 'णीरासाणो य खीणम्मि' ऐसा कहनेपर दर्शनमोहनीयका क्षय होनेपर यह जीव निरासान ही है, क्योंकि उसके सासादन गुणस्थानरूप परिणाम सम्भव नहीं है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। कारण कि क्षायिक सम्यक्त्व अप्रतिपातस्वरूप होता है और सासादन परिणामके उपशम सम्यक्त्वपूर्वक होनेका नियम देखा जाता है।

विशेषार्थ—यहाँ दर्शनमोहके उपशामन विधिके प्रारम्भ होनेके समयसे लेकर उपशम सम्यक्त्वके कालके भीतर तथा उसके बाद किन कार्य विशेषोंका होना सम्भव है और कौन कार्यविशेष होते ही नहीं इन सब बातोंका इस गाथामें निर्देश किया गया है। यह जीव दर्शनमोहकी उपशामन विधिका प्रारम्भ अधःकरणके प्रथम समयसे करके अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें उसको पूर्ण करता है। इस कालके भीतर एक तो यह जीव देव, मनुष्य, तिर्यञ्चोंद्वारा और अन्य कारणोंसे उपस्थित हुए उपसर्गोंके युगपत् या किसी एकके उपस्थित होनेपर उस (उपशामन विधि) से च्युत नहीं होता। यहाँ तक कि ऐसे जीवका

(४५) सागारे पट्ठवगो णिट्ठवगो मज्झिमो य भजियव्वो।
जोगे अण्णदरम्हि य जहण्णगो तेउलेस्साए ॥९८॥

§ १९५. एदेण चउत्थगाहासुत्तेण दंसणमोहोवसामगस्स उवजोग-जोग-लेस्सापरिणामगओ विसेसो पदुप्पाइदो दट्ठव्वो। तं जहा—'सागारे पट्ठवगो' एवं भणिदे दंसणमोहोवसामणमाढवेंतो अधापवत्तकरणपढमसमयप्पहुडि अंतोमुहुत्तमेत्त-कालं पट्ठवगो णाम भवदि। सो वुण तदवत्थाए णाणोवजोगे चेव उवजुत्तो होइ, तत्थ दंसणोवजोगस्सावीचारप्पयस्स पवुत्तिविरोहादो। तदो मदि-सुद-विभंगणाणाण-

मरण भी नहीं होता। बिना व्याघातके यह जीव उसे सम्पन्न करता है। इस काल में ऐसा जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त हो जाय यह भी सम्भव नहीं है, क्योंकि इस जीवके इस कालके भीतर अनन्तानुबन्धीचतुष्कमेंसे किसी एकके उदयके साथ सदा काल मिथ्यात्वका उदय बना रहता है ऐसा नियम है। जब कि सासादन गुणस्थानकी प्राप्ति उपशम सम्यक्त्वके कालमें कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक छह आवलि कालके शेष रहनेपर मात्र अनन्ता-नुबन्धीचतुष्कमेंसे किसी एक प्रकृतिके उदय-उदीरणा होनेपर होती है। वहाँ दर्शनमोहनीयकी किसी भी प्रकृतिका उदय न होनेसे दर्शनमोहनीयकी अपेक्षा पारिणामिक भाव होता है। इसी प्रकार प्रथमोपशम सम्यक्त्वके कालके भीतर भी ये सब विशेषताएँ जाननी चाहिए। मात्र ऐसा जीव अपने कालमें कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक छह आवलि काल शेष रहनेपर अनन्तानुबन्धीचतुष्कमेंसे किसी एक प्रकृतिका उदय होनेपर सासादन गुण-स्थानको प्राप्त हो सकता है। किन्तु उपशम सम्यक्त्वका उक्त काल निकल जानेपर वह सासादन गुणस्थानको भी प्राप्त नहीं होता, क्योंकि उपशम सम्यक्त्वका काल समाप्त होनेपर वह या तो मिथ्यात्वके उदय-उदीरणाके होनेसे मिथ्यादृष्टि हो जाता है या सम्यग्मिथ्यात्वका उदय-उदीरणा होनेसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि हो जाता है या सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय-उदीरणा होनेसे वेदकसम्यग्दृष्टि हो जाता है। यहाँ गाथामें 'खीणम्मि' पद आया है। उससे यह अभिप्राय भी फलित होता है कि दर्शनमोहनीयका क्षय होनेपर भी यह जीव सासादन गुणस्थानको नहीं प्राप्त होता, क्योंकि दर्शनमोहनीयकी क्षपणा होनेके पूर्व ही यह जीव अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर लेता है, और ऐसे जीवके पुनः अनन्तानुबन्धीकी सत्ताका प्राप्त होना सम्भव नहीं है।

दर्शनमोहके उपशमनका प्रस्थापक जीव साकार उपयोगमें विद्यमान होता है। किन्तु उसका निष्ठापक और मध्य अवस्थावर्ती जीव भजितव्य है। तीनों योगों मेंसे किसी एक योगमें विद्यमान तथा तेजोलेश्याके जघन्य अंशको प्राप्त वह जीव दर्शनमोहका उपशामक होता है ॥ ४-९८ ॥

§ १९५. इस चौथे गाथा सूत्र द्वारा दर्शनमोहके उपशामकके उपयोग, योग और लेश्या परिणामगत विशेषका कथन जानना चाहिए। यथा—'सागारे पट्ठवगो' ऐसा कहने पर दर्शन-मोहकी उपशमविधिका आरम्भ करनेवाला जीव अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त काल तक प्रस्थापक कहलाता है। परन्तु वह जीव उस अवस्थामें ज्ञानोपयोगमें ही उपयुक्त होता है, क्योंकि इस अवस्थामें अवीचारस्वरूप दर्शनोपयोगकी प्रवृत्तिका विरोध

मण्णदरो सागारोवजोगो चेव एदस्स होइ, णाणागारोवजोगो त्ति घेत्तव्वं। एदेण जागरावत्थापरिणदो चेव सम्मत्तुप्पत्तिपाओग्गो होदि, णाण्णो त्ति एदं पि जाणाविदं, णिद्दापरिणामस्स सम्मत्तुप्पत्तिपाओग्गविसोहिपरिणामेहिं विरुद्धसहावत्तादो। एवं पट्ठवगस्स सागारोवजोगत्तं णियामिय संपहि णिट्ठवग-मज्झिमावत्थासु सागराणागाराणमण्णदरोवजोगेण भयणिज्जत्तपदुप्पायणट्ठमिदमाह—'णिट्ठवगो मज्झिमो य भजिदव्वो।' एत्थ णिट्ठवगो त्ति भणिदे दंसणमोहोवसामणाकरणस्स समाणगो घेत्तव्वो। सो वुण कम्हि उद्देसे होदि त्ति पुच्छिदे पढमट्ठिदिं सव्वं कमेण गालिय अंतरपवेसाहिमुहावत्थाए होइ। सो च सागारोवजुत्तो वा अणागारोवजुत्तो वा होदि त्ति भजियव्वो, दोण्हमण्णदरोवजोगपरिणामेण णिट्ठवगत्ते विरोहाभावादो। एवं मज्झिमस्स वि वत्तव्वं। को मज्झिमो णाम? पट्ठवग-णिट्ठवगपज्जायाणमंतरालकाले पयट्टमाणो मज्झिमो त्ति भण्णदे, तत्थ दोण्हं पि उवजोगाणं कमपरिणामस्स विरोहाभावादो भयणिज्जत्तमेदमवगंतव्वं।

§ १९६. संपहि एदस्स चेव जोगविसेसावहारणट्ठमिदमाह—'जोगे अण्णदरम्हि

---

है, इसलिए मति, श्रुत और विभंगज्ञानमेंसे कोई एक साकार उपयोग ही इसके होता है, अनाकार उपयोग नहीं होता ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। इस वचन द्वारा जागृत अवस्थासे परिणत जीव ही सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके योग्य होता है, अन्य नहीं इस बातका भी ज्ञान करा दिया है, क्योंकि निद्रारूप परिणाम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके योग्य विशुद्धिरूप परिणामोंसे विरुद्ध स्वभाववाला है। इस प्रकार प्रस्थापकके साकारोपयोगपनेका नियम करके अब निष्ठापकरूप और मध्यम ( बीचकी ) अवस्थामें साकार उपयोग और अनाकार उपयोग मेंसे अन्यतर उपयोगके साथ भजनीयपनेका कथन करनेके लिये यह वचन कहा है—'णिट्ठवगो मज्झिमो य भजिदव्वो'। इस वचनमें निष्ठापक ऐसा कहने पर दर्शनमोहके उपशामनाकरणको समाप्त करनेवाला जीव लेना चाहिए। परन्तु वह किस अवस्थामें होता है ऐसा पूछने पर समस्त प्रथम स्थितिको क्रमसे गलाकर अन्तर प्रवेशकी अभिमुख अवस्थाके होनेपर होता है। और वह साकार उपयोगमें उपयुक्त होता है या अनाकार उपयोगमें उपयुक्त होता है, इसलिए भजनीय है, क्योंकि इन दोनोंमेंसे किसी एक परिणामके साथ निष्ठापकपनेके होनेमें विरोधका अभाव है। इसी प्रकार मध्यम अवस्थावालेके भी कहना चाहिए।

शंका—मध्यम कौन है ?

समाधान—प्रस्थापक और निष्ठापकरूप पर्यायोंके अन्तराल कालमें प्रवर्तमान जीव मध्यम कहलाता है।

वहाँ पर दोनों ही उपयोगोंका क्रमसे परिणाम होनेमें विरोधका अभाव होनेसे यह भजनीयपना जानना चाहिए।

§ १९६ अब इसीके योग विशेषका निश्चय करनेके लिये यह कहते हैं—'जोगे

य मणजोग-वचिजोग-कायजोगाणमण्णदरे जोगे वट्टमाणो दंसणमोहोवसामणाए पट्ठवगो होइ। एवं णिट्ठवगो मज्झिमो य वत्तव्वो, तत्थ तदण्णदरणियमाणुवलद्धीदो। चदुण्हमण्णदरमणजोगेण वा, चदुण्हमण्णदरवचिजोगेण वा, ओरालिय-वेउव्वियाण-मण्णदरकायजोगेण वा, परिणदो संतो दंसणमोहोसामणमाढवेदि त्ति एसो एदस्स तावत्थो।

§ १९७. संपहि तस्सेव लेस्साभेदुप्पायणट्ठमुत्तरो सुत्तावयवो—'जहण्णगो तेउलेस्साए'। जइ वि सुट्ठु मंदविसोहीए परिणमिय दंसणमोहणीयमुवसामेदुमाढवेइ तो वि तस्स तेउलेस्साए परिणामो चेव तप्पाओग्गो होइ णो हेट्ठिमलेस्सापरिणामो तस्स सम्मत्तुप्पत्तिकारणकरणपरिणामेहिं विरुद्धसरूवत्तादो त्ति भणिदं होइ। एदेण तिरिक्ख-मणुस्सेसु किण्ह-णील-काउलेस्साणं सम्मत्तुप्पत्तिकाले पडिसेहो कदो, विसोहि-काले असुह-तिलेस्सापरिणामस्स संभवाणुववत्तीदो। देवेसु पुण जहारिहं सुहतिल्लेस्सा-परिणामो चेव,[ण] तेण तत्थ वियहिचारो। णेरइएसु वि अवट्ठिदकिण्ह-णील-काउलेस्सा-परिणामेसु सुहतिलेस्साणमसंभवो चेवे त्ति ण तत्थेदं सुत्तं पयट्टदे। तदो तिरिक्ख-मणुस-विसयमेवेदं सुत्तमिदि गहेयव्वं।

---

अण्णदरम्मि य।' मनोयोग, वचनयोग और काययोग इनमेंसे किसी एक योगमें वर्तमान जीव दर्शनमोहकी उपशमविधिका प्रस्थापक होता है। इसी प्रकार निष्ठापक और मध्यम अवस्थावाले जीवके भी कहना चाहिए, क्योंकि इन दोनों अवस्थाओंमें प्रस्थापकसे भिन्न नियमकी उपलब्धि नहीं होती। चार प्रकारके मनोयोगोंमेंसे अन्यतर मनोयोगसे, चार प्रकारके वचनयोगोंमेंसे अन्यतर वचनयोगसे तथा औदारिक काययोग और वैक्रियिक काययोग इनमेंसे अन्यतर काययोगसे परिणत हुआ जीव दर्शनमोहकी उपशमविधिका आरम्भ करता है यह इसका भावार्थ है।

§ १९७. अब उसीके लेश्याभेदका कथन करनेके लिये आगेका सूत्रवचन आया है—'जहण्णगो तेउलेस्साए' यद्यपि अत्यन्त मन्द विशुद्धिसे परिणमकर दर्शनमोहकी उपशमन-विधिका प्रारम्भ करता है तो भी उसके तेजोलेश्याका परिणाम ही उसके योग्य होता है, उससे नीचेका लेश्यापरिणाम नहीं, क्योंकि वह सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके कारणरूप करणपरि-णामोंसे विरुद्ध स्वरूप है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इससे तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें कृष्ण, नील और कापोत लेश्याओंका सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके समय प्रतिषेध कर दिया है, क्योंकि विशुद्धिके समय अशुभ तीन लेश्यारूप परिणाम सम्भव नहीं है। देवोंमें तो यथायोग्य शुभ तीन लेश्यारूप परिणाम ही होता है, इसलिए उक्त कथनका वहाँ पर कोई व्यभिचार नहीं आता। नारकियोंमें भी अवस्थितस्वरूप कृष्ण, नील और कापोतलेश्यापरिणाम होते हैं, वहाँ शुभ तीन लेश्यारूप परिणाम असम्भव ही हैं, इसलिए उनमें यह सूत्र प्रवृत्त नहीं होता। अतः तिर्यञ्चों और मनुष्योंको विषय करनेवाला ही यह सूत्र है ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

**विशेषार्थ**—दर्शनमोहका उपशम करते समय इस जीवके प्रथम समयसे लेकर

(४७) मिच्छत्तवेदणीयं कम्मं उवसामगस्स बोद्धव्वं।
उवसंते आसाणे तेण परं होइ भजियव्वो ॥९९॥

§ १९८. एदेण गाहासुत्तेण दंसणमोहोवसामगस्स जाव अंतरपवेसो ण होइ ताव णियमा मिच्छत्तकम्मोदओ होइ। तत्तो परमुवसमसम्मत्तकालब्भंतरे तदुदओ णत्थि चेव। उवसमसम्मत्तकाले णिट्ठिदे पुण मिच्छत्तोदयस्स भयणिज्जत्तमिदि। एदेण तिण्णि अत्थविसेसा परूविदा। तं जहा—'मिच्छत्तवेदणीयं कम्मं' एवं भणिदे मिच्छत्तं वेदिज्जदि जेण कम्मेण तं मिच्छत्तवेदणीयं कम्ममुदयावत्थाविसेसिदमुवसामगस्स णियमा होदि त्ति णायव्वमिदि गाहापुव्वद्धे पदसंबंधो, तेण मिच्छत्तकम्मोदयो दंसण-

---

अन्तिम समय तक इस कालमें कौन उपयोग होता है, योग कौन होता है और लेश्या कौन होती है इन तथ्योंका इस गाथामें विचार करते हुए बतलाया है कि दर्शनमोहके उपशमन-विधिके प्रस्थापकका प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्तकाल तक साकार उपयोग होता है, क्योंकि दर्शनोपयोग अविचारस्वरूप होनेसे उसके प्रारम्भमें इसकी प्रवृत्ति नहीं बन सकती। उसके बाद मध्यकी और अन्तकी अवस्थामें यह यथासम्भव दर्शनोपयोगी भी हो जाता है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि दर्शनमोहके उपशमनाके कालसे मति-श्रुतज्ञानका काल अल्प है, अतएव बीचमें अनाकार उपयोग हो जाता है। परन्तु ऐसा होनेपर भी उपयोगका आलम्बन जीव पदार्थ ही रहता है, क्योंकि इसकी सन्मुखतामें ही दर्शनमोहका उपशम होकर प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि दर्शनमोहका उपशामक जीव नियमसे जागृत होता है, क्योंकि सुप्त अवस्थामें इसकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। योगकी अपेक्षा विचार करने पर इसके दस पर्याप्त योगोंमेंसे यथासम्भव कोई भी योग होता है। लेश्या कम से कम मनुष्यों और तिर्यञ्चोंके पीत लेश्याका जघन्य अंश होता है। इससे नीचे की अन्य अशुभ लेश्याएं नहीं होतीं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। देवों और नारकियोंमें अवस्थित लेश्याके रहते हुए भी दर्शनमोहका उपशम होकर सम्यक्त्वकी प्राप्ति सम्भव है, इसलिए पूर्वोक्त लेश्याका नियम तिर्यञ्चों और मनुष्योंकी अपेक्षा यहाँ किया गया है ऐसा यहाँ जानना चाहिए।

दर्शनमोहनीयका उपशम करनेवाले जीवके मिथ्यात्वकर्मका उदय जानना चाहिए। किन्तु दर्शनमोहको उपशान्त अवस्थामें मिथ्यात्व कर्मका उदय नहीं होता, तदन्तर उसका उदय भजनीय है ॥ ५-९९ ॥

§ १९८ इस गाथासूत्रद्वारा यह बतलाया गया है कि दर्शनमोहके उपशामक जीवका जबतक अन्तर प्रवेश नहीं होता है तबतक उसके मिथ्यात्वका उदय नियमसे होता है। उसके बाद उपशमसम्यक्त्वके कालके भीतर मिथ्यात्वका उदय नहीं ही होता। परन्तु उपशमसम्यक्त्वके कालके समाप्त होनेपर मिथ्यात्वका उदय भजनीय है। इसप्रकार इस गाथासूत्र द्वारा तीन अर्थविशेष कहे गये हैं। यथा—'मिच्छत्तवेदणीयं कम्मं' ऐसा कहने पर जिस कर्मके द्वारा मिथ्यात्व वेदा जाता है वह मिथ्यात्व वेदनीय कर्म उदय अवस्थासे युक्त उपशामकके नियमसे होता है ऐसा जानना चाहिए, इसप्रकार गाथाके पूर्वार्धका पदसम्बन्ध है,

मोहोवसामगस्स णियमा होइ त्ति सुत्तत्थो गहेयव्वो। उदयविसेसणं सुत्तेणाणुवइट्ठं कथमुवलब्भदि त्ति णासंकणिज्जं, अत्थवसेणेव तहाविहविसेसणस्सत्थसमुवलद्धीदो। अथवा[1] वेद्यत इति वेदनीयं मिथ्यात्वमेव वेदनीयं मिथ्यात्ववेदनीयं उदयावस्थापरिणतं मिथ्यात्वकर्मेति यावत्। तदुपशमकस्य भवतीति सूत्रोपात्तमेव तद्विशेषणमवगंतव्यम्। 'उवसंते आसाणे' एवं भणिदे दंसणमोहणीये उवसंते उवसमसम्माइट्ठित्तमुवगयस्स मिच्छत्तवेदणीयकम्मोदयस्स आसाणमेव विणासो चेव। किं कारणं? अंतरपवेसावत्थाए तदुदयस्स अच्चंताभावेण णिसिद्धत्तादो तदणुदयस्सेव उवसंतभावेणेत्थ विवक्खियत्तादो च। अथवा उवसंते उवसमसम्मत्तकालब्भंतरे आसाणे सासणकालब्भंतरे च मिच्छत्तकम्मोदयो णत्थि चेवे त्ति वक्कसेसवसेण सुत्तत्थसंबंधो कायव्वो। 'तेण परं होइ भजियव्वो' एवं भणिदे उवसमसम्मत्तद्धाए समत्ताए तत्तो परं मिच्छत्तकम्मोदएण एसो भजियव्वो, मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमण्णदरोदयस्स तत्थाविरोहादो।

इसलिये मिथ्यात्व कर्मका उदय दर्शनमोहके उपशामकके नियमसे होता है इसप्रकार सूत्रका अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

शंका—सूत्रद्वारा अनुपदिष्ट उदय विशेषण कैसे उपलब्ध होता है?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि अर्थके सम्बन्धसे ही उस प्रकारके विशेषणकी यहाँ पर उपलब्धि होती है। अथवा जो वेदा जाय वह वेदनीय है। मिथ्यात्व ही वेदनीय मिथ्यात्व वेदनीय है। उदय अवस्थासे परिणत मिथ्यात्व कर्म यह इसका तात्पर्य है। वह उपशम करनेवाले जीवके होता है इसप्रकार उक्त विशेषण सूत्रोक्त ही जानना चाहिए। 'उवसंते आसाणे' ऐसा कहनेपर दर्शनमोहनीयके उपशान्त अवस्थामें उपशमसम्यग्दृष्टिपनेको प्राप्त हुए जीवके मिथ्यात्व वेदनीयकर्मके उदयका आसान ही अर्थात् विनाश ही रहता है, क्योंकि अन्तर प्रवेशरूप अवस्थामें उसके उदयका अत्यन्ताभाव होनेसे उसका उदय निषिद्ध ही है तथा उसका अनुदय ही उपशान्तरूपसे यहाँ पर विवक्षित है। अथवा 'उवसंते' अर्थात् उपशमसम्यक्त्वके कालके भीतर तथा 'आसाणे' अर्थात् सासादन कालके भीतर मिथ्यात्वकर्मका उदय नहीं ही है इसप्रकार वाक्य शेषके वशसे सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध करना चाहिए। 'तेण परं होइ भजियव्वो' ऐसा कहनेपर उपशम सम्यक्त्वके कालके समाप्त होनेपर तदनन्तर मिथ्यात्व कर्मके उदयसे यह भजनीय है, क्योंकि मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें से अन्यतरके उदयका वहाँ विरोध नहीं पाया जाता।

विशेषार्थ—इस गाथासूत्रद्वारा तीन अर्थ स्पष्ट किये गये हैं। प्रथम अर्थको स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि जो मिथ्यादृष्टि जीव दर्शन मोहका उपशम करता है उसके मिथ्यात्वका उदय नियमसे होता है। दूसरे अर्थको स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि उपशमसम्यग्दृष्टिके मिथ्यात्वकर्मका उदय नहीं होता। यहाँ गाथामें 'उवसंते आसाणे' पाठ है। तदनुसार 'आसाण' अवसान पाठका पर्यायरूप होनेसे विनाश अर्थ करके उक्त अर्थ फलित किया गया है। अथवा 'उवसंते आसाणे' इसका अर्थ उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादन करने पर

१. ता०प्रतौ अथवा इति पाठो नास्ति।

(४८) सव्वेहिं ट्ठिदिविसेसेहिं उवसंता होंति तिण्णि कम्मंसा।
एक्कम्हि य अणुभागे णियमा सव्वे ट्ठिदिविसेसा ॥१००॥

§ १९९. एत्थ 'तिण्णि कम्मंसा' त्ति भणिदे मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं गहणं कायव्वं, दंसणमोहोवसामणाए पयट्टत्तादो। एदे तिण्णि कम्मंसा सव्वेहि चेव ट्ठिदिविसेसेहि उवसंता बोद्धव्वा। ण तेसिमेक्का वि ट्ठिदी अणुवसंता अत्थि त्ति भावत्थो। तदो मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं जहण्णट्ठिदिप्पहुडि जावुक्कस्सट्ठिदि त्ति एदेसु सव्वेसु ट्ठिदिविसेसेसु ट्ठिदसव्वपरमाणू उवसंता त्ति सिद्धं। एवमुवसंताणं तेसिं ट्ठिदिविसेसाणं सव्वेसिमणुभागो किमेयवियप्पो चेव आहो णाणावियप्पो त्ति भणिदे एयवियप्पो चेवे त्ति जाणावणट्ठमुवरिमो गाहासुत्तावयवो—'एक्कम्हि य अणुभागे' एक्कम्हि चेवाणुभागविसेसे[1] तिण्हमेदेसिं कम्मंसाणं सव्वे ट्ठिदिविसेसा दट्ठव्वा। अंतर-बाहिराणंतरजहण्णट्ठिदिविसेसे जो अणुभागो सो चेव तत्तो उवरिमासेसट्ठिदिविसेसेसु उक्कस्स-

'नहीं' इतने वाक्यशेषके योगसे यह अर्थ फलित किया है कि उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादन गुणस्थानवालेके मिथ्यात्वका उदय नहीं होता। यहाँ 'नहीं' इस वाक्य शेषकी योजना 'तेण परं होइ भजियव्वो' पदको ध्यानमें रखकर की गई है। तीसरे अर्थको स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि उपशमसम्यक्त्वका काल पूरा होने पर मिथ्यात्वका उदय भजनीय है। अर्थात् यदि ऐसा जीव मिथ्यात्वको प्राप्त होता है तो उसके मिथ्यात्व कर्मका उदय रहता है। यदि सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होता है तो सम्यग्मिथ्यात्व कर्मका उदय रहता है और यदि वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होता है तो सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय रहता है। इस प्रकार इस गाथासूत्र द्वारा तीन अर्थोंको स्पष्ट किया गया है।

दर्शनमोहनीयकी तीनों कर्म प्रकृतियाँ सभी स्थिति विशेषोंके साथ उपशान्त ( उदयके अयोग्य ) रहती हैं तथा सभी स्थितिविशेष नियमसे एक अनुभागमें अवस्थित रहते हैं ॥ ६-१०० ॥

§ १९९. इस गाथासूत्रमें 'तिण्णि कम्मंसा' ऐसा कहनेपर मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि दर्शनमोहकी उपशामनाका प्रकरण है। ये तीनों ही कर्म प्रकृतियाँ सभी स्थिति विशेषोंके साथ उपशान्त जाननी चाहिए। उनकी एक भी स्थिति अनुपशान्त नहीं होती यह उक्त कथनका भावार्थ है। अतः मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिसे लेकर उत्कृष्ट स्थिति तक इन सब स्थिति विशेषोंमें स्थित सब परमाणु उपशान्त होते हैं यह सिद्ध हुआ। इसप्रकार उपशान्त हुए उन सब स्थितिविशेषोंका अनुभाग क्या एक प्रकारका ही है या नाना भेदोंको लिये हुए है ऐसा कहनेपर एक प्रकारका ही है इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेका गाथासूत्रका अवयव आया है— 'एक्कम्हि य अणुभागे' एक ही अनुभागविशेषमें इन तीनों कर्मप्रकृतियोंके सब स्थितिविशेष जानने चाहिए। अन्तरायामके बाहर अनन्तरवर्ती जघन्य स्थितिविशेषमें जो अनुभाग है

१ ता०प्रतौ चेवाणुभागविसये इति पाठः।

ट्ठिदिपज्जंतेसु होइ, णाण्णसो[1] त्ति भणिदं होदि। मिच्छत्तस्स ताव सव्वघादिविट्ठाणिओ घादिदसेसो अणुभागो सव्वेसु ट्ठिदिविसेसेसु अविसिट्ठसरूवेणावट्ठिदो दट्ठव्वो। एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि णवरि मिच्छत्ताणुभागादो अणंतगुणहीणो। सम्मत्तस्स पुण तत्तो वि अणंतगुणहीणो देसघादिविट्ठाणसरूवो दारुअसमाणाणंतभागावट्ठाणो उक्कस्साणुभागो एयवियप्पो सव्वत्थ होदि त्ति घेत्तव्वं।

§ २००. संपहि दंसणमोहणीयमुवसामेमाणस्स तदवत्थाए किंपच्चएण णाणावरणादिकम्मबंधो होदि त्ति एवंविहस्स अत्थविसेसस्स णिद्धारणट्ठमुवरिमगाहासुत्तमोइण्णं—

---

वही उससे उपरिम उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त समस्त स्थितिविशेषोंमें होता है वह अन्य नहीं होता यह उक्त कथनका तात्पर्य है। मिथ्यात्वका तो घात करनेसे शेष रहा सर्वघाति द्विस्थानीय अनुभाग सब स्थिति विशेषोंमें अवस्थितरूपसे अवस्थित जानना चाहिए। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वका भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अनुभागसे यह अनन्तगुणा हीन होता है। सम्यक्त्वका अनुभाग तो उससे भी अनन्तगुणा हीन होता है, जो देशघाति द्विस्थानीय स्वरूप होकर दारुसमान अनुभागके अनन्तवे भागरूपसे अवस्थित उत्कृष्ट स्वरूप एक प्रकारका सर्वत्र होता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

विशेषार्थ—इस गाथासूत्रमें दर्शनमोहनीयकी तीनों कर्म प्रकृतियोंकी उपशान्त अवस्थामें क्या व्यवस्था रहती है यह स्पष्ट किया गया है। अकेले मिथ्यात्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व या तीनों कर्म प्रकृतियोंकी प्रथम स्थितिके गल जानेके अनन्तर समयमें जीवके अन्तरायाममें प्रवेश करनेपर उक्त तीनों प्रकृतियोंकी अन्तरायामके ऊपर द्वितीय स्थितिमें अपने-अपने स्थितिविशेषोंके साथ जितनी स्थिति प्राप्त होती है वह सब उपशान्त रहती है अर्थात् प्रथमोपशमके कालके अन्तिम समय तक उदयके अयोग्य रहती है। यहाँ मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रमण तो होता है पर इन स्थितिविशेषोंकी अपकर्षणपूर्वक उदीरणा नहीं होती यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अनुभाग इन तीनों प्रकृतियोंके अपने-अपने स्थितिविशेषोंमें अपने-अपने योग्य द्विस्थानीय एक प्रकारका होता है। अर्थात् मिथ्यात्वका घात करनेसे शेष बचा सर्वघाति द्विस्थानीय अनुभाग सब स्थितिविशेषोंमें समान होता है। अन्तरायामके ऊपर प्रथम जघन्य स्थितिमें जो सर्वघाति द्विस्थानीय अनुभाग होता है वही उससे ऊपरकी मिथ्यात्वसम्बन्धी अन्य सब स्थितियोंमें होता है। सम्यग्मिथ्यात्वके सब स्थितिविशेषोंमें भी इसीप्रकार एक प्रकारका द्विस्थानीय सर्वघाति अनुभाग होता है। किन्तु वह मिथ्यात्वके अनुभागसे अनन्तगुणा हीन होता है। सम्यक्त्व प्रकृति देशघाति है, इसलिये उसके सब स्थितिविशेषोंमें देशघाति द्विस्थानीय एक प्रकारका अनुभाग होकर भी वह सम्यग्मिथ्यात्वके अनुभागसे अनन्तगुणा हीन होता है। साथ ही यह उत्कृष्ट होता है। यह सब उक्त गाथाका तात्पर्य है।

§ २००. अब दर्शनमोहनीयका उपशम करनेवाले जीवके उस अवस्थामें ज्ञानावरणादि कर्मोंका बन्ध किंनिमित्तक होता है इसप्रकार इस अर्थविशेषका निर्धारण करनेके लिये आगेका गाथासूत्र आया है—

---

१ ता०प्रतौ णाण्णारिसो इति पाठः।

(४८) मिच्छत्तपच्चयो खलु बंधो उवसामगस्स बोद्धव्वो।
उवसंते आसाणे तेण परं होइ भजियव्वो ॥१०१॥

§ २०१. मिच्छत्तं पच्चओ कारणं जस्स सो मिच्छत्तपच्चओ खलु परिप्फुडं बंधो दंसणमोहोवसामगस्स जाव पढमट्ठिदिचरिमसमयो त्ति ताव बोद्धव्वो। केसिं कम्माणं बंधो ? मिच्छत्तस्स णाणावरणादिसेसकम्माणं च। जइ वि एत्थ सेसाणं असंजम-कसाय-जोगाणं पच्चयत्तमत्थि तो वि मिच्छत्तस्सेव पहाणभावविवक्खाए एव पदुविदमिदि घेत्तव्वं, उवरि मिच्छत्तपच्चयस्साभावपदुप्पायणपरत्तादो। 'उवसंते आसाणे' दंसणमोहणीए उवसंते अंतरं पविट्ठपढमसमयप्पहुडि मिच्छत्तपच्चयस्स आसाणमेव विणासो चेव, ण तत्थ मिच्छत्तपच्चओ अत्थि त्ति वुत्तं होइ। अथवा 'उवसंते' उवसंतदंसणमोहणीये सम्माइट्ठिम्मि आसाणे[1] सासणसम्माइट्ठिम्मि य मिच्छत्तपच्चओ णत्थि त्ति वक्कसेसं कादूण सुत्तत्थो समत्थेयव्वो। 'तेण परं होइ भजियव्वो' तत्तो परमुवसंतद्धाए णिट्ठिदाए मिच्छत्तपच्चओ भजियव्वो। किं कारणं ? उवसमसम्मत्तद्धाए खीणाए तिण्ह-

दर्शनमोहनीयका उपशम करनेवाले जीवके नियमसे मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध जानना चाहिए। किन्तु उसके उपशान्त रहते हुए मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध नहीं होता तथा उपशान्त अवस्थाके समाप्त होनेके बाद मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध भजनीय है ॥ ७-१०१ ॥

§ २०१ मिथ्यात्व है प्रत्यय अर्थात् कारण जिसका वह मिथ्यात्वप्रत्यय बन्ध 'खलु' अर्थात् स्पष्टरूपसे दर्शनमोहका उपशम करनेवाले जीवके प्रथम स्थितिके अन्तिम समय तक जानना चाहिए।

शंका—किन कर्मोंका बन्ध ?

समाधान—मिथ्यात्व और ज्ञानावरणादि शेष कर्मोंका।

यद्यपि यहाँपर ( मिथ्यात्व गुणस्थानमें ) शेष असंयम, कषाय और योगका प्रत्ययपना है तो भी मिथ्यात्वकी ही प्रधानताकी विवक्षामें इस प्रकार कहा है ऐसा यहाँ पर ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि ऊपरके गुणस्थानोंमें मिथ्यात्वनिमित्तक बन्धके अभावका कथन परक यह वचन है। 'उवसंते आसाणे' दर्शनमोहनीयके उपशान्त होने पर अन्तरायाममें प्रवेश करनेके प्रथम समयसे लेकर मिथ्यात्वनिमित्तक बन्धका आसान अर्थात् विनाश ही है। वहाँ मिथ्यात्व निमित्तक बन्ध नहीं है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अथवा 'उवसंते' दर्शनमोहनीयके उपशान्त होनेपर सम्यग्दृष्टि जीवके और 'आसाणे' अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टि जीवके 'मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध नहीं होता' इतना वाक्यशेषका योग करके सूत्रार्थका समर्थन करना चाहिए। 'तेण परं होइ भजियव्वो' अर्थात् उसके बाद उपशम सम्यक्त्वके कालके समाप्त होनेपर मिथ्यात्वनिमित्तिक बन्ध भजनीय है, क्योंकि उपशम सम्यक्त्वके

[1] ताप्रतौ सम्माइट्ठिम्मि य मिच्छत्ते आसाणे इति पाठः।

मण्णदरस्स कम्मस्स उदयसंभवे सिया मिच्छत्तपच्चओ, सिया अण्णपच्चओ त्ति तत्थ भयणिज्जत्ते विरोहाणुवलंभादो ।

§ २०२. एवमुवसामगस्स पच्चयपरूवणं कादूण संपहि मिच्छत्तपच्चएणेव

---

कालके क्षीण होनेपर दर्शनमोहकी तीनों प्रकृतियोंमेंसे किसी एक कर्मका उदय सम्भव होनेपर कदाचित् मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध होता है, कदाचित् अन्यनिमित्तक बन्ध होता है, इसलिये उस अवस्थामें भजनीय होनेमें विरोध नहीं उपलब्ध होता ।

विशेषार्थ—कर्मबन्धके कारण चार हैं—मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग। तत्त्वार्थसूत्र आदिमें बन्धके प्रमादसहित पाँच कारण बतलाये हैं। किन्तु यहाँ पर टीकामें प्रमादका कषायमें अन्तर्भाव करके चार कारण परिगणित किये गये हैं। इनमेंसे पूर्व-पूर्वके कारणके रहनेपर आगे-आगेके कारण होते ही हैं। जैसे मिथ्यात्व गुणस्थानमें मिथ्यात्व निमित्तक बन्ध होनेपर वह अविरति, कषाय और योगनिमित्तक भी होता है ऐसा यहाँ जानना चाहिए। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही मिथ्यात्वनिमित्तक बन्ध होता है, आगेके गुणस्थानोंमें नहीं। इसी प्रकार पाँचवें गुणस्थान तक अविरति निमित्तक बन्ध होनेपर वहाँ कषाय और योगकी निमित्तता है ही ऐसा समझना चाहिए। आगेके गुणस्थानोंमें अविरतिनिमित्तक बन्धका अभाव है। तथा दसवें गुणस्थान तक कषाय-निमित्तक बन्ध होनेपर वहाँपर योगकी निमित्तता है ही, क्योंकि इससे आगेके गुणस्थानोंमें कषायनिमित्तक बन्धका अभाव है। आगे तेरहवें गुणस्थान तक एक मात्र योगनिमित्तक बन्ध होता है। वहाँ बन्धके अन्य कारणोंका अभाव है। इसप्रकार कर्मबन्धके कहाँ कितने कारण हैं इसे समझ कर मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही मिथ्यात्वनिमित्तक बन्धकी मुख्यता है यह बतलानेके लिये उक्त गाथासूत्रकी रचना हुई है। वहाँ मिथ्यात्व और ज्ञानावरणादि जितने कर्मोंका बन्ध होता है वह गाथासूत्रमें मिथ्यात्वनिमित्तक इसी अभिप्रायसे कहा है। इससे आगेके गुणस्थानोंमें मिथ्यात्व निमित्तक बन्ध नहीं होता यह बतलानेके लिये गाथासूत्रमें 'उवसंते आसाणे' इस तृतीय चरणकी रचना हुई है। इसके दो अर्थ हैं, जिनका स्पष्टीकरण टीकामें किया ही है। तथा उपशान्त अवस्थाके समाप्त होनेके बाद इस जीवके दर्शनमोह-नीयकी तीन प्रकृतियोंमेंसे जिस प्रकृतिका उदय होता है उसके अनुसार वहाँ यथासम्भव बन्धकारणकी मुख्यता होती है। यदि वह जीव मिथ्यात्वके उदयके साथ मिथ्यादृष्टि हो जाता है तो मिथ्यात्व निमित्तक बन्धकी मुख्यता रहती है और यदि सम्यग्मिथ्यात्वके उदयके साथ सम्यग्मिथ्यादृष्टि या सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयके साथ वेदक सम्यग्दृष्टि हो जाता है तो अविरतिनिमित्तक बन्धकी मुख्यता रहती है। यही कारण है कि उक्त गाथासूत्रके चौथे चरणमें उपशान्त अवस्थाके समाप्त होनेके बाद मिथ्यात्वनिमित्तक बन्धको भजनीय कहा है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि वेदक सम्यक्त्व सातवें गुणस्थान तक होता है, अतः जहाँ जिस कारणकी मुख्यता बने उसके अनुसार वहाँ उसकी मुख्यतासे बन्ध समझना चाहिए। यथा—चौथे-पाँचवें गुण-स्थानमें अविरतिकी मुख्यतासे बन्ध होता है तथा छटे-सातवें गुण-स्थानमें अविरतिका अभाव होकर कषायकी मुख्यतासे बन्ध होता है।

§ २०२. इस प्रकार उपशामकके बन्धके कारणका कथन करके अब दर्शनमोहनीयका

दंसणमोहणीयस्स बंधो होइ, तेण विणा सेसपच्चएहिं तब्बंधो णत्थि त्ति जाणावणट्ठ-मुत्तरगाहासुत्तावयारो[2]—

(५९) सम्मामिच्छाइट्ठी दंसणमोहस्सऽबंधगो होइ।
वेदयसम्माइट्ठी खीणो वि अबंधगो होइ ॥१०२॥

§ २०३. मिच्छाइट्ठी चेव[3] दंसणमोहणीयस्स मिच्छत्तपच्चएण बंधगो होइ, णाण्णो। तेण सम्मामिच्छाइट्ठी वा वेदयसम्माइट्ठी वा खइयसम्माइट्ठी वा, अविसद्देण उवसमसम्माइट्ठी वा सासणसम्माइट्ठी वा णियमा दंसणमोहस्स अबंधगो होदि त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसमुच्चयो घेत्तव्वो। अथवा जहा मिच्छाइट्ठी मिच्छत्तोदएण मिच्छत्तस्सेव बंधगो होदि त्ति भणिदो, किमेवं सम्मामिच्छाइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी च सम्मामिच्छत्त-वेदग-सम्मत्ताणमुदएण ताणि चेव सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि जहारिहं बंधइ आहो ण बंधदि त्ति भणिदे ताणि ण बंधदि त्ति जाणावणट्ठमेदं गाहासुत्तमवइण्णमिदि वक्खाणेयव्वं, सम्मामिच्छाइट्ठि-वेदगसम्माइट्ठीसु दंसणमोहणीयबंधाभावस्स मुत्तकंठमिहोवइट्ठत्तादो। णवरि 'खीणो वि अबंधगो होदि' त्ति एदं पदं खइयसम्माइट्ठिम्मि दंसणमोहणीयबंधा-

बन्ध मिथ्यात्वके निमित्तसे ही होता है, उसके बिना शेष कारणोंसे दर्शनमोहनीयका बन्ध नहीं होता इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेके गाथासूत्रका अवतार हुआ है—

**सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव दर्शनमोहनीयका अबन्धक होता है। तथा वेदकसम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि तथा 'अपि' शब्द द्वारा परिगृहीत उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीव भी दर्शनमोहनीयका अबन्धक होता है। ८-१०२।**

§ २०३. मिथ्यादृष्टि जीव ही दर्शनमोहनीयका मिथ्यात्वके निमित्तसे बन्धक होता है, अन्य नहीं। इससे सम्यग्मिथ्यादृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि तथा 'अपि' शब्दसे उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि दर्शनमोहका नियमसे अबन्धक होता है इस प्रकार यह सूत्रार्थका समुच्चय ग्रहण करना चाहिए। अथवा जिस प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वके उदयसे मिथ्यात्वका ही बन्धक होता है ऐसा कहा है उसी प्रकार क्या सम्यग्मिथ्यादृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्व और वेदकसम्यक्त्वके उदयसे उन्हीं सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको यथायोग्य बाँधता है या नहीं बाँधता ऐसा प्रश्न करने पर नहीं बाँधता इस बातका ज्ञान करानेके लिये यह गाथासूत्र अवतीर्ण हुआ है ऐसा व्याख्यान करना चाहिए, क्योंकि सम्यग्मिथ्यादृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें दर्शनमोहनीयके बन्धके अभावका मुक्तकण्ठ होकर इस गाथासूत्रमें उपदेश दिया गया है। इतनी विशेषता है कि 'खीणो वि अबंधगो होदि' इस प्रकार इस पदका प्रयोजन क्षायिकसम्यग्दृष्टिके दर्शनमोहनीय-

१. ता०प्रतौ बंधो होइ इतोऽग्रे 'मिच्छाइट्ठी चेव दंसणमोहणीयस्स मिच्छत्तपच्चयेण बंधगो होइ' इति पाठः समुपलभ्यते। २. ता०प्रतौ—गाहासुत्तावयारो इति पाठः।
३. ता०प्रतौ 'चेव' इति पाठो नास्ति।

भावपदुप्पायणफलमणुत्तसिद्धं पि मंदबुद्धिसिस्सजणाणुग्गहणट्ठमुवइट्ठमिदि गहेयव्वं ।

**(५०) अंतोमुहुत्तमद्धं सव्वोवसमेण होइ उवसंतो ।**
**तत्तो परमुदयो खलु तिण्णेक्कदरस्स कम्मस्स ॥१०३॥**

§ २०४. एसा गाहा दंसणमोहणीयस्स सव्वोवसमेणावट्ठाणकालपमाणावहारणट्ठमागया । तं जहा—एत्थंतोमुहुत्तमद्धमिदि वुत्ते अंतरदीहत्तस्स संखेज्जदिभागमेत्तो कालो गहेयव्वो । कुदो एदमवगम्मदे ? पुव्वपरूविदप्पाबहुआदो । सव्वोवसमेणे त्ति

---

के बन्धके अभावका कथन करना है जो अनुक्तसिद्ध है, फिर भी मन्दबुद्धि शिष्यजनोंका अनुग्रह करनेके लिये इसका उपदेश दिया है ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

विशेषार्थ—उक्त गाथासूत्रमें किन जीवोंके दर्शनमोहनीयका बन्ध नहीं होता इसका निर्देश करते हुए बतलाया है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव दर्शनमोहनीयका बन्ध नहीं करता। तथा गाथासूत्रमे आये हुए 'अपि' शब्द द्वारा यह भी सूचित किया है कि उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि भी दर्शनमोहनीयका बन्ध नहीं करता। टीकामें इस सूत्रकी रचनाका एक प्रयोजन यह भी बतलाया है कि जिस प्रकार मिथ्यात्वके उदयसे मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वका बन्धक होता है उसीप्रकार क्या सम्यग्मिथ्यात्वके उदयसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्वका और वेदकसम्यक्त्वके उदयसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्वका बन्धक होता है या नहीं होता ऐसा प्रश्न होने पर उक्त गाथासूत्र इसका निषेध करनेके लिये आया है। तात्पर्य यह है उपशमसम्यक्त्वके कालमें ही सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी संक्रमद्वारा सत्ता प्राप्त होती है, अन्य भावके कालमें नहीं। अब यदि कोई यह प्रश्न करे कि जिस प्रकार मिथ्यात्वके उदयसे मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वका बन्धक होता है उस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्व के उदयसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्वका या सम्यक्त्वके उदयसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्वका संक्रामक ( कर्मबन्धक ) होता है क्या ? तो इस प्रश्नका समाधान करनेके लिये उक्त गाथासूत्रमें यह कहा गया है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव दर्शनमोहरूप सम्यग्मिथ्यात्वका अबन्धक है। उसी प्रकार वेदकसम्यग्दृष्टि जीव दर्शनमोहरूप सम्यक्त्वका अबन्धक है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उक्त तीनों प्रकृतियोंका क्षय कर चुका है, इसलिए वह इनका अबन्धक होता ही है। फिर भी मन्दबुद्धि शिष्योंको ज्ञान करानेके लिये गाथासूत्रमें इस विषयका अलगसे विधान किया है।

**सभी दर्शनमोहनीय कर्मोंका उदयाभावरूप उपशम होनेसे वे अन्तर्मुहूर्त काल तक उपशान्त रहते हैं। उसके बाद तीनोंमेंसे किसी एक कर्मका नियमसे उदय होता है ॥ ९-१०३ ॥**

§ २०४. यह गाथा दर्शनमोहनीय कर्मके सर्वोपशमसे अवस्थान कालके प्रमाणका अवधारण करनेके लिये आई है। यथा—यहाँ गाथासूत्रमें 'अंतोमुहुत्तमद्धं' ऐसा कहने पर अन्तरायामका संख्यातवाँ भागप्रमाण काल लेना चाहिए।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

वुत्ते सव्वेसिं दंसणमोहणीयकम्माणमुवसमेणे त्ति घेत्तव्वं, मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं तिण्णं पि कम्माणं पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसविहत्ताणमेत्थुवसंतभावेणावट्ठाणदंसणादो। 'तत्तो परमुदयो खलु' ततः परं दर्शनमोहमेदानां त्रयाणां कर्मणामन्यतमस्य नियमेनोदयपरिप्राप्तिरित्युक्तं भवति। तदो उवसंतद्धाए खीणाए तिण्हं कम्माणमण्णदरं जं वेदेदि तमोकड्डियूणुदयावलियं पवेसेदि, असंखेज्जलोगपडिभागेण उदयावलियबाहिरे च एगगोवुच्छसेढीए णिक्खेवं करेइ। सेसाणं च दोण्हं कम्माणमुदयावलियबाहिरे एगगोवुच्छायारेण णिक्खेवं करेइ। एवं तिण्हमण्णदरस्स कम्मस्स उदयपरिणामेण मिच्छाइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी वेदयसम्माइट्ठी वा होदि त्ति एसो गाहापच्छद्धे सुत्तत्थसमुच्चओ।

§ २०५. संपहि अणादियमिच्छाइट्ठी सम्मत्तमुप्पाएमाणो णियमा तिण्णि वि करणाणि कादूण सव्वोवसमेणेव परिणदो सम्मत्तमुप्पाएदि। सादियमिच्छाइट्ठी वि जो

---

समाधान—पूर्वमें कहे गये अल्पबहुत्वसे जाना जाता है।

गाथासूत्रमें 'सव्वोवसमेण' ऐसा कहने पर सभी दर्शनमोहनीय कर्मोंके उपशमसे ऐसा ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशरूपसे विभक्त मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन तीनों ही कर्मोंका यहाँ पर उपशान्तरूपसे अवस्थान देखा जाता है। 'तत्तो परमुदयो खलु' अर्थात् उसके बाद दर्शनमोहके भेदरूप तीनों कर्मोंमेंसे किसी एकके नियमसे उदयकी प्राप्ति होती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। उसके बाद उपशान्त कालके क्षीण होने पर तीनों कर्मोंमेंसे अन्यतर जिस कर्मका वेदन करता है उसको अपकर्षण कर उदयावलिमें प्रविष्ट करता है तथा असंख्यात लोकके प्रतिभागरूपसे उदयावलिके बाहर एक गोपुच्छाकार पंक्तिरूपसे निक्षेप करता है। तथा शेष दोनों कर्मोंका उदयावलिके बाहर एक गोपुच्छाकाररूपसे निक्षेप करता है। इस प्रकार तीनोंमेंसे किसी एक कर्मका उदयपरिणाम होनेसे मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि या वेदकसम्यग्दृष्टि होता है इस प्रकार यह गाथाका उत्तरार्धसम्बन्धी सूत्रके अर्थका समुच्चय है।

विशेषार्थ—इस गाथासूत्रमें दर्शनमोहनीयकी तीनों प्रकृतियाँ कितने काल तक उपशान्त रहती हैं और उसके बाद इन तीनों प्रकृतियोंका क्या होता है इस बातका विचार करते हुए बतलाया गया है कि ये तीनों प्रकृतियाँ अन्तरायामके संख्यातवें भागप्रमाण अन्तर्मुहूर्त काल तक उपशम होनेसे उपशान्त रहती हैं। गाथामें सर्वोपशम पाठ आया है। उसका इतना ही तात्पर्य है कि उपशम सम्यग्दृष्टिके दर्शनमोहनीयकी सब प्रकृतियोंका उदयाभावरूप उपशम होता है। दर्शनमोहनीयकी सब प्रकृतियोंसम्बन्धी प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश चारों ही अन्तर्मुहूर्त काल तक उदयके अयोग्य हो जाते हैं यही यहाँ सर्वोपशम है। उसके बाद तीनोंमेंसे किसी एक प्रकृतिका नियमसे उदय होता है। जिसका उदय होता है उसका उदय समयसे अपकर्षण होकर निक्षेप होता है और जिन दो प्रकृतियोंका उदय नहीं होता उनका उदयावलिके बाहर अपकर्षण होकर निक्षेप होता है।

§ २०५ अब अनादि मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्वको उत्पन्न करता हुआ नियमसे तीनों ही करणोंको करके सर्वोपशमरूपसे ही परिणत होकर सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है तथा सादि

विप्पकिट्ठंतरेण सम्मत्तमुप्पाएइ सो वि सव्वोवसमेणेव सम्मत्तं समुप्पाएदि। तदण्णो पुण देस-सव्वोवसमेहिं भजियव्वो त्ति एवंविहस्स अत्थविसेसस्स णिण्णयविहाणट्ठमुत्तरं गाहासुत्तमुवइट्ठं—

**(५१) सम्मत्तपढमलंभो सव्वोवसमेण तह वियट्ठेण।**
**भजियव्वो य अभिक्खं सव्वोवसमेण देसेण ॥१०४॥**

§ २०५ जो सम्मत्तपढमलंभो अणादियमिच्छाइट्ठिविसओ सो सव्वोवसमेणेव होइ, तत्थ पयारंतरासंभवादो। 'तह वियट्ठेण' मिच्छत्तं गंतूण जो बहुअं कालमंतरिदूण सम्मत्तं पडिवज्जइ सो वि सव्वोवसमेणेव पडिवज्जइ। एदस्स भावत्थो—सम्मत्तं घेत्तूण पुणो मिच्छत्तं पडिवज्जिय सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि उव्वेल्लिदूण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकालेण वा अद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तकालेण वा जो सम्मत्तं पडिवज्जइ, सो वि सव्वोवसमेणेव पडिवज्जइ त्ति भणिदं होइ। 'भजियव्वो य अभिक्खं' जो पुण सम्मत्तादो परिवडिदो संतो लहुमेव पुणो पुणो सम्मत्तग्गहणाभिमुहो होइ सो सव्वोवसमेण वा देसोवसमेण वा सम्मत्तं पडिवज्जइ। किं कारणं? जइ वेदगपाओग्गकालब्भंतरे चेव सम्मत्तं पडिवज्जइ तो देसोवसमेण अण्णहा पुण सव्वोवसमेण पडिवज्जइ

---

मिथ्यादृष्टि जीव भी विप्रकृष्ट अन्तरसे सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है वह भी सर्वोपशमद्वारा ही सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है। उससे अन्य जीव तो देशोपशम और सर्वोपशमरूपसे भजनीय है इस तरह इस प्रकारके अर्थविशेषका निर्णय करनेके लिए आगेके गाथासूत्रका उपदेश दिया है—

सम्यक्त्वका प्रथम लाभ सर्वोपशमसे ही होता है तथा विप्रकृष्ट जीवके द्वारा भी सम्यक्त्वका लाभ सर्वोपशमसे ही होता है। किन्तु शीघ्र ही पुनः पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाला जीव सर्वोपशम और देशोपशमसे भजनीय है॥ १०–१०४॥

§ २०५. जो अनादि मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्वका प्रथम लाभ होता है वह सर्वोपशमसे ही होता है, क्योंकि उसके अन्य प्रकारसे सम्यक्त्वकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। 'तह वियट्ठेण' अर्थात् मिथ्यात्वको प्राप्त कर जो बहुत कालका अन्तर देकर सम्यक्त्वको प्राप्त करता है वह भी सर्वोपशमसे ही प्राप्त करता है। इसका भावार्थ—सम्यक्त्वको ग्रहण कर पुन मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण कालद्वारा या अर्ध पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कालद्वारा जो सम्यक्त्वको प्राप्त करता है वह भी सर्वोपशमसे ही प्राप्त करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। 'भजियव्वो य अभिक्खं' अर्थात् जो सम्यक्त्वसे पतित होता हुआ शीघ्र ही पुनः पुनः सम्यक्त्वके ग्रहणके अभिमुख होता है वह सर्वोपशमसे अथवा देशोपशमसे सम्यक्त्वको प्राप्त करता है, क्योंकि यदि वह वेदक प्रायोग्य कालके भीतर ही सम्यक्त्वको प्राप्त करता है तो देशोपशमसे अन्यथा सर्वोपशमसे

त्ति तत्थ भयणिज्जत्तदंसणादो। तत्थ सव्वोवसमो णाम तिण्हं कम्माणमुदयाभावो सम्मत्तदेसघादिफद्दयाणमुदओ देसोवसमो त्ति भण्णदे।

(५.२) सम्मत्तपढमलंभस्साणंतरं पच्छदो य मिच्छत्तं।
लंभस्स अपढमस्स दु भजियव्वो पच्छदो होदि ॥१०५॥

§ २०६. एसा गाहा सम्मत्तं गेण्हमाणस्साणंतरं पच्छदो मिच्छत्तोदयणियमो किमत्थि आहो णत्थि त्ति पुच्छाए णिण्णयकरणट्ठमागया। एदिस्से अत्थो उच्चदे। तं जहा—सम्मत्तस्स जो पढमलंभो अणादियमिच्छाइट्ठिविसओ तस्साणंतरं पच्छदो अणंतरपच्छिमावत्थाए मिच्छत्तमेव होइ, तत्थ जाव पढमट्ठिदिचरिमसमओ त्ति ताव मिच्छत्तोदयं मोत्तूण पयारंतरासंभवादो। 'लंभस्स अपढमस्स दु' जो खलु अपढमो सम्मत्तपडिलंभो तस्स पच्छदो मिच्छत्तोदयो भजियव्वो होइ। सिया मिच्छाइट्ठी होदूण वेदयसम्मत्तमुवसमसम्मत्तं वा पडिवज्जइ, सिया सम्मामिच्छाइट्ठी होदूण वेदयसम्मत्तं पडिवज्जइ त्ति भावत्थो।

---

प्राप्त करता है इस प्रकार वहाँ भजनीयपना देखा जाता है। उनमेंसे तीनों कर्मोंके उदयाभावका नाम सर्वोपशम है और सम्यक्त्व देशघाति प्रकृतिके स्पर्धकोंका उदय देशोपशम कहलाता है।

विशेषार्थ—इस गाथासूत्रमें किसीके कौन सम्यक्त्व होता है इसका विधान किया गया है। अनादि मिथ्यादृष्टिके और जिसका वेदककाल व्यतीत हो गया है ऐसे किसी भी सादि मिथ्यादृष्टिके सर्वोपशमसे प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी ही प्राप्ति होती है। किन्तु जो सादि मिथ्यादृष्टि जीव वेदक कालके भीतर अवस्थित है ऐसा सादि मिथ्यादृष्टि जीव देशोपशमसे वेदकसम्यक्त्वको ही प्राप्त करता है। शेष कथन सुगम है।

सम्यक्त्वके प्रथम लाभके अनन्तर पूर्व पिछले समयमें मिथ्यात्व ही होता है। अप्रथम लाभके अनन्तर पूर्व पिछले समयमें मिथ्यात्व भजनीय है ॥ ११-१०५ ॥

§ २०६ यह गाथा सम्यक्त्वको ग्रहण करनेवाले जीवके अनन्तर पूर्व पिछले समयमें क्या मिथ्यात्वका उदय है अथवा नहीं है ऐसी पृच्छा होने पर उसका निर्णय करनेके लिए आई है। अब उसका अर्थ कहते हैं। यथा—अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके सम्यक्त्वका जो प्रथम लाभ होता है उसके 'अणंतरं पच्छदो' अर्थात् अनन्तरपूर्व पिछली अवस्थामें मिथ्यात्व ही होता है, क्योंकि उसके प्रथम स्थितिका अन्तिम समय प्राप्त होने तक मिथ्यात्वके उदयको छोड़ कर प्रकारान्तर सम्भव नहीं है। 'लंभस्स अपढमस्स दु' अर्थात् जो नियमसे अप्रथम अर्थात् द्वितीयादि बार सम्यक्त्वका लाभ है उसके अनन्तरपूर्व पिछली अवस्थामें मिथ्यात्वका उदय भजनीय है। कदाचित् मिथ्यादृष्टि होकर वेदकसम्यक्त्व या उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करता है और कदाचित् सम्यग्मिथ्यादृष्टि होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करता है यह उक्त गाथासूत्रका भावार्थ है।

विशेषार्थ—इस गाथासूत्रमें जो अनादि मिथ्यादृष्टि जीव पहली बार सम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके सम्यक्त्वको प्राप्त करनेके अनन्तरपूर्व पिछली अवस्थामें कौनसा भाव होता

§ २०७. संपहि दंसणमोहोवसामणासंबंधेण दंसणमोहणीयस्स कम्मस्स कदमम्मि अवत्थाविसेसे कधं संकमो होइ ण होइ त्ति एत्थ एवंविहस्स अत्थविसेसस्स फुडीकरणट्ठमुवरिमगाहासुत्तमुवइण्णं—

**(५३) कम्माणि जस्स तिण्णि दु णियमा सो संकमेण भजियव्वो।**
**एयं जस्स दु कम्मं संकमणे सो ण भजियव्वो ॥१०६॥**

---

हैं तथा जो सादि मिथ्यादृष्टि द्वितीयादि वार सम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके सम्यक्त्वको प्राप्त करनेके अनन्तर पूर्व पिछली अवस्थामें कौनसा भाव होता है इसका विधान किया गया है। गाथाके पूर्वार्धमें 'अणंतरं पच्छदो' पाठ आया है तथा उत्तरार्धमें मात्र 'पच्छदो' शब्द आया है। इनमेंसे 'अणंतरं' पाठ तो ऐसा है जिसे अन्य पदके साथ विवक्षित भावसे आगेके भावको सूचित करनेके लिये भी लागू किया जा सकता है और अन्य पदके साथ विवक्षित भावसे पिछले भावकोसूचित करनेके लिये भी लागू किया जा सकता है। जैसे'अनन्तर पिछला' कहनेसे अव्यवहित पूर्व पिछले भावका ग्रहण होता है और 'अनन्तर उत्तर' कहनेसे अव्यवहित उत्तर भावका ग्रहण होता है। 'अनन्तर' पद स्वयं न तो पिछले भावको सूचित करता है और न ही उत्तर भावको। अतः प्रकृतमें 'पच्छदो' पाठका क्या अर्थ है इसका आगमसे प्रयुक्त हुए 'पच्छ' तथा 'पच्छिम' शब्दोंका वहाँ जो अर्थ लिया गया है उसे ध्यानमें रख कर विचार होना चाहिए। इसके लिये सर्व प्रथम हम तीन आनुपूर्वियोंको लेते हैं। इनमें एक 'पच्छाणुपुव्वी' भी है। इस द्वारा गणना करनेपर अन्तिम भावसे गणनाक्रमसे पिछले भाव लिये जाते हैं। यहाँ 'पच्छ' शब्द गणनाक्रमसे आगेके भावोंकी अपेक्षा पिछले भावोंको सूचित करता है। उसी प्रकार प्रकृतमें भी 'अणंतरं पच्छदो' का अर्थ करने पर प्रथमोपशम सम्यक्त्वसे अव्यवहितपूर्व पिछले भावका ही ग्रहण होगा। इससे यह अर्थ सुतरां फलित हो जाता है कि प्रथमोपशम सम्यक्त्वसे अव्यवहित पूर्व पिछले समयमें एकमात्र मिथ्यात्व भाव ही होता है। प्रथमोपशमके बाद कौन भाव होता है इसका सूचन करना इस गाथाका तात्पर्य नहीं है। इसका सूचन गाथा क्रमांक १०३ में पहले ही सूत्रकार कर आये हैं। तथा 'पच्छिम' शब्दको ध्यानमें रख कर विचार करने पर भी यही अर्थ फलित होता है। उदाहरणार्थ जयधवला पु० ६ पृ० १६७ और २८३ के चूर्णिसूत्रों पर दृष्टिपात करनेसे विदित होता है कि उन सूत्रोंमें'अन्तिम' अर्थको सूचित करनेके लिये 'अपच्छिम'शब्दका प्रयोग हुआ है, 'पच्छिम' शब्दका नहीं। स्पष्ट है कि 'पच्छिम' शब्द विवक्षित भावसे पिछले भावको ही सूचित करता है। उक्त गाथामें आये हुए 'पच्छदो' शब्दका भी यही आशय लेना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

§ २०७. अब दर्शनमोहकी उपशामनाके सम्बन्धसे दर्शनमोहनीय कर्मका किस अवस्थाविशेषमें किस प्रकार संक्रम होता है अथवा नहीं होता है इसप्रकार इस अर्थविशेषका स्पष्टीकरण करनेके लिए आगेका गाथासूत्र आया है—

जिस जीवके दर्शनमोहके तीन या दो कर्म सत्तामें होते हैं वह नियमसे संक्रमकी अपेक्षा भजनीय है। किन्तु जिस जीवके एक ही कर्म सत्तामें होता है वह संक्रमकी अपेक्षा भजनीय नहीं है ॥ १२-१०६ ॥

§ २०८. अस्य गाथासूत्रस्यार्थ उच्यते—जस्स जीवस्स तिण्णि कम्माणि मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तसण्णिदाणि, 'दु' सद्देण दोण्णि वा मिच्छत्त-सम्मत्ताणमण्णदरेण विणा जस्सत्थि सो णियमा णिच्छएण संकमेण भजियव्वो, सिया दंसणमोहस्स संकामओ होइ, सिया च ण होइ त्ति तत्थ भयणाए फुडमुवलंभादो। तं जहा—मिच्छाइट्ठि-सम्माइट्ठीसु तिण्णि संतकम्माणि होदूण दोण्हं संकमो भवदि, सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणं च जहाकमं तत्थ संकंतिदंसणादो। पुणो सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीसु तिण्णि संतकम्माणि होदूण तत्थेगस्स वि दंसणमोहकम्मस्स संकमो णत्थि, तत्थ तस्संकमणसत्तीए अच्चताभावेण पडिसिद्धत्तादो। तहा सम्मत्तमुव्वेल्लेमाणस्स जाधे आवलियपविट्ठं ताधे मिच्छाइट्ठिस्स तिण्णि संतकम्माणि होदूणेगस्सेव संकमो होइ। मिच्छत्ते वा खविज्जमाणं जाधे उदयावलियबाहिरं सव्वं खविदं ताधे सम्मादिट्ठिम्मि तिण्हं संतकम्मं होदूणेक्कस्सेव संकमो होइ। एदेण कारणेण दंसणमोहणीयस्स तिविहसंतकम्मिओ सिया दोण्हं एक्किस्से वा संकामओ होइ, सिया ण कस्स वि संकामओ त्ति भयणीयत्तं सिद्धं।

§ २०९. संपहि दुविहसंतकम्मियस्स संकमावेक्खाए भयणिज्जत्तं वुच्चदे, खविदमिच्छत्त-वेदगसम्माइट्ठिम्मि सम्मत्तं वा उव्वेल्लेयूण ट्ठिदमिच्छाइट्ठिम्मि दोण्णि संतकम्माणि होदूणेक्कस्स संकमो भवदि जाव सम्मामिच्छत्तं खविज्जमाणमुव्वेल्लिज्जमाणं

---

§ २०८ अब इस गाथासूत्रका अर्थ कहते हैं—जिस जीवके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व संज्ञावाले तीन कर्म तथा गाथामें पठित 'तु' शब्द द्वारा सूचित जिस जीवके मिथ्यात्व और सम्यक्त्व इनमेंसे किसी एकके विना दो कर्म हैं वह 'णियमा' अर्थात् निश्चयसे संक्रमकी अपेक्षा भजितव्य है, कदाचित् दर्शनमोहका संक्रामक होता है और कदाचित् नहीं होता है इसप्रकार वहाँ भजितव्यपनेकी स्पष्टरूपसे उपलब्धि होती है। यथा—मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीवोंमें तीन सत्कर्म होकर दोका संक्रम होता है, क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका तथा मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका वहाँ क्रमसे संक्रम देखा जाता है। किन्तु सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें तीनों कर्मोंकी सत्ता होकर वहाँ एक भी दर्शनमोहनीय कर्मका संक्रम नहीं होता, क्योंकि इन दोनों गुणस्थानोंमें संक्रमण शक्तिका अत्यन्त अभाव होनेसे वहाँ उनका संक्रमण प्रतिषिद्ध है। तथा उद्वेलना करनेवाले जीवके जब सम्यक्त्व उदयावलिमें प्रविष्ट होता है तब मिथ्यादृष्टि जीवके तीन सत्कर्म होते हुए भी एकका ही संक्रम होता है। अथवा क्षयको प्राप्त होता हुआ उदयावलिके बाहरका सब मिथ्यात्व कर्म जब क्षयको प्राप्त हो जाता है तब सम्यग्दृष्टि जीवके तीन कर्मोंकी सत्ता होते हुए एकका ही संक्रम होता है। इस कारणसे दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव कदाचित् दोका और कदाचित् एकका संक्रामक होता है तथा कदाचित् एकका भी संक्रामक नहीं होता, इसलिये भजनीयपना सिद्ध होता है।

§ २०९ अब दोकी सत्तावालेके संक्रमकी अपेक्षा भजनीयपनेका कथन करते हैं—जिसने मिथ्यात्वका क्षय किया है ऐसे वेदक सम्यग्दृष्टि जीवके अथवा सम्यक्त्वकी उद्वेलना करके स्थित हुए मिथ्यादृष्टि जीवके दो कर्मोंकी सत्ता होकर एकका संक्रम तबतक होता है

वा अणावलियपविट्ठं ति आवलियपविट्ठसम्मामिच्छत्तस्स वुण सम्माइट्ठिस्स मिच्छाइट्ठिस्स वा दुविहसंतकम्मियस्स एक्कस्स वि संकमो णत्थि। तदो एत्थ वि संकमेण भयणिज्जत्तं सिद्धं। 'एयं जस्स दु कम्मं' एवं भणिदे जस्स सम्माइट्ठिस्स मिच्छाइट्ठिस्स वा खवणुव्वेल्लणावसेण सम्मत्तं वा मिच्छत्तं वा एक्कमेव संतकम्मवसिट्ठं ण सो संकमेण भयणिज्जो, संकमभंगस्स तत्थ अच्चंताभावेण असंकामगो चेव सो होइ त्ति भणिदं होइ।

---

जबतक क्षयको प्राप्त होता हुआ या उद्वेलनाको प्राप्त होता हुआ सम्यग्मिथ्यात्व कर्म उदयावलिमें प्रविष्ट नहीं हुआ है। किन्तु जिसके सम्यग्मिथ्यात्व कर्म उदयावलिमें प्रविष्ट हो जाता है ऐसे दो प्रकारके कर्मोंकी सत्तावाले सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीवके एकका भी संक्रम नहीं होता, इसलिये यहाँ पर भी संक्रमकी अपेक्षा भजनीयपना सिद्ध हुआ। 'एयं जस्स दु कम्म' ऐसा कहने पर जिस सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीवके क्षपणावश और उद्वेलनावश क्रमसे सम्यक्त्व और मिथ्यात्व एक ही सत्कर्म शेष रहता है वह संक्रमकी अपेक्षा भजनीय नहीं है, क्योंकि उसके संक्रमरूप विकल्पका अत्यन्त अभाव होने से वह असंक्रामक ही होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

**विशेषार्थ**—इस गाथासूत्रमें दर्शनमोहनीयकी तीन, दो या एक कर्मकी सत्तावाले जीवके कहाँ कितनेका संक्रम होता है या नहीं होता है इसका विचार किया गया है। यहाँ टीका में यह सब विस्तारसे स्पष्ट किया ही है, इसलिये यहाँ मात्र कोष्ठक दे देना चाहते हैं। यथा—

| स्वामी | सत्ता | संक्रम या असंक्रम |
|---|---|---|
| १ मिथ्यादृष्टि | ३ की सत्ता | २ का—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम |
| २ ,, | ,, (सम्यक्त्व उदयावलिप्रविष्ट | १ का—सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम |
| ३ ,, | सम्यक्त्व विना २ की सत्ता | ,, |
| ४ ,, | ,, (सम्यग्मिथ्यात्व उ. आ. प्र.) | संक्रम नहीं |
| ५ ,, | १ मिथ्यात्वकी सत्ता | ,, |
| ६ सासादन | ३ की सत्ता | ,, |
| ७ सम्यग्मिथ्यादृ० | ,, | ,, |
| ८ सम्यग्दृष्टि | ,, | २ का—मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सं० |
| ९ ,, | ,, (मिथ्यात्व आवलि प्र०) | १ का—सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम |
| १० ,, | मिथ्यात्व विना दो की सत्ता | ,, |
| ११ ,, | २ की सत्ता (सम्यग्मिथ्यात्व आ.प्र) | संक्रम नहीं |
| १२ ,, | १ सम्यक्त्वकी सत्ता | ,, |

१. ता०प्रतौ आवलियपविट्ठं इति पाठ।

(५४) सम्माइट्ठी सद्दहदि पवयणं णियमसा दु उवइट्ठं ।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणिओगा ॥१०७॥

§ २१०. एदस्स सम्माइट्ठिलक्खणविहाणट्ठमवइण्णस्स गाहासुत्तस्स अत्थविवरणं कस्सामो । तं जहा—सम्माइट्ठी जो जीवो सो णियमसा दु णिच्छएणेव पवयणमुवइट्ठं सद्दहदि त्ति गाहापुव्वद्धे पदाहिसंबंधो । तत्थ पवयणमिदि वुत्ते पयरिसजुत्तं वयणं पवयणं सव्वण्होवएसो परमागमो त्ति सिद्धंतो त्ति एयट्ठो, तत्तो अण्णदरस्स पयरिसजुत्तस्स वयणस्साणुवलंभादो । तदो एवंविहं पवयणमुवइट्ठं सम्माइट्ठी जीवो णिच्छएण सद्दहइ त्ति सुत्तत्थसमुच्चओ । 'सद्दहइ असब्भावं' एवं भणिदे असब्भूदं पि अत्थं सम्माइट्ठी जीवो गुरुवयणमेव पमाणं कादूण सयमजाणमाणो संतो सद्दहदि त्ति भणिदं होदि । एदेण आणासम्मत्तस्स लक्खणं परूविदमिदि घेत्तव्वं । कथं पुनरसद्भूतमर्थमज्ञानात् प्रतिपद्यमानः सम्यग्दृष्टिरिति चेत्? न, परमागमोपदेश एवायमित्यध्यवसायेन तथा प्रतिपद्यमानस्यानवबुद्धपरमार्थस्यापि तस्य सम्यग्दृष्टित्वाप्रच्युतेः । यदि पुनः सूत्रान्तरेणाविसंवादिना समयविद्भिर्याथात्म्येन प्रज्ञाप्यमानमपि तमर्थमसद्ग्रहान्न

सम्यग्दृष्टि जीव उपदिष्ट प्रवचनका नियमसे श्रद्धान करता है । तथा स्वयं न जानता हुआ गुरुके नियोगसे असद्भूत अर्थका भी श्रद्धान करता है ॥ १०७ ॥

§ २१० सम्यग्दृष्टिके लक्षणका कथन करनेके लिये आये हुए इस गाथासूत्रके अर्थका कथन करेंगे । यथा—जो सम्यग्दृष्टि जीव है वह 'णियमसा' निश्चयसे ही उपदिष्ट प्रवचनका श्रद्धान करता है इसप्रकार गाथाके पूर्वार्धमें पदोंका सम्बन्ध है । उनमेंसे 'पवयण' ऐसा कहने पर उसका अर्थ है—प्रकर्ष युक्त वचन । प्रवचन अर्थात् सर्वज्ञका उपदेश, परमागम और सिद्धान्त यह एकार्थवाची शब्द हैं, क्योंकि उससे अन्यतर प्रकर्षयुक्त वचन उपलब्ध नहीं होता । अतः इस प्रकारके उपदिष्ट प्रवचनका सम्यग्दृष्टि जीव निश्चयसे श्रद्धान करता है इस प्रकार सूत्रार्थका समुच्चय है । 'सद्दहइ असब्भावं' ऐसा कहने पर असद्भूत अर्थका भी सम्यग्दृष्टि जीव गुरुवचनको ही प्रमाण करके स्वयं नहीं जानता हुआ श्रद्धान करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इस गाथासूत्र वचन द्वारा आज्ञा सम्यक्त्वका लक्षण कहा गया है ऐसा ग्रहण करना चाहिए ।

शंका—अज्ञानवश असद्भूत अर्थको स्वीकार करनेवाला जीव सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकता है ?

समाधान—यह परमागमका ही उपदेश है ऐसा निश्चय होनेसे उस प्रकार स्वीकार करनेवाले उस जीवको परमार्थका ज्ञान नहीं होने पर भी सम्यग्दृष्टिपनेसे च्युति नहीं होती ।

यदि पुनः कोई परमागमके ज्ञाता विसंवाद रहित दूसरे सूत्र द्वारा उस अर्थको यथार्थ-

१ [illegible]

प्रतिपद्यते तदा प्रभृति स एव जीवो मिथ्यादृष्टिपदवीमवगाहते, प्रवचनविरुद्धबुद्धित्वादित्येष समयनिश्चयः । तथा चोक्तं—

सुत्तादो तं सम्मं दरिसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि ।
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठि त्ति तदो पहुडि जीवो ॥ १ ॥ इति ।

ततः सूक्ष्मार्थाज्ञाधिगमाभ्यां प्रवचनोपदिष्टार्थाऽवैपरीत्यश्रद्धानं सम्यग्दृष्टिलक्षणमिति ।

**(५५) मिच्छाइट्ठी णियमा उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि ।**
**सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥१०८॥**

§ २११. एदस्स मिच्छाइट्ठिलक्खणपरूवणट्ठमागयस्स गाहासुत्तस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा—जो खलु मिच्छाइट्ठी जीवो सो णियमा णिच्छएण पवयणमुवइट्ठं ण सद्दहदि ।

---

रूपसे बतलावे फिर भी वह जीव असत् आग्रहवश उसे स्वीकार करता है तो उस समयसे लेकर वह जीव मिथ्यादृष्टि पदका भागी हो जाता है, क्योंकि वह प्रवचन विरुद्ध बुद्धिवाला है यह परमागमका निश्चय है । कहा भी है—

सूत्रसे समीचीनरूपसे दिखलाये गये उस अर्थका जब यह जीव श्रद्धान नहीं करता है उस समयसे लेकर वही जीव मिथ्याष्टि हो जाता है ॥ १ ॥

इसलिये यह ठीक कहा है कि प्रवचनमें उपदिष्ट हुए अर्थका आज्ञा और अधिगमसे विपरीतताके बिना श्रद्धान करना सम्यग्दृष्टिका लक्षण है ।

**विशेषार्थ**—इस गाथासूत्रमें जो यह बतलाया है कि सम्यग्दृष्टि जीव सर्वज्ञ वीतराग देव द्वारा उपदिष्ट प्रवचनका तो नियमसे श्रद्धान करता है । किन्तु कदाचित् स्वयं न जानता हुआ गुरुके निमित्तसे असद्भूत अर्थका भी श्रद्धान करता है । सो उसका यह अर्थ नहीं है कि सम्यग्दृष्टि जीवको जीवादि नौ पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको छोड़कर गुरुके निमित्तसे विपरीतरूपसे भी उनकी श्रद्धा हो जाती है । किन्तु उक्त कथनका इतना ही तात्पर्य है कि जिनागममें जिन सूक्ष्म अर्थोंका विवेचन हुआ है, कदाचित् गुरुके निमित्तसे उनमेंसे किसी एकका विपरीत ज्ञान हो जाय और अविसंवादी शास्त्रान्तरसे जब तक सम्यक् अर्थकी प्रतिपत्तिका योग न मिले तब तक वह वैसी श्रद्धा करता हुआ भी सम्यग्दृष्टि ही है । हाँ यदि समयज्ञ कोई विशेष ज्ञानी अविसंवादी दूसरे शास्त्रसे उसे उक्त विषयका सम्यक् परिज्ञान करा दे, फिर भी वह असत् आग्रह वश अपनी हट न छोड़े तो उस समयसे लेकर वह नियमसे मिथ्यादृष्टि हो जाता है ऐसा यहाँ स्पष्टरूपसे समझना चाहिए ।

**मिथ्यादृष्टि जीव नियमसे उपदिष्ट प्रवचनका श्रद्धान नहीं करता है तथा उपदिष्ट या अनुपदिष्ट असद्भूत अर्थका श्रद्धान करता है ॥ १०८ ॥**

§ २११. मिथ्यादृष्टिके लक्षणका कथन करनेके लिये आये हुए इस गाथासूत्रके अर्थका कथन करते हैं । यथा—जो नियमसे मिथ्यादृष्टि जीव है वह 'णियमा' निश्चयसे उपदिष्ट प्रवचनका श्रद्धान नहीं करता है ।

किं कारणमिदि चे ? दंसणमोहणीयोदयजणिदविवरीयाहिणिवेसत्तादो। तदो चेव 'सद्दहइ असब्भावं', असद्भूतमेवार्थमपरमार्थस्वरूपमयं श्रद्धत्ते मिथ्यात्वोदयादित्यर्थः। 'उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं' उपदिष्टमनुपदिष्टं वा दुर्मार्गमेष दर्शनमोहोदयाच्छ्रद्दधातीति यावत्। एतेन व्युद्ग्राहितेतरभेदेन मिथ्यादृशो द्वैविध्यं प्रतिपादितमिति द्रष्टव्य। उक्तं च—

मिच्छत्तं वेदंतो जीवो विवरीयदंसणो होइ।
ण य धम्मं रोचेदि हु महुरं खु रसं जहा जरिदो ॥ २ ॥
तं मिच्छत्तं जमसद्दहणं तच्चाण होइ अत्थाणं।
संसइयमभिग्गहियं अणभिग्गहियं ति तं तिविहं ॥ ३ ॥ इति।

---

शंका—इसका क्या कारण है ?

समाधान—क्योंकि वह दर्शनमोहनीयके उदयसे विपरीत अभिनिवेशवाला होता है।

और इसीलिये 'सद्दहइ असब्भावं' अपरमार्थस्वरूप असद्भूत अर्थका ही मिथ्यात्वके उदयवश यह श्रद्धान करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। 'उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं' अर्थात् उपदिष्ट या अनुपदिष्ट दुर्मार्गका ही दर्शनमोहके उदयसे यह श्रद्धान करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस गाथासूत्र वचन द्वारा व्युद्ग्राहित और इतरके भेदसे मिथ्यादृष्टि के दो भेदोंका प्रतिपादन किया गया जानना चाहिए। कहा भी है—

मिथ्यात्वका अनुभव करनेवाला जीव विपरीत श्रद्धानवाला होता है। जैसे ज्वरसे पीड़ित मनुष्यको मधुर रस नहीं रुचता है वैसे ही उसे रत्नत्रय धर्म नहीं रुचता है ॥ २ ॥

जो जीवादि नौ तत्त्वार्थोंका अश्रद्धान है वह मिथ्यात्व है। संशयिक, अभिगृहीत और अनभिगृहीत इस प्रकार वह तीन प्रकारका है ॥ ३ ॥

विशेषार्थ—इस गाथासूत्रमें मिथ्यादृष्टि जीवके स्वरूपका निरूपण किया गया है। पहले 'प्रवचन शब्दके अर्थका स्पष्टीकरण कर आये हैं। जो सर्वज्ञदेवका उपदेश है वही प्रवचन कहलानेका अधिकारी है, अन्य नहीं। यतः मिथ्यादृष्टि जीव परमार्थके ज्ञानसे रहित होता है, अतः उसके प्रवचनका श्रद्धान किसी भी अवस्थामें नहीं बन सकता। वह कुमार्गियोंके द्वारा उपदिष्ट हो या अनुपदिष्ट हो, मिथ्या मार्गका अवश्य ही श्रद्धान करता रहता है, इसलिये उसे मिथ्या मार्ग ही रुचता है, सम्यग्मार्ग नहीं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यहाँ ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवके तीन भेद किये गये हैं—संशयिक मिथ्यादृष्टि, अभिगृहीत मिथ्यादृष्टि और अनभिगृहीत मिथ्यादृष्टि। जीवादि नौ पदार्थ हैं या नहीं हैं इत्यादि रूपसे जिसका श्रद्धान डोलायमान हो रहा है वह संशयिक मिथ्यादृष्टि जीव है। जो कुमार्गियोंके द्वारा उपदेशे गये पदार्थोंको यथार्थ मान कर उनको उस रूपमें श्रद्धा करता है वह अभिगृहीत मिथ्यादृष्टि जीव है और जो उपदेशके बिना ही विपरीत अर्थकी श्रद्धा करता आ रहा है वह अनभिगृहीत मिथ्यादृष्टि जीव है।

**(५६) सम्मामिच्छाइट्ठी सागारो वा तहा अणागारो।**
**अध वंजणोग्गहम्मि दु सागारो होइ बोद्धव्वो ॥१५-१०९॥**

§ २१२. सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्लक्षणविधानं सुबोधमिति न तस्येह प्ररूपणं क्रियते, किंतु तदुपयोगविशेषप्ररूपणार्थमेतत्सूत्रमारब्धं। तद्यथा—जो सम्मामिच्छाइट्ठी जीवो सागारोवजुत्तो वा होइ, अणागारोवजुत्तो वा, दोहिं मि[1] उवजोगेहि तग्गुणपडिवत्तीए विरोहाभावादो। एदेण दंसणमोहोवसामणाए पयट्टमाणस्स पढमदाए जहा सागारोवजोगणियमो एवमेत्थ णत्थि त्ति णियमो, किंतु दोहिं मि उवजोगेहिं सम्मामिच्छत्तगुणं पडिवज्जइ त्ति एसो अत्थविसेसो जाणाविदो। अधवा पडिवण्णसम्मामिच्छत्तगुणो सगकालब्भंतरे सागारोवजुत्तो वा होइ, अणागारोवजुत्तो वा त्ति सुत्तत्थो गहेयव्वो, णाण-दंसणोवजोगाणं दोण्हं पि तग्गुणकालब्भंतरे कमेण परावत्तणे विरोहाणुवलंभादो। एदेण णाण-दंसणोवजोगकालादो सम्मामिच्छाइट्ठिगुणकालस्स बहुत्तं सूचिदमिदि दट्ठव्वं। 'अध वंजणोग्गहम्हि दु' इच्चादि। अथेति पादपूरणार्थो निपातः वंजणोग्गहम्मि दु, विचारपूर्वकार्थग्रहणावस्थायामित्यर्थः। व्यंजनशब्दस्यार्थविचारवाचिनो

---

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव साकारोपयोगवाला भी होता है तथा अनाकारोपयोगवाला भी होता है। किन्तु व्यञ्जनावग्रहमें अर्थात् विचारपूर्वक अर्थ ग्रहणकी अवस्थामें वह साकारोपयोगवाला ही होता है ऐसा यहाँ जानना चाहिए ॥ १०९-१५ ॥

§ २१२. सम्यग्मिथ्यादृष्टिके लक्षणका कथन सुबोध है, इसलिये उसका यहाँ पर कथन नहीं करते हैं, किन्तु उसके उपयोग विशेषोंका कथन करनेके लिये इस सूत्रका प्रारम्भ किया है। यथा—जो सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव है वह या तो साकार उपयोगवाला होता है या अनाकार उपयोगवाला होता है, क्योंकि दोनों ही उपयोगोंके साथ सम्यग्मिथ्यात्व गुणकी प्राप्ति होनेमें विरोधका अभाव है। इस वचन द्वारा दर्शनमोहकी उपशामनामें प्रवृत्त हुए जीवके प्रथम अवस्थामें जिस प्रकार साकारोपयोगका नियम है उस प्रकार यहाँ पर नियम नहीं है। किन्तु दोनों ही उपयोगोंके साथ सम्यग्मिथ्यात्वगुणको प्राप्त होता है इस प्रकार इस अर्थ विशेषका ज्ञान कराया गया है। अथवा जिसने सम्यग्मिथ्यात्व गुणको प्राप्त किया है वह अपने कालके भीतर साकार उपयोगसे उपयुक्त होता है या अनाकार उपयोगसे उपयुक्त होता है इस प्रकार सूत्रार्थको ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग इन दोनोंके ही उस गुणके कालके भीतर क्रमसे परिवर्तन होनेमें कोई विरोध नहीं उपलब्ध होता। इससे ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोगके कालसे सम्यग्मिथ्यात्व गुणका काल बहुत सूचित किया गया है ऐसा जानना चाहिए। 'अध वंजणोग्गहम्हि दु'। यहाँ 'अथ' यह पादपूर्तिके लिये निपात है। 'वंजणोग्गहम्हि दु' अर्थात् विचारपूर्वक अर्थ ग्रहणकी अवस्थामें यह उक्त कथनका तात्पर्य है, क्योंकि प्रकृतमें व्यञ्जन शब्द अर्थविचारवाची ग्रहण किया

---

१. ता० प्रतौ दोहिम्हि ( हिं पि ) इति पाठः।

ग्रहणात् । 'सागारो होइ बोद्धव्वो' तदवस्थायां ज्ञानोपयोगपरिणत एव भवति न दर्शनोपयोगपरिणत इति यावत् । कुतोऽयं नियम इति चेत् ? न, अनाकारोपयोगेन सामान्यमात्रावग्राहिणा पूर्वापरपरामर्शशून्येनार्थविचारानुपपत्तितस्तत्र तथाविधनियमोपपत्तेः । एत्थ सुत्तपरिसमत्तीए पण्णारसण्हमंकविण्णासो किमट्ठं कदो ? दंसणमोहोवसामणाए पडिबद्धाओ एदाओ पण्णारस चेव गाहाओ, णादिरित्ताओ त्ति जाणावणट्ठं ।

* एसो सुत्तप्फासो विहासिदो ।

§ २१३. एवमेसो सुत्तप्फासो गाहासुत्ताणं[1] सरूवणिद्देसो विहासिदो परूविदो त्ति भणिदं होदि । संपहि एत्थुद्देसे पुव्वमविहासिदो अण्णो अत्थो दंसणमोहोवसामणासंबंधिओ एदेहिं चेव गाहासुत्तेहिं सूचिदो अत्थि त्ति तप्पदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

---

गया है । 'सागारो होइ बोद्धव्वो' अर्थात् उस अवस्थामें ज्ञानोपयोगसे परिणत ही होता है, दर्शनोपयोगसे परिणत नहीं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—यह नियम किस कारण है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सामान्यमात्रग्राही अनाकारोपयोग पूर्वापरपरामर्शसे शून्य है, अतः उस द्वारा अर्थविचारकी उत्पत्ति न हो सकनेके कारण अर्थविचारके समय उस प्रकारका नियम बन जाता है ।

शंका—यहाँ पर सूत्रकी परिसमाप्ति होने पर '१५' अंकका विन्यास किसलिये किया है ?

समाधान—क्योंकि दर्शनमोहकी उपशमनामें प्रतिबद्ध ये पन्द्रह ही गाथाएँ हैं, अधिक नहीं इसे बातका ज्ञान करानेके लिये यहाँ सूत्रकी परिसमाप्ति होने पर '१५' अंकका विन्यास किया है ।

विशेषार्थ—यह दर्शनमोहकी उपशामनासे सम्बन्ध रखनेवाली अन्तिम गाथा है । इस द्वारा तीन अर्थोंको स्पष्ट किया गया है । १—सम्यग्मिथ्यात्व गुणकी प्राप्ति साकारोपयोगके कालमें भी सम्भव है और अनाकारोपयोगके कालमें भी सम्भव है । २—सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें क्रमसे साकार और अनाकार दोनों उपयोगोंकी प्राप्ति सम्भव है । इनसे प्रतीत होता है कि इन दोनों उपयोगोंके कालसे सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानका काल अधिक है । ३—यहाँ अर्थविचारके समय ज्ञानोपयोग ही होता है, दर्शनोपयोग नहीं । शेष कथन सुगम है ।

* इस प्रकार गाथासूत्रोंके स्वरूपका कथन किया ।

§ २१३ इस प्रकार यह सूत्रस्पर्श है अर्थात् गाथासूत्रोंका स्वरूपनिर्देश 'विहासिदो' अर्थात् कहा गया है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब प्रकृतमें जिसका पहले व्याख्यान नहीं किया तथा जिसका इन गाथासूत्रोंके द्वारा सूचन होता है ऐसा जो दर्शनमोहका उपशामनासम्बन्धी अन्य अर्थ है उसका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

---

१ ता० एसो सुत्तफासो विहासिदो गाहासुत्ताणं इति पाठः ।

* तदो उवसमसम्माइट्ठि-वेदयसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीहिं एयजीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहिं भंगविचओ कालो अंतरं अप्पाबहुअं चेदि ।

§ २१४. तदो सुत्तफासादो अणंतरमिदाणिं एयजीवेण सामित्तादीणि अप्पाबहुअ-पज्जवसाणाणि अणियोगद्दाराणि जहागममेत्थ णेदव्वाणि त्ति सुत्तत्थसंबंधो । ताणि पुण अणियोगद्दाराणि किंविसयाणि त्ति भणिदे सम्मत्तमग्गणावयवभूदउवसमसम्माइट्ठिआदिविसयाणि त्ति जाणावणट्ठमुवसमसम्माइट्ठि-वेदगसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीहिं त्ति णिद्दिट्ठं । एदेसिं सम्माइट्ठिभेदेहिं विसेसियाणि एदाणि अणियोगद्दाराणि णेदव्वाणि त्ति भणिदं होदि । एत्थ खइयसम्मादिट्ठीणं पि णिद्देसो किमट्ठं ण कीरदे ? ण, खइयसम्माइट्ठीणमट्ठहिं अणियोगद्दारेहिं पुरदो दंसणमोहक्खवणाए भणिस्समाणत्तादो । तम्हा उवसमसम्माइट्ठि-वेदयसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमेदेहिं अणियोगद्दारेहिं देसामासयभावेण सूचिदभागाभाग-परिमाण-खेत्त-फोसणसहिदेहिं सवित्थरमेत्थ परूवणा कायव्वा, तप्परूवणाए विणा पयदत्थविसयणिण्णयाणुववत्तीदो । एदेसिं च परूवणा सुगमा त्ति ण एत्थ तप्पवंचो कीरदे ।

---

उसके बाद उपशमसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका आलम्बन लेकर एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, काल, अन्तर और अल्पबहुत्व जानने चाहिए ।

§ २१४. 'तथा' अर्थात् सूत्रस्पर्शके अनन्तर इस समय एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्वसे लेकर अल्पबहुत्व पर्यन्त अनुयोगद्वार आगमके अनुसार यहाँ कथन करने योग्य हैं यह सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध है । उन अनुयोगद्वारोंका विषय क्या है ऐसा पूछने पर सम्यक्त्व मार्गणाके अवयवरूप उपशमसम्यग्दृष्टि आदि विषय हैं इस बातका ज्ञान करानेके लिए सूत्रमें 'उवसमसम्माइट्ठि-वेदगसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीहिं' यह वचन कहा है । सम्यग्दृष्टिके इन भेदोंसे युक्त ये अनुयोगद्वार कहने चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—यहाँ पर क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका भी निर्देश किसलिए नहीं करते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि आठ अनुयोगद्वारोंके आलम्बनसे क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका व्याख्यान आगे दर्शनमोहकी क्षपणा अनुयोगद्वारमें करेंगे ।

इसलिए उपशमसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंकी देशामर्षकरूपसे सूचित हुए भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र और स्पर्शन सहित इन अनुयोगद्वारोंके आलम्बनसे विस्तारके साथ यहाँ प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि यह प्ररूपणा किये बिना प्रकृत अर्थविषयक निर्णय नहीं बन सकता । इनकी प्ररूपणा सुगम है, इसलिये यहाँ पर उसका विस्तार नहीं करते हैं ।

§ २१५. संपहि पयदत्थोवसंहारकरणट्ठमुत्तरं सुत्तमाह—

---

विशेषार्थ—यहाँ पर जिन अनुयोगद्वारोंका संकेत किया है उनके आलम्बनसे उपशमसम्यग्दृष्टि आदि जीवोंका कुछ व्याख्यान करते हैं। इतना विशेष जानना कि उपशमसम्यक्त्वसे प्रथमोपशम सम्यक्त्वका ही ग्रहण किया है। १ स्वामित्व—अपने-अपने भावसे युक्त जीव उपशमसम्यक्त्व आदिके स्वामी हैं। २ एक जीवकी अपेक्षा काल—उपशम सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। वेदक सम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल छ्यासठ सागरोपमप्रमाण है। ३ अन्तर—( प्रथमोपशमकी अपेक्षा ) उपशम सम्यक्त्वका जघन्य अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है, वेदक सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त है और तीनोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तन कालप्रमाण है। आगेके अनुयोगद्वार नाना जीवोंकी अपेक्षा हैं। ४ भंगविचय—उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं, क्योंकि ये सान्तर मार्गणाएं हैं। वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सदा काल नियमसे हैं, क्योंकि यह निरन्तर मार्गणा है। ५ संख्या—उक्त तीनों मार्गणावाले जीव प्रत्येक पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। ६ क्षेत्र—( प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी अपेक्षा ) उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्वस्थानकी अपेक्षा वेदक सम्यग्दृष्टियोंका स्वस्थान, मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदकी अपेक्षा तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका स्वस्थानकी अपेक्षा क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके कालमें मरण नहीं होता, इसलिए उनका क्षेत्र मात्र स्वस्थानकी अपेक्षा कहा है। ७ स्पर्शन—उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा अतीत स्पर्शन त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण है। वेदक सम्यग्दृष्टियों का वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अतीत स्पर्शन विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण है। तथा उपपादपदकी अपेक्षा अतीत स्पर्शन त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण है। ८ काल—उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा वेदकसम्यग्दृष्टियोंका काल सर्वदा है। ९ अन्तर—उपशमसम्यग्दृष्टियोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल सात दिन-रात है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा वेदकसम्यग्दृष्टियोंका अन्तरकाल नहीं है। १० भागाभाग—उपशमसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सब संसारी जीवराशिके अनन्तवें भागप्रमाण हैं। ११ अल्पबहुत्व—उक्त तीनों राशियोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणे हैं। तथा उनसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणे हैं।

§ २१५. अब प्रकृत अर्थका उपसंहार करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

* एदेसु अणियोगद्दारेसु वण्णिदेसु दंसणमोहउवसामणे त्ति समत्त-मणियोगद्दारं ।

§ २१६. गयत्थमेदं सुत्तं ।

तदो दंसणमोहउवसामणाए पण्णारसण्हं
गाहासुत्ताणमत्थविहासा समत्ता होइ ।

---

इन अनुयोगद्वारोंका कथन करने पर दर्शनमोह उपशामना नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ २१६ यह सूत्र गतार्थ है ।

इसके बाद दर्शनमोहउपशामनासम्बन्धी पन्द्रह गाथासूत्रोंके अर्थका
विशेष व्याख्यान समाप्त होता है ।

# परिसिट्ठाणि

## १. उवजोग-अत्थाहियार-चुण्णिसुत्ताणि

[1]उवजोगे त्ति अणियोगद्दारस्स सुत्तं। [2]तं जहा—

(१०) केवचिरं उवजोगो कम्मि कसायम्मि को व केणहियो।
को वा कम्मि कसाए अभिक्खमुवजोगमुवजुत्तो ॥६३॥
(११) [3]एक्कम्हि भवग्गहणे एक्ककसायम्हि कदि च उवजोगा।
एक्कम्हि य उवजोगे एक्ककसाए कदि भवा च ॥६४॥
(१२) [4]उवजोगवग्गणाओ कम्मि कसायम्मि केत्तिया होंति।
कदरिस्से च गदीए केवडिया वग्गणा होंति ॥६५॥
(१३) [5]एक्कम्हि य अणुभागे एक्ककसायम्मि एक्ककालेण।
उवजुत्ता का च गदी विसरिसमुवजुज्जदे का च ॥६६॥
(१४) [6]केवडिया उवजुत्ता सरिसीसु च वग्गणा-कसाएसु।
केवडिया च कसाए के के च विसिस्सदे केण ॥६७॥
(१५) [7]जे जे जम्हि कसाए उवजुत्ता किण्णु भूदपुव्वा ते।
होहिंति च उवजुत्ता एवं सव्वत्थ बोद्धव्वा ॥६८॥
(१६) [8]उवजोगवग्गणाहि य अविरहिदं काहि विरहिदं चावि।
पढमसमयोवजुत्तेहिं चरिमसमए च बोद्धव्वा ॥७-६९॥

[9]एदाओ सत्त गाहाओ। एदासिं विहासा कायव्वा। 'केवचिरं उवजोगो कम्हि कसायम्हि' त्ति एदस्स पदस्स अत्थो अद्धापरिमाणं। तं जहा—[10]कोधद्धा माणद्धा मायद्धा लोभद्धा जहण्णियाओ वि उक्कस्सियाओ वि अंतोमुहुत्तं। [11]गदीसु णिक्खमण-पवेसेण एगसमयो होज्ज।

'को व केणहियो' त्ति एदस्स पदस्स अत्थो अद्धाणमप्पाबहुअं। [12]तं जहा—ओघेण माणद्धा जहण्णिया थोवा। कोधद्धा जहण्णिया विसेसाहिया। मायद्धा

[illegible]

जहण्णिया विसेसाहिया। लोभद्धा जहण्णिया विसेसाहिया। माणद्धा उक्कस्सिया संखेज्जगुणा। [1]कोधद्धा उक्कस्सिया विसेसाहिया। मायद्धा उक्कस्सिया विसेसाहिया। लोभद्धा उक्कस्सिया विसेसाहिया।

पवाइज्जंतेण उवदेसेण अद्धाणं विसेसो अंतोमुहुत्तं। [2]तेणेव उवदेसेण चउगइ-समासेण अप्पाबहुअं भणिहिदि। चदुगदिसमासेण जहण्णुक्कस्सपदेसेण णिरयगदीए जहण्णिया[3] लोभद्धा थोवा। देवगदीए जहण्णिया कोधद्धा विसेसाहिया। देव-गदीए जहण्णिया माणद्धा संखेज्जगुणा। णिरयगदीए जहण्णिया मायद्धा विसेसाहिया। णिरयगदीए जहण्णिया माणद्धा संखेज्जगुणा। [4]देवगदीए जहण्णिया मायद्धा विसे-साहिया। मणुस-तिरिक्खजोणियाणं जहण्णिया माणद्धा संखेज्जगुणा। मणुस-तिरिक्ख-जोणियाणं जहण्णिया कोधद्धा विसेसाहिया। मणुस-तिरिक्खजोणियाणं जहण्णिया मायद्धा विसेसाहिया। मणुस-तिरिक्खजोणियाणं जहण्णिया लोहद्धा विसेसाहिया।

णिरयगदीए जहण्णिया कोधद्धा संखेज्जगुणा। [5]देवगदीए जहण्णिया लोभद्धा विसेसाहिया। णिरयगदीए उक्कस्सिया लोभद्धा संखेज्जगुणा। देवगदीए उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया। देवगदीए उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा। णिरयगदीए उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया। णिरयगदीए उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा। देवगदीए उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया।

मणुस-तिरिक्खजोणियाणमुक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा। [6]तेसिं चेव उक्क-स्सिया कोधद्धा विसेसाहिया। तेसिं चेव उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया। तेसिं चेव उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया। णिरयगदीए उक्कस्सिया कोधद्धा संखेज्जगुणा। देवगदीए उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया।

तेसिं चेव उवदेसेण चोद्दसजीवसमासेहिं दंडगो भणिहिदि। [7]चोद्दसण्हं जीव-समासाणं देव-णेरइयवज्जाणं जहण्णिया माणद्धा तुल्ला थोवा। जहण्णिया कोधद्धा विसेसाहिया। जहण्णिया मायद्धा विसेसाहिया। जहण्णिया लोभद्धा विसेसाहिया।

सुहुमस्स अपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा। [8]उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया। उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया। उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया।

बादरेइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा। उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया। उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया। उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया।

---

(१) पृ. १८। (२) पृ. १९। (३) पृ. २०। (४) पृ. २१। (५) पृ. २२। (६) पृ. २३। (७) पृ. २४। (८) पृ. २५।

सुहुमपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा। उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया। उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया। उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया।

बादरेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा। उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया। उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया। उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया।

बेइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा। तेइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा विसेसाहिया। चउरिंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा विसेसाहिया।

बेइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया। तेइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया। चउरिंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया।

बेइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया। तेइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया। चउरिंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया।

बेइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया। तेइंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया। चउरिंदियअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया।

बेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा। तेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा विसेसाहिया। चउरिंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा विसेसाहिया।

बेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया। तेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया। चउरिंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया।

बेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया। तेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया। चउरिंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया।

बेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया। तेइंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया। चउरिंदियपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया।

असण्णिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा। तस्सेव उक्कस्सिया

---

[illegible]

कोधद्धा विसेसाहिया । तस्सेव उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया । तस्सेव उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया ।

असण्णिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा । तस्सेव उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया । तस्सेव उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया । तस्सेव उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया ।

सण्णिअपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा । [1]तस्सेव उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया । तस्सेव उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया । तस्सेव उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया ।

सण्णिपज्जत्तयस्स उक्कस्सिया माणद्धा संखेज्जगुणा । तस्सेव उक्कस्सिया कोधद्धा विसेसाहिया । तस्सेव उक्कस्सिया मायद्धा विसेसाहिया । तस्सेव उक्कस्सिया लोभद्धा विसेसाहिया ।

'को वा कम्हि कसाए अभिक्खमुवजोगमुवजुत्तो' त्ति एत्थ अभिक्खमुवजोग-परूवणा कायव्वा । [2]ओघेण ताव लोभो माया कोधो माणो त्ति असंखेज्जेसु आगरिसेसु गदेसु सइं लोभागरिसा अदिरेगा भवदि । [3]असंखेज्जेसु लोभागरिसेसु अदिरेगेसु गदेसु कोधागरिसेहिं मायागरिसा अदिरेगा होइ । [4]असंखेज्जेहिं मायागरिसेहिं अदिरेगेहिं गदेहिं माणागरिसेहिं कोधागरिसा अदिरेगा होदि । [5]एवमोघेण । एवं तिरिक्खजोणिगदीए मणुसगदीए च ।

णिरयगईए कोहो माणो कोहो माणो त्ति वारसहस्साणि परियत्तिदूण सइं माया परिवत्तदि । [6]मायापरिवत्तेहिं संखेज्जेहिं गदेहिं सइं लोहो परिवत्तदि । [7]देवगदीए लोभो माया लोभो माया त्ति वारसहस्साणि गंतूण तदो सइं माणो परिवत्तदि । [8]माणस्स संखेज्जेसु आगरिसेसु गदेसु तदो सइं कोधो परिवत्तदि ।

एदीए परूवणाए एक्कम्हि भवग्गहणे णिरयगदीए संखेज्जवासिगे वा असंखेज्ज-वासिगे वा भवे लोभागरिसा थोवा । [9]मायागरिसा संखेज्जगुणा । माणागरिसा संखेज्ज-गुणा । कोहागरिसा विसेसाहिया । [10]देवगदीए कोहागरिसा थोवा । माणागरिसा संखेज्जगुणा । मायागरिसा संखेज्जगुणा । [11]लोभागरिसा विसेसाहिया । तिरिक्ख-मणुसगदीए असंखेज्जवस्सिगे भवग्गहणे माणागरिसा थोवा । कोहागरिसा विसेसाहिया । [12]मायागरिसा विसेसाहिया । लोभागरिसा विसेसाहिया ।

[13]एत्तो विदियगाहाए विभासा । तं जहा—एक्कम्मि भवग्गहणे एक्ककसायम्मि

(१) पृ. २८ । (२) पृ. २९ । (३) पृ ३१ । (४) पृ ३२ । (५) पृ. ३४ । (६) पृ. ३५ । (७) पृ. ३७ । (८) पृ. ३८ । (९) पृ. ३९ । (१०) पृ. ४० । (११) पृ. ४१ । (१२) पृ. ४२ । (१३) पृ. ४३ ।

वट्टि च उवजोगा त्ति। एक्कम्मि णेरइयभवग्गहणे कोहोवजोगा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा। [1]माणोवजोगा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा। एवं सेसाणं पि। [2]एवं सेसासु वि गदीसु।

णिरयगदीए जम्हि कोहोवजोगा संखेज्जा तम्हि माणोवजोगा णियमा संखेज्जा। एवं माया-लोभोवजोगा। [3]जम्हि माणोवजोगा संखेज्जा तम्हि कोहोवजोगा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा। मायोवजोगा लोहोवजोगा णियमा संखेज्जा। जम्हि मायोवजोगा संखेज्जा तम्हि कोहोवजोगा माणोवजोगा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा। [4]लोभोवजोगा णियमा संखेज्जा। जत्थ लोभोवजोगा संखेज्जा तत्थ कोहोवजोगा माणोवजोगा मायोवजोगा भजियव्वा। जत्थ णिरयभवग्गहणे कोहोवजोगा असंखेज्जा तत्थ सेसा [5]सिया संखेज्जा सिया असंखेज्जा। जत्थ माणोवजोगा असंखेज्जा तत्थ कोहोवजोगा णियमा असंखेज्जा। सेसा भजियव्वा। जत्थ मायोवजोगा असंखेज्जा तत्थ कोहोवजोगा माणोवजोगा णियमा असंखेज्जा। [6]लोभोवजोगा भजियव्वा। जत्थ लोहोवजोगा असंखेज्जा तत्थ कोह-माण-मायोवजोगा णियमा असंखेज्जा।

जहा णेरइयाणं कोहोवजोगाणं वियप्पा तहा देवाणं लोभोवजोगाणं वियप्पा। जहा णेरइयाणं माणोवजोगाणं वियप्पा तहा देवाणं मायोवजोगाणं वियप्पा। [7]जहा णेरइयाणं मायोवजोगाणं वियप्पा तहा देवाणं माणोवजोगाणं वियप्पा। जहा णेरइयाणं लोभोवजोगाणं वियप्पा तहा देवाणं कोहोवजोगाणं वियप्पा।

जेसु णेरइयभवेसु असंखेज्जा कोहोवजोगा माण-माया-लोभोवजोगा वा जेसु वा संखेज्जा एदेसिमट्ठण्हं पदाणमप्पाबहुअं। तत्थ उवसंदरिसणाए करणं। एक्कम्हि वस्से जत्तियाओ कोहोवजोगद्धाओ तत्तिएण जहण्णासंखेज्जयस्स भागो जं भागलद्धमेत्तियाणि वस्साणि जो भवो तम्हि [8]असंखेज्जाओ कोहोवजोगद्धाओ।

[10]एवं माण-माया-लोभोवजोगाणं। [11]एदेण कारणेण जे असंखेज्जलोभोवजोगिगा भवा ते भवा थोवा। [12]जे असंखेज्जमायोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा। जे असंखेज्जमाणोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा। जे असंखेज्जकोहोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा। जे संखेज्जकोहोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा। [13]जे संखेज्जमाणोवजोगिगा भवा ते भवा विसेसाहिया। जे संखेज्जमायोवजोगिगा भवा ते भवा विसेसाहिया। [14]जे संखेज्जलोभोवजोगिगा भवा ते भवा विसेसाहिया।

(1) पृ. ४४। (2) पृ. ४५। (3) पृ. ४६। (4) पृ. ४७। (5) पृ. ४८। (6) पृ. ४९। (7) पृ. [illegible]। (8) पृ. ५१। (9) पृ. ५२। (10) पृ. ५३। (11) पृ. ५५। (12) पृ. ५६। (13) पृ. [illegible]। (14) पृ. ५९।

जहा णेरइएसु तहा देवेसु । णवरि कोहादो आढवेयव्वो । तं जहा—जे असंखेज्ज-कोहोवजोगिगा भवा ते भवा थोवा । जे असंखेज्जमाणोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा । जे असंखेज्जमायोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा । जे असंखेज्ज-लोभोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा । [1]जे संखेज्जलोभोवजोगिगा भवा ते भवा असंखेज्जगुणा । जे संखेज्जमायोवजोगिगा भवा ते विसेसाहिया । जे संखेज्ज-माणोवजोगिगा भवा ते भवा विसेसाहिया । जे संखेज्जकोहोवजोगिगा भवा ते भवा विसेसाहिया । विदियगाहाए अत्थविहासा समत्ता ।

'उवजोगवग्गणाओ कम्हि कसायम्हि केत्तिया होंति' त्ति एसा सव्वा वि गाहा पुच्छासुत्तं । [2]तस्स विहासा । तं जहा—उवजोगवग्गणाओ दुविहाओ—कालोवजोग-वग्गणाओ भावोवजोगवग्गणाओ य । [3]कालोवजोगवग्गणाओ णाम कसायोवजोगद्ध-ट्ठाणाणि । भावोवजोगवग्गणाओ णाम कसायोदयट्ठाणाणि । [4]एदासिं दुविहाणं पि वग्ग-णाणं परूवणा पमाणमप्पाबहुअं च वत्तव्वं । [5]तदो तदियाए गाहाए विहासा समत्ता ।

चउत्थीए गाहाए विहासा । 'एक्कम्हि दु अणुभागे एक्ककसायम्मि एक्ककालेण । उवजुत्ता का च[6] गदी विसरिसमुवजुज्जदे का च ।' त्ति एदं सव्वं पुच्छासुत्तं । एत्थ विहासाए दोण्णि उवएसा । एक्केण उवएसेण जो कसायो सो अणुभागो । [7]कोधो कोधाणुभागो । एवं माण-माया-लोभाणं । तदो का च गदी एगसमएण एगकसायोव-जुत्ता वा दुकसायोवजुत्ता वा तिकसायोवजुत्ता वा चदुकसायोवजुत्ता वा त्ति एदं पुच्छा-सुत्तं । [8]तदो णिदरिसणं । तं जहा—णिरय-देवगदीणमेदे वियप्पा अत्थि । सेसाओ गदीओ णियमा चदुकसायोवजुत्ताओ ।

[9]णिरयगईए जइ एक्को कसायो, णियमा कोहो । जदि दुकसायो, कोहेण सह अण्णदरो दुसंजोगो । [10]जदि तिकायो, कोहेण सह अण्णदरो तिसंजोगो । जदि चदु-कसायो, सव्वे चेव कसाया । [11]जहा णिरयगदीए कोहेण तहा देवगदीए लोभेण कायव्वा । एक्केण उवदेसेण चउत्थीए गाहाए विहासा समत्ता भवदि ।

पवाइज्जंतेण उवएसेण चउत्थीए गाहाए विहासा । [12]'एक्कम्मि दु अणुभागे' त्ति जं कसाय-उदयट्ठाणं सो अणुभागो णाम । एगकालेणे त्ति कसायोवजोगद्धट्ठाणे त्ति भणिदं होदि ।[13] एसा सण्णा । तदो पुच्छा । का च गदी एक्कम्हि कसाय-उदयट्ठाणे एक्कम्हि वा कसायुवजोगद्धट्ठाणे भवे । [14]अथवा अणेगेसु कसाय-उदयट्ठाणेसु अणेगेसु

(१) पृ ६०। (२) पृ ६१। (३) पृ ६२। (४) पृ ६३। (५) पृ ६५। (६) पृ ६६। (७) पृ ६७। (८) पृ ६८। (९) पृ. ६९। (१०) पृ. ७०। (११) पृ ७१। (१२) पृ. ७२। (१३) पृ ७३। (१४) पृ ७४।

वा कसाय-उवजोगद्धट्ठाणेसु । एसा पुच्छा । अयं णिद्देसो । तसा एक्केक्कम्मि कसायुदयट्ठाणे आवलियाए असंखेज्जदिभागो । [1]कसाय-उवजोगद्धट्ठाणेसु पुण उक्कस्सेण असंखेज्जाओ सेढीओ । [2]एवं भणिदं होइ सव्वाओ गदीओ णियमा अणेगेसु कसायुदयट्ठाणेसु अणेगेसु च कसायउवजोगद्धट्ठाणेसु त्ति ।

तदो एवं परूवणं कादूण णवहिं पदेहिं अप्पाबहुअं । [3]तं जहा—उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे उक्कस्सियाए माणोवजोगद्धाए जीवा थोवा । [4]जहण्णियाए माणोवजोगद्धाए जीवा असंखेज्जगुणा । [5]अणुक्कस्समजहण्णासु माणोवजोगद्धासु जीवा असंखेज्जगुणा । [6]जहण्णए कसायुदयट्ठाणे उक्कस्सियाए माणोवजोगद्धाए जीवा असंखेज्जगुणा । जहण्णियाए माणोवजोगद्धाए जीवा असंखेज्जगुणा । अणुक्कस्समजहण्णासु माणोवजोगद्धासु जीवा असंखेज्जगुणा । [7]अणुक्कस्समजहण्णेसु अणुभागट्ठाणेसु उक्कस्सियाए माणोवजोगद्धाए जीवा असंखेज्जगुणा । जहण्णियाए माणोवजोगद्धाए जीवा असंखेज्जगुण । अणुक्कस्समजहण्णासु माणोवजोगद्धासु जीवा असंखेज्जगुणा । एवं सेसाणं कसायाणं । [8]एत्तो छत्तीसपदेहि अप्पाबहुअं कायव्वं । एवं चउत्थीए गाहाए विहासा समत्ता ।

[9]'केवडिगा उवजुत्ता सरिसीसु च वग्गणा-कसायेसु' चेत्ति एदिस्से गाहाए अत्थविहासा । एसा गाहा सूचणासुत्तं । एदीए सूचिदाणि अट्ठ अणिओगद्दाराणि । [10]तं जहा—संतपरूवणा दव्वपमाणं खेत्तपमाणं फोसणं कालो अंतरं भागाभागो अप्पाबहुअं च । 'केवडिगा उवजुत्ता त्ति दव्वपमाणाणुगमो । 'सरिसीसु च वग्गणा-कसाएसु' त्ति कालाणुगमो । [11]'केवडिगा च कसाए' त्ति भागाभागो । 'के के च विसिस्सदे केणे' त्ति अप्पाबहुअं । एवमेदाणि चत्तारि अणिओगद्दाराणि सुत्तणिबद्धाणि । सेसाणि सूचणाणुमाणेण कायव्वाणि ।

[12]कसायोवजुत्ते अट्ठहिं अणिओगद्दारेहिं गदि-इंदिय-काय-जोग-वेद-णाण-संजम-दंसण-लेस्स-भविय-सम्मत्त-सण्णि-आहारा त्ति एदेसु तेरससु अणुगमेसु मग्गियूण । [13]महादंडयं च कादूण समत्ता पंचमी गाहा ।

[14]'जे जे जम्हि कसाए उवजुत्ता किण्णु भूदपुव्वा ते' त्ति एदिस्से छट्ठीए गाहाए कालजोणी कायव्वा । [15]तं जहा—जे अस्सिं समए माणोवजुत्ता तेसिं तीदे काले माणकालो णोमाणकालो मिस्सयकालो इदि एवं तिविहो कालो । [16]कोहे च तिविहो कालो ।

(१) पृ ७५ । (२) पृ ७६ । (३) पृ ७७ । (४) पृ ७८ । (५) पृ ७९ । (६) पृ ८० । (७) पृ. ८१ । (८) पृ ८२ । (९) पृ. ८५ । (१०) पृ ८६ । (११) पृ ८७ । (१२) पृ. ८८ । (१३) पृ. ९० । (१४) पृ ९१ । (१५) पृ ९३ । (१६) पृ. ९४ ।

[1]मायाए तिविहो कालो। लोभे तिविहो कालो। एवमेसो कालो माणोवजुत्ताणं बारसविहो।

[2]अस्सिं समए कोहोवजुत्ता तेसिं तीदे काले माणकालो णत्थि णोमाणकालो मिस्सयकालो य। [3]अवसेसाणं णवविहो कालो। [4]एवं कोहोवजुत्ताणमेक्कारसविहो कालो विदिक्कंतो।

जे अस्सिं समए मायोवजुत्ता तेसिं तीदे काले माणकालो दुविहो कोहकालो दुविहो मायाकालो तिविहो लोभकालो तिविहो। [5]एवं मायोवजुत्ताणं दसविहो कालो।

जे अस्सिं समये लोभोवजुत्ता तेसिं तीदे काले माणकालो दुविहो कोहकालो दुविहो मायाकालो दुविहो लोभकालो तिविहो। एवमेसो कालो लोहोवजुत्ताणं णवविहो। एवमेदाणि सव्वाणि पदाणि बादालीसं भवंति।

[6]एत्तो बारस सत्थाणपदाणि गहियाणि। कथं सत्थाणपदाणि भवंति ? माणोवजुत्ताणं माणकालो णोमाणकालो मिस्सयकालो। कोहोवजुत्ताणं कोहकालो णोकोहकालो मिस्सयकालो। [7]एवं मायोवजुत्त-लोहोवजुत्ताणं पि।

एदेसिं बारसण्हं पदाणमप्पाबहुअं। [8]त जहा—लोभोवजुत्ताणं लोभकालो थोवो। [9]मायोवजुत्ताणं मायकालो अणंतगुणो। कोहोवजुत्ताणं कोहकालो अणंतगुणो। माणोवजुत्ताणं माणकालो अणंतगुणो। लोभोवजुत्ताणं णोलोभकालो अणंतगुणो। [10]मायोवजुत्ताणं णोमायकालो अणंतगुणो। कोहोवजुत्ताणं णोकोहकालो अणंतगुणो। [11]माणोवजुत्ताणं णोमाणकालो अणंतगुणो। माणोवजुत्ताणं मिस्सयकालो अणंतगुणो। कोहोवजुत्ताणं मिस्सयकालो विसेसाहिओ। [12]मायोवजुत्ताणं मिस्सयकालो विसेसाहिओ। [13]लोभोवजुत्ताणं मिस्सयकालो विसेसाहिओ।

एत्तो बादालीसपदप्पाबहुअं कायव्वं। [14]तदो छट्ठी गाहा समत्ता भवदि।

'उवजोगवग्गणाहि य अविरहिदं काहि विरहियं वा वि' त्ति एदम्हि अद्धे एक्को अत्थो विदिये अद्धे एक्को अत्थो एवं दो अत्था।

[15]पुरिमद्धस्स च विहासा। एत्थ दुविहाओ उवजोगवग्गणाओ—कसायउदयट्ठाणाणि च उवजोगद्धट्ठाणाणि च। [16]एदाणि दुविहाणि वि ट्ठाणाणि उवजोगवग्गणाओ त्ति वुच्चंति।

---

(१) पृ. ९५। (२) पृ. ९६। (३) पृ ९७। (४) पृ. ९८। (५) पृ. ९९। (६) पृ. १००। (७) पृ १०१। (८) पृ. १०२। (९) पृ १०३। (१०) पृ १०४। (११) पृ, १०५। (१२) पृ १०६। (१३) पृ. १०७। (१४) पृ १०८। (१५) पृ १०९। (१६) पृ. ११०।

उवजोगद्धट्ठाणेहि ताव केत्तिएहिं विरहिदं केहिं कम्हि अविरहिदं ? एत्थ मग्गणा। [1]णिरयगदीए एगस्स जीवस्स कोहोवजोगद्धट्ठाणेसु णाणाजीवाणं जवमज्झं। [2]तं जहा—ठाणाणं संखेज्जदिभागे। [3]एगगुणवड्ढि–हाणिट्ठाणंतरमावलियवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागो।

हेट्ठा जवमज्झस्स सव्वाणि गुणहाणिट्ठाणंतराणि आवुण्णाणि सदा। [4]सव्व-अद्धट्ठाणाणं पुण असंखेज्जभागा आवुण्णा। उवरिमजवमज्झस्स जहण्णेण गुणहाणि-ट्ठाणंतराणं संखेज्जदिभागो आवुण्णो। उक्कस्सेण सव्वाणि गुणहाणिट्ठाणंतराणि आवुण्णाणि। [5]जहण्णेण अद्धट्ठाणाणं संखेज्जदिभागो आवुण्णो। उक्कस्सेण अद्ध-ट्ठाणाणमसंखेज्जा भागा आवुण्णा। [6]एसो उवएसो पवाइज्जइ। अण्णो उवदेसो सव्वाणि गुणहाणिट्ठाणंतराणि अविरहियाणि जीवेहिं उवजोगद्धट्ठाणाणमसंखेज्जा भागा अविरहिदा। [7]एदेहिं दोहिं उवदेसेहिं कसायउदयट्ठाणाणि णेदव्वाणि तसाणं। [8]तं जहा—कसायुदयट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा। तेसु जत्तिया तसा तत्तियमेत्ताणि आवुण्णाणि।

[9]कसायुदयट्ठाणेसु जवमज्झेण जीवा रांति। [10]जहण्णए कसायुदयट्ठाणे तसा थोवा। विदिए वि तत्तिया चेव। [11]एवमसंखेज्जेसु लोगट्ठाणेसु तत्तिया चेव। तदो पुणो अण्णम्हि ट्ठाणे एक्को जीवो अब्भहिओ। तदो पुण असंखेज्जेसु लोगेसु ट्ठाणे तत्तिया चेव। [12]तदो अण्णम्हि ट्ठाणे एक्को जीवो अब्भहिओ। एवं गंतूण उक्कस्सेण जीवा एक्कम्हि ट्ठाणे आवलियाए असंखेज्जदिभागो।

[13]जत्तिया एक्कम्मि ट्ठाणे उक्कस्सेण जीवा तत्तिया चेव अण्णम्हि ट्ठाणे। एव-मसंखेज्जलोगट्ठाणाणि। एदेसु असंखेज्जेसु लोगेसु ट्ठाणेसु जवमज्झं। तदो अण्णं ट्ठाणमेक्केण जीवेण हीणं। एवमसंखेज्जलोगट्ठाणाणि तुल्लजीवाणि। एवं सेसेसु वि ट्ठाणेसु जीवा णेदव्वा।

[14]जहण्णए कसायुदयट्ठाणे चत्तारि जीवा, उक्कस्सए कसायुदयट्ठाणे दो जीवा। [15]जवमज्झजीवा आवलियाए असंखेज्जदिभागो। [16]जवमज्झजीवाण जत्तियाणि अद्धच्छेद-णाणि तेसिमसंखेज्जदिभागो हेट्ठा जवमज्झस्स गुणहाणिट्ठाणंतराणि। तेसिमसंखेज्ज-भागमेत्ताणि उवरि जवमज्झस्स गुणहाणिट्ठाणंतराणि। [17]एवं पदुप्पण्णं तसाणं जव-मज्झं।

---

(१) पृ १११। (२) पृ ११२। (३) पृ ११३। (४) पृ ११४। (५) पृ. ११५। (६) पृ ११६। (७) पृ. ११९। (८) पृ १२०। (९) पृ १२१। (१०) पृ १२२। (११) पृ १२३। (१२) पृ १२४। (१३) पृ १२५। (१४) पृ १२६। (१५) पृ १२७। (१६) पृ. १३३। (१७) पृ १३८।

[1]एसा सुत्तविहासा। सत्तमीए गाहाए पढमस्स अद्धस्स अत्थविहासा समत्ता भवदि।

एत्तो विदियद्धस्स अत्थविहासा कायव्वा। [2]तं जहा—'पढमसमयोवजुत्तेहिं चरिमसमए च बोद्धव्वा' त्ति एत्थ तिण्णि सेढीओ। [3]तं जहा—विदियादिया पढमादिया चरिमादिया ३।

[4]विदियादियाए साहणं। माणोवजुत्ताणं पवेसणयं थोवं। [5]कोहोवजुत्ताणं पवेसणगं विसेसाहियं। एवं माया-लोभोवजुत्ताणं। [6]एसो विसेसो एक्केण उवदेसेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपडिभागो। [7]पवाइज्जंतेण उवदेसेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो।

एवमुवजोगो त्ति समत्तमणिओगद्दारं।

## ८. चउट्ठाणअत्थाहियारो

[8]चउट्ठाणे त्ति अणियोगद्दारे पुव्वं गमणिज्जं सुत्तं। [9]तं जहा—

(१७) कोहो चउव्विहो वुत्तो माणो वि चउव्विहो भवे।
माया चउव्विहा वुत्ता लोहो वि य चउव्विहो ॥७०॥

(१८) [10]णग-पुढवि-वालुगोदयराईसरिसो चउव्विहो कोहो।
सेलघण-अट्ठि-दारुअ-लदासमाणो हवदि माणो ॥७१॥

(१९) [11]वंसीजण्हुगसरिसी मेंढविसाणसरिसी य गोमुत्ती।
अवलेहणीसमाणा माया वि चउव्विहा भणिदा ॥७२॥

(२०) किमिरागरत्तसमगो अक्खमलसमो य पंसुलेवसमो।
हालिद्दवत्थसमगो लोभो वि चउव्विहो भणिदो ॥७३॥

(२१) [12]एदेसिं ट्ठाणाणं चदुसु कसाएसु सोलसण्हं पि।
कं केण होइ अहियं ट्ठिदि-अणुभागे पदेसग्गे ॥७४॥

(२२) [13]माणे लदासमाणे उक्कस्सा वग्गणा जहण्णादो।
हीणा च पदेसग्गे गुणेण णियमा अणंतेण ॥७५॥

---

(१) पृ १४०। (२) पृ १४१। (३) १४२। (४) १४३। (५) पृ १४४। (६) पृ. १४५। (७) पृ १४६। (८) पृ. १५०। (९) पृ. १५१। (१०) पृ. १५२। (११) पृ १५५। (१२) पृ १५७। (१३) पृ १५८।

(२३) [1]णियमा लदासमादो दारुसमाणो अणंतगुणहीणो।
सेसा कमेण हीणा गुणेण णियमा अणंतेण ॥७६॥
(२४) [2]णियमा लदासमादो अणुभागग्गेण वग्गणग्गेण।
सेसा कमेण अहिया गुणेण णियमा अणंतेण ॥७७॥
(२५) [3]संधीदो संधी पुण अहिया णियमा च होइ अणुभागे।
हीणा च पदेसग्गे दो वि य णियमा विसेसेण ॥७८॥
(२६) [4]सव्वावरणीयं पुण उक्कस्सं होइ दारुअसमाणे।
हेट्ठा देसावरणं सव्वावरणं च उवरिल्लं ॥७९॥
(२७) [5]एसो कमो च माणे मायाए णियमसा दु लोभे वि।
सव्वं च कोहकम्मं चदुसु ट्ठाणेसु बोद्धव्वं ॥८०॥
(२८) [6]एदेसिं ट्ठाणाणं कदमं ठाणं गदीए कदमिस्से।
बद्धं च बज्झमाणं उवसंतं वा उदिण्णं वा ॥८१॥
(२९) [7]सण्णीसु असण्णीसु य पज्जत्ते वा तहा अपज्जत्ते।
सम्मत्ते मिच्छत्ते य मिस्सगे चेय बोद्धव्वा ॥८२॥
(३१) विरदीय अविरदीए विरदाविरदे तहा अणागारे।
सागारे जोगम्हि य लेस्साए चेव बोद्धव्वा ॥८३॥
(३१) [8]कं ठाणं वेदंतो कस्स व ट्ठाणस्स बंधगो होइ।
कं ठाणमवेदंतो अबंधगा कस्स ट्ठाणस्स ॥८४॥
(३२) [9]असण्णी खलु बंधइ लदासमाणं च दारुयसमगं च।
सण्णी चदुसु विभज्जो एवं सव्वत्थ कायव्वं (१६) ॥८५॥

[10]एदं सुत्तं। एत्थ अत्थविहासा। चउट्ठाणे त्ति एक्कगणिक्खेवो च ट्ठाणणिक्खेवो च। [11]एक्कगं पुव्वणिक्खित्तं पुव्वपरूविदं च।

ट्ठाणं णिक्खिविदव्वं। [12]तं जहा—णामट्ठाणं ट्ठवणट्ठाणं दव्वट्ठाण खेत्तट्ठाणं अद्धट्ठाणं पलिवीचिट्ठाणं उच्चट्ठाणं संजमट्ठाणं भावट्ठाणं च। [13]णेगमो सव्वाणि ठाणाणि इच्छइ। संगह-ववहारा पलिवीचिट्ठाणं उच्चट्ठाणं च अवणेंति। उजुसुदो

(१) पृ १६०। (२) १६१। (३) पृ. १६३। (४) पृ १६४। (५) पृ १६५। (६) पृ. १६६। (७) १६७। (८) १६८। (९) पृ १६९। (१०) पृ १७२। (११) पृ १७३। (१२) पृ १७४। (१३) पृ १७५।

एदाणि च ठवणं च अद्धट्ठाणं च अवणेइ। [1]सद्दणयो णामट्ठाणं संजमट्ठाणं खेत्तट्ठाणं भावट्ठाणं च इच्छदि। [2]एत्थ भावट्ठाणे पयदं।

[3]एत्तो सुत्तविहासा। तं जहा—आदीदो चत्तारि सुत्तगाहाओ एदेसिं सोलसण्हं ट्ठाणाणं णिदरिसणउवणये। [4]कोहट्ठाणाणं चउण्हं पि कालेण णिदरिसणउवणओ कओ। सेसाणं कसायाणं बारसण्हं ट्ठाणाणं भावदो णिदरिसणउवणओ कओ।

[5]जो अंतोमुहुत्तिगं णिधाय कोहं वेदयदि सो उदयराइसमाणं कोहं वेदयदि। जो अंतोमुहुत्तादीदमंतो अद्धमासस्स कोधं वेदयदि सो वालुवराइसमाणं कोहं वेदयदि। जो अद्धमासादीदमंतो छण्हं मासाणं कोधं वेदयदि सो पुढविराइसमाणं कोहं वेदयदि। [7]जो सव्वेसिं भवेहिं उवसमं ण गच्छइ सो पव्वदराइसमाणं कोहं वेदयदि। [8]एदाणुमाणियं सेसाणं पि कसायाणं कायव्वं। एवं चत्तारि सुत्तगाहाओ विहासिदाओ भवंति।

एवं चउट्ठाणे त्ति समत्तमणिओगद्दारं।

## ९ वंजण-अत्थाहियारो

[9]वंजणे त्ति अणिओगद्दारस्स सुत्तं। [10]तं जहा—

(३३) कोहो य कोव रोसो य अक्खम संजलण कलह वड्ढी य।
झंझा दोस विवादो दस कोहेयट्ठिया होंति ॥८६॥
(३४) [11]माण मद दप्प थंभो उक्कास पगास तध समुक्कासो।
अत्तुकरिसो परिभव उस्सिद दसलक्खणो माणो ॥८७॥
(३५) [12]माया य सादिजोगो णियदी वि य वंचणा अणुज्जुगदा।
गहणं मणुण्णमग्गण कक्क कुहक गूहण च्छण्णो ॥८८॥
[13]कामो राग णिदाणो छंदो य सुदो य पेज्ज दोसो य।
णेहाणुराग आसा इच्छा मुच्छा य गिद्धी य ॥८९॥
सासद पत्थण लालस अविरदि तण्हा य विज्ज जिब्भा य।
लोभस्स णामधेज्जा वीसं एगट्ठिया भणिदा ॥९०॥

एवं वंजणे त्ति समत्तमणिओगद्दारं।

(१) पृ १७६। (२) पृ १७७। (३) पृ. १७८। (४) पृ. १७९। (५) पृ १८०। (६) पृ १८१। (७) पृ १८२। (८) पृ १८३। (९) पृ १८५। (१०) पृ १८६। (११) पृ. १८७। (१२) पृ १८८। (१३) पृ. १८९।

## १०. सम्मत्त-अत्थाहियारो

[1]कसायपाहुडे सम्मत्ते त्ति अणिओगद्दारे अधापवत्तकरणे इमाओ चत्तारि सुत्त-गाहाओ परूवेयव्वाओ। [2]तं जहा—

(३८) दंसणमोह-उवसामगस्स परिणामो केरिसो भवे।
जोगे कसाय उवजोगे लेस्सा वेदो य को भवे ॥९१॥

(३९) [3]काणि व पुव्वबद्धाणि के वा अंसे णिबंधदि।
कदि आवलियं पविसंति कदिण्हं वा पवेसगो ॥९२॥

(४०) [4]के अंसे झीयदे पुव्वं बंधेण उदएण वा।
अंतरं वा कहिं किच्चा के के उवसामगो कहिं ॥९३॥

(४१) [5]किं ट्ठिदियाणि कम्माणि अणुभागेसु केसु वा।
ओवट्टेदूण सेसाणि कं ठाणं पडिवज्जदि ॥९४॥

[6]एदाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ अधापवत्तकरणस्स पढमसमए परूविदव्वाओ। तं जहा—'दंसणमोहउवसामगस्स परिणामो केरिसो भवे' त्ति विहासा। [7]तं जहा—परिणामो विसुद्धो। पुव्वं पि अंतोमुहुत्तप्पहुडि अणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झमाणो आगदो।

[8]जोगे त्ति विहासा। अण्णदरमणजोगो वा अण्णदरवचिजोगो वा ओरालिय-कायजोगो वा वेउव्वियकायजोगो वा। [9]कसाये त्ति विहासा। अण्णदरो कसायो। [10]किं सो वड्ढमाणो हायमाणो त्ति? णियमा हायमाणकसायो। उवजोगे त्ति विहासा। [11]णियमा सागारुवजोगो। लेस्सा त्ति विहासा। तेउ-पम्म-सुक्कलेस्साणं णियमा वड्ढमाणलेस्सा। [12]'वेदो य को भवे' त्ति विहासा। [13]अण्णदरो वेदो।

[14]'काणि वा पुव्वबद्धाणि' त्ति विहासा। एत्थ पयडिसंतकम्मं ट्ठिदिसंतकम्म-मणुभागसंतकम्मं पदेससंतकम्मं च मग्गियव्वं।

[15]'के वा अंसे णिबंधदि' त्ति विहासा। [16]एत्थ पयडिबंधो ट्ठिदिबंधो अणुभागबंधो पदेसबंधो च मग्गियव्वो।

---

(१) पृ १९४। (२) पृ १९५। (३) पृ १९६। (४) पृ १९७। (५) पृ १९८। (६) पृ १९९। (७) पृ २००। (८) पृ २०१। (९) पृ २०२। (१०) पृ २०३। (११) पृ २०४। (१२) पृ २०५। (१३) पृ २०६। (१४) पृ २०७। (१५) पृ. २१०। (१६) पृ २११।

[1]'कदि आवलियं पविसंति' त्ति विहासा। [2]मूलपयडीओ सव्वाओ पविसंति। उत्तरपयडीओ वि जाओ अत्थि ताओ पविसंति। णवरि जइ परभवियाउअमत्थि तं ण पविसदि।

[3]'कदिण्हं वा पवेसगो' त्ति विहासा। मूलपयडीणं सव्वासिं पवेसगो। उत्तरपयडीणं पंचणाणावरणीय-चदुदंसणावरणीय-मिच्छत्त-पंचिंदियजादि-तेजा-कम्मइयसरीर-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुगलहुग-उवघाद-परघादुस्सास-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुभासुभ-णिमिण-पंचंतराइयाणं णियमा पवेसगो। [4]सादासादाणमण्णदरस्स पवेसगो। चदुण्हं कसायाणं तिण्हं वेदाणं दोण्हं जुगलाणमण्णदरस्स पवेसगो। भय-दुगुंछाणं सिया पवेसगो। चउण्हमाउआणमण्णदरस्स पवेसगो। चदुण्हं गइणामाणं दोण्हं सरीराणं छण्हं संठाणाणं दोण्हमंगोवंगाणमण्णदरस्स पवेसगो। [5]छण्हं संघडणाणं अण्णदरस्स सिया। उज्जोवस्स सिया। दोविहायगइ-सुभग-दूभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणादेज्ज-जसगित्ति-अजसगित्तिअण्णदरस्स पवेसगो। [6]उच्चा-णीचगोदाणमण्णदरस्स पवेसगो।

[7]'के अंसे झीयदे पुव्वं बंधेण उदएण वा' त्ति विहासा। असादावेदणीय-इत्थि-णवुंसयवेद-अरदि-सोग-चदुआउ-णिरयगदि-चदुजादि-पंचसंठाण-पंचसंघडण-णिरयगइ-पाओग्गाणुपुव्वि-आदाव-अप्पसत्थविहायगइ-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारण-अथिर-असुभ-दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-अजसगित्तिणामाणि एदाणि बंधेण वोच्छिण्णाणि।

[8]पंचदंसणावरणीय-चदुजादिणामाणि चदुआणुपुव्विणामाणि [9]आदाव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीरणामाणि एदाणि उदएण वोच्छिण्णाणि।

[10]'अंतरं वा कहिं किच्चा के के उवसामगो कहिं' त्ति विहासा। ण ताव अंतरं उवसामगो वा, पुरदो होहिदि त्ति।

[11]'किं ट्ठिदियाणि कम्माणि अणुभागेसु केसु वा। ओवट्टेयूण सेसाणि कं ठाणं पडिवज्जदि' त्ति विहासा। ट्ठिदिघादो संखेज्जा भागे घादेदूण संखेज्जदिभागं पडिवज्जइ। अणुभागघादो अणंते भागे घादेदूण अणंतभागं पडिवज्जइ। [12]तदो इमस्स चरिमसमय-अधापवत्तकरणे वट्टमाणस्स णत्थि ट्ठिदिघादो वा अणुभागघादो वा। से काले दो वि घादा पवत्तीहिंति।

---

(१) पृ. २१३। (२) पृ. २१४। (३) पृ. २१५। (४) पृ. २१६। (५) पृ. २१७। (६) पृ. २१८। (७) पृ. २२१। (८) पृ. २२६। (९) पृ. २२७। (१०) पृ. २३०। (११) पृ. २३१। (१२) पृ. २३२।

[1]एदाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ अधापवत्तकरणस्स पढमसमए परूविदाओ। दंसणमोहउवसामगस्स तिविहं करणं। तं जहा—अधापवत्तकरणमपुव्वकरणमणियट्टि-करणं च। [2]चउत्थी उवसामणद्धा।

एदेसिं करणाणं लक्खणं। [3]अधापवत्तकरणपढमसमए जहण्णिया विसोही थोवा। विदियसमए जहण्णिया विसोही अणंतगुणा। एवमंतोमुहुत्तं। [4]तदो पढमसमए उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा। जम्हि जहण्णिया विसोही णिट्ठिदा तदो उवरिमसमए जहण्णिया विसोही अणंतगुणा। [5]विदियसमए उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा। [6]एवं णिव्वग्गणखंडयमंतोमुहुत्तद्धमेत्तं अधापवत्तकरणचरिमसमयो त्ति। [7]तदो अंतोमुहुत्तमोसरियूण जम्हि उक्कस्सिया विसोही णिट्ठिदा तत्तो उवरिम-समए उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा। [8]एवमुक्कस्सिया विसोही णेदव्वा जाव अधापवत्तकरणचरिमसमयो त्ति। [9]एदमधापवत्तकरणस्स लक्खणं।

अपुव्वकरणस्स पढमसमए जहण्णिया विसोही थोवा। [10]तत्थेव उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा। विदियसमए जहण्णिया विसोही अणंतगुणा। [11]तत्थेव उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा। समये समये असंखेज्जा लोगा परिणामट्ठाणाणि। एवं णिव्वग्गणा च। एदं अपुव्वकरणस्स लक्खणं।

[12]अणियट्टिकरणे समए समए एक्केकपरिणामट्ठाणाणि अणंतगुणाणि च। एद-मणियट्टिकरणस्स लक्खणं।

[13]अणादियमिच्छादिट्ठिस्स उवसामगस्स परूवणं वतइस्सामो। तं जहा—[14]अधा-पवत्तकरणे ट्ठिदिखंडयं वा अणुभागखंडयं वा गुणसेढी वा गुणसंकमो वा णत्थि, केवलमणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झदि। अप्पसत्थकम्मंसे जे बंधइ ते दुट्ठाणिये अणंतगुणहीणे च, पसत्थकम्मंसे जे बंधइ ते चउट्ठाणिए अणंतगुणे च समये समये। [15]ट्ठिदिबंधे पुण्णे पुण्णे अण्णं ट्ठिदिबंधं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागहीणं बंधदि।

[16]अपुव्वकरणपढमसमए ट्ठिदिखंडयं जहण्णगं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो उक्कस्सगं सागरोवमपुधत्तं। [17]ट्ठिदिबंधो अपुव्वो। अणुभागखंडयमप्पसत्थकम्मंसाण-मणंता भागा। [18]तस्स पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरफद्दयाणि थोवाणि। अइच्छावणाफद्द-याणि अणंतगुणाणि। णिक्खेवफद्दयाणि अणंतगुणाणि। [19]आगाइदफद्दयाणि अणंत-

(१) पृ २३३। (२) पृ. २३४। (३) पृ २४५। (४) पृ २४६। (५) पृ २४७। (६) पृ २४८। (७) पृ. २४९। (८) पृ २५०। (९) पृ २५२। (१०) पृ २५३। (११) पृ. २५४। (१२) पृ २५६। (१३) पृ २५७। (१४) पृ २५८। (१५) पृ २५९। (१६) पृ २६०। (१७) पृ. २६१। (१८) पृ २६२। (१९) पृ २६३।

गुणाणि। [1]अपुव्वकरणस्स चेव पढमसमए आउगवज्जाणं कम्माणं गुणसेढिणिक्खेवो अणियट्टिअद्धादो अपुव्वकरणद्धादो च विसेसाहिओ। [2]तम्हि ट्ठिदिखंडयद्धा ठिदिबंधगद्धा च तुल्ला। [3]एक्कम्हि ट्ठिदिखंडए अणुभागखंडयसहस्साणि घादेदि। [4]ट्ठिदिखंडगे समत्ते अणुभागखंडयं च ट्ठिदिबंधगद्धा च समत्ताणि भवंति। एवं ठिदिखंडयसहस्सेहिं बहुएहिं गदेहिं अपुव्वकरणद्धा समत्ता भवदि। [5]अपुव्वकरणस्स पढमसमए ट्ठिदिसंतकम्मादो चरिमसमए ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणहीणं।

[6]अणियट्टिस्स पढमसमए अण्णं ट्ठिदिखंडयं अण्णो ट्ठिदिबंधो अण्णमणुभागखंडयं। [7]एवं ट्ठिदिखंडयसहस्सेहिं अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु अंतरं करेदि। [8]जा तम्हि ट्ठिदिबंधगद्धा तत्तिएण कालेण अंतरं करेमाणो गुणसेढिणिक्खेवस्स अग्गग्गादो संखेज्जदिभागं खंडेदि। [9]तदो अंतरं कीरमाणं कदं। [10]तदो प्पहुडि उवसामगो त्ति भण्णइ।

पढमट्ठिदीदो वि विदियट्ठिदीदो वि आगाल-पडिआगालो ताव जाव आवलिय-पडिआवलियाओ सेसाओ त्ति। [11]आवलिय-पडिआवलियासु सेसासु तदो पहुडि मिच्छत्तस्स गुणसेढी णत्थि। [12]सेसाणं कम्माणं गुणसेढी अत्थि। पडिआवलियादो चेव उदीरणा। आवलियाए सेसाए मिच्छत्तस्स घादो णत्थि।

[13]चरिमसमयमिच्छाइट्ठी से काले उवसंतदंसणमोहणीओ। [14]ताधे चेव तिण्णि कम्मंसा उप्पादिदा। [15]पढमसमयउवसंतदंसणमोहणीओ मिच्छत्तादो सम्मामिच्छत्ते बहुगं पदेसग्गं देदि। सम्मत्ते असंखेज्जगुणहीणं पदेसग्गं देदि। [16]विदियसमए सम्मत्ते असंखेज्जगुणं देदि। सम्मामिच्छत्ते असंखेज्जगुणं देदि। तदियसमए सम्मत्ते असंखेज्जगुणं देदि। सम्मामिच्छत्ते असंखेज्जगुणं देदि। एवमंतोमुहुत्तद्धं गुणसंकमो णाम। [17]तत्तो परमंगुलस्स असंखेज्जदिभागपडिभागेण संकमेदि। सो विज्झादसंकमो णाम। [18]जाव गुणसंकमो ताव मिच्छत्तवज्जाणं कम्माणं ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेढी च।

[19]एदिस्से परूवणाए णिट्ठिदाए इमो दंडओ पणुवीसपडिगो। सव्वत्थोवा उवसामगस्स जं चरिमअणुभागखंडयं तस्स उक्कीरणद्धा। अपुव्वकरणस्स पढमस्स अणुभागखंडयस्स उक्कीरणकालो विसेसाहिओ। [20]चरिमट्ठिदिखंडयउक्कीरणकालो तम्हि चेव ट्ठिदिबंधकालो च दो वि तुल्ला संखेज्जगुणा। अंतरकरणद्धा तम्हि चेव ट्ठिदिबंधगद्धा

(१) पृ २६४। (२) पृ २६६। (३) पृ. २६७। (४) पृ २६८। (५) पृ २६९। (६) पृ २७१। (७) पृ २७२। (८ पृ २७३। (९) पृ. २७५। (१०) पृ. २७६। (११) पृ २७७। (१२) पृ २७९। (१३) पृ २८०। (१४) पृ २८१। (१५) पृ २८२। (१६) प २८३। (१७) पृ २८४। (१८) पृ. २८५। (१९) पृ २८६। (२०) पृ. २८७।

च दो वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ । [1]अपुव्वकरणे ट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धा ट्ठिदिबंधगद्धा च दो वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ । उवसामगो जाव गुणसंकमेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि पूरेदि सो कालो संखेज्जगुणो । पढमसमयउवसामगस्स गुणसेढिसीसयं संखेज्जगुणं । [2]पढमट्ठिदी संखेज्जगुणा । उवसामगद्धा विसेसाहिया । [3]वे आवलियाओ समयूणाओ । अणियट्टि-अद्धा संखेज्जगुणा । अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा । [4]गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ । उवसंतद्धा संखेज्जगुणा । अंतरं संखेज्जगुणं । [5]जहण्णिया आवाहा संखेज्जगुणा । [6]उक्कस्सिया आवाहा संखेज्जगुणा । जहण्णयं ट्ठिदिखंडयमसंखेज्जगुणं । [7]उक्कस्सयं ट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं । जहण्णगो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । [8]जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । [9]उक्कस्सयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । एवं पणुवीसदिपडिगो दंडगो समत्तो ।

एत्तो सुत्तफासो कायव्वो भवदि ।

(४२) दंसणमोहस्सुवसामगो दु चदुसु वि गदीसु बोद्धव्वो ।
पंचिंदिओ य सण्णी णियमा सो होइ पज्जत्तो ॥९५॥

(४३) [10]सव्वणिरय-भवणेसु दीव-समुद्दे गह-जोदिसि-विमाणे ।
अभिजोग्ग-अणभिजोग्गे उवसामो होइ बोद्धव्वो ॥९६॥

(४४) [11]उवसामगो च सव्वो णिव्वाघादो तहा णिरासाणो ।
उवसंते भजियव्वो णीरासाणो य खीणम्मि ॥९७॥

(४५) [12]सागारे पट्ठवगो णिट्ठवगो मज्झिमो य भजियव्वो ।
जोगे अण्णदरम्हि य जहण्णगो तेउलेस्साए ॥९८॥

(४६) [13]मिच्छत्तवेदणीयं कम्मं उवसामगस्स बोद्धव्वं ।
उवसंते आसाणे तेण परं होइ भजियव्वो ॥९९॥

(४७) [14]सव्वेहिं ट्ठिदिविसेसेहिं उवसंता होंति तिण्णि कम्मंसा ।
एक्कम्हि य अणुभागे णियमा सव्वे ट्ठिदिविसेसा ॥१००॥

(४८) [15]मिच्छत्तपच्चयो खलु बंधो उवसामगस्स बोद्धव्वो ।
उवसंते आसाणे तेण परं होइ भजियव्वो ॥१०१॥

---

(१) पृ. २८८ । (२) पृ २८९ (३) पृ २९० । (४) पृ २९१ । (५) पृ २९२ । (६) पृ २९३ । (७) पृ २९४ । (८) पृ २९५ । (९) पृ २९६ । (१०) पृ २९८ । (११) पृ ३०२ । (१२) पृ. ३०४ । (१३) पृ ३०७ । (१४) पृ. ३०९ । (१५) पृ ३११ ।

(४९) [1]सम्मामिच्छाइट्ठी दंसणमोहस्सऽबंधगो होइ ।
वेदयसम्माइट्ठी खीणो वि अबंधगो होइ ॥१०२॥

(५०) [2]अंतोमुहुत्तमद्धं सव्वोवसमेण होइ उवसंतो ।
तत्तो परमुदयो खलु तिण्णेगदरस्स कम्मस्स ॥१०३॥

(५१) [3]सम्मत्तपढमलंभो सव्वोवसमेण तह वियट्ठेण ।
भजियव्वो य अभिक्खं सव्वोवसमेण देसेण ॥१०४॥

(५२) [4]सम्मत्तपढमलंभस्साणंतरं पच्छदो य मिच्छत्तं ।
लंभस्स अपढमस्स दु भजियव्वो पच्छदो होदि ॥१०५॥

(५३) [5]कम्माणि जस्स तिण्णि दु णियमा सो संकमेण भजियव्वो ।
एयं जस्स दु कम्मं संकमणे सो ण भजियव्वो ॥१०६॥

(५४) [6]सम्माइट्ठी सद्दहदि पवयणं णियमसा दु उवइट्ठं ।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणिओगा ॥१०७॥

(५५) [7]मिच्छाइट्ठी णियमा उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥१०८॥

(५६) [8]सम्मामिच्छाइट्ठी सागारो वा तहा अणागारो ।
अध वंजणोग्गहम्मि दु सागारो होइ बोद्धव्वो ॥१०९॥

[9]एसो सुत्तफासो विहासिदो । [10]तदो उवसमसम्माइट्ठि-वेदयसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीहिं एयजीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहिं भंगविचओ कालो अंतरं अप्पाबहुअं चेदि । [11]एदेसु अणियोगद्दारेसु वण्णिदेसु दंसणमोहउवसामणे त्ति समत्तमणियोगद्दारं ।

---

(१) पृ ३१३ । (२) पृ ३१४ । (३) पृ ३१६ । (४) पृ ३१७ । (५) पृ. ३१८ । (६) पृ ३२१ । (७) पृ. ३२२ । (८) पृ. ३२४ । (९) पृ. ३२५ । (१०) पृ. ३२६ । (११) पृ ३२८ ।

## २. अवतरण-सूची



## ३. ऐतिहासिक-नामसूची



## ४. ग्रन्थनामोल्लेख



## ५. न्यायोक्ति

## ६. सूत्रगाथा-चूर्णिगत शब्दसूची

## ७. जयधवलागत-पारिभाषिक शब्दसूची

सूचना—यहाँ मात्र वे पारिभाषिक शब्द लिये गये हैं जिनकी मूलमें परिभाषा दी है या जिनका विशेष स्पष्टीकरण किया गया है।

●